੧ੴ

श्री वाहेगुरु जी की फतह ॥

श्री गुरु कलीधर चमत्कार

(तृतीय भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन
नई दिल्ली

श्री गुरू कल्ग़ीधर चमत्कार

(तृतीय भाग)

श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार

(तृतीय भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डा॰ वीर सिंह

२००१

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार (तृतीय भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

हिन्दी में प्रथम संस्करण : १९८८
द्वितीय संस्करण : २००१

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : १४०/-

प्रकाशकीय

(तृतीय भाग)

संत कवि भाई साहिब डा: वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' के हिन्दी रूपान्तर का यह तृतीय भाग है। पहले दो भाग १९७० में तथा इस भाग का १९८८ में प्रथम प्रकाशन हुआ था। मूल रूप में 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डा: वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मूर्धन्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' भाई साहिब जी की गद्य-रचना है। इसमें श्री गुरू गोबिंद सिंह जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू गोबिंद सिंह जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद मूल रचना की अपेक्षा एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई है, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सकें। बहुत सीमा तक मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरुवाणी की प्रामाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरुमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली।

डा: जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

प्रकरण-सूची

४४ बीबी सुघड़ बाई[१]

: १ :

एकान्त तथा एकाकीपन

जब व्यक्ति थक जाता है तो आराम करना चाहता है, यदि ऊब जाये तो ऊब से छुटकारा प्राप्त करना चाहता है यदि दम घुटने लगे तो न आराम की होश होती है और न ही छुटकारे की, अंदर बाहर घबराहट छा जाती है, पर यदि थकाने वाले, ऊबाने वाले, तथा दम घोटने वाले सारे सामान दूर हो जाएं और यह अकेला रह जाए तो संत्रास आ घेरता है और बावलापन सिर पर सवार होने लगता है। एकाकीपन बुरा होता है, यह किसी को भी प्राप्त न हो। एकाकीपन तो सबसे अधिक डरावनी वस्तु होती है। एकाकीपन उदासी की मां तथा निराशा की दादी होती है। हैं? क्या यह एकाकीपन बुरी वस्तु है? एकाकीपन एकान्त है, एकान्त को कोमल कलाओं वाले विद्वानों, दार्शनिकों तथा ईश्वर के प्रेमियों ने सराहा है। फिर क्यों कहते हो कि एकाकीपन अथवा एकान्त बुरी वस्तु है। इस लिए कि एकाकीपन 'एकान्त' नहीं है। एकान्त की खोज तो व्यक्ति स्वयं करता है और एकाकीपन इस पर वैसे आ पड़ता है। 'एकान्त' आत्मा के आराम का स्थान है। एकाकीपन 'अकेलेपन की कैद है'। 'एकान्त' में पहुंचकर थकावट, ऊब तथा दम घुटना दूर होता है, पर एकाकीपन में पहुंचकर विक्षिप्तता सी छा जाती है। एकान्त तो नवजीवन को यौवन प्रदान करता है और एकाकी जीवन को जर्जर करता है और बुढ़ापा लाता है।

एकान्त में आपा अपने ठीक ठिकाने पर आता है, और एकाकीपन में आपे का वज़न घट जाता है। हाँ, एकान्त में दिल को बढ़ाने वाली स्तुति तथा दिल को पतन की ओर ले जाने वाली निन्दा नहीं होती, अतः मन के पलड़े इधर-उधर झुकते उठते नहीं, संतुलित ही रहते हैं। अतः व्यक्ति अपना सही मूल्यांकन कर लेता है। एकान्त में ध्यान इधर-उधर आकर्षित नहीं होता आपा टिकता है और आपे में गोला लगाता है और कई बार इन गोलों से आपे की गहराइयों में से गुण रूपी रत्न खोज लाता है। मन के दाव पेच एकान्त में दीखने लगते हैं और फिर मन में से निकल जाते हैं। एकान्त में वृद्धि उज्जवल हो जाती है और निश्चय

---

१. यह प्रसंग मार्गशीर्ष सं॰ गु॰ ना॰ सा॰ ४६८ अर्थात् १९ जनवरी, १९३९ ई॰ को गुरु पूर्व सप्तमी पर खालसा समाचार में प्रकाशित हुआ था।

के घर को खोज लेती है, एकान्त में ध्यान एकाग्र होता है और वह रास्ता मिल जांता है, जो अनंत में जा खुलता है। एकान्त में आत्मा, आत्मा से बात करती है, और एकान्त में ही ईश्वर आत्मा के साथ बातें करता है। यदि व्यक्ति जगत को कुछ देना चाहे, तो एकान्त से प्रेम करे, दाता बनने के लिए उसे एकान्त में से ही सामग्री प्राप्त होगी।

एकाकीपन में सुरति के आश्रय टूटे हुए, अपरिचित तथा दूर चले गए प्रतीत होते हैं, अतः एकाकीपन में उदासी, डर तथा पागलपन-सा छा जाता है। एक व्यक्ति को किसी निर्जन टापू में छोड़ दीजिए, छः महीने के बाद उससे जाकर पूछिए कि उसके साथ क्या हुआ तो वह एकाकीपन की भयंकरता को बता सकेगा। आप एक मंदिर में समाधि लगाकर बैठे हों, यात्रियों की चहल-पहल है और भवन भरे पड़े हैं। जब आप आंख खोलते हैं, तो वहां पर एक जीव भी दिखाई नहीं देता। इसी से उस समय के एकाकीपन के चित्र तथा प्रभाव का पता चल जाएगा। मान लो आप कहीं शिकार खेलने के लिए गए हैं, और कई दिन वन में ही खो गए, कोई प्यारा आपके साथ नहीं कोई जान-पहचान वाला भी नहीं मिला, कोई अपरिचित व्यक्ति भी नहीं मिला, आंखों के सामने से कोई जीवमात्र नहीं गुज़रता, आप उस समय के अपने दिल के टुकड़े का अनुमान लगाओ। हां जी वनों में खोए हुए को एकाकीपन के रंगों का पता है तथा एकाकीपन की कैद वाले को इसकी पीड़ा का कहीं ज्यादा पता है। बाबा! एकाकीपन बुरा।

वैसे देखें तो जीव अकेला है। अकेला है। अकेला ही आता है और अकेला ही चला जाता है, पर इस एकाकीपन की सोच इसे नहीं आती, यदि आती है तो यह भयातुर होता है। किंतु जगत में रहते हुए यदि इसे कभी एकाकीपन आ जाय तो यह बहुत दुखी होता है। यदि सोचे तो इन्सान जगत में रहते हुए भी एकाकीपन में है, पर आस-पास की चहल-पहल के कारण भी इसे अपने एकाकीपन का ध्यान नहीं रहता। जैसे एक सौ अंडे साथ-साथ रखे हों, सभी अपनी-अपनी सीमा में बंद हैं, चाहे साथ-साथ पड़े हैं, पर हैं अलग-अलग, अकेले-अकेले। इसी तरह एक सौ पिंजरे पास-पास रखे हैं, पर उनमें पक्षी अकेले बैठे हैं, अपनी-अपनी सीमा में अलग-अलग। इसी तरह व्यक्ति चाहे व्यक्ति के निकट है पर प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग तथा अकेला-अकेला है। व्यक्ति का आपा अलग-अलग है, प्रत्येक की अपनी अन्तरीय दुनिया है। पुत्र को दर्द हो रहा है मां पास बैठकर सेक कर रही है, अजवायन खिला रही है और न्योछावर हो रही है, पर जहां पर पुत्र को पीड़ा महसूस हो रही है, मां की वहां पर पहुंच नहीं है। दांत पीसती है और सोचती है कि यदि उसका बस चले तो

वहां से पीड़ा को निकाल दे, पर इतने हित तथा हितैषी के पास होते हुए भी पुत्र पीड़ा के मण्डल में अकेला है। इस एकाकीपन का पता वितर्क वाले वैराग्यवाद का होता है। एक अन्य एकाकीपन है जिसमें व्यक्ति प्रसन्नता से बस रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अकेला है और जगत के साथ उसका स्वाभाविक ही युद्ध हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने लाभ के पीछे है, दूसरे को पराया समझकर उसके लाभ की किसी को कोई चिन्ता नहीं है। अपना लाभ लेते समय, अपना नफा निकालते समय, दूसरे के साथ दर्द नहीं होता, बल्कि उसकी हानि की भी परवाह नहीं होती। इस तरह भी प्रत्येक व्यक्ति अकेला है और एकाकीपन उसके भीतर घुल रहा है। हां जी, यह एकाकीपन बाहर का नहीं अपितु भीतर का है। अपना लाभ तथा लाभ में यत्न (खींचा तानी) तथा इस यत्न से प्राप्त हुई विजय का रस इस एकाकीपन का पता नहीं चलने देता।

एक अन्य प्रकार का एकाकीपन भी है जो भीड़ में भी आ जाता है। किसी व्यक्ति को हवाई जहाज़ पर सवार करके पांच हज़ार मील की दूरी पर ले जाकर किसी घनी आबादी वाले नगर में छोड़ दीजिए, जहां के लोगों की भाषा भी उसे नहीं आती। उस चहल-पहल में उस अपरिचित व्यक्ति को 'भीड़ में मिलने वाले एकाकीपन' का पता चलेगा और उसे इससे छुटकारा पाने का रस तब आएगा, जब डावांडोल हो रहे को कोई चाहे वह अपरिचित भी क्यों न हो, उसकी भाषा को समझने वाला मिल जाएगा।

एक अन्य एकाकीपन भी है। जब आस-पास भीड़ भी है, जान पहचान वाले लोग भी हैं, हम कुदर्द लोग भी हैं, पर कोई एक प्यारा, जिसको उसने अपनी सुरति का आधार बना लिया था, चल बसा है। हां, इस एकाकीपन वाले जगत में, जिसमें बाहर भी 'दूरी' का प्रसार है और भीतर भी दूरी का प्रसार है, एक प्यार है, हमदर्दी है—यदि इस समय वह आ प्रकट हो तो एकाकीपन रूपी दूरी पर एक पुल बन जाता है। इसी पुल के आश्रय में व्यक्ति अपने प्रकृतिदत्त 'एकाकीपन' को भुलाए रखता है। पर जब कभी यह पुल टूटता है, अथवा कोई प्यारा, जिसके साथ सुरति ने इस प्यार व लगाव का सेतु बना लिया था, बिछुड़ जाता है तो अंतस में एकाकीपन आ जाता है, लोगों के पास होते हुए भी एकाकीपन की पीड़ा है। उसे झकझोर देती है।

: २ :

एकाकीपन की रात

पोठोहार के क्षेत्र की एक महिला है, जिसका पति जवानी में ही संसार से चल बसा है। वह महिला स्वयं भी युवा है, सुडौल, सुन्दर सरोंह के वृक्ष की

भांति लम्बे कद की तथा सुघड़ है। इसका नाम भी 'सुघड़ो' ही प्रसिद्ध है। इसके मायके वाले भी धनी थे, उनका भी देहांत हो चुका है और उनकी सारी धन-दौलत इसी को प्राप्त हुई। इसका पति भी स्वयं काफ़ी पैसे वाला था। कोई बच्चा न होने के कारण सारी धन-दौलत भी सुघड़ो के ही पास है। दोनों परिवारों से प्राप्त हुई सम्पदा इसके पैर चूम रही है, पर यह है अकेली। न मायके वाले हैं, न ससुराल, न पिता, न पति, न मां, न सास और बाल बच्चा भी कोई नहीं हुआ, न पुत्र है न बेटी। यह महिला संसार में अकेली बैठी है, नौकर चाकर भी हैं, दूर निकट के रिश्ते-नाते वाले भी हैं, चापलूस भी अनेक हैं, धन के कारण 'जी-जी' करने वाले भी हैं, पर वह अपना एकाकीपन ही भुगत रही है, बाहर का एकाकीपन। अपने प्रिय लोगों के देहांत के कारण भीतर का एकाकीपन है, सुरति के आश्रय, पति के वियोग के कारण। आधी रात है, गर्मी का मौसम है, ऊपर छत पर पलंग बिछा है, जिसके ऊपर यह महिला लेटी हुई है। हां सुघड़ो लेटी तो है, पर जागती हुई तारों से बातें कर रही है-

हे अगाध नील के तैराको! तुम भी मुझे अपनी तरह अकेले-अकेले ही दीख रहे हो। कोई भी किसी के साथ नहीं है। न जाने कितनी दूरी है तुम में, पर फिर भी तुम चमकते हो। मैं क्यों पतन की ओर जा रही हूँ? मेरे पास भी तुम्हारी तरह चमकते हुए जवाहरात हैं; क्यों मेरी चमक खत्म हो गई है? मेरे पास नौकर चाकर तथा दासियां भी हैं, मेरी महिमा करने वाले भी हैं, फिर मैं क्यों अकेली-अकेली लगती हूं। इतने लोगों के पास होते हुए, हाय, यह एकाकीपन मुझे क्यों खा रहा है? सुघड़ो री! पिताजी ने तुझे विद्या दिलवाई थी, "जगत असार है" तूने पढ़ा था। कोई भी किसी के साथ नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति अकेला आता है और अकेला ही चला जाता है। बीच में कहीं अकेला हो गया तो हो गया। पर हां, सोच तब अच्छी लगती थी, पर अब वह भी काम नहीं करती। हृदय में पीड़ा है, वह हटती नहीं। बापू जी! बापू जी! आओ देखो! लाड़ों से पली किस तरह व्याकुल हो रही है। मौत; बुरी मौत, वियोग की छुरी मौत, मां बिछुड़ गई, पिता बिछुड़ गया, पति भी न रहा, पर हाय! मृत्यु अनुकंपा भी है। तुम मेरे बापू जी मैंने दुख मनाया था कि तुम क्यों चले गए, पर मैं आज देखती हूं पर तुम पर मृत्यु ने अनुकंपा की है। यदि उस समय मृत्यु तुम्हें न ले जाती तो आज तुम मुझे देखकर दुखी होते और यदि मृत्यु उस समय मुझे भी समेट लेती तो मैं भी आज पति वियोग दुख को न देखती। मृत्यु अनुकंपा वाली है, पर इसकी कृपा तो इसकी अपनी खुशी पर है। मांगने से यह नहीं मिलती। अपनी खुशी से कृपा की वर्षा कर देती है। मैंने इसकी बड़ी मिन्नतें कीं कि मुझे भी पति के साथ ले चल, पर उसने एक न मानी और कर्तार ने अपनी ही मर्जी की।

दुख की रात नहीं कटती, दुख की उम्र कैसे कटे, प्रभात कैसे आएगी। नैनों में नींद नहीं आती, कब आयेगी सदा की नींद, नींद सुलक्षणी कब मुंह दिखाएगी, नहीं आओगे प्रियतम! फिर, सुघड़ो न देखेगी, फिर चक्कर में डालने वाली वह रात।

: ३ :

एकाकीपन से निकलने के प्रयत्न

किसी-किसी समय सुघड़ो की व्याकुलता तथा घबराहट बावलेपन का रूप धारण कर लेती थी, पर मन में कोई प्राकृतिक शक्ति थी और कुछ पढ़ी लिखी भी थी। अति घबराहट के समय अंदर आभासित एकाकीपन से छुटकारा पाने के लिए कोई रास्ता ढूंढती। रोते तथा विलाप करते हुए चालीस दिन व्यतीत हो गए। एक रात तारे गिनते हुए सूझ आई कि जो चला गया है, वह तो अब वापिस लौटकर नहीं आ सकता, शुरू से ही गया हुआ कोई लौटा नहीं, क्या मैं अब किसी वस्तु को वापिस लौटाकर ला सकती हूं?

बुद्धिमान तथा सूझवान मन न सोचा कि प्यारे पति की स्मृति तथा संभाल मैं करती हूं। अंत उसके मिलाप का सुख तो मन को ही होता था और जो वस्तु मुझे अब दुख दे रही है, वह भी मन में उसके सुखों की याद है। अब मैं वियोग की पीड़ा में बहती हूं, मैं 'मिलन रस की याद' में क्यों न जीऊं? वे क्षण, वे घड़ियां, वे समय की लहरें, जो पति के आनन्द में बीतीं, क्या मैं उनकी याद में जी नहीं सकती? यह सोचकर सुघड़ो ने अपने मन को लगी चोट का इलाज खोज लिया। हां, कहती : हे एकाकीपन। यदि तू मेरे मन में घुस गया है, तो तू बाहर निकल, जिससे मैं यहां प्रिय रस की स्मृति का निवास करूं। इस यत्न में लगकर मुझे सुख से बीतने वाला समय मिल जाए। पर फिर वियोग, पीड़ा तथा एकाकीपन की रौ चल पड़ती। इसने इसका यह इलाज किया कि पति की एक मूर्ति को एक पलंग पर सजा दिया और मूर्ति पूजा की भांति इसकी पूजा शुरू कर दी। जब दिल टूटने लगता तो मूर्ति के सामने होकर कहती: 'तुम हो न तुम, तुम्हारे प्रेम रस के क्षणों की याद अब भी ताज़ा है, तुम हो न तुम'। यों कहकर आंखें मूंदकर बैठ जाती और प्रेम वाले क्षणों में आए रसभाव को याद करती। यों सुरति में से एकाकीपन के भाव का रस निकलता। सुघड़ो का समय इस तरह व्यतीत होने लगा। इस तरह उसने अपने मन में ही वियोग तथा एकाकीपन का उपचार किया।

: ४ :

मूर्तिपूजा: पति से श्रीराम

किसी प्यारे के वियोग से लगे घाव का उपचार समय भी करता है। सूझवान लोग कहते हैं कि ऐसे घावों के भरने में प्राय: एक वर्ष तो लग ही जाता है, पर घावों के भरने के समय का हिसाब घावों की गहराई के अनुसार ही लगाया जाता है। सुघड़ो के सुघड़ मन को स्वाभाविक ही एक दवाई तो अंदर से ही उपलब्ध हो गई थी, पर उसमें वह टिका हुआ विश्वास नहीं था जो किसी सत्संग से प्राप्त प्रभु की स्मृति से पैदा होता है। अत: उसे मूर्ति का आश्रय लेना पड़ा था। इसके आश्रय सुघड़ो का कुछ बचाव भी हो गया। वह दूसरे बहावों में बह जाने से तो बच गई। जायदाद तथा धन आदि के प्रबंध में भी उसका समय व्यतीत होता था, ये काम भी वियोग तथा एकाकीपन के दुख को भुलाते थे, पर उसने बाहर से एक अन्य आश्रय खोजा। आने जाने वाले साधु महात्माओं के लिए कुटिया बनवाई। आस-पास एक बाग़ीचा भी लगवाया और अन्न जल का भी प्रबंध किया।

यदि किसी स्त्री के पास धन हो, और वह विधवा हो यह बात तो रिश्तेनाते वालों तथा परिचित अपरिचित सभी को आकर्षित करती है। वे धन बटोरने के हर उचित तथा अनुचित ढंग सोचने लगते हैं। जब एक वर्ष व्यतीत हो चुका, तो सुघड़ो का मन अपनी जायदाद के प्रबंध आदि में लग गया। सुघड़ो थोड़ी-सी खिली, किसी समय खुश भी दीख पड़ती। इसे इस तरह खुश देखकर निकट के ससुराल वाले नातेदारों में से नौजवानों ने यत्न शुरू कर दिए। चाहे हिंदू समाज में विधवा विवाह की छूट नहीं और उच्च जातियों में तो इसे बहुत नीच बात समझी जाती है पर यहां तो पैसे का लोभ लालच मान सम्मान तथा भाईचारे की कौन परवाह करता है। इस तरह के कई यत्न हुए और सुघड़ो पर इनका कोई प्रभाव न पड़ा। सुघड़ो स्वाभाविक ही उस अकल की मालिक थी, जिसे 'साधारण परख वाली बुद्धि' कहना चाहिए। अत: वह ज्यादा मग़ज़पच्ची किए बिना ही समझ जाती थी। यदि आवश्यकता पड़ती, तो इसके पास वितर्क बुद्धि भी थी और वह बात की तह तक पहुंचने में कम ही भूल करती थी। ब्रजभाषा के कुछ ग्रंथों के अध्ययन के कारण इसकी बुद्धि तीक्ष्ण हो गई थी, अत: प्रत्येक बात को समझ लेने वाली बुद्धि भी उसमें पर्याप्त थी। अत: यह उन रिश्तेनाते वालों के उद्देश्य को भांप गई, जो इसे अपने बस में करके इसकी दौलत को अपनाने के प्रयत्न कर रहे थे। हिन्दू धर्म में लालन-पालन होने के करण, पति के वियोग के बाद, इसे किसी अन्य पुरुष का ख्याल प्रिय नहीं लगता था। लोकाचार भी तो एक भारी रुकावट थी, पर पति प्रेम जो इसे इश्क की भांति लगा था, वह भी इसकी सुरति को बांधकर रखता, ऐसे ही अनेक कारणों में

जिस जिसने इसे अपना बनाने का यत्न किया, वह पराजित हुआ और प्रत्येक ऐसे मामले में सुघड़ो विजयी होती रही। प्रत्येक विजय उसके मन को अधिक शक्ति-शाली करती गई, साथ ही संसार से वैराग्य होता चला गया। धन के संबंध में अपने घर के एक पुराने नौकर के सिवाए, इसका किसी दूसरे व्यक्ति पर कोई विश्वास न रहा और यह उसे अधिक चौकसी से इसे संभालती रही। यहां से मिले वैराग्य से उसका झुकाव सत्संग की ओर हो गया, जिसमें इसे दीखता कि आत्मा का भला होगा तथा धन की सफलता का अवसर मिलता रहेगा। जो कुटिया बनवाई थी, वहां पर नौकर काम करते थे, पर अब यह स्वयं वहां आने जाने लगी। विद्वानों तथा भले पुरुषों के साथ विचार विमर्श का अवसर वहां पर मिल जाता। इससे उसे अपनी अंदर की भूख के लिए भोजन मिल जाता और हाथों से अन्न जल की सेवा करके जो आशीर्वाद मिलता अथवा साधु जो महिमा करते, उन से भी सुरति को कुछ आश्रय मिल जाता।

इस तरह करते हुए एक बार कोई वैरागी साधु आए। ये अच्छे दर्शनीय तथा विद्वान थे। सुघड़ो का हाल सुनकर ये कुछ अधिक समय के लिए वहां पर टिक गए और उपदेश आदि में कुछ अधिक समय लगाने लगे। जब उस साधु को पता चला कि यह पति की मूर्ति की पूजा, मूर्ति पूजन की भांति करती है, तो कहने लगे, 'देख बिटिया! तूने जो पति-प्रेम में मूर्ति पूजन आरम्भ किया है, यह उचित नहीं! मरने के बाद उसे याद करना ठीक नहीं आम लोगों में यह बात प्रचलित है कि मृतक को याद नहीं करते। जब जलाकर आते हैं तो वहीं तिनका तोड़कर आते हैं और यह कहते हैं 'यत्र आगतः तत्र गतः[१]' सभी मृतक प्राणी वीत रागी महापुरुष नहीं होते। माया भी मृतकों को याद करने वालों के लिए कई कलेषों का कारण बनती है, पर तुम सुशील हो, धर्मानुरागिनी हो, तुम को जो अभी तक हानि नहीं हुई, वह समझो तुम पर राम का अनुग्रह है और हमारे विचार में भला ही हुआ कि तुम्हें ध्यान का अभ्यास हो गया। अब यदि तुम पति की मूर्ति के स्थान पर राम की मूर्ति रख लो तो तुम्हारा कल्याण हो जाए और जन्म मरण की बाधा दूर हो जाए।

इस प्रकार इस साधु ने सुघड़ो को अपने मत की ओर प्रेरित कर लिया और पति की मूर्ति के स्थान पर राममूर्ति में लगा लिया। अब जो पति प्रेम था अथवा प्रेम रस की स्मृति थी, मन स्वाभाविक ही उस विचार में से निकल गया और राम भक्ति में लग गया। साधु ने जो-जो साधन बताए, वे सारे इसने अपनाए, पर इसका चित्त डावांडोल हो जाता। अंत में एक दिन इसे उस साधु के वार्तालाप से पता चल गया कि राम अवतार की प्राप्ति के स्थान पर यह साधु ही राम रूप बनकर उसे

१. जिधर से आया था, उधर ही चला गया।

अपने पीछे लगाएगा। अब सुघड़ो ने चौकस होकर पड़ताल शुरू की तो वह इस परिणाम पर पहुंची कि इस साधु ने स्वयं अपनी कामनाओं पर विजय प्राप्त नहीं की, और उसकी धन-सम्पदा तथा रूप के कारण उस पर विजय प्राप्त के प्रयत्नों में है। इसके कारण उसने साधु की कुटिया से विदा किया और स्वयं फिर चिंता के बहाव में बह गई कि जैसे संसार के मिलाप रखने वाले किसी के मित्र नहीं होते, केवल अपने ही लाभ के लिए दूसरों को मिलते हैं, वैसे ही ये घर बार का त्याग करके विचरने वाले ऐसे साधु माया के पीछे ही बावले होकर फिर रहे हैं।

: ५ :

मूर्तिपूजा–श्रीराम से कृष्ण

यह ठोकर खाकर सुघड़ो का मन पीछे नहीं हटा। अब वह इस धुन में थी कि अंत में तो मरना ही है, धन, पदार्थ आदि ने तो साथ नहीं जाना। जीवन को ऐसा मोड़ जाए कि दोबारा जन्म न हो। न जन्म हो और न ही माया, पति, पिता आदि के साथ मोह ही हो, न ही वियोग की चोट सहन करनी पड़े। हां किसी ऐसे साधु की खोज अवश्य ही करनी है जो स्वयं पारगामी हो, जो माया से मुक्त हो और जिसकी परमात्मा में पहुंच हो। अतः इसने साधु संतों से मेल जारी रखा। जब इसे किसी साधु के आने का पता चलता है तो यह अपनी सखियों को साथ लेकर उसे मिलने के लिए जाती। भेंट, पूजा भी ले जाती और यदि अच्छा लगता तो कुछ दिनों के लिए उसे कुटिया में टिका भी लेती। प्रत्येक साधु इसके कानों में यह आवाज़ देते कि गुरू के बिना गति नहीं है। पर इन साधुओं में से किसी मन को ठीक लगने वाले गुरू का मिल जाना मुश्किल था।

उधर इसकी सेवा कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। भेष के परदे मे जो धन के इच्छुक थे, वे सुनकर दूर-दूर से आने लगे। जो निरिच्छ लोग हैं वे तो क्यों किसी के पास जायेंगे? वे तो केवल उस समय किसी के पास जाते हैं जब प्रभु आज्ञा में उन्हें कहीं पर जाना हो, पर जिन्होंने भेस धारण कर रखे हैं, मनोकामनाएं उन्हें कब चैन से बैठने देती हैं? सुघड़ो की कीर्ति सुनकर वृन्दावन से एक वैष्णव साधु चलकर पोठोहार आ गया। इसके पास रासलीला का सारा राजसी सामान था और गायन तथा नृत्य का भी कमाल था। सुघड़ो के गांव के निकट वाले गांव में उसने आ डेरा डाला। यह गांव एक बड़े कस्बे के समान था और यहां पर हिन्दू आबादी बहुत थी। इनकी भक्ति, रासलीला तथा संकीर्तन की महिमा सुघड़ो ने भी सुनी। इसने यह महिमा सुनी नहीं, बल्कि इसे सुनाई गई।

पिछले अनुभव के कारण सुघड़ो अधिक समझदार हो गई थी। उसने बड़ी चौकसी से पूछताछ की। जब उसकी संतुष्टि हो गई कि यहां पर बनावट नहीं तो उसे अपने गांव बुला लिया। यहां पर बाबा जी ने कृष्ण कर्तव्य की सारी लीला

रचाई। बाबे का अपना नाम कृष्ण कुमार था, इसका गाना तथा नृत्य इस कमाल के थे कि सुघड़ो कई बार बेसुध हो जाती। परमार्थ में रुचि तथा मन की एकाग्रता की इच्छा को इस संकीर्तन से लाभ हुआ। सुघड़ो की श्रद्धा कृष्ण कुमार से बहुत अधिक बढ़ गई।

सुघड़ो के पास चोखा नामक एक नौकर था। इसे इसके ससुर ने बचपन से पाला था और अब इसकी उम्र पचास वर्ष के लगभग थी। इसे इस घर के साथ पर्याप्त स्नेह था। सभी मर्दों के मर जाने के बाद यह सुघड़ो का सच्चा विश्वास योग्य सेवक सिद्ध हुआ। सुघड़ो के परमार्थ के शौक को यह भय की दृष्टि से देखता था और प्रायः इसके द्वारा निकाले जाने वाले पते ठिकाने सुघड़ो के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ करते थे। इस साधु पर भी उसे तसल्ली हो गई कि निरलोभ है, पर इसने अपनी खोज का त्याग नहीं किया था। एक दिन सुघड़ो ने इस साधु से मंत्र मांगा। साधु ने कहा कि पहले अपने घर से राम की मूर्ति हटा दे, और आगे के लिए राम के उपासक साधुओं की संगति का त्याग कर दे, तब हम उपदेश दे सकते हैं। जब सुघड़ो ने कारण पूछा तो उसने बताया कि इष्ट एक ही होना चाहिए, दो से पार नहीं हुआ जाता, 'एक देवः केशवो वा शिवो वः[१]'। यदि दो मिल जाएं तो शिरोमणि को ले लीजिए। राम जी १६ कला संपूर्ण अवतार नहीं हैं, कृष्ण १६ कला सम्पन्न हैं, पूर्ण अवतार हैं, इनको ले लो। यह बात सुघड़ो के मन में बैठी। अतः उसने वैरागी उपासना समाप्त कर दी। पर अभी उसने मंत्र नहीं लिया था कि उसके नौकर चोखा ने आकर बताया कि यहां भी माया का खेल है। एक महिला जो अमुक गांव से आया करती थी, वह बहुत-सा गहना अपने घर वालों से चोरी दे गई है और इसके कारण उसके घर में झगड़ा हो रहा है। यह झगड़ा अब तुम्हारे पास आने वाला है। तात्पर्य यह कि वह मामला सुघड़ो के पास आया ताकि वह साधु के समझाए। तब सुघड़ो ने कृष्ण कुमार से कहा कि तुम माया से वैरागी हो, कृष्ण प्रेम में रंगे हो, तुम्हें इस पदार्थ की क्या ज़रूरत है? जब घर वाले देकर प्रसन्न नहीं तो मारो उनके माथे पर। साधु ने कहा, उस महिला के प्रेम की इससे हानि होगी। सुघड़ो ने निःश्वास भरा। हाय! न जाने एकाकीपन ही अच्छी वस्तु है और इसीलिए ईश्वर ने मुझे एकाकीपन दिया है।

हे मन! दुख, सुन रखा है कि योगी एकान्त की खोज करते फिरते हैं, यदि तुझे एकान्त मिला है तो तू इससे पल्ला क्यों छुड़ाती फिर रही है?

कई निःश्वास भरकर सुघड़ो इनसे भी उपराम हो गई। पर प्रत्येक अनुभव से इसका मन अधिक चौकस होता जाता। वैसे हर प्रकार के साधु से प्राप्त हुए

---

१. एक इष्ट चाहिए, कृष्ण अथवा शिव।

साधनों को सच्चे दिल से जुटाने के कारण इसे एकाग्रता की कुछ-कुछ झलक दिखाई देने लगी।

: ६ :

ज्ञानी

इसके पश्चात् सुघड़ो को जिस साधु पर कुछ विश्वास हुआ वह भी कृष्ण उपासक था पर वह भक्त नहीं था। वह गीता का पाठक तथा कथा करने वाला था। घर में ग़रीबी के कारण पण्डित साधु का भेष धारण करके चला था, क्योंकि कथावार्ता के कारण वेष की पर्याप्त पूजा होती है। सुघड़ो का स्वभाव संतों की सेवा वाला, दाता भाव वाला था अतः यह भी वहां पहुंची। सुघड़ो ने इससे गीता की कथा सुनी, जिसके कारण उसका मन समझ तथा ज्ञान की जानकारी की ओर गया। इस पण्डित साधु ने उसके पहले के जीवन के समाचार सुनकर उसे समझाया कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं और ज्ञान ही श्री कृष्ण का शिरोमणि है और उनकी अपनी गीता जगत में है, तो इससे रस तथा सुमति लेनी चाहिए। यह विचार उसके मन को ठीक लगा। इस साधु को सुघड़ो से जब कुछ पदार्थ मिल गया तो वह वहां पर ही टिक गया। सुघड़ो में उस व्यक्ति को देखने की लगन थी जो वास्तव में माया से अतीत हो। पर जब साधु ने देखा कि वह उसकी चेली बन गई है, तो वह निश्चिंत होकर अपने लिए माया की मांग करने लगा, जिससे चौकर होकर सुघड़ो सारा कुछ पता लगा लेती। अतः इस तरह जिस दिन इस गीता पण्डित ने उससे पैसे की मांग की, तो सुघड़ो ने कहा मैं तो तुमसे उस वस्तु की इच्छा रखती थी, जो मेरे पास नहीं है और मैं समझती थी कि वह तुम्हारे पास है। तुमने मुझसे उस वस्तु की मांग की है जो वस्तु तुम्हारे पास नहीं है और तुम समझते हो कि वह मेरे पास है। मैंने वह वस्तु तो कुछ तुम्हें दी ही है, तथा और भी देने के लिए तैयार हूं, पर तुम मुझे वह नहीं दे रहे, जिसकी मैंने तुम से मांग की है। साधु ने कहा कि जो ग्रंथ मैंने तुम्हें पढ़ाया है, उस पर अमल करो, अधिकार पैदा होगा, उस समय मैं तुम्हें वह वस्तु दूंगा। सुघड़ो ने कहा, मैं तो प्रत्येक साधु को, उसका अधिकार पूछे बिना, अन्न, वस्त्र, धन भेंट देती हूं और कुछ भी न बन पाए तो मैं मुट्ठी भर आटा प्रत्येक फकीर को दे देती हूं और कभी किसी से अधिकार नहीं पूछती। क्या तुम मुझ अधिकारहीन को अपने धन में से मुट्ठी भर आटा दे सकते हो? यह सुनते ही साधु फीका-सा पड़ गया। सुघड़ो ने यह सोचा कि इसने समय व्यय किया है, और इसे रोटी भी तो खानी है, यह इसका व्यवसाय है, यदि इसे कोई भी कुछ न दे तो यह खाए कहां से? इसे थोड़ा-सा देना चाहिए अतः कुछ धन देकर पण्डित को विदा किया और फिर

नि:श्वास लिया और कहा: हे भगवान! तूने मुझे वह वस्तु क्यों इतनी अधिक दे दी है जिसके लिए क्या गृहस्थी, क्या साधु सारे ही आकर मेरे याचक बनते हैं, कोई सीधे तरीके से तथा कोई उलट फेर से। क्या सचमुच यह धन परम सुखदाता है? तूने मुझे ऐसा धन क्यों नहीं दिया, जिससे मैं इनकी याचक न होती और न ही ये मेरे याचक होते। निश्चय ही, हे भगवान! तेरा कोई ऐसा प्यारा होगा, जो तेरा याचक होगा और मेरे तथा मेरे धन के लिए उसमें याचना नहीं होगी।

: ७ :

खुदा परस्ती

समय व्यतीत होता रहा, साधारण साधु चलते-फिरते कभी-कभी कुटिया में आ टिकते और फिर चले जाते सुघड़ो को अपनी चेली बनाने के संकल्प से कई आए और चले गए। लिखा है कि जो भी आता 'तिस महंत कंहणा अहो हमारे भाग्य[१]' जो यह हमारी चेली बने तो बड़ी बात है। अत: ऐसे भी व्यक्ति कई आए और चले गए, पर सुघड़ो किसी के भी पीछे न लगी। एक दिन किसी ने आकर खबर दी कि पास के गांव में एक फ़कीर साईं आया है, जो पूर्ण अंतर्यामी है और जिसका वचन सत्य होता है। यह महिमा सुनकर सुघड़ो कुछ सखियों तथा दासियों तथा अपने दास चोखे को साथ लेकर वहां गई। आगे उसके चेले बैठे थे। चोखे ने जाकर उन्हें मनोरथ बताया। सुनकर पहले तो वे खाने को दौड़े कि हमारे फकीर साईं तो अल्लाह वाले हैं, किसी से मिलकर प्रसन्न नहीं होते। पर जब उन्होंने देखा कि ये बहुत श्रद्धा वाले हैं, तो कहने लगे कि हम में एक बालक है, आजकल साईं जी उसकी बात को सुन लेते हैं, उसे बुला लेते हैं, वह तुम्हें साईं जी के पास ले जाएगा। उस बालक को बुलाया गया, चोखे ने बालक के आगे मोहर भेंट की। यह सबको साथ लेकर चल पड़ा। आगे एक बड़ा शामियाना लग रहा था। इसके भीतर जाने के आठ दस रास्ते थे। बालक जब एक दरवाज़े में से भीतर गया, तो साईं जी की आवाज़ आई-'मुंह लगाया तो खोया सुसरे! तू कितना हो गया है? उठकर हरेक को साथ लिए चला आता है। हैं, अल्लाह को तूने खिलौना समझ रखा है क्या? जो मैं बनाकर किसी को दे दूं। यदि दूध, पूत की ज़रूरत हो तो आशीर्वाद दे दूं, अल्लाह कहां से लाऊं। अल्लाह तो मरकर मिलता है, मुर्दों को, चला जा, 'दूर हो जा यहां से'। ये बातें सुनकर सुघड़ो तथा उसके साथियों ने, जो सारे उसके अंतर्यामी होने पर चकित हो रहे थे, कि इसने यह कैसे जान लिया है कि हम ईश्वर का रास्ता पूछने के लिए

१. भगति प्रेम प्रकाश।

आए हैं। इतने में सब ने समीप जाकर मस्तक झुकाया। पहले तो फ़कीर ने मारने के लिए कुतका उठाया, फिर ठिठक गया, 'अहो, इस माई के माथे पर तो भाग्य की रत्ती है। यह तो शाहंशाह की है। हां, मौला (ईश्वर) मिलेगा, परिश्रम सफल हुआ है। 'मिलेगा जी मिलेगा।' सुघड़ो ने पांच मोहरें भेंट कीं। फकीर ने उठाकर फेंक दीं। 'हम को ठगती है। इस नागिन से फ़कीरों को क्या मतलब? ले जा! मौला (ईश्वर) सोने के भाव बिकता है क्या? मौला का दाम सिर है। सुसरी यदि मौला की इच्छा है। तो हाथ धो दे दुनिया से। है? "हम खुदा खाही ओ हम दुनिआए दूं। ईं ख्याल अस्तो मुहाल अस्तो जनूं।" (एक तो ईश्वर की मांग करती है दूसरा कमीनी दुनिया; यह बावलेपन का ख्याल है, इसका सिरे चढ़ना कठिन है।) सारा माल धन लुटा दे, फकीरों से मज़ाक करना छोड़ दे। कंबली पहन ले, फिर आ तेरे को अल्लाह मिला दें। दौलत भी पास रहे और अमीरी ठाठ भी बना रहे। हैं, रेशम के गद्दों पर खुदा की तलाश करती है? अधम इब्राहीम के किस्सा (कहानी) को पढ़ो। पातशाही का त्याग किया, तब मौला मिला। बस अब जाओ। तेरे पर रहमत झूम रही है। फकीर को भी तरस है, पर तेरे तथा खुदा के बीच दौलत का पर्दा छाया है। पर्दा खेंच दे, खुदा हाज़िर है, बस जाओ। माल दौलत से नाता तोड़कर आओ। लुटा दे अल्लाह के नाम पर फकीरों को (रुक-रुककर) ज़रूरतमंदों को, पर जो कुछ देगी खुदा के प्रेमियों को, खुदा के प्यारे को सुना! वह दरगाह में मनजूर होगा, जाओ, अब जाओ।'

यह कहकर फकीर ने कुतका रख दिया और आंखें मूंदकर टिक गया। सुघड़ो माथा झुकाकर चल दी, पर अर्द्ध बावली हो रही है, समझती है कि फकीर अंतर्यामी है निर्लोभी है, बात पते की कहता है और सच्ची कहता है। माया तथा राम—एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं। फिर धन-धाम को लुटा दूं? इसे क्या करना है, यदि यह एक पर्दा है। इस प्रकार सोचते हुए अपने घर आ गई। चोखा भी आज बहुत सारी संतुष्टि प्राप्त करके आया है, पर उसका मन इस बात के कारण उदास है कि स्वामिनी ने यदि धन दौलत का त्याग कर दिया, तो क्या यह कंगाल होकर फिरेगी और मांग-मांगकर खाया करेगी। अपनी स्वामिनी का इस तरह का दर्शन उस भयानक लगा। उधर स्वामिनी का रुख अब देखो तो भरोसे वाला हो चुका था। सोच-सोचकर एक दिन कहने लगा—स्वामिनी जी। लगता है तुम उदास हो और दूसरे धर्म के फ़कीर पर तुम्हारा निश्चय हो आया है। मैं तुम्हारे सुख में बाधा नहीं डालता, पर यदि सब कुछ लुटाकर पहले की तरह यह भी भुलावा ही निकला, तो एक तो ग़रीबी मोल ले ली। दूसरा जगत का मज़ाक। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं दस दिन वहां जाकर रहूं और संतुष्टि करूं कि क्या सचमुच वहां पर अंतर्यामी होने का कोई खेल है? सुघड़ो विचारवान

थी, अनुभव कर चुकी थी, कहने लगी, जाओ पर सोच-समझकर चलना। ऐसा न हो कि वह तो सच्चा हो और तुम परीक्षा लेते-लेते कोई अभिशाप लेकर आओ। कहा जाता है कि फ़कीर नाग होते हैं। आज तो वे अपने स्वभाव के उलट दयालु होकर मिले हैं, वरदान लेते रहे हैं, चोखे ने कहा, इसकी चिंता न करो। मेरे मन में भी कुछ श्रद्धा हो आई है, मैं होश से ही काम करूंगा।

दसवें दिन चोखा उदास चित्त वापिस लौट आया। आकर कहने लगा, स्वामिनी जी! प्रभु क्षमा करें, हम तो बहुत बचे। वहां पर तो भजन, बंदगी अथवा फ़कीरी या जाप, तप अथवा उसके किसी साधन का नाम निशान भी नहीं। पहले तो साधु मिलते थे, जिनमें केवल लोभ की एक कमज़ोरी होती थी और यहां पर तो विशुद्ध ठगी है। फ़कीर साईं को कोई भी व्यक्ति सीधे अपने आप नहीं मिल सकता, पहले चेलों के पास जाना पड़ता है, वे तो पांवों पर पानी नहीं पड़ने देते। जब उनकी कुछ भेंट पूजा हो जाए तो अपने में से एक को साथ भेजते हैं। पहले वे जिज्ञासु से अनजाने ही उसकी मुराद का पता लगा लेते हैं। आगे चलकर उस शामियाने के कई दरवाजे हैं, जिसमें फ़कीर बैठा हुआ है। प्रत्येक दरवाज़ा एक-एक मुराद के लिए निश्चित है। जैसे कि पुत्र की मुराद, दौलत की मुराद, अदालतों में मुकदमे जीतने की मुराद, रोग से मुक्ति की मुराद, प्रभु का मिलाप इत्यादि। अतः जिस दरवाजे में से जिज्ञासु अन्दर जाता है तो ठग साईं उसी का शोर मचाने लगता है। जैसे, "अरे मेरे पास कहीं पुत्र रखे हैं, आए हैं पुत्र मांगने के लिए।" यों जिज्ञासु पर प्रभाव पड़ जाता है कि वह अंतर्यामी है। फिर साईं लोग बालक को गुस्से होकर वरदान देते हैं और फिर बालक उससे अपनी भेंट के रूप में कुछ धन बटोर लेते हैं। साईं लोग अतीत बने रहते हैं। कुछ समय एक स्थान पर रहकर फिर कहीं दूर जाकर डेरा लगाते हैं। यहां तो वे आए ही तुम्हारी दौलत पर नज़र रखकर थे। ये बातें मैंने उनमें जाकर तथा धन खर्च करके पता की हैं। राम के लिए आपे को संभाल लो, यदि अब भी संतुष्टि न हुई हो तो स्वयं जाकर परीक्षा कर लो।

सुघड़ो घबराई। उसे अपने ऊपर गुस्सा आया, फिर ठिठक गई, जो श्रद्धा बनी थी, उसका टूटना मुश्किल हो गया। फिर अंदर से उसकी यह इच्छा होती कि किसी तरह चोखे का अनुभव ग़लत सिद्ध हो। अतः सोच-विचार कर दस दिनों में इसने वेष बदलकर चक्कर काटे और इसे भी निश्चय हो गया कि जो कुछ चोखा कहता है, वह ठीक है।

: ८ :

ऊपर से कांटी

इस परीक्षा के पश्चात् सुघड़ो के मन में अनोखा परिवर्तन आया। वह यह था कि उसने सोचा कि वह चोट क्यों खाए, क्यों ने खोज करे। यदि मेरे भाग्य

है तो वर्षा तथा आंधी का स्वामी मुझे स्वयं मिलेगा। मैं क्यों फ़कीरों की मिन्नतें करूं। मैं ठीक परख करके तथा बचाव करके चलूं। मैं अपनी पतंग नीचे के दाब से उड़ाती रही हूं, क्यों ने ऊपर से कांटी मारी जाए? फिर मन कहता कि इसका पीछा ही छोड़ दे। फिर भीतर से कोई छिपी हुई रुचि सिर हिलाती कि ईश्वर है अवश्य ही, उसका मार्ग भी है, और उसकी खोज भी अवश्य ही करनी है। दिल छोड़कर नहीं बैठना है।

एक दिन अपनी सखियों तथा दासियों से संकेत मिला कि उसकी नई दासी खेमी, जो लगभग एक वर्ष से उसके पास है, कभी-कभी एक साधु की महिमा सुनाया करती है, पर कुछ झिझक-झिझककर, हो न हो यह किसी साधु की दूत हो और मेरे घर में घुसकर मुझे प्रेरणा दे रही है। अत: अपने नए ढाले मन के रुख से एक दिन इसे अलग ले गई और कहने लगी कि तूने देखा है कि साधु जगत में कोई नहीं मिलता, इसीलिए कलियुग का ज़ोर पड़ रहा है और तुर्किनी हिंदूआनी को खा रही है, वेदों, शास्त्रों के अनुसार जगत का उद्धार सत्यपुरुष के हाथ में है, जिसका अब अभाव है। वह कहने लगी कि सच है, पर इसका पूर्ण रूप से अंत नहीं हुआ। सुघड़ो कहने लगी कि इसीलिए मैं पीछा नहीं छोड़ रही, पर तुझे बताती हूं कि अपने मन में मैंने तो यह परीक्षा रखी हुई है कि जो कोई मुझे आकर यह कहेगा कि तेरा गुरू हूं, तो वह अंतर्यामी होगा और मैं उसे गुरू धारण करूंगी। पर देखना, यह बात किसी को बताना नहीं। इन बातों के कुछ दिन पश्चात् सुघड़ो बगिया में बैठी थी, सखियां भी पास थीं कि अचानक एक लम्बे पतले गोरे रंग के संत जी आ गए। इनके हाथ में एक लम्बा-सा सोटा था, दाढ़ी बढ़ी हुई थी, जिसमें कुछ सफेद तथा कुछ काले बाल थे, सिर पर टोपी थी और कुछ बाल टोपी से बाहर निकलकर लटक रहे थे। नैनों को सरीला बनाकर आप ने आते ही कहा, 'सुघड़ो! उठो, नमस्कार करो, हम तुम्हारे गुरू, तुम्हारा उद्धार करने के लिए है। आज भगवान ने समाधि में यह उपदेश दिया है कि जाओ और जाकर मेरी बेटी का उद्धार करो।'

सुघड़ो मुस्कराई, नैन भरकर देखने लगी, उठी, जाकर मस्तक झुकाया, धन्य भाग्य आइए। फिर सत्कार सहित अपने रंगीले पीढ़े पर संत जी को बिठा दिया और स्वयं नीचे चटाई पर बैठ गई। कुछ फल मंगवाकर खिलाए और कुटिया में विश्राम दिया और स्वयं अपने घर चली गई। रात को सुघड़ो जागती रही और खेमी का ध्यान रखने लगी। जब दो पहर और चार घड़ी रात व्यतीत हो गई, तो खेमी चुपके से उठकर चल दी। इसके पीछे-पीछे सुघड़ो चल पड़ी। पहरेदारों में से एक को पहले से ही तैयार कर रखा था, उसे साथ लेकर, पर खेमी से थोड़ी दूरी पर सुघड़ो पीछे-पीछे चलती गई। खेमी बगिया में जाकर उस साधु की कुटिया में जा घुसी और सुघड़ो उस कुटिया के साथ वाली कुटिया में जाकर बैठ

गई। इस कुटिया की दीवार में अदृश्य झरोखे थे, उनमें से आवाज़ आती-जाती थी। अतः सुघड़ो ने दोनों में हुई बातचीत सुन ली। जिसका मतलब यह था कि खेमी ने घर की सारी बातचीत उस साधु को बता दी, जिसे दूसरे दिन अंतर्यामी बनकर सुघड़ो को उपदेश देना था। दूसरे दिन जब सुघड़ो सखियों सहित कुटिया की ओर आई, तो लगे संत जी उस तरह की बातें करने। सुघड़ो हंसने लगी और उसने कहा, सत्य है आप अंतर्यामी हैं, मैं भी आप ही की तरह थोड़ी-सी अंतर्यामी हूं। यह सत्य है कि रात को दो पहर तथा चार घड़ी व्यतीत होने पर खेमी आपके पास आई और आप दोनों में इस तरह का वार्तालाप हुआ। अब बताओ कि मैं अंतर्यामी हूं अथवा नहीं? सुनते ही साधु का रंग पीला पड़ गया और सुघड़ो ने ताली मार दी और साथ ही सारी सखियों ने कहा, 'बोल पाखंड सेन की जय।' लज्जित होकर अपने आपको संभालता हुआ साधु चला गया और उसके जाने से पहले सखियों में से खेमी भी गीले साबुन की टिकिया की भांति खिसक चुकी थी।

: ९ :

हठ योग

इस तरह का मज़ाक वाला रवैया धारण करके सुघड़ो अब ठोकर नहीं खाती। प्रत्येक अनुभव से अपनी बुद्धि की चतुर सफलता की रजोगुणी खुशी लेकर खुश रहती है। एक बार वहां एक हठयोगी आकर टिका। यह नीति, धैर्य, न्योली वस्ति आदि योग की क्रिया किया करता था। सुघड़ो ने इसके करतब भी देखे। तसल्ली हुई कि जो कुछ यह कहता है, वही कुछ करता है। इसने बताया कि यदि तुम इन साधनों को सीख लो तो शरीर अरोग्य रहेगा और दिल भी हल्का फूल बना रहेगा। पर सुघड़ो ने कहा कि मुझे तो अपने मन को जगत के कर्ता के साथ मिलाने का शौक है; उसके लिए कोई उपाय बताओ। योगी ने कहा: माता! मुझे जो कुछ पता है, मैंने वही बता दिया है, जो तुम चाहती हो, वह राजयोग की बात है। राजयोग की खोज मैं कर रहा हूं। मेरा यह विश्वास है कि हठयोग को सीखकर राजयोग को सीखने से परमसुख मिलता है, अतः मैं अब राजयोग, कैवल्य-की खोज में घूम रहा हूं। अगर मुझे प्राप्त हो तो आकर तुम्हें बताऊंगा। तुम्हारी श्रद्धा तथा सत्संग प्रेम शोभा के योग्य है। सुघड़ो ने पूछा; क्या आवश्यकता है? योगी कहने लगा, सर्दी का मौसम है, एक लोई की आवश्यकता है और अगले स्थान पर ठिकाना करने तक अन्न-जल के लिए एक-दो रुपये भी चाहिए। इससे अधिक मैंने कभी कुछ पल्ले नहीं बांधा और इतना मांग लेना मेरी दृष्टि से लोभ नहीं है। सुघड़ो इसकी सरलता तथा सच्चाई पर प्रसन्न हो गई। कहने लगी, हे मन! तू देख, जगत खाली नहीं है, है न सत्य

वक्ता था निर्लोभी व्यक्ति भी दुनिया में। देख, इस व्यक्ति ने अपनी प्राप्ति का ब्योरा सच-सच बता दिया है और बढ़ चढ़कर डींग नहीं मारी और अपनी आवश्यकता भी बिना झिझक के बता दी, ज्यादा नहीं मांगा। फिर योगी ने कहा, माई! कलियुग है, धर्म की हानि हो रही है। यदि तुम शरीर की इस योग क्रिया को सीखकर प्राणायाम सीख लो, तो काया निरोग रहेगी और शरीर पर भी कुछ नियंत्रण हो जाएगा। इंद्रियां भी नियंत्रण में रहेंगी। शेष चाहो न करो। मुझे गुरू बनने की कोई इच्छा नहीं, मैं तो स्वयं अभी जिज्ञासु ही हूं। सुघड़ो ने कहा, मैं आपके सत्य कहने पर बलिहारी, पर मेरा चित्त काया को मांजना नहीं चाहता और न ही मेरी इच्छा आयु को बढ़ाने की है। जिनके साथ मिलकर काया को निरोग रखना तथा आयु को बढ़ाना था और सुख लेना था (निःश्वास भनकर) वे चले गए हैं। मैं अकेली हूं, मेरा कोई नहीं, एकाकीपन की आयु यदि लम्बी न ही हो, तो अच्छा है। पर यदि आप कोई हल्का-सा प्राणायाम सिखा सकें, जिसके लिए न्योली, धोती आदि क्रियाओं की ज़रूरत न पड़े तो आपकी कृपा होगी। यह सुनकर योगी ने उसे स्वाभाविक ही प्राणों के प्रवाह को एक निश्चित चाल में चलाने का ढंग सिखा दिया। इसके पश्चात् एक और साधु आया, जो कुछ समय वहां पर टिका। वह भी हठ योग की ओर चला गया था, पर सुघड़ो को इसकी आवश्यकता नहीं थी।

: १० :

वेदांत

एक दिन विश्वानन्द नामक एक साधु आ गए। कहने लगे: सुघड़ो! शिवंहं। सुघड़ो ने नमस्कार किया और आदर सहित बैठाया। आप कहने लगे; सुनो बेटा, जप-तप, साधन इत्यादि का समय नहीं है, ज्ञान का समय है। कल्याण स्वरूप एक शिव परिपूर्ण है, 'मैं' और 'वह' दो नहीं हैं। उसी का प्रभाव है, वही विभिन्न तत्त्वों में दीख रहा है एक चिदघन देव। शिवो हं, शिवो हं। हमने चौमासा दौलताले व्यतीत किया है। आहा कैसा सुन्दर तालाब है। वट के घने वृक्षों की चारों ओर घनी छाया है। वहां ही हमने तुम्हारी जिज्ञासा और निराशा के विषय में सुना था, पर तुम्हारा हठ-त्रिया हठ-सत्संग का पीछा न छोड़ने का। हमने कहा, यह है जिज्ञासु! देख बेटा! जगत साधु की खोज करता है, पर असली साधु जिज्ञासु की खोज करता है। उसे इस बात का चाव होता है कि जैसे उसे ब्रह्मविद्या प्राप्त हुई है, वैसे उससे भी किसी दूसरे को प्राप्त हो। इसलिए हम यहां आए हैं कि तुम्हारी भटकन समाप्त हो। तू वेदांत के परम सिद्धान्त को समझकर उस स्वर्ण की भांति टिक जाए, जो कुठाली में पड़ा घबराता है, पर जब शुद्ध हो जाता है तो फिर टिक जाता है। यह कहकर विश्वानन्द ने वेदांत के कुछ

श्लोकपद कहे और सिद्धान्त भी बताया। फिर कहने लगे देवी! क्या तूने बृज भाषा पढ़ी है? क्या फ़ारसी के कुछ अक्षर जानती है, क्या संस्कृत के कुछ श्लोक भी तेरे को याद हैं, अब लगातार संस्कृत पढ़ और ब्रह्म सूत्र तथा वेदांत की परिभाषा आदि का विचार कर ले, फिर तू सुखी हो जाएगी, बस अब हमें कुछ फल खिला दे और हमें छुट्टी दे दे, अब हम चलेंगे। तुमसे लेने देने का हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, जिस काम में लगकर हम सुखी हुए हैं, पर हम अपने आपको विलासानन्द मानते हैं। वेदांत पर विचार विमर्श करके विलास में आनन्द मग्न रहते हैं। यह कहकल ताली बजाकर साधु हंसा और 'शिवं हं' कहकर चुप हो गया। सुघड़ो ने अब दो आदमी बुलाए एक तो पण्डित था जो इसे प्रतिदिन योग वसिष्ठ की कथा सुनाता था, दूसरा एक मौलवी था, जो हर रोज़ इसे मौलाना रूम की मसनवी सुनाया करता था। विश्वानन्द जी पण्डित को देखकर प्रसन्न हो गए और उसे कहने लगे: पण्डित जी! माता को योग वसिष्ठ सुनाकर ब्रह्म सूत्र तथा वेदांत की परिभाषा पढ़ा दो, इसे अपना बोध हो जाए कि सर्व शिव है और मैं शिव हूं। पण्डित ने कहा कि ये ग्रंथ यहां पर उपलब्ध नहीं हैं, किसी को काशी भेजकर मंगवा लूंगा और जैसे आपने कहा है, वैसे ही करूंगा। यों बातचीत करके विश्वानन्द जी चल दिए। सुघड़ो को अपने रिक्त अंतस के भरने की भूख थी, मात्र बातचीत का ज्ञान तो वह प्रतिदिन पण्डित से भी सुन लेती थी, अत: उसने साधु को रोका नहीं, पर सुघड़ो सोच में पड़ गई कि चाहे यह साधु कोई करामात वाला नहीं था, पर जो कुछ पढ़ा वही कुछ कहा और कोई लालच भी नहीं किया। है न जगत में निर्लोभीपन? आया भी तो आप ही है चलकर, ठहरा भी नहीं। हे मन! अब तू समझ ले कि ये चिन्ह तेरे भाग्य के खुलने के हैं। इसी तरह कोई आकर मिलेगा। यदि वह ईश्वर स्वयं दयालु होगा, तो बुलाकर देगा।

: ११ :

शक्ति

कथा, वार्ता, सत्संग, आने-जाने वाले साधुओं की सेवा इत्यादि कार्य चलते रहे, कुछ समय के बाद एक और साधु आया। इसने सुमति दी कि सुघड़ो! तू वेदांत सुन रही है। इससे तो मेरे मन की चतुराई बढ़ेगी, तेरे को समझ आएगी की तू शिव है, तू ही ब्रह्म है; पर तू ब्रह्म नहीं होगी। क्योंकि वह तो निर्विकल्प असंग, त्रिगुणातीत अपने आप में स्थित है। तू उसी तरह उसमें, जल के जल में समा जाने की भांति समा नहीं गई। तेरे में क्रिया तथा सत्य है, यह क्या है? विचार कर। यह है शक्ति। यह शिव तो निर्गुण, अतीत, असंग है, हां उसकी शक्ति है जो ब्रह्मांड का खेल कर रही है। कुछ लोग तो शक्ति को ही सब कुछ

मानते हैं। प्राय: कहते हैं कि शक्ति ही शिव है, शिव ही शक्ति है, पर मैं शक्ति को शिव ही मानता हूं। अत: जहां तू है, वहां शक्ति है। उत्पत्ति, प्रलय, पालन सब शक्ति का ही काम है। अत: तू शक्ति की उपासना कर। अपने में शक्ति का उद्यपन कर। शक्ति पाकर तू सदैव शिव को प्राप्त करेगी। शक्ति तुझे शिव में ले जाएगी। सुघड़ो ने पूछा कि इसे कहां से शुरू करूं? तो उसने बताया कि काली की प्रतिमा की स्थापना करो। उसका मन्दिर बनाओ। उसकी पूजा करने तथा उसे प्रत्यक्ष करने की विधि मैं बताऊंगा। कुछ दिन इसके उपदेश को सुनकर सुघड़ो की रुचि इस ओर न बढ़ी, बल्कि कम होती गई। चाहे यह साधु अपने मतानुसार बातें बताता था, पर सुघड़ो को पहले के अनुभवों के कारण भ्रम होता था। एक दिन सुघड़ो ने उसे कह दिया कि शक्ति, शक्तिदाता के साथ है, उससे भिन्न नहीं हो सकती। यदि भिन्न हो तो दो सर्वशक्तिमान युक्ति द्वारा सिद्ध नहीं हो सकते। मेरी रुचि शक्ति के मूल सर्वशक्तिमान की ओर है। अत: मुझे उसकी पूजा तथा प्राप्ति अधिक पसंद है। यों कहकर इस साधु को सम्मान सहित विदा कर दिया, क्योंकि सुघड़ो को इस बात का पता ही नहीं चला था कि यह मात्र धन का प्रेमी व्यक्ति था अथवा अपने मत का प्रचारक। इसके मत का पूरा पता न होने के कारण साधु की बातों से उसे कुछ और संदेह होने लगा था।

: १२ :

धर्म से बाहर

सुघड़ो अब चतुर बन गई थी। उसे विभिन्न मतों का पता चल गया था, विद्या के संबंध में भी कुछ जानकारी हो गई थी, पर किसी भी वस्तु ने इसे मोहित नहीं किया। वृद्धि मंजती गई, आचरण दृढ़ होता गया, पर भीतर एक भूख-सी लगी रही, जो इस प्रकार की थी, कि जिस बात का पता चलता, वह केवल जानने के लिए, दर्शन मात्र, समझ को मांजने के लिए न हो कि वह अंतस की काया पलट देती। इन ही दिनों में एक साधु आया, जो इसे मिलकर तथा इसके अनुभव तथा विचार सुनकर बहुत हंसा और कहने लगा, क्यों अपना सुन्दर शरीर तथा जीवन व्यर्थ वहमों, भ्रमों में खो रही है? क्यों अपना धन कंगालों को बांट रही है। आनन्द में रह आनन्द ले और आनन्द से यात्रा को संपूर्ण कर। सोचों, विचारों में तथा इन्द्रीय ज्ञान से आगे की बातों पर अपना समय मत बर्बाद कर। प्रप्यक्ष में जीवित रह। इन्द्रीय ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है। खाओ, पियो और आनन्द लो।

पहले तो सुघड़ो को इसकी मोटी-मोटी बातें अच्छी लगीं, पर बाद में समझ आई कि यह इसलिए धर्म का विरोधी नहीं है कि इसे धर्म से परे कुछ मिला है, अथवा यह जगत की भलाई के उद्देश्य से अपनी कोई निश्चित बात कह रहा है,

पर यह तो इस प्रकार का विचार प्रस्तुत करके अपना संप्रदाय चलाकर ऐश्वर्य और प्रताप बढ़ाने की चिंता में है, जिसे यह दूसरों में दूषण रूप करके बताता है। जरूरतमंद है और जरूरत को छिपा रहा है, पर दूसरे ढंग से लोगों को धर्म मार्ग से उखाड़कर अपने मनोरथ को पूरा करने के प्रयत्नों में है। इस व्यक्ति के सीधे विचार, जगत प्यार का दावा तथा नेकी की दृढ़ता को सुनकर सुघड़ो कुछ रीझी तो थी, पर उसके भीतर भी वही तृष्णा, वही ईर्ष्या, वही विरोधी विचार वालों से द्वेष, सुघड़ो को दीख पड़े। अब उसे निश्चिय हो गया कि धर्म के पर्दे के पीछे अथवा धर्म से बाहर होकर ज़रूरतमंद लोग कई प्रकार के जाल बिछा रहे हैं। न तो धर्म का ही दोष है और न आचार्यों तथा धार्मिक पुस्तकों का। जगत की रचना ही कुछ ऐसी है अथवा मनुष्य की आवश्यकताएं ही कुछ ऐसी हैं कि वह धर्म-अधर्म अथवा धर्म के बाहर जहां पर दाव चले, स्वार्थ सिद्धि के पीछे लग रहा है। यदि राजसी मण्डल में स्वार्थी लोगों को अत्याचार करते देखें, तो राज्य को बुरा भला कहा जाता है, पर दोष है स्वार्थी लोगों का। अगर धर्म मण्डल में स्वार्थी लोग आकर घुस जाएं और स्वार्थ-सिद्धि के लिए इसके वेष का प्रयोग में लाएं तो भी स्वार्थियों का ही क़सूर है और फिर विचार आता है कि धर्म के पक्ष का त्याग ही किया ज़ाए। यदि भाईचारे में जाएं, तो वहां भी स्वार्थी ही प्रधान है। विद्या मण्डल में भी इनका ही चौधरीपन है। यह मण्डली जगत को किसी भी मण्डल में सुख नहीं लेने देती। अतः कोई मार्ग कोई साधन ऐसा हो कि जगत में स्वार्थ कम हो तथा स्वार्थी संतोष तथा दया को धारण करें।

इस प्रकार अनेक विचारों के पश्चात् सुघड़ो को इस बात का ध्यान आया कि अब स्वार्थ का ही रूप धारण करके खोज की जाए। जैसे धर्म भाव में खोज करते हुए विशेष रूप से स्वार्थी ही मिले हैं, देखें भला स्वार्थ के रूप में खोज करने से कोई निःस्वार्थ परस्वार्थी मिल जाए। ये विचार पर्याप्त समय तक उसे मथते रहे। अंततः उसने मन में निर्णय कर लिया और अपने मनोरथ का किसी को पता न दिया। यों वह अब चुप हो गई। कई दिनों तक बोली ही नहीं। फिर पण्डित तथा मौलवी को विदा कर दिया, सत्संग का त्याग कर दिया। दिन-रात उलटी होकर पड़ी रहती। इसी दशा में लगभग चालीस दिन व्यतीत हो गए। नौकर-चाकर, सखियां, बंधु सारे घबरा गए और सोचने लगे कि न जाने क्या होने वाला है।

: १३ :

आप सब कुछ

सुघड़ो को उदासी, सोच और मूकता में जब कुछ समय व्यतीत हो गया तो एक दिन उसने चोखे से कुछ कहा और सखियों में भी कुछ बात की। अपने

दिल का रहस्य तो न बताया, पर कुछ तैयारी करने की आज्ञा दी। एक दिन बगिया में एक सिंहासन बिछ गया। सुघड़ो बड़े सुन्दर ज़री के वस्त्र पहनकर उसके ऊपर आकर बैठ गई। एक सखी उसके ऊपर चंवर झुलाने लगी, शेष इर्द-गिर्द आकर बैठ गईं। आगे एक भीड़ उन साधुओं तथा भिखारियों की बैठ गई, जो उसके सदाव्रत से भोजन करते, वस्त्र पहनते तथा पलते थे। पहले तो मूकता छाई रही, फिर सुघड़ो ज़ोर से ऊंची आवाज़ में बोली, "सुनो, जिनके कान हैं, मैं सुघड़ नहीं, अपितु मैं सुघड़ बाई हूं, जल-थल में मैं ही हूं, ऊपर-नीचे भी मैं ही हूं, मैं पालक हूं", उद्धारकर्ता हूं, इहलोक तथा परलोक में कल्याण मेरा नाम ही जपने से होगा। जपो सारे जपो-'सुघड़ बाई', फिर कहने लगी:-

'जले सुघड़ बाई। थले सुघड़ बाई।
कल सुघड़ बाई। आज सुघड़ बाई।
कल होगी सुघड़ बाई। एक ही सुघड़ बाई।
और न कोई सहाई। बिना इस सुघड़ बाई।'

इन पंक्तियों को सुघड़ो ज़ोर-ज़ोर से ऊंचे स्वर में बोलती गई और सारे उसके पीछे सहगान के रूप में दुहराते रहे। फिर कहने लगी 'सुघड़ बाई' है तारकमंत्र। यही कल्याण करेगा। कहो सुघड़ बाई की जय! सुनो, मेरे सदाव्रत से केवल उसे भोजन मिलेगा, जो मेरा नाम जपेगा। मेरे घर में से वस्त्र तथा उन्माद उसे मिलेगा, जो मेरा नाम जपेगा। उसी का कल्याण होगा, जो मेरा नाम जपेगा। धरती तथा आकाश मेरे ही तख़्त हैं। ज़मीन, आकाश तथा तारे मेरे हैं, मैं सर्वव्यापक हूं और मैं ही सब कुछ हूं। जो इस बात को नहीं मानता, वह यहां से चला जाए। नातेदार, सखियां, सहेलियां, नौकर-चाकर, साधु, फकीर, अतिथि, भिखारी! सभी मेरे नाम की डौंडी पीटो। आओ जो जगत में दुखी है, मैं उसे सुख दूंगी, जो मेरे नाम को नहीं मानते, वे सब यहां से चले जाएं। फिर उसकी सखियों ने उसकी स्तुति वाला गीत बहुत मोहक ध्वनि से गायन किया। सुघड़ो के माथे पर तिलक लगाया गया। उसके गले में मालाएं पहनाई गईं, फूलों की वर्षा की गई, बताशे बांटे गए, सुघड़ बाई की जय के नारों की आवाज़ से माता की कुटिया के आगे वाले खुले आंगन में एक चंदन की चौकी पर आकर बैठ गई, इर्द-गिर्द पंक्तियां लग गईं। सुघड़ बाई के आगे चांदी के थाल में भोजन परोसकर रखा गया। जब इसने खाना शुरू किया, तब सबमें भोजन बंटा। जब यह खेल भी समाप्त हुआ तो सुघड़ बाई एक पालकी में बैठ गई। चार कहारों ने पालकी को कंधे पर उठाया और उसे उसके निवास पर पहुंचा दिया। वह भीतर से द्वार बंद करके टिक गई।

इस बात की चर्चा सब ओर होने लगी। अपने गांव तथा आस-पास के गांवों में यह बात आग की लपट की भांति फैल गई। सब ओर से निंदा तथा उपालंभ

शुरू हो गए। साधुओं, संतों, साधारण व्यक्तियों तथा लोभियों का आना बंद हो गया। सभी कहने लगे कि बावली हो गई है। कोई-कोई यह भी कहता है कि 'धन के घमण्ड के कारण इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।' इस प्रकार की उल्टी-सीधी बातें होने लगीं। बाई ने कामकाज, कार्य धन्धे सारे चोखे पर छोड़ दिए थे। यदि चित्त बाहर आने को करता तो बाहर आ जाती, नहीं तो भीतर ही टिकी रहती। जब बाहर आती तो उन मुफ्तखोरों से, जोकि इसके भोजन पर पलते थे, अपने नाम का जाप करवाकर प्रसन्न होती। कुछ समय इसी तरह व्यतीत हो गया। इस संसार में निर्मल बुद्धि, तृष्णा रहित विचार तथा सुख देने वाला प्रेम कम है। यहां पर कोई बात छेड़ दो, काफी मूर्ख तथा स्वार्थी उसे उठाने वाले आ जाते हैं। वही बात यहां भी हुई। कोई-कोई जिज्ञासु आने लगा, बाई से परमार्थ की बात पूछने के लिए तथा कई दूसरे स्वार्थी तथा अत्यन्त अपस्वार्थी अपने स्वार्थ के लिए आने शुरू हो गए। स्वार्थियों को तो अवसर मिला कि इसके मत के प्रचारक बनकर इससे तथा जिज्ञासुओं से धन प्राप्त होगा। जिज्ञासु, भोले जिज्ञासु की आवश्यकता से चालक तथा स्वार्थी लोग अपना लाभ निकालते हैं। हां, जो व्यक्ति परमेश्वर जी के नहीं हैं, उनका आशय तथा नियम यही होता है कि 'तेरी ज़रूरत और मेरा लाभ'। वैसे तो स्वार्थी संसार का आधार तथा व्यवहार ही यह है कि "तेरी ज़रूरत मेरे लाभ का अवसर है।"

सुघड़ो बाई ने तो यह शोर मचाकर अपने कामकाज की व्यस्तता तथा अपनी परमार्थ की खोज में पड़कर उससे उकसाए हुए स्वार्थी साधुओं से छुटकारा प्राप्त किया था और वह किसी को अपना मंतव्य बताए बिना लग रही थी, अब उसने देखा, कि जिज्ञासु उससे शिक्षा लेने के लिए आ रहे हैं। पहले तो सोचें पड़ गई थीं। फिर उसे इस माध्यम द्वारा जिज्ञासुओं के मनों के अध्ययन का अवसर मिल गया और अनेक नए अनुभव होने लगे। सुन्दर पाखंड रचकर वह गद्दी पर बैठी रही और आने वाले जिज्ञासुओं की सन्तुष्टि करती रही। अनेक लोगों की इसमें श्रद्धा भी हो आई। साधारण लोग ही नहीं, बल्कि अच्छे-अच्छे विद्वान, तथा अच्छे-अच्छे सम्पन्न लोग श्रद्धावान होने लगे। अनेक व्यक्ति ऐसे भी पैदा हो गए, जो लोगों के घरों में जा-जाकर उसकी महिमा गाते, इन्हें उन लोगों से धन भी उपलब्ध होने लगा, जिन्हें इन्होंने बाई में सिदक लाने के लिए प्रेरणा दी थी। बाई के पास धन की कमी नहीं थी, पर अब इस ढंग से भी धन आना शुरू हो गया। बाई यह धन पर्याप्त लुटाती भी थी। तात्पर्य यह कि दो-तीन वर्षों में ही बाई की पूजा चरम सीमा तक पहुंच गई। अपने हृदय की पीड़ा तो बाई ही जानती थी। उसका रहस्य उसने किसी को न बताया। जगत में वह पूज्य हो गई, उसके नाम का जाप होने लगा और उसके श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ गई। इस सारे प्रसार में 'चोखा' अपनी स्वामिनी का साथ देता रहा। एक वही था जो

इस बात को समझता था कि इस सारे खेल में बाई मस्त नहीं है, इसके मन में कुछ और है और यह बाह्य ठाठ किसी अन्य प्रयोजन का सूचक है, पर उस प्रयोजन का चोखा को भी पता नहीं था। कभी तो वह डोलता, कभी सोचता, कभी लोचता, कभी मीठे तथा सत्कार भरे ढंग से मन्त्रणा देता, पर उसने उसका साथ नहीं छोड़ा। इस नए अनुभव में जब बाई जिज्ञासुओं को अपने बनाए हुए साधन बताती अथवा चर्चावाद करके समझदारों को पराजित करती तो वह बाहर से हंसती, परन्तु भीतर से रोती और यह कहती कि मायावादी सच ही कहते हैं कि केवल एक ब्रह्म है, शेष माया है, भुलावा है, जगत तीन कालों में नहीं है, भुलावा ही भुलावा है। अतः भुलावे से ही रचे गए जगत में भुलावे का ही सिक्का चलता है। ये सारे इसी भुलावे में हैं कि मैं ही भगवान हूं, पर मुझे पता है कि मैं क्या हूं, पर इन्हें नहीं पता कि मैं क्या हूं। यह ही माया है।

इस तरह कुछ समय व्यतीत होने के बाद एक दिन आधी रात को जब बाई अपने मन से ही क्रंदन तथा विलाप कर चुकी, अपनी प्रार्थना कर चुकी, हां, फिर अपने एकाकीपन की डरावनी सूरत का अनुभव करके फिर प्रार्थना कर चुकी, तब उसके भतर एक चमत्कार हुआ। कहने लगी, हे मेरे मन! झूठ सच बन जाया करता है। बनावट वास्तविकता का रूप धारण कर लेती है। बार-बार बोला जाने वाला झूठ अपने आपको ही सच लगने लगता है। सावधान हो, देख लोगों की महिमा की ओर, उनकी ओर से तेरी पूजा प्रतिष्ठा तथा सत्कार का तेरे पर असर होने लगा है। जब तू अकेली होती है, तब तेरे को पता चल जाता है कि तू क्या है और किस आशय की पूर्ति के लिए तूने पाखंड रचा है, पर जब तू पूज्य बनकर बैठती है, तब तेरी आरती उतारी जाती है, जब तेरे भवनों की पूजा होती है तथा लोग तेरी महिमा गाते हैं, तब तेरा मन बढ़ जाता है, ऊंचा हो जाता है, और तेरे पर एक प्रकार का चाव तथा प्रसन्नता का रंग चढ़ जाता है। हां, कभी-कभी तुझे उस समय यों लगने लगता है कि ठीक तू वही कुछ है, जो कुछ ये लोग तेरे को कह रहे हैं। तू सचमुच कई बार उस स्तुति के मण्डल में बैठी प्रतीति करने लगती है और समझती है कि तू महान तथा उच्च है। तुझे उसका स्वाद पड़ता जाता है। हां, अपनी महिमा का रस सभी रसों से मीठा रस है और यह बढ़िया मन भी कई प्रकार की ज्यादतियां तथा अनीतियां कर सकता है। आज पता चला कि क्यों जगत अपनी प्रसिद्धि तथा महिमा में फंसा हुआ है। क्या राजा, क्या वज़ीर, क्या धनवान, कया कर्मचारी, क्या मज़दूर, क्या किसान, क्या भाईचारे का चौधरी, क्या विद्यार्थी और क्या अध्यापक, क्या धर्म प्रचारक तथा साधु पूज्य व्यक्ति–क्या नास्तिक, सबको एक जैसा ही रस मिलता है। इस रस का जब स्वाद पड़ जाता है तो फिर छूटता नहीं। ऐसे व्यक्ति कम ही हैं, जो इसकी वितर्क समझ रखते हैं। ऐसे व्यक्ति भी कम होंगे जिन्हें इस बात का पता

होगा कि इस रस में मन बढ़ता है और जो कुछ नहीं होते, अपने आपको वही समझ बैठते हैं। यह भी एक भुलावा है, जो अपना मूल्य अपने आप ही बढ़ा देता है। हे सुघड़ो! नहीं 'असुघड़ो'। आपे को संवारना बहुत कठिन कार्य है। मैंने जितने भी प्रयत्न किए, उनमें से आपे को संवारने के रास्ते में रुकावटें निकलती ही रहीं। अब इस अपनी महिमा की तथा अपने सत्कार की नैया को कैसे पार करूं? किसी ने कहा था कि तेरे तथा साईं के मध्य में दौलत पर्दा है। आज समझ आई है कि महिमा भी एक पर्दा है, जो आपे को आपे से छिपाकर रखता है। हाय! ऐसा तो कोई भी नहीं जिसका अपमान हो और वह खुश हो। सत्कार किसी रूप में आत्मा की खुराक लगता है। इसकी भी ज़रूरत है। हैं, यह है क्या? आत्मा की वस्तु है या मायक? हां, हमारे भीतर बैठे अहं को ज़रूरत है कि इसे ठोकर न लगे; हां, अहं चाहता है कि उसके मार्ग में रुकावट न आए, अनुकूलता आए। यह अनुकूलता तो जब सत्कार मिलता है, तब प्राप्त होती है। यों है अथवा यों? आत्मा क्या कोई सुन्दर वस्तु है और जब वह माया में आकर फंसती है तो सत्कार सहित अपने स्वरूप की प्रतीति में आती है, कौन-सी बात ठीक है; (किचकिचाकर) समझ में नहीं आता। सुघड़ो! तूने क्या लेना है। यह बात तो स्पष्ट है कि तू वह नहीं है, जो तुझे जानकर लोग आदर करते हैं। अतः निश्चित रूप से यह आदर भुलावे में ही मिल रहा है और यही आदर है जिसका तुझे स्वाद पड़ता जा रहा है। यह तेरे लिए कीचड़ हो जाएगा। इससे बच जा। बस यही है बुद्धि का वितर्क चमत्कार जो इस समय हुआ है, ठीक है, निश्चित रूप से यह जान ले कि यह ठीक है। अब जब लोग तेरी महिमा गायें, तो तू हंसा कर कि कितने मूर्ख हैं, पर भीतर से तू स्वयं कुछ मत बना कर। तुझे पता ही है कि तू वह नहीं है, जो तू अपने आपको दिखा रही है। अपनी लगन में लगी रह, इस पर्दे के नीचे। देख, यदि ईश्वर दयालु होगा, तो स्वयं बुलाकर देगा।

अब सुघड़ बाई जब अपने चेलों, बालकों में बैठती तो सोचवान होकर बैठती और भीतर से ध्यान रखती कि कहीं इनकी ओर से मिल रहे प्यार तथा सत्कार के भुलावे रूपी कीचड़ में फंसकर इसी दलदल में न अटक जाए कि बस यह जगत ही मीठा है, अगला किसने देखा है। हां मेरे मन! यदि मेरी उच्च अभिलाषा को पूरा नहीं होना, तो मेरी लालसा को जीवित रखना, मेरी चाह खत्म न हो, मेरी प्यास न बुझे। हां, हां, हे, हे, हे¨।

तू सदा छिपा रहे, हां हे तू छिपने वाले।
छिपा रह, छिपा रह, बड़ी खुशी से छिपा रह।
पर तू अपने प्यारे से कह दे कि तू न छिपा रह,
हां तू न छिपा रह।

तेरे छिप जाने से जगत में प्रकाश समाप्त हो जाता है।
दुनिया अंधेरे में घूमती है।
हे तू स्वयं छिपने वाले!

: १४ :

बुलावा

आनन्दपुर में श्री सत्गुरू, ईश्वर द्वारा भेजे गए, श्री गुरू गोबिंद सिंह जी का दरबार लग रहा है। संगतें तथा सिंह, जिज्ञासु तथा खोजी आकर तथा मिलकर सुखी होकर जा रहे हैं। पोठोहार से आई संगत प्रस्तुत हुई। मेवड़े ने सबके लिए अरदास की। सतगुरू जी प्रत्येक सिख से प्यार सहित मिले, उनकी कुशलता पूछी, उन पर अनुकंपा की। समस्याओं का समाधान किया। परमार्थ में आने वाली कठिनाइयों का समाधान बताया। जब सभी प्रसन्न हो चुके, तब सतगुरू जी ने उस इलाके के दूसरे समाचार पूछे। उधर तुर्कों का ज़ोर होने के कारण आप चाहते थे कि हिंदू तथा सिख जनता की दशा का पता चले। जब संगत ये बातें बता चुकी, तब आपने पूछा कि कोई नई बात बताओ जो उस इलाके में घटित हुई हो। यह सुनकर संगत के मुखिया ने बताया: पातशाह! उधर एक नया उपद्रव उठा है। एक विधवा स्त्री है। वह अच्छी सखि तथा संतों की सेवा करने वाली थी और उसका आचरण अब भी शुद्ध है पर उसके मस्तिष्क को कुछ हो गया है या उसे कोई अन्य कष्ट है वह हिरण्य कश्यप की भांति अपने नाम का जाप करवा रही है। अपनी पूजा स्वयं करवा रही है। पातशाह! और तो और, हिरण्य कश्यप के बाद केवल इसी ने ही अपना नाम जपाया है। मूर्ख लोग उसके पीछे चल पड़े हैं। उसके धन से पलने वाले भिखारी भी उसकी बहुत महिमा गाते हैं। औरत, मर्द, संत उसने वेतन पर रखे हुए हैं। विभिन्न ढंगों से वे लोगों को प्रेरित करके तथा फंसा कर उधर लिये जा रहे हैं और फिर अच्छे-अच्छे बुद्धिमान तथा पढ़े-लिखे लोग भी जा फंसे हैं। धन तो पहले भी उसके पास पर्याप्त था, अब और धन भी आने लगा है, जहां पर धन होता है, वहां मनमुटाव भी हो ही जाता है।

सतगुरू जी सारा वृत्तान्त सुनकर मुस्कुराए और कहने लगे: कोई सिख तो नहीं फंसा। मुखिया ने बताया, नहीं पातशाह जो सोने की परख करने वाले होते हैं और जिनके पास सोना होता है, उनकी रक्षा तो आप ही करते हैं। सारे सिख मजाक करते हैं। फिर सतगुरू जी हंसे और कहने लगे: चिंता न करो, गोट अपनी चौपड़ पर, अपने घर में पहुंचने वाली है। बहुत बार कच्ची हुई है, बहुत बार इसने चाल पकड़ी है। जीवन पासों की भांति पड़ता है कई बार। जिसकी रक्षा साईं करता है, उसी की विजय होती है, तुम झुरो मत।

यह कहकर सतगुरू जी ने नैन बंद कर लिए, कुछ समय के पश्चात नैन खोले और कलम दावात मांगी और उसी समय अपने सुन्दर हाथों से यह पत्र लिखा:

ओरी लम्पट, ओरी पाखण्डिन, तेरे अन्दर तो परमात्मा की जिज्ञासा है किंतु बाहर से तू दिखावा उलट कर रही है और मार्ग दर्शक बनने का ढोंग रच रही है। संसार को तू भूल के मार्ग पर मत लगा। तू मेरे पास आ जिससे तुझे मार्ग मिले।

विलंब न कर, समय व्यतीत हो रहा है, "उपस्थित हो जा जिससे तुझे हुजूरी मिले।" यह पत्र सतगुरू जी ने एक पत्रवाहक के हाथ में दिया और कहा कि संगत के मुखिए से पता लेकर उस महिला के नगर में जाकर उसे पत्र पहुंचा दो और इसका उत्तर लेकर आओ।

: १५ :
जी! हाज़िर!

आधी रात के समय एकदम ऊपर छत पर से सुघड़ बाई की धीमी-धीमी आवाज़ आ रही है:-

हे प्यारे! तू काहे को अकेला ही चला गया?

तू मुझे साथ नहीं ले गया, मानो तीर मार गया है।

फिर चुप हो गई। फिर वही आवाज़ आई, फिर चुप हो गई। सुघड़ बाई अपने मन से बातें कर रही है। पिछले दिन याद आए, प्रेम-रस स्मरण हो आया-

ऊंचे पीपलों पर झूले पड़े, सखियां मिलजुल कर झूला ऊपर चढ़ाने लगीं। मैं दहलीज़ पर बैठकर रो रही हूं, हे प्रियतम! तू चला गया और लौटकर न आया। मुझे साथ नहीं ले गया, पर मुझे तीर अवश्य ही मार गया है।

गाई, रोई, फिर निःश्वास लेकर बोली: जो बीत गया सो बीत गया। जब नाशवान् से मन उठ गया और लग गया अविनाशी की ओर, तो अब झूरना और उसक दुःख करना पाप है। अब क्या किया जाए? किसी वन जंगल में जा रहें। शोभा के दलदल में फंसते-फंसते कहीं रसातल में न पहुंच जाएं। कैसे, कैसे? नहीं, नहीं। तू तगड़ी हो। जो कुछ कर रही है, उसे जारी रख। वह ब्रह्मांड का स्वामी है, वह रंग में, हर जगह पर है, उसका मार्ग अवश्य ही है और वह अवश्य ही मिलेगा, वह प्रकाशमान है, झलक देगा। फिर गाने लगी:-

"हे मेरे ईश्वर स्वामी सुन्दर लोई वाले, तू आ। हे मेरे अनेक रंगों वाले! तू क्यों छिप-छिपकर बैठता है?"

रात बीत गई, बहुत दिन चढ़ आया। उसकी आज वर्षगांठ थी, अतः उसकी प्रतीक्षा की जा रही थी। दरबार सज रहा था, उसके श्रद्धालु तथा उसके धन पर पल रहे सारे लोग एकत्र हो रहे थे। बाई पालकी में चढ़कर आई और आकर अपने सिंहासन पर बैठ गई। लोगों ने दण्डवत प्रणाम किए, आरती उतारी, फूल

चढ़ाए, गले में फूल मालाएं पहनाईं। फिर सभी गाने लगे, 'सुघड़ बाई की जय।' सुघड़ बाई है और सब कुछ क्षय है। सुघड़ बाई ही है।' फिर भेंटें रखी गईं। वह भेंटें लेती जा रही थी और वरदान दे रही थी, प्रसन्न हो रही थी। अपने आपको मिल रहे सत्कार के कारण रजोगुणी रस आ रहा था और साथ-साथ अंतस यह कह रहा था: सावधान! यह अपरिचित रस है, यह ठण्डी सुहावनी नदी है, इसको तैरना है, इसमें डूबना नहीं। फिर काफी अधिक रंग बांधकर रस आ रहा था। इसी समय एक पत्रवाहक आ पहुंचा। यह एक लम्बा सुन्दर डील वाला सीधी दस्तार (पगड़ी) वाला, केश तथा दाढ़ी वाला जत्थेदार व्यक्ति था। इसे देखकर सारे हैरान हुए, इसकी सुन्दर सूरत तथा निर्भय फबन को देखकर। इसने सबसे आगे बढ़कर एक थैली में से चिट्ठी निकालकर, बाई को दी और गरज कर बोला:-

'वाहिगुरू जी का खालसा श्री वाहिगुरू जी की फ़तेह।'

जैकार की गूंज के कारण सबके दिल दहल गए। सबने कांपकर देखा-यह कौन है? किसी को भी पता नहीं था, पर एक व्यक्ति ने चुपके से कहा: यह आनन्दपुर वाले का है। इसका तौर-तरीका देखिए, इसकी फबन देखिए, स्वाद आ गया है। दूसरे व्यक्ति ने पास से कहा, कितना दिलेर है, कैसे हमारे गुरुदेव भगवान के पास बेअदब होकर चला आया है। न दण्डवत प्रणाम, न माथा झुकाया।

लोग इस प्रकार बातें कर रहे थे। उधर सुघड़ बाई ने चकित होकर पत्र हाथ में लिया। जब पत्र को हाथ लगाया तो एक झनझनाहट-सी हुई। जब चिट्ठी खोली, तो रोम झनझना उठे। जब काग़ज़ आंखों के सामने किया तो आंखों के आगे गोल-गोल चक्कर आने लगे, अक्षर कई प्रकार के उल्टे सीधे रूप धारण करके दीखने लगे। बाई पढ़ने का यत्न करती, पर अक्षर पढ़े न जाते। ज्यों-ज्यों आंखों का ज़ोर लगाती, त्यों-त्यों वे चक्कर बनकर कई प्रकार के रंग धारण करके उड़ते-उड़ते लगते। यह समझदार थी, नैन मूंद लिए। मन में कहने लगी, रे मन! तू डर गया है क्या? कांप गया है? मन! क्या तुझे पता नहीं कि यह पत्र किसका है? बिना जाने आपे से क्यों हिल गया है? कोई दुष्ट तो नहीं आया। यह तो सुन्दर आकृति वाला तथा कोई खिले मस्तक वाला व्यक्ति है, जो पत्र लाया है, इसे पढ़ और टिककर पढ़।

बंद नैनों में ही चिट्ठी को आंखों से लगाया, हृदय शीतल हुआ। मन में कहने लगी, चिट्ठी किसी बलवान की है, इसमें शक्ति है। रे मन! अदब में आ और प्रार्थना कर। यों एकाग्र होकर, तथा श्वासों की और मन को टिकाकर फिर चिट्ठी पढ़ी। नैनों ने अब चिट्ठी पढ़ ली, मन ने उसके अर्थ समझ लिए पर उसके भाव को समझकर सारे शरीर में झन्नाहट छिड़ गई। लेखक कौन है?

चिट्ठी में लेखक का नाम नहीं है, पर आज्ञा है। इस प्रकार के कई विचार मन में आए, जिन्हें छिपाना कठिन हो गया। बहुत कठिनाई से आपे को संभालकर इकट्ठी हो रही भीड़ की ओर देखकर बोलीं; मुझे अब एकान्त चाहिए, तुम सब भोजन करके अपने घरों को चले जाओ। यह कहकर उठी और अपने डेरे पर चली गई। एक सखि संकेत पाकर पीछे गई और चुपके से पत्र वाहक को साथ ले गई। घर जाकर उससे पूछा कि चिट्ठी किस अदेश के स्वामी ने भेजी है? उसने बताया कि यह चिट्ठी साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की है, जो इस समय आनन्दपुर में विराजमान हो रहे हैं। बाई ने नाम सुन रखा था, पर उसे केवल इतना पता था कि कोई तलवार वाला है, जो संत बनकर तलवार रखता है। 'तलवार तथा परमार्थ' क्रिया तथा अक्रिय ये ही उस समय उसके मन को उस ओर से हटाने के लिए काफी थे। जब आज चिट्ठी का असर देखा, उसके स्पर्श में जो प्रभाव था, उसे देखा। चिट्ठी के मतलब में वह बात देखी, जिसे उसके बिना और कोई नहीं जानता था जिसे उसने परख की कसौटी बना रखा था। उसे सूझ आई कि सुन्दर सूरत तो जगत में प्रत्यक्ष बैठी थी और मुझ अंधी को कुछ पता भी न चला। अब कलेजा उछला, सोचने लगी कि किस तरह जो कुछ मेरे मन में था उसे जान लिया गया है। कैसे पता लगा लिया है कि मैंने पाखंड रचा रखा था। जब सारे निकटवर्ती जानते हैं कि मैंने बावलेपन में यह सब कुछ किया है और बाहर वाले भी सारे जानते हैं कि मैं सचमुच देवमूर्ति हूं, यह कैसे पहचान लिया है कि मेरा आचरण शुद्ध है, पर रिंद[१] हूं, मैं ईश्वर की बराबरी नहीं कर रही और न ही मैं नास्तिक हूं, पर इसे पर्दा बना रही हूं, हां पाखंड को पर्दा बना रही हूं। फिर जब भीतर की दुनिया में झांकती हूं तो आकर्षण होता है, मानो बछिया को गऊ आवाज़ें लगा रही है और बछिया का मन व्याकुल हो रहा है। मैंने न तो आपके दर्शन किए हैं, न ही उनसे कोई पहचान है, केवल दो पंक्तियों का पत्र ही आया है, पर प्रभाव इस तरह का पड़ता है कि मानो कई जन्मों से पहचान है। अब मन अधीर होता है जी चाहता है कि उठकर भागूं और जाकर चरणों पर पड़ जाऊं। शरीर तो उड़ न सकता पर, होश उड़ता और बावला हो जाता।

फिर बाई ने अपने को संभालकर अपनी मुख्य सखि चंदो को आने वाले सिंह पत्रवाहक का डेरा करवाने की आज्ञा दी। लोगों की भीड़ को विदा कर देने की आज्ञा की और स्वयं अंदर द्वार बंद करके एकान्त में बैठ गई। वह एक दिन और एक रात बाहर ही न निकली। सखिगण को चिंता हो रही है। चोखा भी चिन्ता कर रहा है। वे सारे पत्रवाहक से पूछते हैं कि वह क्या संदेश लेकर आया

१. रिंद होता है जो भीतर से अच्छा हो और बाहर से अपने आपको बुरा बनाकर दिखाए।

है। पर उसे भी पता नहीं कि पत्र में क्या लिखा था। उसे तो केवल पत्र पहुंचाने का आदेश मिला था, वह उसने बता दिया। दूसरे दिन सवेरे द्वार खुला, जाड़े की उतरी हुई पर निर्मल नीली-नीली धारा वाली गंगा की भांति निखरे तथा टिके हुए चेहरे वाली सुघड़ बाई बाहर आई। जो बाहर बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे, सबने शुक्र शुक्र कहा। हंसती-हंसती सुघड़ बाई उनके बीच आकर बैठ गई। कहने लगी, चोखे को बुलाओ। थोड़े समय के पश्चात् चोखा आया। उसे कहने लगी--चोखा भैया तूने अंत तक साथ दिया, आनन्दपुर वाला तेरा इहलोक तथा परलोक में भला करे। यों कर कि इस घर तथा सारी भूमि का पट्टा अपने नाम लिखवा ले मैं हस्ताक्षर कर देती हूं। तू सुख से जीवित रह और सुख से बस। मेरे लिए एक मोहरों की तथा दूसरी रुपयों की एक खच्चर लदवा दे, शेष आनन्दपुर वाले के नाम पर लुटा दे। ये मेरी सखियां मेरे साथ निभी हैं, पहले चन्द्र सखि को तृप्त कर दे, फिर शेष सखियों को। दूसरी बात यह कि घोषणा कर दे कि मैं जपने योग्य नहीं थी, वह सारा मेरा पाखंड था। मैं इस बहाने उद्धारकर्ता की खोज कर रही थी, वह मुझे मिल गया है। जिसे कल्याण की आवश्यकता है, उसके पास जाओ। चोखा भैया, चोखा भैया, चोखा पिता-माता, चोखा चाकर नौकर, नौकर, मुनीम, सब कुछ तू। अब तू मेरी इस अंतिम इच्छा को पूरा कर दे।

सुघड़ बाई के ये वाक्य एक बिजली की कड़क थे। सारे चकित हो गए। कुछ समय इस सदमे के अधीन रहकर चोखा ने कहा, माता जी! तुमने बहुत रंग देखे हैं, कई बार उतावली के समय मैंने साहस बटोरकर रोका और तुमने मेरा मान रखते हुए मेरी बात मान ली। अब भी मेरा मान रखो, करो वही जो तुम्हें अच्छा लगे, पर मुझे कुछ सोच लेने दीजिए। दस, पांच, बीस दिन दो, जल्दबाज़ी मत करो।

सुघड़ बाई--तुम प्यार करते हो, बुजुर्गों की भांति सहारा देते हो, पर मैंने सोच विचार कर लिया है कि अब रुकने का काम नहीं है। अब विलंब का समय नहीं। काल पल-पल करके ढीला जा रहा है। प्रत्येक पल अमूल्य है। घड़ी, दिन बहुत लम्बे हैं, अब तो पल का भी विलंब नहीं। जो कुछ मैंने कहा है, उसे कर दो। अन्यथा मैं दोनों हाथ झाड़कर चल दूंगी। अब सखियां समझाने लगीं। प्यार, मिन्नतें करती हैं पर बाई पर कोई असर न पड़ा। जब सबने बहुत वैराग्य कर करके उसे वैराग्यवान बना दिया। बाई भी रोई और अत्यंत झीने स्वर में तथा राज योग्य यह गायन किया:-

वतन दुराडा, मंजल दुराडी हो पई साडी तैयारी।
वत (फिर) नहीं आना वतन तुस़ाडे
वत नहीं पाणी फेरी।

अंगन हो परदेस गए हुण बिहड़े वतन बिगाने।
तुर वंजणा (जाना) हुण (अब) तुर वंजगतु हुण
तुर वंजण दे तराने।
अपने वतन चले नी सहीओ दिओ मुबारक
सानू, नाल असीसां तोरो सानू भाग लाए रब तुहानू।
हुण न होड़ो (रोको), न होड़ो नी,
जाण दिओ हुण सहीओ। कल तुसीं विच
बैठ त्रिंजणा कथा असाडी कहीओ।
कांग (बाढ़) चढ़ी नहीं नैं (नदी) रुकदी है
शहु सागर नूं जांदी, सूली चढ़नी रुकण
न आशक पैडियों (सफर) रुके न पांधी (मुसाफिर)

"वतन दूर है, दूसरी मंजिल की और हमारी तैयारी हो गई है। अब हम आपके वतन में लौटकर वापिस नहीं आएंगी अब ये आंगन परदेश हो गये हैं और वतन का आंगन भी बेगाना हो गया है। अब तो चल देने, चल देने और चल देने और चल देने के तराने ही सुनाई दे रहे हैं। अब मेरी सखी-सहेलियो मुझे आशीर्वाद हो मुबारिक दो भगवान तुम्हें भी भाग्यशाली बनाये अब हमें मत रोको, बिलकुल मत रोको, और चले जाने दो। कल आप लोग त्रिंजण में बैठकर मेरी कथायें सुनायेंगी। अब तो नदी में बाढ़ आ गई है और वह अपने प्रियतम सागर से मिलने जा रही है। प्रेमीजन कभी भी सूली पर चढ़ने से झिझकते नहीं हैं और यात्री कभी भी यात्रा पर जाने से रुकते नहीं हैं।"

इस हृदयबोधक गीत को सुनकर मौन छा गया, फिर चंद्र सखि ने मिन्नतें कीं, तब बाई बोली: सखियो! हमें धुर से बुलावा आया है, हमें और समझाने की आवश्यकता नहीं है। सारे बाई के स्वभाव को जानते थे, थक हारकर चुप हो गए। चोखे ने स्वामिनी के आदेशानुसार सब कुछ अपने नाम लिखवा लिया। इसके मन में अपना लोभ कम था, दूरंदेशी से सोचता था कि जो कुछ दे जाएगी, उसे इसकी अमानत समझकर रखूंगा। यदि यह फिर कहीं भटककर दु:खी होकर आई अथवा मैंने इसकी दशा के बारे सुना, तो इसे यहां लाकर इसे फिर से स्वामित्व देकर स्वयं पहले की तरह नौकरी में रहूंगा। अत: उसने खच्चरों पर, उसके साथ ले जाने के लिए चांदी, सोना रख दिया, शेष आज्ञानुसार सखियों, बंधुओं तथा ज़रूरतमंदों में बांट दिया। इसने तथा चन्द्र सखि ने इसके हठ को तोड़कर एक बात उससे मनवा ली कि ये दोनों तथा कुछ दूसरे नौकर बाई के साथ आनन्दपुर साहब जाएंगे और वहां उसे सुखी बसाकर लौट आएंगे।

: १६ :
संतोषी राजा

सुघड़ बाई ने एक विशेष राशि गांव में प्रत्येक घर में बांटने के लिए कहा था जब चोखा वह राशि बांट रहा था तो लोग नेत्रों में जल भर भरकर ले रहे थे। लोग कह रहे थे कि उनके गांव की हातिमताई जा रही है। जब चोखा एक ग़रीब दर्ज़ी के घर गया और उसे धन देने लगा, तो उसने आगे से हाथ बांधकर कहा, "तेरा साईं जिये!" मुझे धन की इच्छा नहीं, मैं हर रोज़ चार-पांच आने की दिहाड़ी कर लेता हूं, मेरा दैनिक निर्वाह हो जाता है और कुछ बच भी जाता है। इससे अधिक की मुझे आवश्यकता नहीं है। चोखे ने बहुत जोर दिया पर वह न माना। अब बाई को इस बात का पता चला, तो वह चकित हो गई कि कोई ऐसा व्यक्ति भी है, जिसे धन का लोभ नहीं है। अतः वह स्वयं चलकर उसके घर गई। आगे वह रसीले नैनों वाला कपड़ा सीते-सीते अपने रंग में मग्न हो गया था जब उसने नैन खोले और गांव की दाता बाई को देखा, देखकर कहने लगा, उपकार की देवी! मुझ ग़रीब के घर में चरण रखे, मुझे ही बुला लेतीं! बाई ने कहा, तेरे दर्शन करने के लिए आई हूं। यह देखना चाहती थी कि मेरे गांव में भी कोई संतोष की निधि रहती है और मुझे पता ही नहीं चला। भले लोग! बता तूने यह गुण कहां से प्राप्त किया है? उसने कहा, "माता, मैं सिख हूं, गुरू गोबिंद सिंह शाहंशाह का पुत्र हूं। मुझे उसी से दिल की पातशाही प्राप्त हुई है। मेरा गुरू ज़गत का स्वामी है, उसके द्वार पर कणिकों में पातशाही बसती है। शेष रही शरीर की जरूरत, उसके लिए मुझे मेरी आवश्यकता से अधिक मिल जाता है।" गुरू कल्गीधर का नाम सुनते ही बाई उसके चरणों पर झुक गई! 'धन्य है साहब, सच्चा साहब, सच्चा पातशाह! शाहज़ादे! मेरे दुर्भाग्य। देख तू इस गांव में रहता था, पर मुझ कंगाल को पता भी न चला कि मेरे दाता का बालक यहां पर भी है। देख, आज अभी उसने मुझे बुलाया है, और साथ तेरा भी पता चल गया है और दर्शन भी हो गए हैं।' दर्जी ने कहा-

"दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि॥
इक जागंदे ना लहनि इकना सुतिआ देइ उठालि॥"

धन्य माता, तू धन्य है, जिसका उद्धार करने के लिए साहब ने बुलाया है। मेरी ओर से भी मस्तक झुकाना और कहना, अनुकंपा, अनुकंपा, अनुकंपा।

सुघड़ बाई, सखियां तथा चोखा सारे चकित रह गए। सोचने लगे कि उनके पास इसी गांव में संतोष का एक पुतला तथा प्रभू के रंग में रंगा महापुरुष इस गरीबी के वेष में रह रहा है और उसने अपने आपको प्रकट नहीं किया। आज तक इस बात का किसी को भी पता नहीं चला कि यह गुरू का सिख है, तथा

पारगामी है। अपनी रोटी कमाता है और बिना दिखावे के जीवन व्यतीत करता है और एकान्त में रहता है। धन्य गुरू है और धन्य है गुरू के सिख।

: १७ :

दर्शन

श्री सतगुरू साहब गुरू गोबिन्द सिंह जी सतलुज नदी के किनारे बैठे थे, कि वहां पर ही सुघड़ बाई आनन्दपुर पहुंच गई। दर्शन करते ही उसका सिर एक आनन्द से भर गया और वह बेसुध होकर चरणों से लिपट गई। इस समय की मगनता के रस को संत जी ने भाई गुरुदास जी के इस कवित्त के साथ उपमा दी है–

दर्शन देखत ही सुध की न सुध रही बुद्धि की
न बुद्धि रही मति मै न मति है।
सुरति में न सुरति और ध्यान में न ध्यान रहयो,
ज्ञान में न ज्ञान रहयो गति में न गति है।
धीरज को धीरज गर्व को गर्व गयो,
रति में न रति रहीं प्रति रति पति हैं।
अद्‌भुत परमभुत विसमय विसम
आश्चर्य आश्चर्य अति अति है।१॥

बाई जी का शीश गुरू महाराज जी के चरणों पर पड़ा है, मन मगनता में बेसुध है, उद्धारकर्ता दाता के अनुकंपा पुंज हाथ सिर पर फिर रहे हैं। आपके नैन भी बंद हैं, चेहरे पर आश्चर्यजनक टिकाव तथा अनुकंपा के प्रभाव वाली आभा है। बाई के अंदर परमरस ने प्रवेश किया और और वह उसके मन को ऊंचे मण्डलों में ले गया। अनुकंपा भरे हाथ उसके भीतर की मैल को काटते रहे, जिस मैल को दूसरे लोग बातों से काटना चाहते थे। हां "करि हुकुम मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढीआं बुरिआईआं"। काफी समय अनुकंपा की वर्षा बरसाकर गुरू पातशाह ने अपने हाथ से सुघड़ो का सिर उठाया। उसने सिर उठाया, नैन खोले पर खुलते नहीं। मदभरे आत्म रस से भरे झुक-झुक पड़ते। दिल चाहता है कि नैनों को खोलकर दर्शन करे, पर कोये तनिक खुले तो झिझक सी आई फिर झन्नाहट छिड़ी और नैन मूंद गए। काफी समय व्यतीत हो गया। सतगुरू जी ने थपकी देकर कहा, "होश करो, सावधान होवो, देखो माया बिला गई है।" अब सुघड़ो ने नैन भरकर देखा, आप मुस्कुराए और कहने लगे: 'लोग जप तप करके तथा सरल बनकर प्रभु की खोज करते हैं, तूने पाखंड से प्रभु की खोज की।' रुके कण्ठ तथा उखड़ती जिह्वा से बोली पातशाह जिस वेष को धारण करने से तू मिले।…प्रयत्न तो मिलने का ही है।

: १८ :

भक्त ज्ञानी

सुघड़ बाई आनन्दपुर में टिक गई। उसकी वार्ता सारे सिखों में फैल गई। पाखंड धारण करके उसने निज मन को वाहिगुरू की प्रार्थना में ऐसा जोड़ा कि गुरू साहब तक जा प्रभाव पहुंचा और आपने बुलाकर स्वयं दर्शन दिए और सारी मैल धो दी। यह वार्ता आनन्दपुर में भी प्रसिद्ध हो गई थी। एक दिन भाई नन्दलाल उसके दर्शन करने के लिए उसके डेरे पर आ गए। वह भी आपका नाम तथा आपकी महिमा सुन चुकी थी, सत्कार सहित मिली आनन्द कुशल पूछने के बाद पिछले हालत की परस्पर बातचीत के बाद भाई जी ने पूछा कि अब क्या दशा है हंसकर कहने लगी। अब वही दशा है जो नदी की सागर में मिलते समय होती है। शीतलता, चाव तथा खुशी है, मिल जाने की, शुक्र है प्राप्त हुई अनुकंपा का, पर साथ ही घबराहट में समा जाने की उतावली है मुझे मन की अभिलाषा मिल गई है। मेरी अभिलाषा यह थी कि मैं चाहती थी कि जो कुछ मैं जानती हूं उसका भीतर में निवास हो जाए। गुरू साहब के पत्र के स्पर्श से ही मेरे मन में ऐसी झन्नाहट तथा हलचल मची; जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था। दर्शन करके मैं बावली हो गई हूं, चरणों को छूकर जो झन्नाहट आई है उसने मुझे चरणों में शरण दे दी है। मैं बेसुध थी पर किसी अत्यंत सुधि की अधिकता में, जैसे अधिक प्रकाश वाले सूरज को देखकर आंखें अंधी हो जाती हैं। पहले दिन मस्तक झुकाने पर यों लगा कि गुरू साहब ने स्वयं मुझे अपने चरणों से अलग रखा जैसे मां बच्चे का दूध छुड़ा देती है, ताकि बच्चा अधिक दूध पीकर कहीं बीमार न हो जाए। मैं बिछड़ गई और रसरंग की झिलमिल में तड़पते हुए नैनों ने फिर दर्शन किए तो मैं क्या देखती हूं कि मैं नहीं हूं और वह है। मैं के इर्द गिर्द भ्रम का अंडा टूट चुका था। मैं खुली तथा स्वतंत्र हो गई थी, मैं विशाल हो गई और विशालता में असीम हो गई। भाई जी! न जाने यह क्या था, पर यह था जो मेरे साथ घटित हुआ। भाई जी ने पूछा, अब क्या दशा है? सुघड़ो कहने लगी: मैं अब फूल की भांति हलकी हूं, मुझे अब अपना कुछ भी बोझ नहीं लगता, मैं शीतल तथा सुखी हूं, मैं अब अपने आपको कुछ ऊँची-ऊँची महसूस कर रही हूं, अब सबके साथ अपनापन-सा लगता है, पर अहं नहीं लगता। उदासीनता का आभास भी होता है, जो न वियोग उत्पन्न करता है और न ही एकाकीपन पैदा करता है। वैसे ही जैसे खोया हुआ मिलकर भी अलग होता है अपने आप में, पर अपनेपन में भी आ जाता है। इस तरह कुछ ऐसा होता है, मानो मेरे अंदर कुछ हो रहा है, किसी शब्द का उच्चारण, जैसे कि भीतर

वाह-वाह अथवा वाहिगुरू-वाहिगुरू अपने आप हो रहा है और इसमें से रस की बूंदें झर रही हैं। नंदलाल जी के नयन मुंद गए, फिर खुले और आवाज आई, "गुर गोबिंद सलीऐ भाई जिसते जापै तथु" पंचम सतगुरू जी ने यह कैसा सुन्दर वाक्य कहा था, जब उनसे पूछा गया था[१] कि जो करण कारण तथा समर्थ प्रभु है, जिसने सारे जगत को उत्पन्न किया है और अपनी वस्तु देकर जिसने जीव तथा शरीर की रचना की है; उस कर्तार को कैसे देखें और कैसे उसका वर्णन करें? क्योंकि वह मन तथा वाणी का विषय नहीं है, अतः वह अकथनीय है, उस अकथनीय को कैसे देखें और कैसे उसका वर्णन करें, तब आपने उत्तर दिया था कि गोबिंद रूप गुरू से तत्व का पता चलता है उसकी सराहना कीजिए जो अकथनीय का केवल पता ही नहीं देता अपितु उसकी गोदी में भी बिठा देता है।

सुघड़ बाई–आपने सच कहा है, वह तो हुआ पारस, गुर गोबिंद आपने कहा है गोबिंद रूप, गुरू।

भाई जी–हां देवी! 'गुरू नानक देव गोबिंद रूप' और यह दशम स्वरूप वही गुरू नानक है तथा गोबिंद रूप है।

बाई जी–(मुस्कराकर) और अब तो कोई पर्दा भी नहीं रखा। नाम भी गोबिन्द ही रखवा लिया है–गुरू गोबिंद सिंह!

यह सुनकर भाई जी मुस्कराए और समझ गए कि यह महिला निःसंदेह कवियित्री भी होगी। फिर कहने लगेः माता! क्या तुझे पता है कि गुरू किस प्रकार तत्व सार के अनुभव तक ले जाता है? कानों द्वारा सुन लेना, आंखों से पढ़ लेना और मन से सुन लेना यह संपूर्ण तथा सफल ज्ञान नहीं है। ज्ञान प्राप्त करना, अनुभव का खुलना, प्रतीत होना, यह ज्ञान है–तत्व का अनुभव। अतः गुरू जी ने नाम का दान प्राप्त होता है। नाम दुख, दर्द–चाहे मानसिक हों अथवा शारीरिक सबको दूर करता है! गुरू अपने जन को नाम का दान देता है, इसी से हरि भगवंत का जाप किया जाता है, यों तत्व द्वार पर पहुंचा जाता है।

सुघड़ बाई–मैं तो अब सुख रूप हो गई हूं, मुझे तो प्राप्त हो गया है और मेरे रोम-रोम में बस गया है।

भाई जी–बसा रहे, पर मन का स्वभाव अनेक चिंतन की ओर रुख करने का है। वह समय के साथ एक बिंदु पर टिक गए आपे को फिर अनेक चिंतन में ले जाता है। नाम का निवास मन की इस रुचि को चरवाहे की भांति मोड़-मोड़कर एक ठिकाने पर ले आता है, अतः अप्राप्त की प्राप्ति के लिए तथा प्राप्त की रक्षा के लिए नाम का आराधन किया जाता है।

---

१. इससे आगे के वार्तालाप में इस शब्द 'सभ जगु जिनह उपाइआ भाई करण कारण समरथ' को खुली टीका प्रस्तुत है।

बाई–जी! नाम वाला? उसका नाम! अच्छा...वह कहां से प्राप्त होता है?

भाई जी–सत्संग में मन को मांजा जाता है तथा नाम का विकास मंजे हुए मन में बैठता है। नाम के अभ्यास से अज्ञान का अंधेरा दूर होता है और अंतस का हृदय-कमल खिलता है। अर्थात् मन जो उलट रहा है, जो दृष्टिमान से अपने आप को मिलाकर बैठा है, वह अपने आप में सीधा हो जाता है अर्थात् उसका रुख दृष्टा हो जाता है। अतः मन कमल की भांति खिल पड़ा, मेरी तेरी का जो दुख है–आपको, तथा दूसरों को देते हैं–वह मिट जाता है, क्योंकि फिर नज़र खुलती है कि घट-घट में पारब्रह्म बस रहा है और हमारा आपा उस परम आपे से दूर पर नहीं है।

बाई–क्या फिर प्रेम, जो ईश्वर के साथ लगाया जाता है, उसकी आवश्यकता नहीं रहती?

भाई जी–प्रेम ही तो मिलाने वाला है। हमारे सतगुरू ने कहा है: "साच कहउ सुन लेहु सभै जिन प्रेमु कीओ तिन ही प्रभ पाइओ" तथा प्रेम क्या वस्तु है पंचम गुरू जी ने फरमाया है: 'प्रेम पदारथ नाम है भाई', अर्थात् यह नाम ही है प्रेम का विदित स्वरूप, माया तथा मोह का नाशकर्ता यही है। यही नाम कमल का प्रकाश करता है और फिर धरती, आकाश में वही प्रभु प्रफुल्लित हो रहा प्रतीत होता है, पर इस अवस्था में भी पंचम गुरू का वाक्य है–

'रसना राम रवै सदा भाई,
साचा सादु सुआउ।।

इस से हुजूरी में निवास हो जाएगा, देखो आप फरमाते हैं–"सास गिरास न विसरै भाई पेखड सदा हुजूर"।

बाई–बलिहारी, आपके कथन की, पर मैं तो दर्शन देखकर एक ऐसी झलक में खो गई थी कि मेरी सीमाएं टूट गईं और मैं विशाल हो गई मैंने तो सतगुरू को उस क्षण में परम विशाल देखा है और उसे ही ब्रह्म समझा है।

भाई जी के साथ एक अन्य सत्संगी पुरुष भी था, वह कहने लगा, माता सतगुरू जी ने इन बातों के लिए वर्जित किया है। आप कहते हैं कि मैं तो प्रभु का दास हूं, जो मुझे परमेश्वर कहेगा वह नरक में जाएगा।

बाई चौक उठी, फिर मुस्कराई और कहने लगी, अच्छा...मैं कहती नहीं...जो मैंने अनुभव किया है वह मेरा रहे...।

सिख–यह भी ठीक नहीं, वे कहते हैं, 'मोकउ दास तवन का जानउ'। हां, कहते हैं–'जानउ' (जानो)।

बाई–अच्छा।...पर कल एक सिख पढ़ रहा था, 'हरि हरि जन दोऊ एक है बिब विचार कछु नाहि' यह वाक्य भी उन्हीं का है न? अतः यदि वे दास हैं, तब भी उससे तदरूप हैं।

सिख सुनकर चकराया। भाई जी हंसे तथा बाई ने कहा—हां सतगुरू चोज़ी हैं।...मेरे बुज़र्ग भाई जी। यदि मज़ाक से एक बात कहूं तो बुरा तो नहीं मनाओगे।

भाई जी—तुम जो कुछ कहोगी, प्यार से ही कहोगी, कहो।

बाई—मैं अत्यंत लाड़ में कहती हूं कि यदि उस सतगुरू जी जिसको मैंने तड़प तड़पकर, अपनी ज़ान की बाजी लगाकर खोजा है, और जिसे गोबिन्द रूप समझा है, यदि उसे वह कुछ कहकर, जो मुझ पर असर पड़ा है यदि मैं नरक में भी चली जाऊं, तो क्या मेरे लिए वह महंगा सौदा है? मैं दर्शन की देन से वंचित होकर पहले नर्क में ही तो थी, दर्शन करके नर्क छूट गया, मुझे परमेश्वर दीख पड़ा। अब यदि उस बात के कहने से मुझे दण्ड मिले, अर्थात् नर्क मिले, जिसे मैंने पूरे निश्चय से जान लिया है, तो क्या बुरा है? नारकीय नर्क को चला गया तो चला गया सही, पहले वह अज्ञान वश होकर नर्क में था, और अब ज्ञान पाकर नर्क में चला गया। क्या वह नर्क अब मुबारिक न होगा, जिसमें हम ज्ञानयुक्त हो गए।

ये वचन सुनकर सिख तो चकरा गया, भाई जी भी उसके सिदक को देखकर कांप उठे। बाई तो स्वाभाविक बातचीत कर रही थी, पर उन वचनों में सिदक कूट कूटकर भरा था। भाई जी अभी सोच ही रहे थे कि इस चतुर परन्तु सिदक वाली बाई के वाक्यों का अंदरूनी भाव क्या है कि वह ताली बजाकर बोली: हां जी जब तलवार खींचकर सिर की मांग की थी, तो शीश देने के लिए कई सामने आकर सिर देने के लिए तैयार हो गए थे, पर उन्हें तो तलवार के घाट न उतारा गया। उसी तरह यह भी तलवार है, जो इसके आगे शीश भेंट करेंगे वे नर्क को जाते दीखते हुए भी तत्व सार के देश को जाएंगे। मेरी बात का गुस्सा न करना, मैं बेअदब नहीं।...पानी के मूल्य का तो उसे पता है, जिसने रेतस्थल महान मरुस्थल में चार दिन तड़प तड़पकर मौत के मुंह में आकर खजूरों के झुंड में से पानी के चश्मे की खोज की हो। मल्लाहों को पानी की वैसी कद्र नहीं होती। यह कहकर छमाछम रोने लगी। फिर उसी स्वर में बोली! हां कौन है? जिसने इस योद्धा, तलवार वाले, सेनाओं वाले, कवि, फकीर, पैग़म्बर, अवतार का रहस्य पाया है?...इन्सान? अच्छा इन्सान ही सही। 'तवन' का दास तो है। भला बताओ न इसके साथ का कोई दूसरा 'तवन का दास' है। जगत देखते हुए भी नहीं देखता। दास कहकर भी हम परख नहीं कर सके, उसका मूल्यांकन नहीं कर सके। भाई जी? तुम ही मूल्यांकन करो, तुम आप ही कहोगे कि मूल्यांकन नहीं हो सकता, यह अमूल्य है, निर्मोल है, मूल्य के देश से परे का है, यदि मुक्त भिखारिन ने कह दिया कि यह 'रत्न अमूल्य है, इसका मूल्यांकन नहीं हो सकता' तो क्या मैंने सच नहीं कहा। (आकाश की ओर देखकर)। यदि मैंने

अमूल्य को अमूल्य कहकर नर्क को बुलावा दिया है, तो नर्क आए और सौ बार आए। पहले तो मैं अकेली थी, नर्क के डंक मुझे पीड़ित करते थे, अब मैं अकेली नहीं, वह मेरे साथ है। हां मैं उसे कसकर हृदय में पिरोकर अपने साथ रखूंगी, वह मेरे साथ होगा। हां, जरूर। फिर मैं हे नर्क! तेरे डंक को देखूंगी कि कैसे विष चढ़ाता है। नर्क! अब मैं अकेली नहीं। एकाकीपन नर्क है, नर्क अकेले लोगों को खाता है। मैं देखूंगी, भैया जिस समय मैं 'अमूल्य को लेकर तेरे में आती हूं, उस समय तू स्वर्ग बन जाता है और मैं नारकीय बन जाती हूं। नर्क! तेरे भी भाग्य जग उठें, यदि मेरे पापों के बदले मेरा अमूल्य लाल तेरे द्वार पर चक्कर काट जाए और उसकी कृपा से तेरी सदैव जलने वाली आग भी शांत हो। आ, मेरे साथ आकर तेरा भी उद्धार हो जाए। हां डराने वाले! अब मैं अकेली नहीं, अब तू मेरे से डर।

"मैं अब अकेली नहीं, मुझ में अब 'मैं'
का स्वामी बसने लगा है, अब मैं अकेली नहीं।
'तू' आकर बस 'मैं' में, 'मैं' (तू) उसी
न रोक रखी है, मां! यह कोई धोखा हुआ है,
हे मां! मैं तो बावली हो गई हूं।
मुझे झिड़की मत दे और मुझे छाती से लगा ले,
हे मां। चाहे मैं पगली हूं।"

इस तरह विरह तथा विवशता के वाक्य सुनकर नंदलाल जी के कोमल हृदय ने उनके नैनों में जल भर दिया, दूसरे लोगों के नैनों में भी जल भर आया और रोमांचित हो गए। धन्य 'अमूल्य लाल' पर धन्य हो गया, वह भी जिसने पहचान लिया।

भाई जी गहरे विचार में गए और फिर एक लम्बी सांस लेकर बोले:-

अनिक भेख अरु ज्ञान धिआन
मनिहठि मिलिअउ न कोइ॥
कहु नानक किरपा भई
भगत ज्ञानी सोइ॥ [बा: अ:]

माता! तू भक्त ज्ञानी है। सतगुरू जी के वाक्य सदैव सत्य हैं, तुझे अनेक ज्ञान तथा ध्यान प्राप्त हुए हैं तूने वेश भी कमाल का धारण किया पर तुझे प्रभु प्राप्त न हुआ। जब तुझ पर दाता की कृपा हुई, तू सचमुच 'भक्त ज्ञानी' बन गई। भक्ति तथा ज्ञान का तेरे में कमाल है। धन्य है दाता जो तेरे जैसे व्यक्ति पैदा करता है। बाई ने यह बात ध्यान से नहीं सुनी, वह अपने मन की तरंग में द्रवीभूत हो चुकी थी। नैनों के सामने कल्गी वाले की मनमोहिनी मूर्ति थी, उसमें अपने आपे को समा रही थी, यों नहीं कि किसी ध्यानी की भांति एक 'देशबद्ध ध्यान'

में आपे को भुला रही थी, पर दाता को देश रहित व्यापक प्रतीत कर रही थी और अपनी सीमाओं को टूट टूटकर उसमें समाता देख रही थी। नंदलाल जी उसकी मगनता का अनुभव करके चुपके से उठकर चले गए और चन्द्रसखि से कह गए कि बाई जब उठे मेरी बंदना कह देना और कहना कि मैंने गुरू साहब की हुज़ूरी में इस समय पहुंचना है, अतः जा रहा हूं।

: १८ :

एकान्त

"हरि सिमरनु बहु माहि इकेला" की सदैव एकान्त वाले, 'सो इकांती जिसु रिदा थाइ' की दृढ़ता वाले साहब श्री गुरू गोबिंद सिंह जी आज ब्राह्म एकान्त में बैठे हैं। सूर्यास्त होने वाला है। पश्चिम के गगन पर सुनहरी बादलों के शामियाने जगह-जगह पर तन रहे हैं। इसकी सुनहरी झलक नैनों को सुनहरी झलक दे रही है। ईश्वर के प्रेमियों को आभा ध्यान में आ रही है और सुरति खिल रही है, उपकारी लोगों के दिल बढ़ रहे हैं। सखियों के मन में सूरज की यह उदारता देखकर चाव पैदा हो रहा है, कृपण चौंक रहे हैं कि हैं इतना सोना दान करके सूरज कहीं दिवालिया न हो जाए? गुरू साहब के नैन बंद हैं, नयनों की पलक के ऊपर सुनहरी झलक पड़ रही है। नैनों के भीतर तथा नैनों के पीछे तथा मन में सदैव जागृत ज्योति का सौंदर्य भरपूर है। रस तथा रंग में माते बैठे हैं। पास नदी बह रही है। तिरछी पड़ रही किरणें जल तरंगों पर नृत्य कर रही हैं, झिलमिल झिलमिल हो रहा है। चुपके से बह रही नदी के पानी के ऊपर नदी की ओर से हल्की-हल्की तथा मीठी-मीठी हवा चल रही है, नहीं नदी के पार से, उत्तर पश्चिम की ओर से, ठण्डे-ठण्डे पर्वतों में से। कुछ शस्त्रधारी खालसे पहरा दे रहे हैं। इस समय भाई नंदलाल जी आ गए, उनके साथ दो चार अन्य प्रेमी भी थे। गुरू साहब को 'अपने रंग रवे इकेला' देखकर दूर ही रुक गए। इनकी दृष्टि पड़ गई पश्चिम के सुनहरी दर्शनों पर जो नीले आकाश की छवि बढ़ा रहे थे। कवि मन में हिलोर आयी और गुरू साहब की आत्मिक आभा के ध्यान में उछल पड़ा। कुछ समय के पश्चात् धरती तथा आकाश की दो पलकों में उतरता हुआ सूरज खो गया। पर पवित्र पलकें खुल गईं सतगुरू जी ने नयन रूपी सूरज की और कमाल कविराज के नैन झुक गए; और उनके साथियों की आवाज़ आई 'नमो सूरज सूरजे।' गुरू साहब ने देखा और कहा: 'आओ। यह सुनकर सारे आकर बैठ गए। पहले कुछ बातचीत काव्य पर चली, फिर सुघड़ बाई की चर्चा हुई। भाई जी ने बताया कि वह बहुत अच्छे रसिक मन वाली तथा प्रवीण बुद्धि वाली दिखाई पड़ती है। साहब जी! मैं मिलने के लिए गया था और बातचीत भी हुई थी। फिर भाई जी ने सारी बात बताई और आप हंसकर कहने

लगे, अर्थात् जीवन प्रवाह के भवर, ज्ञान, भक्ति, प्रेम काव्य, आचरण, सभी का संगम भीतर में और अमल में संगम की दीप्ति।

नंदलाल–साहब जी! कितनी वीरता है, जवानी, सुन्दरता की आयु, धन पदार्थ के उछाल में अनेक यश करने वालों तथा रूप और धन के याचकों में अडोल तथा सत्य को धारण करते हुए आयु व्यतीत करना तथा विद्या प्राप्त कर लेना और धार्मिक परीक्षा ले लेना! कमाल है।

साहब–प्रभु का सिर पर हाथ है।

इतने में सुघड़बाई 'चोखे' तथा चन्द्र सहित आ गई और चरणों पर सिर रखा। साहब जी ने सिर पर हाथ रखकर दशम द्वार वाले ठिकाने को अंगूठे से मसला और बाई एक नींद जैसे स्वाद में आकर खोई-सी गई। साहब ने उसी हाथ से सिर उठाया, वह सत्कार सहित बैठ गई और बोली–

"तू ई धन्य, धन्य तू, धन्य तू"

सतगुरू जी ने इस समय छोटी-सी ध्वनि में शब्द गायन किया–

धनाशरी महला ९

काहे रे बन ख़ोजन ज़ाई॥
सरब निवासी सदा अलेपा
तोही संगि समाई॥१॥रहाउ॥
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है
मुकर माहि जैसे छाई॥
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई॥
बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआनु बताई॥
जनु नानक बिनु आपा चीनै
मिटै न भ्रम की काई॥

यह शब्द पढ़कर आप चुप हो गए और नैन मुंद लिए। बाई गुरू साहब के मुंह से निकलने वाले प्रत्येक अक्षर को स्वाति बूंद की भांति पी रही थी। उसके भीतर इसका भाव स्पष्ट रूप से घटित हो रहा था और उसका प्रभाव अनुभव में किया जा रहा था। बाई मग्न हो गई। जब सतगुरू जी ने नेत्र खोले तो आप एक आभा भरे रंग में तथा गंभीर स्वर में बोले–

"केवल करम भरम से चीने
धरम करम अनुरागो॥" [दशम गुरवाणी]

जो कर्म केवल कर्म मात्र ही हैं, ये सारे भ्रम मात्र हैं, पर जो कर्म 'धर्म का कर्म' है, उससे प्यार करो।

सभ करम फ़ोकट जान॥
सभ धरम निहफल मान॥
बिन एक नाम आधार॥
सभ करम भरम विचार॥ [अकाल उसतत २०-५०]
बिन भगति सकति नहीं परत पान॥
बहु करम होम अर यज्ञ दान॥
बिन एक नाम इक चित्त लीन॥
फोकटो सरब धरमा बहीन॥

प्रभु के साथ अंतस से लगे रहने से (भक्ति तथा ज्ञान में परिपक्व होकर) फिर कर्म करने, पर कर्म धर्म के ही करने यह हमारा मत है। केवल कर्मकांड के कर्म किसी भ्रम के अधीन करने व्यर्थ हैं, प्रभु से टूटकर कर्म करने भी क्रिया हैं। यदि सफलता है तो सुरति में नाम का निवास हो और शरीर धर्म के कर्मों में सफल होता रहे। कर्म, धर्म बन जाए, धर्म भक्ति बन जाए, भक्ति ज्ञान हो जाए, ज्ञान बन जाए कर्मों में से स्पष्ट दीखने वाला चन्द्रमा[१]।

सुघड़ बाई–आपकी अनुकंपा द्वारा पुष्प में सुगंधि की भांति बस रहे की सुगंधि आ गई है, उसमें लगे रहकर धर्म के कर्म करने हैं। यही है न आपकी आज्ञा।

पर पातशाह! (लम्बी सांस लेकर) यह तो शूरवीरों का कार्य है। अंतस में रस के रसिक बनने से जी एकान्त की इच्छा करेगा, प्रवृत्ति चाहे परोपकार की होगी, सुरति को चाहे थोड़ा बहुत कष्ट देगी, उस प्रवाह में मन कैसे रहेगा, जिसे आपके प्यारे 'लौ' कहते हैं? प्रीत की डोरी आपके चरण कमलों से किस तरह लगी रहेगी?

गुरू साहब–यह कला है, यही कारीगरी है, यही वीरता है, यही बहादुरी है। बाई! चिंता मत कर, तू वहां पहुंच गई है, जहां तेरे अंतस ने वही रौ पकड़ ली है, जिसे लौ कहा जाता है। अब जो तूने अपने भीतर वाहिगुरू का अनुभव किया है उसे बाहर भी देख। वैसे ही कल्पित करना ख्याल में नहीं, बल्कि अमल में वास्तविक रूप से जगत में दुख है। दुख दूर करने में कौन शक्तिशाली है, पर जितना हो सके इसमें बल को लगाना है। इस तरह बल लगाना शुद्ध कर्म है। धर्म से कर्म कर ताकि वे शुद्ध कर्म हों। ऐसे कर्म कर जिनसे भलाई हो। ऐसे स्वच्छ कर्म कर जिनसे दोबारा अंधकार न हो। पाप कर्मों से अक्रिय हो। कर्म के फल की इच्छा का त्याग करके अक्रिय हो। लेने देने की वासना का त्याग करके निष्क्रिय हो और देने ही देने में उत्साह करके। कर्म में भ्रम को घुसने न दे, कर्म में मुर्दनी

१. मनुष्य के अमलों तथा व्यवहार में से ज्ञान दीख पड़े।

न आने दे, कर्म में अधर्म को न आने दे, कर्म को पवित्र तथा सबल करके कर्म कर। कर्म कर कर्म को भक्ति बनाकर कर्म कर कर्म को ज्ञान समझकर।

बाई सुन रही थी, समझ में ध्यान लग रहा था। बाई पिछले बारह पंद्रह वर्ष जगत की परीक्षा तथा अनुभवों में से गुज़र चुकी थी। अनुभवशून्य लोग जिन बातों को केवल सुनकर और संभावना मात्र से जिन बातों को देख सकते हैं, वे बातें बाई के साथ घटित हुई थीं। उसे स्पष्ट पता चल रहा था कि दाता जी किस-किस स्थान पर हथोड़े की चोट मार रहे हैं। जब दाता जी चुप हो गए तो करबद्ध कहने लगी, न सदैव शरीर के रस साथ निभते हैं और न ही काल उन्हें ढील देता है। मानसिक रस तो पठन पाठन तथा विचार करने के योग्य भी काल में ही आते जाते हैं। जब आत्म रस आ जाता है तो काल डरता है कि यह भी निकल गया मेरे अधिकार में से। पर शरीर काल के घेरे में है। काल क्षण-क्षण करके चलता है। आपने प्रत्येक क्षण पर नाम की काठी डलवा दी है, ताकि काल फिर चित्त को विस्मृति में न डाल दे। वही ध्यान में रहे, जिसे याद किया था और जिसकी डुबकी लम्बे समय तक प्राप्त हुई थी, किसी उस क्षण में जब काल के तार को देखकर आपा अनंत की डुबकी लगा आया था। है जी, जी!

सतगुरू जी हंसे और गरजकर बोले:–

"एक चित्त जिहि इक छिन धियाइओ॥
काल फास के बीच न आइओ॥"

बाई–आपका यही आशय है कि प्रत्येक क्षण स्मरण करते हुए कभी वह क्षण भी आ जाता है, जोकि फांसी को काट देता है। होता तो वह भी क्षण ही है, पर काल के तार से ऊपर उठ जाने के कारण अनंत हो जाता है। अतः यह क्षण जो अक्षण है, हमारी अक्षणता को अनंतता प्रदान कर गया है। अब हम काल के प्रवाह में बहकर जो स्मरण कर रहे हैं, हम उस अनंत स्मृति तथा लौ में जा रहे हैं। हम उस अनंत देश के मिलाप में हैं। यों बनकर, यों रहकर हमें कर्म में शरीर को सफल करना है। हमें जड़ता की ओर नहीं जाना, पर कर्म में सबलता तथा निर्लिप्तता प्राप्त करनी है और धर्म का कर्म करना है¨। शुक्र है दाता! जो तूने मुझे धर्म में रखा¨। हां जी, आप धन्य हैं, आप ही हैं आप। आपके तुल्य दूसरा कोई नहीं, एक आप ही हैं जल में, स्थल में, गगन में। एक आप ही हैं मनुष्य देवताओं तथा अवतारों में शिरोमणि, जी एक आप ही। यों कहते कहते बाई चुप हो गई, पर गुरू साहब न गरजकर कहा:

"इनही की कृपा के सजे हम हैं
नहीं मोसे ग़रीब करोर परे॥" [पातशाही १०]

बाई कांप उठी, थर-थर कांपी, करोर? हैं एक तथा करोड़? पर साहब सच्चा है, सच कहता है। हां मैंने जिस बात का निश्चय किया है वह बात भी सच्ची है, क्योंकि गुरू साहब के सच ही का तो मेरे मन पर प्रभाव पड़ा है, जिसके कारण मुझे जैसा केवल उन्हें, केवल उन्हें करके दरसाया है। अतः दोनों सच कैसे सच हैं, यह भी तथा करोड़ थी। इस समय बाई के भीतर फिर एक चमत्कार हुआ, उल्लास उठा, वह आपे को रोकती है, पर रुकता नहीं। गुरू साहब के चरणों की ओर देखा, इधर-उधर देखा। इतने में कुछ और लोग भी आ गए थे। फिर गुरू साहब के चरणों में ध्यान को टिकाकर बाई प्रभावशाली तथा भारी आवाज़ में बोली; हां पातशाह! तू 'करोर' करोड़ ही करोड़। गगन में तू ही एक चन्द्रमा है और जल से भरे करोड़ घड़े ये जीव हैं। पृथ्वी पर तू प्रत्येक घड़े में है। हां तू करोड़ों घड़ों में, तेरे जैसे करोड़ों दीख पड़े। हमें भी दीख पड़े, पर दाता! तुम जैसा गगन में तू ही एक है। तेरे जैसा एक तू ही तू। सारे सिखों में तू, करोड़ों में तू, सारे तेरे जैसे, पर तू एक ही है, दाता! एक तू, एक दाता एक तू।

कलग़ी वाले ने दृष्टि डाली,
हमारी ओर झांके,
हमारे भीतर ज्योति जगा दी
हमारे भीतर तू ही आकर बसा है, एक दाता तू॥१॥
तू आपा हममें बसाता है,
फिर तू आप ही झांकता है,
आप ही देखकर प्रसन्न होता है
हमें 'तू' कहता है, पर तू आप ही 'तू'
तेरे जैसा और कोई न हो नहीं है, एक दाता तू॥२॥
मैंने सारी सृष्टि को छानकर देख लिया है,
इसीलिए मैं कलेजे को फाड़कर रोई हूं,
तू ही सबसे बड़ा है, तेरे जैसा तू ही है, एक दाता तू॥३॥
तू साहब है और मैं तेरी दासी हूं,
यह मेरी 'मैं' तेरे में घुल जाए
और तेरे चरणों की शरण में ही ढेरी हो जाए,
तू ही एक हो, तू ही दाता तू, एक दाता तू॥४॥

ऐतिहासिक पहलू

गुरू के सिखों के सारे समाचार लिखित रूप में उपलब्ध नहीं हुए। कई समाचार पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक चले आ रहे हैं। कई समाचार उन स्थानों से

१. लेखक की पंजाबी कविता का सरल अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

प्राप्त हुए हैं, जहां पर कुछ सिख रहते थे। यह कथा भी गुरू साहब के समय से चली आ रही है। विशेष रूप से यह वार्ता पश्चिम पंजाब (अब पाकिस्तान) में प्रचलित थी। एक बार गुरू गोबिन्द सिंह जी के दरबार में एक वैराग्यवान वैरागी साधु आए थे। इनका नाम श्री गोपाल था। वैराग्यवान होकर, घर बार का त्याग करके तथा वेष धारण करके ये तीर्थ यात्रा को निकले। फिरते-फिरते ये हरिद्वार आ निकले। वहां इन्होंने सुना कि पंजाब में गुरू नानक की गद्दी पर उस समय महाबलि श्री गुरू गोबिंद सिंह जी विराजमान हैं और आप गुरू नानक का ही स्वरूप हैं। श्री गोपाल को उनके दर्शन करने की इच्छा हुई। मन में अभिलाषा उठी कि चलकर उनका दर्शन किया जाए, जिन्होंने कलियुग के अंधकार के समय ईश्वर के प्रकाश का दीपक जलाया है। यह सोचकर गोपाल जी आनन्दपुर आए। वहां सारे राजसी ठाठ बाठ देखकर घबरा गए और सोचने लगे कि यह कैसे हो सकता है कि माया का प्रसार तथा वीर रसी ठाठ हों और भगवंत का निवास भी हो। यह सोचकर वहां से वापिस लौट चले थे कि फिर विचार आया कि इतनी दूर आकर बिना दर्शन किए लौट जाना बुद्धिमत्ता नहीं होगी। चलो दर्शन करके ही वापिस लौटा जाए। अत: आप दर्शन करने के लिए गए। गुरू साहब उस समय किसी ओर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे थे। गोपाल जी के मन में आई कि यदि गुरू जी स्वयं उन्हें आवाज़ लगाकर बुलाएं तथा दाएं बाजू से पकड़ लें, तो वे समझ लेंगे कि गुरू साहब अवतार हैं और केवल मायाधारी योद्धा नहीं हैं और इनसे ही उनका कल्याण होगा। अत: जब भीड़ में से गुज़रकर वे गुरू साहब के सामने आए, तो गुरू जी की दृष्टि इन पर पड़ी। आपने इन्हें घूरकर देखा और देखते रहे। फिर आपने कहा अरे वैरागड़े। आ गया है, घूम-घूमकर, भटक-भटक कर। आज़मा मुझे दायां बाजू पकड़ा दे।' जब गोपाल जी आगे बढ़े परिक्रमा करके माथा झुकाया तो गुरू साहब ने दायें बाजू से पकड़कर दबाया तो बाबा जी के शरीर में झन्नाहट हुई, रोगंटे खड़े हो गए और चित्त विस्मय के रंग में जाकर खो गया। जब सुधि आई तो सुख में डूब रहे लगते थे, और मुंह से 'गुरू गोबिंद सिंह' गुरू गोबिंद सिंह के शब्द बार-बार निकल रहे थे। फिर उसी प्रवाह में मुंह से वाक्य निकला: कोई गुरू डोंगा, कोई गुरू किश्ती, कोई गुरू जहाज़ हमारे श्री गुरू गोबिंद सिंह जी संसार सिंधु से पार करने वाली पुलिया हैं। फिर सतगुरू जी ने वैरागी के कंधे पर रामजंगा रखवा दिया। संत गोपाल जी बताते थे कि रामजंगा कंधे पर रखते ही उनके माया के पटल (पर्दे) टूटते दिखाई दिए और आत्मस्वरूप दीख पड़ा। अत: संत को गुरू जी

---

१. भगत प्रेम प्रकाश

अपने साथ युद्ध में ले चले। युद्ध जीतकर वापिस आनन्दपुर आए तो काफी समय बाबा जी आनन्दपुर रहे और सत्संग से लाभ उठाकर पूर्ण पद को पहुंचे। फिर आज्ञा हुई कि पश्चिम के इलाके में जाकर सिख धर्म का प्रचार करो। आप पश्चिम में कोट ईसाशाह नामक नगर में आकर सिख धर्म का प्रचार करते रहे।

श्री गोपाल जी स्वयं गुरू जी के दरबार में घटित होने वाली बातें सुनाया करते थे। आपने बहुत कुछ अपनी आंखों से देखा था। सुघड़ बाई वाली वार्ता भी उन ही कथाओं में से एक है। इस तरह यह कथा भी उन्होंने अपनी आंखों से देखकर ही सुनाई थी।

यदि लिखित सामग्री की खोज करें तो इस कथा का वर्णन संत शाम सिंह जी ने अपनी रचना 'भगति प्रेम प्रकाश' में किया है। यह वार्ता आपने गुरुमुख संत भाई राम सिंह जी से सुनी थी। उन्होंने यह वार्ता सुप्रसिद्ध अड्डनशाही संत भाई सहाय सिंह से सुनी थी और आपने यह वार्ता भाई गोपाल जी से स्वयं सुनी थी।

सुघड़ बाई जी आनन्दपुर में आकर पूर्ण ब्रह्मज्ञानी बन गई और एक अच्छी कवियत्री भी बन गई। आपने पर्याप्त काव्य-रचना की। उदाहरण स्वरूप बृजभाषा में रचित एक छंद यहां दिया जाता है:

निसदिन सुमति खेलहिगी होरी॥
भरम अंबीर उड़ाए दीओ है
द्वैत न भासे मोरी।
ज्ञान गुलाब अतर गठ खोली
बोध भूल कर झोली।
समता बिबेक बसिओ रिद भीतर
पुन त्रिकुटी भई घोरी।
सुघड़ो बाई अचल वृत पाई
आधि व्याधि गई छोरी॥

खोज करने पर हो सकता है कि इनकी कोई और पंजाबी तथा हिंदी कविता अथवा कोई काव्य संग्रह उपलब्ध हो जाए।

❑ ❑

४५ काज़ी सलार दीन

उषाकाल की अमृत वेला है, आकाश पर तारे छिटक रहे हैं, पूर्व की ओर शुक्र का प्रकाश द्युतिमान है, हल्की-हल्की पवन चल रही है, एक दोरहटा कुआं घूं घूं कर रहा है। हां घूं घूं नहीं पर तू तू कर रहा है। एक गाधी (गद्दी) पर तो लगभग बारह वर्ष का एक लड़का बैठा है जो वहां पर मीठी-मीठी नींद सो गया है; पर दूसरी पर जवान, सुडौल तथा दरमियानी डील का युवक है। उसके हाथ तो कभी-कभी बैलों को यह संकेत कर देते हैं कि गाधी पर उन्हें हांकने के लिए कोई बैठा है, पर रसना, प्यारी रसना, गुरुवाणी का पाठ कर रही है और मन इस पाठ की ध्वनि के पीछे और उसके भाव में लग रहा है कि अचानक पाठ करने वाला गाने लगा, यों मानों कुएं के स्वाभाविक निकल रहे स्वर की षड्ज करके गायन कर रहा है:

जाचकु जनु जाचै प्रभ दानु॥
करि किरपा देवहु हरि नामु॥
साध जना की मागउ धूरि॥
पारब्रह्म मेरी सरधा पूरि॥
सदा सदा प्रभु के गुन गावउ॥
सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ॥
चरन कमल सिउ लागै प्रीति॥
भगति करउ प्रभ की नित नीति॥
एक ओट एको आधारु॥
नानक मागै नामु प्रभु सारु॥१॥

यह सुरीला संगीतमय स्वर अब बदल गया और मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी लय से पाठ होने लगा, इसी लय में सारा पाठ होता चला गया था। यह लय बड़ी स्वादिष्ट और टिकी हुई कुए के स्वर के साथ मिल रही थी, जिसे सुनते ही मन टिकता था और स्वाद के बस में करता जाता था। हां:-

प्रभ की दृसटि महा सुखु होइ॥
हरि रसु पावै बिरला कोइ॥
जिन चाखिआ से जन त्रिपताने॥
पूरन पुरख नहीं डोलाने॥
सुभर भरे प्रेम रस रंगि॥
उपजै चाउ साध कै संगि॥
परे सरनि आन सभ तिआगि॥
अंतरि प्रगास अनदिनु लिवलागि॥
बडभागी जपिआ प्रभु सोइ॥
नानक नामि रते सुखु होइ॥२॥

पाठी अपने रंग में मगन पाठ कर रहा है, कुआं चल रहा है, पानी बालटियों में से परनाले में जा रहा है, इसमें से चहबच्चे में जा रहा है। चहबच्चे में से पानी नाली खींच रही है और नाली में से खेत पानी पी रहा है। यह पानी से लबालब भरी नाली बेरियों के एक झुंड में.से गुजरती हैं। इस झुंड के बीच एक पक्का चबूतरा है। इस चबूतरे पर कुएं वाले गरमी के दिनों में छाया में बैठते हैं। भोजन करके लेटते हैं और फिर सो जाते हैं। पर कुछ दिनों से काज़ी साहब सुबह की नमाज़ इस पर बैठकर पढ़ते हैं। नमाज़ तथा हाथ मुंह धोने के लिए पानी नाली में से ही मिल जाता है। नमाज़ पढ़कर चले नहीं जाते, बल्कि बैठे रहते हैं। क्या कुछ दारुद आदि पढ़ते रहते हैं? नहीं! चल रहे कुएं के छिड़े स्वर तथा उसमें मिल रही पाठ की ध्वनि से कान मग्न हो जाते हैं, पर उस स्वाद में रंगे रह जाते हैं। कभी कोई पंक्ति समझ में आ जाती है, कभी विशुद्ध लय के स्वाद में और कभी एकाग्र मन के प्रभाव के रस में आनन्द लेते हैं। आनन्द के कारण आकर्षित हुए काफी समय से प्रतिदिन आ रहे हैं और कई बार चाहते हैं कि पूछा जाए, कि यह प्रतिदिन क्या पढ़ते हो और यदि संभव हो तो इस झन्नाहट छेड़ने वाले रस भरे कलाम को इस रसमग्न व्यक्ति से ले लिया जाए। पर कुछ झिझक, कुछ लज्जा ऐसी है कि साहस नहीं होता। आज सिंह जी पाठ करते गए। पाठ समाप्त हो गया। प्यारे ने गाधी से उठकर धीरे-धीरे अरदास की और मांग की—हां फिर गायन किया—"करि किरपा देवहु हरिनाम।" पांच-सात बार यह कहकर फिर आप ही कहा, "फिरि चड़े दिवसु गुरबाणी गावै॥ बहदिआं उठदिआं हरिनामु धिआवै॥ (हरिनाम धिआवै॥) वाहिगुरू! वाहिगुरू!! जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुरु सिखु गुरु मनि भावै। (वाहिगुरू, वाहिगुरू! वाहिगुरू!!")।

आज काज़ी साहब से रहा न गया और पूछने का सहास बटोर ही लिया। उधर जब बग्गा सिंह ने आंखें खोलीं तो क्या देखता है कि सूर्य काफी चढ़ गया है और चाचा पास खड़ा है और कह रहा है: "जा बग्गा सिंह तू घर चला जा,

मैं दूसरी जोड़ी जोतूंगा और इन्हें चारा खिलाऊंगा। तू बग्गे शेर! जा।" बग्गा सिंह ने चाचा को 'श्री वाहिगुरू जी की फतेह' कही और नाली के किनारे-किनारे चल पड़ा। जब झुंड में से गुजरने लगा, जो काज़ी जी उठ खड़े हुए, "भैया बग्गा सिंह! जवान! ज़रा ठहरना।"

बग्गा सिंह–काज़ी जी! 'वाहिगुरू जी की फतेह'।

काज़ी (मुस्कराकर)–'बाहर जी की फतेह'। भैया किधर जा रहे हो?

बग्गा सिंह–काज़ी जी घर जा रहा हूं।

काज़ी–यदि तनिक रुक जाओ तो दो बातें कर लें।

बग्गा सिंह–करो चाचा जी! सहर्ष करो। यह कहकर बग्गा सिंह पालथी मारकर चबूतरे पर बैठ गया और सामने काज़ी जी बैठ गए।

काज़ी–भैया जी! तुम हर रोज़ इस समय क्या पढ़ते हो?

बग्गा सिंह–तुम तो बुजुर्ग हो, मेरे चाचा के समान, मुझे 'भैया जी' कहकर न पुकारा करो, मुझे अपना बच्चा समझकर ही पुकारा करो मैं आपका बच्चा जो ठहरा।

काज़ी–तू बड़ा आज्ञाकारी है, पर सौम्य! यह कलाम जो तू हर रोज़ पढ़ता है, यही तुझे हमसे बड़ा बना रहा है, सुनकर स्वाद आ जाता है। अब तो जी में आया और मुझसे चुप नहीं रह गया और तेरे से पूछ रहा हूं कि भैया यह क्या कलाम है?

बग्गा सिंह–यह महापुरुष की वाणी है–सुखमनी साहब गुरू अर्जुन साहब जी की।

काज़ी–अच्छा! मैं कहूं, हो तो यह गुरू नानक साहब की वाणी है, पांचवे गुरू नानक की, गुरू अर्जुन साहब की। ठीक, मैं समझ गया। सौम्य! तूने कैसे इस कलाम को याद कर लिया है, उधर कुआं चलता है, इधर तेरे गले में से आबे हयात (अमृत) की नदी बहने लगती है। तू भाग्यशील है। कैसे इतना रस आ जाता है? (चारों ओर देखकर) मैं तड़के उठकर यहां आता हूं और नमाज़ पढ़ लेता हूं, उठता-बैठता हूं, पर मुझे कोई स्वाद नहीं आता।

बग्गा सिंह–हम अपढ़ सीधे-साधे लोग हैं, हमें क्या पता, जी! आप तो दफ्तर पढ़े हो, आप जानो। हमें तो केवल एक वाणी का ही पता है, एक नाम का। एक तो अपने दाता को जानते हैं, जो पूर्ण रूपेण मिश्री का टुकड़ा है, शक्कर, खांड, गुड़ सबसे मीठा।

फरीदा सकर खंडु निवात गुड़
माखिओ मांझा दुधु॥

सभै बसतू मिठीआं
रब न पुजनि तुधु॥२७॥ [सलोक फरीद]

काज़ी–(चकित होकर) हाय, कैसे शक्कर तथा गुड़ की अपेक्षा मीठा लगता है? कैसे बाबा को लगा? तुझे कैसे लगता है?

बग्गा सिंह–क्या नमाज़ के समय तुम्हें मीठा नहीं लगता?

काज़ी–(चारों ओर देखकर)–सच-सच कहूं, पर भाई-चारे में मेरी बुराई मत करना। तू ईश्वर वाला है, मुझे नमाज़ मीठी नहीं लगती।

बग्गा सिंह–फिर तुम वाणी का पाठ करके देख लो, वह वाणी, जिसे मैं पढ़ता हूं।

काज़ी–वाणी का क्या नाम है और कहां से मिलती है?

बग्गा सिंह–सुखमनी साहब! सुखों की मणि। मणियां हीरे-मोती होती हैं। सुखों के स्वादों के हीरे मोती। नहीं नहीं चाचा, मन को सुख देने वाली, हां, यदि तुम कहो तो एक पंक्ति, अथवा तुम कोई हमारी तरह अनजान तो नहीं हो, तुम तो एक पद प्रतिदिन याद कर लो, यदि मेरे से एक पद हर रोज़ कठस्थ कर लो तो, सारी वाणी जुबानी याद हो जाएगी। मैंने तो चाचा एक-एक पंक्ति करके सारी कंठस्थ की थी।

काज़ी (मुस्कराकर)–क्या इसकी लिखित कोई किताब नहीं होती?

बग्गा सिंह–हां होती है, हमारे ग्रंथ साहब में है और कई लोग वहां से लिख लेते हैं। पर ये तो पढ़े-लिखे लोगों की बाते हैं न, मुझ जैसे अपढ़ ने तो एक-एक पंक्ति करके याद की थी, पर देखो चाचा। आखिर जुबानी याद हो ही गई है न। कितना मीठा है, हाय! जी चाहता है कि कसकर गले से लगा लूं, पर क्या करूं? कैसे लगाऊं, चाचा मैं तो सुखमनी के स्वाद में ही खो जाता हूं, हां सच कह रहा हूं।

काज़ी–फिर ला दे कहीं से लिखी हुई।

बग्गा सिंह–अच्छा चाचा! आज पुजारी जी से कहूंगा।

: २ :

ऊपर से अचानक मेहरदीन आ निकला।

मेहरदीन–काज़ी साहब सलाम अलैकुम।

काज़ी–वा अलैकम असलाम, सवेरे-सवेरे किधर से आए?

मेहरदीन–आ गए हम भी कहीं से गन्ना पेलते हुए, आप कहां से आ निकले तड़के ही।

काज़ी–मेहरदीन! कुछ दिनों से फजर (तड़के) की नमाज़ यहां कुएं पर ही आकर पढ़ता हूं, यहां झुंड में चबूतरा है, एकान्त स्थान।

मेहरदीन–तो समाजिदों को फिर क्या ज़रूरत है?

काज़ी–काफी अच्छे-अच्छे लोग हैं मसजिद में जाकर नमाज़ पढ़ने वाले, एक न गया तो कोई बात नहीं।

मेहरदीन–अच्छा यह बात! यदि काज़ियों ने भी नए रास्ते अपना लिए तो मुसलमान कहां जाएंगे? पर फ़तवे तो तुम लोगों को ही देने हैं, तुम पर तो किसी का फतवा नहीं चलता न।

काज़ी–इतनी क्या बात है। क्या किसी ने लिखा है कि घर में नमाज़ न पढ़ो अथवा एकान्त में जाकर न पढ़ो। मसजिद में जाकर नमाज़ पढ़ना अच्छी बात है, पुण्य कार्य है, पर एकान्त में पढ़ना वर्जित तो नहीं।

मेहरदीन–ठीक कहते हो, पर कपासी नमाज़ तो न पढ़ो।

काज़ी–कपासी नमाज़ क्या होती है?

मेहरदीन–एक नौजवान मौलवी हुआ करता था। उसने मसजिद में आकर नमाज़ पढ़ना छोड़ दिया। लोग कहने लगे: मौलवी जी! आपने नमाज़ छोड़ दी है क्या? तो वह कहने लगा, आजकल बाहर कपास के खेत हैं और कपास खिल रही है, कपास के खेतों में जाकर नमाज़ पढ़ता हूं; वहां पर अच्छा जी लगता है। लो मेरे काज़ी जी! तब पता चला जब मौलवी की कपास की छिटकुनियों से पिटाई शुरू हो गई, युवतियों ने मार-मारकर उसे अधमरा कर दिया।

काज़ी–यह क्यों?

मेहरदीन–वह कपास में तो नमाज़ का बहाना करके जाता था। नमाज़ के बाद वह लड़कियों से मिलकर कपास चुनने लगता था। उनके साथ हंसी मज़ाक करना शुरू कर देता था। लड़कियां समझ न सकीं कि मौलवी के मन में क्या है? उन्होंने समझा कि वह काम में उनका हाथ बटा रहा है और हंसी मज़ाक भी हो जाता है। दूसरे मौलवी तो माथे पर बल डाले रखते हैं और हंसकर किसी से बात तक नहीं करते। मौलवी पहर भर सारी युवतियों के साथ हंसता खेलता और कपास भी चुनता। साथ-साथ आंख बचाकर थोड़ी-थोड़ी कपास अपनी तहमद में छिपा लेता। उसने डेढ़ महीने में लगभग दो रज़ाइयों जितनी कपास अपने घर में इकट्ठी कर ली। एक दिन उसकी पत्नी सहेलियों से कह बैठी; हमारा तो जाड़े का प्रबंध हो गया है और मुफ्त में रज़ाइयों के लिए कपास मिल गई है। दो रज़ाइयां बनवा चुकी हूं, अब तो तुलाइयां अभी और बनानी हैं, अल्लाह और भेज देगा। मौलवी की पत्नी की यह बात एक युवती के मन को लगी। उसने सोचा कि बिना खेती के इनके घर में कपास कहां से आ गई। हो न हो कहीं हम ही तो नहीं लुटी जा रहीं। दूसरे दिन उसने सारी बात अपनी सखियों को बता दीं, तो सभी चौकन्नी हो गयीं।

उस दिन जब मुल्ला जी कपास चुनकर चलने लगे तो लड़कियों ने उन्हें घेर लिया–'मुल्ला जी हमने सुना है आप कपासी नमाज़ पढ़ते हैं।'

मुल्ला–'वह क्या होती है?'

लड़कियाँ–कपास के खेत में जाकर नमाज़ पढ़ी और फिर लड़कियों से हंसी-मजाक करने लगे। फिर··और फिर कपास मिल गयी। न कपास को बीजा, न देखभाल की, बस नमाज़ से ही कपास लग गयी।

मुल्ला घबरा गया। बातें बनाकर खिसकने लगा, पर युवतियाँ उसे कब खिसकने देतीं। एक दिलचली ने आगे बढ़कर बाँह पकड़ ली–'यह देखो मुल्ला जी। (कुर्ता हिलाकर) आपकी नमाज़ को कपास लगी हुई है।' फिर सभी ने पकड़ लिया। कुर्ते की बाँहों में, जेबों में कपास भरी हुई थी। मुल्ला जी की सलवार में भी दो जेबें थीं, दोनों में से कपास फूट रही थी। फिर तो युवतियों ने मुल्ला को आड़े हाथों लिया और कहने लगीं–'मुल्ला बूट कपाही दा। बणछटीआं ला ला लाहीदा। ना बीजी दा न वाहीदा। झोल भर भर लाहीदा। मुल्ला बूट कपाही दा। बणछटीआं ला ला लाहिदा।'

लड़कियाँ गा रही थीं, मुल्ला के चारों ओर घूम रही थीं, व्यंग्य कस रही थीं, उसे मार रही थीं। लड़कियों ने उसे मार-मारकर कपास के फल की तरह नीला कर दिया। फिर उसे पकड़ कर गाँव में ले आयीं। तब कपास के खेत में जाकर नमाज़ पढ़ने का रहस्य सभी को मालूम चल गया।

काजी–खैर, मुझे मालूम नहीं था कि तुम्हारे हृदय में मेरे लिए कितना सम्मान है। आदमी गलती का पुतला है। पर वह समझता है कि सभी उसका सम्मान करते हैं।

मेहर–'नाराज हो गये काजी साहिब?' मैं तो वैसे ही चुहल कर रहा था।

काजी–नमाज़ के साथ चुहल? खुदावन्द करीम के रास्ते के साथ चुहल? मैं तो हुआ कपासी का मुल्ला, हूं न, पर अल्लाह से डरो जिसकी नमाज़ है।

मेहर–काजी साहिब। फिर सच पूछना चाहते हो। आप तो नमाज़ का बहाना करके काफिरों का कलाम सुनते हो और काफिरों से कहते हो किसी को कहना नहीं। आप ही तो कहते हो नमाज़ तो फीका सरकंडा है, बेस्वाद और तुम्हारी कलाम आबेहयात है। अब बोलो काजी साहिब··?

काजी–(घबरा कर, त्यौरी बदल कर, होठों को काटते हुए, पर खुद को सम्भालकर) इसमें क्या है? वह तो मेरी कमी है, नमाज़ में तो कमी नहीं, नमाज़ को तो मैंने बुरा कभी नहीं कहा। मैं अब भी कहता हूं और सब के सामने कहने को तैयार हूं कि मुझे नमाज़ मे वह रस नहीं आता जो सिख को अपनी बाणी में आता है। यह मेरी कमी है। मैं अपनी कमी को स्वीकार करता हूं, क्या यह

भी गुनाह है? सच बोलना और अल्लाह के नाम की आड़ में कपास चुराना क्या एक बात है?

यह डाँट-डपट सुनकर मेहर सहम गया, लज्जित हुआ, पर फिर कहने लगा—काजी साहिब! भलाई संसार में फलती नहीं। हमने तो आपके भले के लिए कहा है। आप आगे ही बदनाम हैं। आप तो न्याय की कुर्सी पर जब बैठते हो तो हिन्दू-मुसलमानों को एक ही तराजू से तोलते हो। आप मुसलमानों का पक्ष नहीं लेते। इस बात से इलाके के सभी लोग नाराज हैं और ऊपर से सरकार भी खुश नहीं। आपको मालूम ही है कि जिस काजी ने हिन्दू-हिन्दू के झगड़े को पूरा तोला और मोमन-मोमन के झगड़े में अदल (फैसला) किया वह ही हजरत (पातशाह) के मन को भाया और जिसने हिन्दु-मुसलमानों के बीच के झगड़े में अदल (न्याय) किया और मोमन का पक्ष नहीं लिया उसे हजरत (पातशाह) पसन्द नहीं करते और आप यही भूल करके लोगों में बदनाम हो गये हैं और ऊपर से कहते हो कि कहीं कुफर का फतवा न लग जाए।

काजी—काजी ने तो न्याय करना है। जुल्म और शरह का तोल करके फतवा दे देना है। इसका अपराधी के धर्म और कौम से कोई सम्बन्ध नहीं।

मेहर—हिन्दुओं की गिनती अधिक है, मोमन कम हैं, यदि आप मोमनों का पक्ष नहीं लेंगे तो उनका दबदबा कैसे रहेगा, हजरत राज्य कैसे करेंगे? डर ही तो राज्य की जड़ है, आप तो उसे ही काट रहे हैं।

काजी—न्याय ही तो वह आधार है जो प्रजा को राजा के साथ, रैयत (प्रजा) को पातशाह के साथ नौकर को हाकिम के साथ जोड़ता है। प्रजा और पातशाह के बीच यह प्यार भरा सम्बन्ध ही राज्य की पक्की नींव है। मैं उसी नींव को मजबूत कर रहा हूं। आप और आपके सलाहकार तो उसे खोखला कर रहे हैं। मुझे बताओ अल्लाह पाक ने क्या कहीं यह कहा है कि मैं अन्याय से खुश होता हूं।

मेहर—(खिसिया कर) काजी साहिब! हमने तो आपके भले की कही है। जैसा समय चल रहा है वैसा ही कहा है। आप भी समय के साथ चलें, समय से अलग होकर नहीं चलो। चलोगे तो दुख पाओगे। (हंसते हुए) न्याय मनुष्य और मनुष्य के बीच में किया जाता है। मनुष्य वही है जो अल्लाह में विश्वास रखता है। ये सभी मूर्तिपूजक हैवान हैं, उनकी तो गर्दन मरोड़ देनी चाहिए। न्याय करना है तो हैवानों को मत मारा करो, मांस न खाया करो, और बकरा हलाल करने वाले को फांसी पर चढ़ा दिया करो। जानवर और इन्सान के झगड़े में न्याय क्या? न्याय वही है जो इन्सान को ऊंचा रखे, जानवरों को नहीं। (इतना कह मेहरदीन हंसता हुआ जल्दी से गाँव में चला गया)।

काजी—यह बात शरह में लिखी हुई नहीं है।

: ३ :

आनन्दपुर सुन्दर और सुहावना नगर है। बग्गा सिंह एक सिंह जी को कह रहा है।

बग्गा सिंह–गुरू आप पर कृपा करें, गुरमुख प्यारे जी! आपके आगे एक प्रार्थना है।

आलम सिंह–बग्गा सिंह जी कहो।

बग्गा सिंह–मेरे साथ हमारे क्षेत्र का काज़ी आया है। आपने सलार दीन काजी के बारे में सुना होगा।

आलम सिंह–नाम तो सुना है पर उसे देखा नहीं।

बग्गा सिंह–वही है बाबा जी। बहुत भला है, न्याय करता है, निष्पक्ष है, न्याय में गलती नहीं करता, पर तुर्क़ उससे नाराज हैं। क़हते हैं कि तुर्कों का पक्ष क्यों नहीं लेते? वह कहता है–पक्ष लेना तो काजी का दोष है। बाबा जी जिस दिन से काजी ने मुझसे सुखमनी का पाठ सुना है उसी दिन से वह मेरे पीछे पड़ा हुआ है–कहता है मुझे अपने गुरू के पास ले चल। मैंने कहा–बग्गा तो अनपढ़ है, बैल है। पर बाबा जी, इससे भी पीछा नहीं छूटा। मुल्ला बुरा भला कहते रहे, पर वह मुझे आप तक खींच ही लाया। बग्गा उसे सतिगुरू के दरबार में ले आया है। अब बताओ बाबा जी, बग्गा सिंह की भला क्या गिनती। कहां मेरा सच्चा पातशाह और कहां मैं अनपढ़ बैल। बाबा जी आप तो सतिगुरू के बहुत करीब हैं। हमारे काजी जी को गुरू जी के पास ले जाओ। आप ही कोई उपाय करें जिससे नाम और वाणी के साथ उसका मन लग जाये। अभी तो सुनता है, मुग्ध होता है। पढ़ा-लिखा है, जल्दी समझ जायेगा। आप उसे कोई अच्छी बात बतायें जिससे उसका मन नाम में लग जाये और उसे शीतलता मिले।

आलम सिंह–मेरे बच्चे! तुम भोले और साफ दिल वाले हो। पढ़े-लिखे लोगों के मन में भ्रम होता है इसीलिए उनका मन टिकता नहीं। वे हर बात पर अविश्वास व्यक्त करते हैं तथा साथ ही उनका मन अनेक सोच-विचारों में भटकता रहता है। अच्छा बच्चा! कल दीवान में आ जाना। दीवान के बाद पातशाह के आगे प्रार्थना करना। वे तो दीन दयाल हैं, बड़े-छोटे, शिक्षित-अशिक्षित सभी उनके द्वार पर स्थान पाते हैं, आप प्रार्थना करना, वे प्यार से सुनेंगे। यदि तुम्हें कोई संकोच है तो मैं ही तुम्हारी तरफ से प्रार्थना कर दूंगा। पहले तो वे खुद ही पहचान कर बुला लेंगे क्योंकि वे सभी के मन की बात को जानने वाले हैं।

: ४ :

खालसे बे कीना गुरु गोबिंद सिंह,
हक हक आईना गुरु गोबिंद सिंह,

हक हक अंदेश गुरु गोबिंद सिंह,
बादशाह दरवेश गुरु गोबिंद सिंह,
कादरे हर कार गुरु गोबिंद सिंह,
बे कसां रा यार गुरु गोबिंद सिंह, (भाई नन्दलाल)

इसी सच्चे पातशाह का दरबार है। आशा की वार का भोग पड़ा है। संगत विदा हो रही है। पर काजी सलारदीन अभी पीछे खड़ा है। वह कुछ पूछना चाहता है।

सतिगुरू जी–काजी साहिब! पास आ जाओ। आलम सिंह जी! ले आओ अपने मित्र को। कहां है अनपढ़ बग्गा सिंह जो सुखमनी का सुन्दर पाठ करते हुए अमृत की धारा बरसाता है।

आलम सिंह–पातशाह! दोनों हाजिर हैं।

(तीनों आगे बढ़कर माथा टेकते हैं)।

गुरू जी–बग्गा सिंह! देखा है सुखमनी का रस! है न 'सुखमनी सुख अमृत प्रभु नाम। भगत जना के मनि विस्राम।' सुखों की मणि है बाणी। मन को सुख देने वाली। शीतलता प्रदान करने वाली। सतिगुरू अर्जुन देव का ईश्वरीय-दिल, अकाल पुरुष का निजी ज्ञान, और पूर्ण रस। सुखमनी कहती है–'मेरा अमृत रस पी' और पीओ 'नाम अमृत' बग्गा सिंह।

बग्गा सिंह–(चरणों को कसकर आलिंगन में लेते हुए।) आपकी शरण में आकर मुझ जैसे गधों में भी परमात्मा से लगाव पैदा हुआ है। हृदय शीतल हुआ मुझे अपने कोमल और मीठे चरण दे दो। जो मेरे कलेजे में चले जाएं और वहीं गड़े रहें और बग्गा इन्हीं चरणों से चिपटा रहे–

मति पूरी अमृत जाकी दृष्टि,
दरसनु पेखत उधरत स्रिसटि,
चरन कमल जाके अनूप,
सफल दरसनु सुन्दर हरि रूप॥

काजी ने उस समय बग्गे का 'प्यारा चेहरा' देखा और सोचा–काश! मैं पढ़ा-लिखा न होता। काश! मां मुझे भी बैल ही रखती। मुझे तो समझ ने और समझ के पुत्र शक ने ही खा लिया।

गुरू जी–जहालत या अज्ञान दवा नहीं है। ईमान दवा है। ईमान रोशनी देता है और विद्वान के मन को सान्त्वना। अज्ञान और ज्ञान में जो त्रुटियाँ या कमियाँ हैं ईमान उन्हें दूर करता है।

काजी (चौंककर) वाह वाह साहिब! वाह वाह साहिब कमाल! खूब!!

१. जबहि भीर बहु हटि कर गई। तब बूझन की चिन महि भई॥२॥ (सू: प्रकाश)

गुरू जी–क्यों आलम सिंह! विद्या सुखदायी है कि दुखदायी?

आलम सिंह–आपके चरणों से प्रीति हो तो सुखदायी नहीं तो विद्या गर्व और अभिमान का किला है जो गर्दन में घुस कर उसे लकड़ी की तरह बना देता है या विद्या एक कांटा है जो दिल में चुभता रहता है, खुद को भी दुख देता है तथा औरों को भी। पर जब तुम्हारे प्यार के धागे में विद्या पिरो दी जाती है तो चिराग बन जाती है। दाता! तेरे प्रेम बिना सभी गुण मकई के बूर हैं जिनमें दाने नहीं।

गुरू जी–काजी जी! सुनाओ न्याय करते हो या अपने से पक्षपात करते हो।

बग्गा सिंह–मेरे दयालु पातशाह! आप तो सभी कुछ जानते हैं।

गुरू जी–मेरे बग्गा शेर तुम ही बताओ।

बग्गा सिंह–बग्गा सिंह तो कुछ देखी हुई तथा कुछ सुनी सुनायी बतायेगा। मेरे अति मीठे पातशाह (कसकर चरणों को छाती से लगा लेता है।) आप तो अन्दर की भी सभी बातें जानते हैं।

गुरू जी–(नयन मूंदते हुए)–धन्य साध संगत।

बग्गा सिंह–(चरणों को अपनी गोद में रखकर धीरे-धीरे प्यार से सहलाते हुए) काजी बहुत ही भला है। हिन्दु-मुसलमान सभी का न्याय करता है कौड़ी या पैसे की भी रिश्वत नहीं लेता। न तो चुगली सुनता है और न सिफारिश। बस रूखा-सूखा खाकर गुजारा करता है। मुल्ले-मुख्ती तथा अन्य पढ़े-लिखे लोग इसीलिए इससे नाराज हैं। कहते हैं कि तुर्कों का पक्ष क्यों नहीं लेता।

गुरू जी–(मुस्कराकर) वाह काजी साहिब। काजी का यही कर्तव्य है, काजी का यही धर्म है।

काजी–मैं तो गुनाहगार हूं। न्याय करने का अहंकारी हूं। तेरे इस अनपढ़ मोती बग्गा सिंह का भला हो जिसने मुझे बाणी के रस की चाट लगायी है। मैं आपके द्वार रस की भिक्षा मांगने आया था। पर देखो दाता! इस इल्म की जहालत देखो। इस विद्या का अंधकार देखो। मेरे रोशन मन का अन्धेरा कि आपके दरबार में बैठे हुए भी मेरा काफिर मन शक के घर चला जाता है। जिसके मन में शक जन्म ले वही काफिर है–'हर कि शक्के आरद काफिर गरदद। (जो शक करे वह काफिर हो जाता है।) मैं एकता के समुद्र में पहुंचकर भी काफिर हो गया हूं। शिक्षा का यही दोष है।

गुरू जी–कोई बात नहीं काजी साहिब। शक को दूर कर लो। शरीर में चुभ रहे कांटे को निकाल देने से ही नींद आती है। मन में चुभ रहे कांटे को दूर करने से ही ईमान जन्म लेता है।

काजी–क्षमा प्रार्थी हूं। मैं आपको वर देते हुए देखकर सोच रहा था कि यदि परमात्मा ने पहले से ही किस्मत लिख दी है तो ये कौन हैं देने वाले? यदि सभी

ने अपने पिछले कर्मों का फल भोगना है तो ये कौन हैं उन्हें बदलने वाले। फिर कुफ्र मुझे यहां ले जाता रहा है कि इस तरह यह सब कुछ आप क्यों कर रहे हैं?'

गुरू जी सुनकर मुस्कराये और कहने लगे–काजी जी खुद को कोसो नहीं और इधर ध्यान दो और एक बात समझ लो, आपका संशय दूर हो जायेगा। यह कहकर गुरू जी ने दवात और कागज मंगवाया और अपने हाथ से मोहर उतार कर काजी को दिखायी–देखो काजी साहिब! यह क्या है।

काजी–मोहर छाप है।

गुरू जी–इसमें कुछ अक्षर हैं, पर किस हालत में।

काजी–उल्टे हैं।

तब गुरू जी ने स्याही लगाकर मोहर कागज पर लगा दी और काजी साहिब से पूछा–काजी साहिब! इस लगी हुई मोहर के अक्षर वही हैं या और।

काजी–वही हैं, पर सीधे हो गए हैं।

गुरू जी–जब कजा (मौत) की मोहर तुम्हारे हाथ में हो तो उसका क्या कोई सार होता है।

काजी–नहीं जी! जब लग जाती है तभी पातशाही हुकुम बन जाती है।

गुरू जी–कर्म या किस्मत माथे पर लिखी हुई है। कर्मों के अनुसार या परमात्मा की कृपा से जब सिर झुकता है और परमात्मा के प्यार का आशीर्वाद पाता है तो उल्टे सीधे हो जाते हैं–

काजी सुन सुन भइउ आनन्द। ठाढा भइउ हाथ द्वै बंदि॥३॥
झुक-झुक करै सलाम अगारी। गुरु तारीफ बिलन्द उचारी। (सू० प्र०)

गुरू जी–क्यों बग्गा सिंह?

बग्गा सिंह–ठीक है जी! काजी जी का संदेह दूर हो गया। मुझ बैल के लिए तो वहां भी मोहर-छाप ढालने वाले आप ही थे। आप, आप ही अक्षर लिखने वाले थे। स्याही लगाकर उल्टे को सीधा करने वाले भी आप ही हैं। हम क्या और हमारे कर्म क्या? क्या अच्छे और क्या बुरे। अच्छे कर्म किए तो मुट्ठी भर, बुरे किए तो अंजली भर। हम तो गिनती में कहीं नहीं आते। आपकी कृपा होनी चाहिए। आपकी कृपा की नदी बहती है। इस कृपा की नदी में हमारी सभी बुराइयां बह जाती हैं। (आलम सिंह की तरफ देखकर) बाबा जी! मुझे सुखमनी की दात किन कर्मों से मिली है। 'बाबा जी कितना स्वाद है सुखमनी में' मेरे कर्म और मेरी किसी करतूत का ही यह परिणाम है! है तो यह वही रस जो आप बताते हैं–नाम की घंटी बजती है। कहीं हृदय में ही यह रस है, या सिर में, पर यह है, एक मूर्ति सी सामने प्रकट होती है जो आनन्दित कर देती है। क्यों बाबा जी! यह मेरे किस किए हुए कर्म, संवारे, बनाये या उगाये हुए कर्मों का फल

है जो मैं सतिगुरू के चरणों में बंध गया। छोटी बातें, कर्मों में खेत जोतना, पशु चराने, उन्हें नहलाना, खिलाना-पिलाना, सेवा करते हुए, पशुओं के साथ पशु हो जाना। सच बग्गा तो बैल ही है। पर देखो, खेत जोतते स्वाद से झूमता है। पातशाह को गद्दी पर बैठकर जो सुख मिलता होगा, हमने कोई देखा तो नहीं। पर इस सुख को तो देखा है जो आप पर घटित हो रहा है। आप जैसा मीठा और कौन है? (कल्ग़ीधर पातशाह की तरफ देखते हुए।) क्यों जी? मोहरों के मालिक और पालक जी। बताओ न। एक बार अपने मुंह से भी तो कहो न। आप ही हो न सब कुछ करने वाले–

आपहि कउतक करै अनंद चोज॥ आपहि रस भोगन निरजोग॥
जिसु भावै तिसु आपन नाइ लावै। जिसु भावै तिसु खेल खिलावै॥

हां, यह आपने मुहरे लगायीं। बग्गे के कर्म बैल के, आपने आकर लगा दी छाप। हां जी।

मानस जतन करत बहु भाति। तिसके करतब बिरथे जाति॥

ठीक है जी, ठीक हैं। आपने मुहर लगाकर उल्टे को सीधा कर दिया, प्रकाशित किया। ठीक है। सच है। वाक याद आ रहा है–

उति पोति रविआ रूप रंग॥
भए प्रगास साध के संग॥
(चरणों को आलिंगन में लेते हुए)
अवरि उपाव सभि मीत बिसारहु॥
चरन कमल रिद महि उरि धारहु॥
(चरणों को बाँहों में और कसते हुए)।
चरन कमल रिद महि उरि धारहु॥
करन कारन सो प्रभु समरथु॥
दि्ड करि गहहु नामु हरि वथु॥

हां चरणों! मेरे हृदय में धंस जाओ। फिर मैंने क्या करना और काजी ने क्या करना? करने और करवाने वाले, वहां और यहां यही प्रभु महाराज हैं। हाय! बस अन्दर के कानों में नाम बस जाये और कस कर गांठ पड़ जाये (नउ निधि नामु निधान हरि मैं पले बंधा छिकि जीउ। (सिरी रागु महला-९)।

'चरन कमल जाके अनूप, चरन कमल जाके अनूप।'

बग्गा नयन मूंद यह कहता हुआ चरणों के साथ लगकर चुप हो गया।

काजी–दाता जी! सभी कुछ देने वाले। मुझे बग्गे शेर वाली सादगी दो। इस सादगी के तख्ते पर आपके नाम की मुहर लग जाए। आपके नाम में ही मेरा मन लगा रहे।

गुरू जी—काजी! शिक्षित लोगों के दिल की हैरानी और शक की भागम-दौड़ को तसल्ली मिले तब ही ठीक है। यदि तुम्हारे मन में कोई संशय है तो उसे आज दूर कर लो। भाई आलम सिंह जी। इन्हें उस महान दाता की कथा सुना दो जिन्होंने गर्म तवे पर समाधि लगायी थी।

आलम सिंह—काजी जी हमारे श्री गुरू अर्जुन देव जी, जिनके प्रत्यक्ष रूप में आप (गुरू जी की ओर इशारा करके) विराजमान हैं, पांचवें गुरू हुए हैं। जिनके हिमालय से भी शीतल दिल से अति निर्मल स्त्रोत सुखमनी का निकला। सुखमनी सदा लोगों के हृदय को शीतल करती रहेगी। हां, जिन्होंने अपनी आत्मा के अमृत कुण्ड में से यह अमृत की सरिता बहायी और सदा के लिए प्रवाह में डाल दी। वहां भी ऐसे प्रश्नों का उत्तर बढ़े सुन्दर ढंग से दिया गया है—

मंडी के राजा पंचम पातशाह के दर्शनों के लिए आये हुए थे। उन्हें एक दिन संशय हुआ कि—

'लेख न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि।'

यदि जो लिखा है वही होता है तो सतिगुरू बीच में क्या कर सकते हैं। इनकी शरण लेने और आशीर्वाद लेने का फिर क्या अर्थ है। जब यह संशय विदित हुआ तो कौतुकहार सतिगुरू ने एक खेल रचा दिया। रात को जब राजा सोया तो उसने एक सपना देखा कि राजभोग कर बूढ़ा होकर वह मर गया है और कर्मों के फलस्वरूप उसे चंडाल के घर जन्म मिला है। वहां वह बड़ा हुआ, विवाह हुआ, पुत्र-पुत्रियाँ हुई काम-काज करना तथा दुख-पूर्ण जीवन बिता कर वह मर गया। जब जाग खुली तो सारा सपना था। पर राजा बहुत उदास हुआ। दूसरे दिन सतिगुरू ने कहला भेजा कि यदि शिकार पर जाओ तो मैं भी साथ चलूंगा। जब राजा शिकार के लिए गया तो सतिगुरू भी साथ गये। अमृतसर के पास ही गुरू की गेड़ (जिसे अब गुरू का बाग कहते हैं) हैं, वे वहाँ पहुंच गये। राजा शिकार के पीछे कुछ देर निकल गया, सतिगुरू जी थोड़ा पीछे रह गये। वे एक जगह पर ठहर गये। थककर राजा भी घोड़े से उतर गया। घोड़े को एक पेड़ के साथ बाँधकर पानी की चिंता करने लगा इतने में चूहड़ों के बच्चों ने जो पास ही खेल रहे थे, देखकर पहचान लिया कि यह तो हमारा बापू है। दौड़कर गये और अपने सभी परिवार वालों को बुला लाये—बताया कि हमारा बापू आ गया है। आकर सभी ने पहचान लिया कि यह तो वही है जो मर गया था। हाँ, यह मरा नहीं होगा, बेहोशी का बहाना कर खिसक गया होगा और कहीं जाकर बड़ा साहूकार बन गया होगा। सभी ने उसे घेर लिया। गाँव के पंचों को बुलाया गया। उन्होंने भी पहचान लिया कि यह हमारा चूहड़ा ही है—काम-काज से डरकर भाग गया। अब इसे जाने मत दो और इसका घोड़ा तथा तलवार छीन लो। यह कौतुक देखकर राजा के चेहरे पर एक रंग आ रहा था तो एक जा रहा था। काजी जी! राजा कितना व्याकुल हुआ होगा यह आप

ही सोच लो। एक हिन्दू के लिए चूहड़ों के बीच में रहना कितना भयावह है। उसे उन्हीं के साथ रहना और खाना पीना पड़ेगा। वह इस कैद को कैसे सहेगा और कैसे काटेगा वह व्याकुल हो रहा था और उन लोगों से लड़-झगड़ रहा था कि तभी सतिगुरू जी आ गये। सभी दौड़कर आये और दण्डवत प्रणाम कर कहने लगे—सच्चे पातशाह जी! आप अच्छे समय पर आ गये। न्याय कीजिए। आप दीन-दुनिया के मालिक हैं। जो हुकुम करोगे, हम सभी मान लेंगे। यह हमारा आदमी है। कहीं जाकर अमीर हो गया है। कहता है मैं राजा हूँ—चूहड़ा नही हूँ। बाल-बच्चे रोने लगे—सतिगुरू जी! हमारा बापू हमें ले दो। स्त्री कहने लगी पति के होते हुए मैं उसके बिना क्यों रहूँ? राजा ने कहा—हे दाता जी! मुझे इस नरक, इस विपत्ति से मुक्त कराओ। तब सतिगुरू ने सभी को धीरज देते हुए कहा—भाई, यह बताओ कि तुम्हारा आदमी मर गया था या नहीं।

चूहड़े—जी हाँ, मर गया था, पर वह इसका बहाना था।

गुरू जी—आपने उसे जलाया था या दफन किया था।

चूहड़े—दफन किया था।

गुरू जी—यदि यह वही है और कब्र में से भाग गया है तो कब्र खाली होनी चाहिए। यदि कहो तो चलकर कब्र देख लें।

सभी ने कहा—हाँ जी, जरूर देखो।

सभी वहाँ गये, कब्र को खोदा गया। राजा का हृदय धड़क रहा था कि पता नहीं क्या होगा। पर कब्र में से मुर्दा निकल पड़ा। उसकी और राजे की शक्ल आपस में मिलती थी। जब पंचों तथा घर वालों ने मुर्दे को अपनी आँखों से देख लिया तो उन्हें विश्वास हो गया कि यह कोई और आदमी है। केवल इसकी सूरत मिलती है। इस तरह की तसल्ली करा कर सतिगुरू ने राजा को मुक्त कराया उस समय गुरू जी ने कहा—**'लेखि न मिटई हे सखी जो लिखिया करतारि।'**

हैरान-परेशान राजा डेरे पर लौट आया। रात भी विस्मय में बीती। दूसरे दिन सतिगुरू के दरबार में पहुंचा तो सतिगुरू ने फिर वही वाक कहा—

'लेख न मिटई हे सखी जो लिखिया करतारि।'

राजा अब समझ गया कि यह कौतुक तो मेरे प्रश्न का उत्तर था। हाथ जोड़कर कहने लगा। आपने तो इस समय प्रत्यक्ष रूप से लेख को मिटाकर दिखा दिया है।

गुरू अर्जुन देव जी बोले—नहीं, लेख तो तुमने भोग लिया है। तुम्हारे कर्म इतने बुरे हैं कि तुमने चूहड़े के घर जन्म लेना था और दुखों-कष्टों को भोगना था, पर एक पूरे जन्म की जगह वह सपने में कुछ पलों में ही बीत गया है। यह प्रताप है—"शरण प्राप्ति होके नाम जपने का। सूली की जगह पर काँटा हो जाता है।' जब हृदय में निष्छल नाम प्रवेश करता है तब नाम 'कर्म जाल' की श्रेणी को पार करा कर हमें कर्मखंड में ले जाता है, फजल में, परमात्मा की कृपा में।

जाते-जाते कर्म हमें झिझोड़ कर मिट जाते हैं। सूली को काँटा कर देने और प्रत्यक्ष को स्वप्न का रूप दे देने का सामर्थ्य सतिगुरू में है।

काजी जी! इसी बात पर गुरू घर में घटित एक और साखी भी है। किसी नगर के बाहर गुरू नानक देव जी पहुंचे। उस नगर में दो मित्र रहते थे। एक तो गुरू के दर्शनों के लिए आने लग पड़ा और सेवा में जुट गया। उस पर गुरू जी की कृपा हुई। वह सुखी हो गया। दूसरा कुसंगति में था, बुरे कर्म करता था। एक दिन कुसंगति वाला अपने मित्र से कहने लगा कि तुम जाओ सत्संग में, मैं जाता हूं कुसंगति में, सुबह जो पहले लौटे वह रास्ते में बैठकर दूसरे की प्रतीक्षा करे। फिर आपस में विचार करेंगे कि दोनों में से सुखी कौन लौटा है, सो, दोनों ने ऐसे किया। परमेश्वर ने ऐसा किया कि कुसंगी पहले लौट आया और एक पेड़ के नीचे बैठकर अपने मित्र की प्रतीक्षा करने लगा। खाली बैठा-बैठा मिट्टी कुरेदने लगा। कुरेदते कुरेदते उसे एक मुहर मिली, फिर तो वह जमीन को खोदने लगा। उसने एक बर्तन देखा, पर वह कोयलों से भरा हुआ था।

उसने इधर-उधर और खोदा पर उसे और कुछ नहीं मिला। इतने में दूसरा मित्र भी आ गया। वह पैर से लंगड़ा रहा था। तब कुसंगी ने पूछा-देर से क्यों आये हो। सत्संगी ने कहा-भैया मेरे पैर में कांटा चुभ गया था उसे निकालने में और दर्द के कारण धीरे-धीरे चलने से देर हो गयी।' तब कुसंगी ने कहा देखो। मैंने सारी रात गुलछर्रे उड़ाये, मौज मस्ती मनायी और सुबह मुझे मिली है यह मुहर। तुमने सारी रात सेवा की, भजन किया और तुम्हें चुभा कांटा। अब तुम्ही बताओ कौन सा रास्ता अच्छा है।' दोनों थोड़ी देर झगड़ते रहे, फिर न्याय के लिए सतिगुरू के पास आये। सतिगुरू श्री गुरू नानक देव जी ने कहा-'हे पुरुष! तेरे कर्मों में मोहरों से भरा बर्तन लिखा हुआ था, पर जैसे-जैसे तूने कुसंग किया वे कोयला होती चली गयीं। इसके बुरे कर्मों के कारण इसकी किस्मत में फाँसी लिखी थी, परन्तु सत्संगति में आने से वह कम होते-होते काँटा रह गयी-सूली से शूल हो गयी।' तब कुसंगी को समझ आयी, चरणों में गिर पड़ा और बुरा रास्ता छोड़कर नाम में लग गया। काजी जी इस साखी का प्रयोजन भी यही है कि जीव कर्म को करने वाला है। शरीर धारण करने से पहले जीव को बांधने वाला उसका कोई कर्म नहीं था। काजी जी! कर्म अनादि और अनन्त नहीं-**करम बध तुम ज़ीउ कहत हो करमहि किनि जीउ दीनु रे॥** (गंड कबीर जी-३) **'जब कछु न सीउ तब किआ करता कवन करम करि आइआ॥** (सूही महला ५-५३) जीव शरीर धारण करके कर्म करता है इसलिए कर्मों का आदि है, जिसका आदि है उसका अंत भी होता है। जिसका आदि अंत है वह कर्म के अधीन है। जो काल अधीन है उसका समय कम या अधिक हो सकता है। नहीं तो काजी जी! जब जीव पहले शरीर रूप में आया किस कर्म की सजा या फल के रूप में आया था। देह रहित ने कौन से कर्म थे कर्म तो जीव ने देह-धारण करके ही किये।

(यहाँ जीव का भाव निर्मल जीव आत्मा से है)

काजी–आप ठीक कहते हैं। पर यदि पहले कर्म नहीं, परमात्मा का हुकुम है तो.....

आलम सिंह–सतिगुरू जी कह चुके हैं जो परमात्मा ने लिखा है सो ठीक है। उसी परमात्मा में रचे, उसी का रूप साहिब जी सामने बैठे हैं–जो उल्टे को सीधा कर देते हैं।

काजी–वह कैसे?

आलम सिंह–दिल्ली में एक बार गुरू नानक देव जी ने मरे हुए हाथी को हाथीवान पर दया दिखाते हुए जिंदा कर दिया था तभी लोधी बादशाह आ गया और कहने लगा–हाथी फिर मर जाये। तब सतिगुरू ने कहा–'मर जायेगा'। जब हाथी मर गया तो लोधी ने कहा इसे फिर जीवित करो। तब सतिगुरू ने कहा फकीर परमात्मा रूपी अग्नि में बैठकर अग्निरूप हो जाते हैं। वह परमात्मा के द्वार तक पहुंच जाता है। पर कर्म उसे वहां भी नहीं छोड़ते। यदि अग्नि में से तेजी से हाथ निकाल लो तो हाथ सही सलामत निकल जाता है, पर आग से लाल हुए लोहे को छूने से हाथ सलामत नहीं रह सकता। (पुरातन जन्म साखी) यहाँ भी यही उपदेश है कि हरि के नाम में रंगे गुरू कर्मों की लकड़ी को जला सकते हैं। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में वाक है, वाहिगुरू जी कहते हैं–

मेरी बांधी भगतु छुडावै बांधे भगतु न छूटे मोहि॥
एक समै मोकउ गहि बाँधे तऊ फुनि मो पै जबाबु न होइ।

बग्गा सिंह–काजी जी! हिसाब-किताब लेन-देन तो बही-खाते हैं। हम जाट चाहते हैं कि साहूकारों के बही-खाते किसी तरह जल जाएँ। कई बार जमींदार साहूकारों के घरों को आग लगा देते हैं जिससे क़ी बही खाते जल जाएँ। क्या तुम इन संशयों के दफ्तर को जलाना नहीं चाहते? काजी जो हुए (चुटकी मार कर फिर सहमकर) उन लेखों-हिसाबों को जला दो, नाम दान माँगो और उसका स्वाद चखो।

काजी–वाह! वाह! बग्गा सिंह। तुम वास्तव में दाता हो। (गुरू जी की तरफ देखते हुए) दाता जी की कृपा हो। मैं भूला-भटका हूं। कुमार्ग पर पड़ा हूं। मन कुमार्ग की ओर ही जाता है। ठौर ढूंढ-ढूंढ कर खो जाता है। मेरी कहीं ठौर नहीं। न आसमान में न जमीन पर, न जल में न पवन में, अपने चरणों में मुझे स्थान दो। ठौर रहित को ठोर दे दो।

गुरू जी–लोका मत को फकडि पाइ। लख मड़िआ करि इकट्ठे एक रति ले भाहि।

बग्गा सिंह–काजी जी, आपने सुना हजारों मन लकड़ी के ढेर को एक रत्ती आग या बिजली का एक स्पर्श जलाकर राख कर देता है। क्या हम और क्या हमारे कर्म, छोटी-सी हमारी जिंदगी गिनती के हमारे कर्म पर कृपा अपार। काजी

जी! गिनती को असंख्य डुबो देते हैं। शरण लो तो स्पर्श से ही जल उठते हैं, चाहे कर्म कम हों या अधिक। कृपा से सूली शूल में बदल जाती है हाथ की बरकत से उल्टे सीधे हो जाते हैं। 'से नर काल फास ते बाचे जौ हरि सरणि सिधाए' शरण में जाए। काजी जी शरण! शरण!! शरण!!!

सलारदीन का मन सिदक के घर में आ गया। हाँ, इतमीनान में आ गया, ऊंचा हो गया, फिर द्रवित हुआ। फिर सतिगुरू उसे ज्योति-स्वरूप नजर आये। अब काजी गुरू के चरणों में शरण लेने के लिए चरणों पर गिर पड़ा। बग्गा सिंह ने अपनी गोद से सतिगुरू के चरणों को काजी की गोद में रख दिया। काजी ने छाती के साथ लगाकर कस लिए। सुख का स्पन्दन उसने सारे शरीर में अनुभव किया। रोम-रोम से वाहिगुरू-वाहिगुरू उच्चरित हुआ। सारे शरीर में स्वाद भर गया। ऐसे लगा कि काजी जी रस-रूप हो गया है। पहले वह बग्गा सिंह के रस से सुखी होता था, आज वह खुद रस-रूप हो गया। वह समझ गया कि रब का नाम रग (परमात्मा का) प्रेम है, रब का प्रेम आत्मरस है, इलाही सरूर है, शेष सभी पदार्थ इस प्रेम मण्डल से बाहर हैं। जब उसे यह रस मिला तो शेष सभी रस और कुरस हिसाब-किताब बाहर रह गये। गुरू जी के चरणों से चिपटा काजी प्रेम रस को भरपेट पीता रहा, उसके दिल का प्याला भर गया, उसका अस्तित्व (आपा) उसी में डूब गया। बरकत वाला, कृपा वाला हाथ उसके सिर पर था और वाह-वाह का रंग छा रहा था।

हाँ, यही कृपा वाला हाथ उन सिरों पर टिका रहे, सौभाग्यशाली सिरों पर, जिन्हें यह दात नसीब हुई है। जिन्हें नहीं हुई उसके लिए अरदास (प्रार्थना) करो कि उनके, जगत के, हमारे, सिरों पर यह कृपा का हाथ सदा टिका रहे। हमारे दिलों में नाम का स्पन्दन तथा नाम के रस का आनन्द भरा रहे। हाँ हाँ–

इह हरि रसु पावै जनु कोइ।
अमृत पीवै अमरु सो होइ॥
उस पुरख का नाही कदे बिनास।
जाके मन प्रगटे गुनतास॥
आठ पहर हरि का नामु लेइ।
सच उपदेशु सेवक कऊ देइ॥
मोह माइआ कै संगि न लेपु।
मन महि राखै हरि हरि एकु॥
अंधकार दीपक परगासे॥
नानक भरम मोह दुख तह ते नासे॥६॥

धन्य गुरू साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह

❑ ❑

४६ सुन्दर सुन्दर दूला सिंह जी

: १ :

(वणजारा सिंह)

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी दीवान में बैठे हैं। एक प्रेमी सिंह ने अरदास की।

सिख–सच्चे पातशाह! दीन-दुनिया के स्वामी जी! खालसा जी एक अरदास है।

श्री गुरू जी–सिख! कहो।

सिख–पातशाह! कार्तिक की सुहावनी ऋतु व्यतीत हो चुकी है। माघ बीत रहा है। सर्दी बढ़ रही है। आज्ञा हो तो गद्दे-रज़ाइयां तैयार करवा ली जाएं।

श्री गुरू जी–(खजांची की तरफ देखते हुए) करवा लो।

खजांची–श्री हुजूर जी! आपके वचन सिर-माथे पर। इसके लिए कुछ धन की आवश्यकता है। गुरू का घर तो बहता हुआ दरिया है, जिसमें कभी कमी नहीं आती। पर आप तो परमात्मा के भाणा (उसकी इच्छा) पर चलने वाले हैं। यहाँ झीलों की तरह जमा होकर जल नहीं रहता। नदियों की तरह सदा बहता है, सदा उज्जवल, ताजा और मीठा। पर ऊपर से आये तो बहता है। आप वचन करें, उछाल आ जाए तो कार्य सिद्ध हो जाए।

श्री गुरू जी–देदा दे लैदे थकि पाहि॥
जुगा जुगंतर खाही खाहि॥

: २ :

मेवड़ा–सच्चे पातशाह! आपके चरणों में अरदास है।

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह–(कृपा दृष्टि से देखते हुए) कहो।

मेवड़ा–एक सिख दसवंध (दसवां हिस्सा) की दो हजार माया लेकर हाजिर हुआ है।

सिख आगे बढ़ता है। चरणों में दो हजार की दो थैलियां रखकर आगे शीश रखकर दण्डवत करता है।

गुरू जी–जरूरतमंद प्राणी! कहो कैसी भूख है।

सिख–पातशाह! भूख तो आपने पूरी कर दी है।

गुरू जी–जो ओर है, कह?

सिख–भूखों ने तो सदा मांगना है। आप तो दाता हैं। आपकी दात अखण्ड है। आपकी कृपा दृष्टि मुझ पर सदा बनी रहे–बस यही इच्छा है।

गुरू जी–आंख तो पदार्थों की भूख वाली है, रसना तृप्ति मांगती है।

सिख–(सिर झुकाकर) सच है, पातशाह हम नीच हैं।

गुरू जी–तुम हमारे सिख हो।

सिख–पातशाह! अब आपका सिख हूं।

गुरू जी–पहले किस का था?

सिख–नगाहे वाले का सेवक था।

गुरू जी–फिर यहाँ कैसे आये?

सिख–दसवंध देने के लिए।

गुरू जी–दसवंध उसी का है जिसका तू मुरीद है जिसका खेत उसी का अन्न।

सिख–मेरी आशा हुजूर ने पूरी की है।

गुरू जी–किसी के खेत को यदि पशु उजाड़ रहे हों और कोई उन्हें हटा दे तब भी अन्न खेत वाले का ही रहता है, पशुओं को हटाने वाले का नहीं हो जाता।

जिसे मुरीद दिहुं सु तांहूं।
गुर के राह न मारत कांहुं।। (सू॰ प्र॰)

सिख–खेत आपका, खेती आपकी, अन्न आपका, पशु आपके, उन्हें हटाने वाले भी आप हैं और दाता भी आप ही हैं।

पातशाह! मैं मुलतान का रहने वाला हूं। वनजारा हूं। नगाहे का मुरीद था, हिन्दू हूँ पर सरवर पीर को पूजता था। हुजूर जी मैं इधर आ गया था। आपके नयन के दीदार पर मैं न्यौछावर। देश विदेश में व्यापार करने के लिए। साठ हजार का माल अटक गया, बहुत जोर लगाया, पर बिक ही नहीं रहा था। बहुत दिमाग लगाया, नगाहे वाले की आराधना की, पर माल पड़ा रहा। फिर मैंने लोगों से पूछा कि यहां कोई 'जाहरा पीर' है। तब मुझे बताया गया कि जाहरा पीर तो जगत गुरू बाबा नानक देव जी हैं और उनकी गद्दी को इस समय आप सुशोभित कर रहे हैं। मुझे गरज थी, मन में श्री गुरू जी को जाहरा गुरू मानकर, अपना गुरू मानकर मैंने अरदास की, आपने सुनी, स्वीकार की और माल बिक गया। जब मैंने लाभ का हिसाब लगाया तो दसवां हिस्सा दो हजार बैठता है। वही मैं आपकी सेवा में लेकर आया हूँ। दास सिख से कबूल करें और अपने सिर पर कृपा की दृष्टि रखें।

गुरू जी–सखी सरवर गुरू नानक के दर का सिख फकीर था, पर उसके मुरीदों ने तुर्कों के तौर-तरीके ही रखे और उन्हीं को चलाया हुआ है। वे पूरे

साहस से अपने पीर के आदेशों पर नहीं चले। वे अपने मुरीदों को तुर्क बना रहे हैं। लोगों को गलत रास्ते पर डाल रहे हैं। तुर्क अत्याचार कर रहे हैं। धरती पुकार रही है, हमने धरती के भार को दूर करना है।

सिख–श्री पातशाह जी, सच के दाता जी, मूल रूप से वह घर छोड़कर मैं गुरू नानक के घर आया हूं। मुझे चरणों में शरण दो मैं आपका हो चुका हूँ। सिख को भिक्षा दो।

गुरू जी–सिख बनना कठिन है। सिख बनने के लिए केश रखने होंगे, अमृत-पान करना होगा, सिदक रखना होगा। सिदक कठिन है, सोच लो।

सिख–मैंने सोच लिया है, सिदक की कृपा आपने करनी है, केश आपकी दात है, तलवार आपकी मेहर। पंखा दो, झाड़ू दो, गागर दो, तीर-तरकश दो, जो दोगे वही करूंगा। मैं कौन हूं? सभी कुछ आप ही करवाने वाले हैं।

गुरू जी–अब जो है सो है। सिख होकर विमुख होना बुरा है। **'गुरमुखि सुखीया मनमुखि दुखीया।'**

हे सिख! धन देना बहुत कठिन है। प्यार उसी का जो धन न्यौछावर कर सके। धन न्यौछावर करना प्यार की निशानी है। पर सिदक रखने से धन न्यौछावर करना सहज है। सिदक हृदय में चुपचाप रहता है। वह कुछ मांगता नहीं, पर जब समय आता है तो सिदक 'अपना' सब कुछ न्यौछावर कर देता है। हां, अपना सब कुछ न्यौछावर कर देना भी सहज है, पर 'आपा' न्यौछावर करना सबसे कठिन है।

'साबत सिदक राखिओ जोइ।
अहै कठन ते कठनै सोइ॥ (सू॰ प्र॰)

सिख–(नयन भरकर) सत्य है, पर मैं आपका हूँ और सिदक आपकी देन है।

गुरू जी–सिदक बूए खैर, मगज खैर सूदह। (सिदक एक सुगन्ध है, जिससे अहंकार दूर होता है।) याद रख–बेसिदक बूइ गन्द आमरद। (बेसिदकी से दुर्गन्ध पैदा होती है।) गुरू नानक देव जी का खेत सिदक का खेत है–

सिदक बलाई छे करे बेसिदकी धरन उजाड़।
गुर पीर बिसिदकी कै नही नानक खेत बिबाड़॥

(सो साखी और सू॰ प्र॰)

अब सिख के नयन 'गुरू नयन कटोरों' से अमृत पीते-पीते भर गये, बहने लगे तो उसने पलकें बन्द कर लीं। सिख चरणों से लिपट गया। उसकी चुप से, माथे के स्पन्दन से गुरू चरणों की प्रतीति शक्ति को स्पष्ट कर दिया कि परवाने बोलते नहीं, वे तो आहूति देना जानते हैं।

अमृत का कुण्ड तैयार किया गया। पांच प्यारे खड़े हैं। एक तरफ खड़ा है–वनजारा प्रेमी, भुजंगी पोशाक को पहनकर। वाहिगुरू-वाहिगुरू का उच्चारण कर

रहा है। भाई दया सिंह-अमृत पान कराते समय पूछते हैं–हे सिख! तुम अमृत-धारण क़रने लगे हो। अमृत मौत है, तुम्हें कबूल है।

सिख–जी! सिर-आँखों पर।

दया सिंह–अमृत मौत है 'बिखे दे जीवन' से 'बिखै बनु फीका तिआगि री सखीए नामु महा रसा पीउ।'

सिख–मेहर।

दया सिंह–अमृत मौत है, ज़हर के वनवास से, पर अमृत जीवन है नाम के आत्म नगर में। आपने अन्तरात्मा को स्वामी में लगाकर जगत में जीना है।

सिख–मेहर।

दया सिंह–नाम दाता गुरू है, अमृत दाता गुरू है। जीवित रहना है गुरू के लिए मरना है खुद से अमृत-पान से नया जन्म होगा। जगत की कोख से मरकर, सतिगुरू के घर जन्म लेना है। **'सतिगुरू के जनमै गवनु मिटाइआ।'**

इस जन्म में जीते हुए, जी-उठकर, फिर जीवन है खालसा। अन्तरात्मा सदा परमात्मा में लीन रहे–सत्संगति में रहते हुए निरन्तर प्रभु से लग्न रहे। समस्त वाह्य कर्म सतिगुरू के हुकुम से हों। अन्तर परमात्मा में लीन रहे।

'चुभी रही स्त्रति प्रभु चरनन महिं' जगत से सूत। **'बाहिरि सूतु, सगल सिउ मउला'** है यह सौदा तुम्हें मंजूर है।

सिख–मेहर।

दया सिंह–जीवन युद्ध भूमि है, निरन्तर युद्धरत। तत्त्वों का यत्न है, मन की कश्मकश है, आपा जीतने का निरन्तर संघर्ष है। प्रजा दुखी है, समय है उत्साह के साथ खुद को न्यौछावर करने का। सतिगुरू की इच्छा है–खुद को मिटा दो।

सिख–मेहर।

इस पर अमृत-पान कर उसे सिंह सजाया गया। नाम, मूल मंत्र, वाणी उपदेश मिला। वनजारा सिख हो गया। दूला सिंह उसका नाम रखा गया। सुन्दर-सुन्दर दूला मुलतानी।

नगाहे का मुरीद सिंह हो गया, शस्त्रधारी हो गया। मन से साई की याद का शस्त्र धारण किया और शरीर ने परोपकार, पर हित के लिए म्यान में पड़ी तलवार और ढाल को धारण किया।

फिर वह सिख क्या करता रहा। वह सिखी का प्रचार करता रहा। जब भी दर्शनों के लिए आता लाभ का दसवाँ हिस्सा लेकर आता और गुरू के चरणों में अर्पित करता। वह अपने साथ हजारों की संगत लेकर आता।

विचार–इस साखी का वर्णन भाई राम कौर जी ने किया है। सतिगुरू की इखलाक की नजर को बड़ी सूक्ष्मता से देखा है। यदि वनजारा नगाहे का मुरीद है

तो गुरू जी दसवंध का खुद को अधिकारी नहीं समझते। जबकि शीतकाल के लिए वस्त्र तैयार करने के लिए उस समय उन्हें धन की आवश्यकता भी थी। ऐसी स्थिति में भी उस धन से विरक्त रहे। जब सिख ने कहा कि वह नगाहे वाले को छोड़कर आपका बनकर अरदास की है और अब आपका है, तब गुरू जी मान गये, पर तब भी तसल्ली करते रहे कि कहीं वह धन का लोभी तो नहीं। तब उसे सिख बनने के लिए खालसा रूप में सुशोभित होने के लिए कहा! उसे परख लिया कि समय आने पर उसे अपने जीवन की आहूति भी देनी होगी। अब जब सिख ने सभी कुछ स्वीकार कर लिया और अमृतपान कर लिया तो सदाचार के सरदार ने स्वीकारा कि वह निर्मल सिख है तब उसका दसवंध स्वीकार किया। वह धन खालसे को गर्म कपड़ों के लिए दिया।

❑ ❑

४७ सेवा विहीन हाथ

'जालम सिंह! जालम प्यास का निवारण करो, शीतल जल लाओ।' थोड़े से सिख और सिंह गुरू जी के आसपास बैठे थे। कोई वार्तालाप चल रही थी। गुरू जी बात करते-करते चुप हो गये थे। इधर-उधर देखकर उन्होंने जालम सिंह को पानी लाने के लिए आवाज़ दी थी। पर वह पास नहीं था। एक और सुन्दर युवक, अपने रूप-यौवन में मदमस्त सिख बैठा था। उसने सुन्दर स्वच्छ तथा उज्जवल वस्त्र पहने हुए थे। वह शौकीन तबियत का लग रहा था। श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी की जालम सिंह को दी गयी आवाज को सुनकर वह युवक खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बोला–यदि पातशाह आज्ञा करें तो मैं जल लाऊँ। जालम सिंह तो हाजिर नहीं है। सतिगुरू ने जल ले आने का संकेत कर दिया। युवक चला गया और थोड़ी देर में ही शीतल जल का कटोरा लेकर उपस्थित हुआ और जल पेश किया। सतिगुरू ने कटोरा ले लिया। फिर स्वच्छ, उज्जवल सिख की तरफ देखा। उसके हाथों की तरफ देखा। गुरू जी ने देखा कि उसके हाथ बहुत कोमल हैं, उंगलियाँ भी पतली-पतली हैं, स्वच्छ हैं। ऐसे मालूम चल रहा था जैसे कि किसी से माँग कर रखी हों। तब साहिब ने कहा– 'हे सिख! बताओ तुम काम क्या करते हो। तेरे हाथ तो बहुत पतले और कोमल हैं।'

सिख–पातशाह! (दोनों हाथ जोड़कर) ये हाथ आपके आगे ही जुड़ते हैं और आपके लिए ही जल लाये हैं। मैं अपने शरीर को स्वच्छ और पवित्र रखता हूं।

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी–अच्छा····(इतना कहकर पानी धरती पर गिराने लगे)।

सिख–पातशाह! मेरे हाथ सदा पवित्र रहे हैं। अब भी धुले हुए और स्वच्छ हैं। मैं हाथ धोकर, कटोरा माँजकर, फिर हाथ साफ करके आपके लिए निर्मल जल लाया हूं। आप संशय न करें। जल स्वच्छ है, पान करें।

---

१. सम्वत गु० ना० सा० ४७३ (२५ दिसम्बर १९४१) के गुरुपर्व पर लिखे गये प्रसंगों में से एक यह है।

गुरू जी ने कटोरा उलट दिया। पानी धरती पर बहने लगा। सिख हैरान-परेशान कभी धरती पर बहते पानी की ओर कभी सतिगुरू की तरफ देख रहा था उसे समझ नहीं आ रहा था कि उससे क्या अवज्ञा हुई है। इतने में गुरू जी ने कहा—कुसिख ने जल स्पर्श किया था, इसलिए पीने के योग्य नहीं था।

यह सुनकर सिख युवक डर गया। शर्म भी आयी कि आसपास बैठे सिख क्या सोचेंगे। मुझे कितना बड़ा पापी समझेंगे। वह संगत में किस मुंह से आयेगा। वह कांपते हुए बोला—'पातशाह'! मैं सिख का बेटा हूं। आपका क़दीमी सिख हूं। हम जीव तो सदा गलतियाँ करते हैं, आप क्षमा शील हैं, क्षमा करो। यदि मुझसे कोई गलती हो गयी है तो माफ करो और मुझे सुमार्ग दिखाओ।

गुरू जी—बरखुरदार सुनो! तू सिख का पुत्र है, तुमने सिखी धारण की। पर यदि सिखी व्यवहार में नहीं आयी तो कंजूस के धन के समान हुई। सिखी जब व्यवहार में आती है तो मन को, शरीर को, इस मनुष्य रूपी जीवन को सफल बना देती है। सिखी शिक्षा धारण करके सुशिक्षित हो जाने का नाम है। सिखी स्वयं को सँवार कर चन्दन की तरह सुगन्धित होकर सुगन्ध बाँटने का नाम है। सिखी एक ज्ञान है, एक भक्ति है, परमात्मा के चरणों में वास और प्रेम है—यह सभी कुछ व्यवहार में आता है, कर्म का रूप धारण करता है। सिखी विरक्त हो जाने का नाम नहीं। गंगा किनारे पड़ी शिला की तरह क्रियाहीन हो जाना सिखी नहीं।' क्रिया करते हुए विरक्त रहना सिखी है। वासना पर विजय पाना सिखी की विरक्त अवस्था है। **(करम करत होवै निहकरम। गउड़ी सुखः)** क्रिया में क्रियावान रहना और क्रिया धर्म का कर्म सिखी की क्रियावान अवस्था है। **(केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागो।** (पा० १०)

बरखुरदार! सिखी सेवा से प्रारम्भ होती है। देखो, गुरू के द्वार पर सभी सेवा कर रहे हैं। सेवा से शरीर स्वच्छ होता है, मन धुल जाता है, अंहकार की मैल उतर जाती है। फिर जब नाम की प्राप्ति हो जाती है तो परम पुरुष के चरणों में सदा के लिए स्थान मिल जाता है। चित्त की याद का मण्डल परम पुरुष से भरपूर रहता है। तब भी सिख के काम सेवा ही आती है। सिख के हृदय में सहज भाव से सेवा का वास होता है। जैसे सुगन्धित फूल की सुगन्ध सभी को स्वतः ही मिलती है। यदि तू भी सेवा से स्वच्छ होकर परमात्मा को याद करता और बाणी का पाठ करता, विचारता और परमात्मा के चरणों में रहता तब तुम्हें मालूम चलता कि वह सर्व व्यापक है—जगत का प्रीतम वाहिगुरू—**सभ महि रवि रहिआ प्रभु एकै पेखि-पेखि नानक बिगसाई'**। जब तेरी यह दृष्टि खुलती तो तुझसे उपकार और दूसरों की सेवा होती। तेरी आन्तरिक धारणा स्वतः व्यवहार में आती।

पर बेटा, जिस स्वच्छता को तुमने शरीर में धारण किया है, उसकी उज्जवलता का अहं तेरे मन में धँस गया है कि मैं बड़ा स्वच्छ और उज्जवल हूं। इस तरह

तेरे मन को मान का मैल लग गया है। यदि यह उज्जवलता सेवा सहित व्यवहार में आती तो तेरे मन को मान का मैल नहीं लगता, बल्कि अहं रहित उज्जवलता का रंग तेरे मन पर चढ़ जाता। शरीर और मन दोनों निर्मल हो जाते।

यह सुनकर सिख युवक उदास हो गया तो सतिगुरू ने कहा–बच्चा! मुझे मालूम है कि तेरे आचरण बुरे नहीं हैं, पर स्वच्छता के अहंकार में कर्त्तव्य न करते हुए बैठे रहना उज्जवलता को व्यवहार में लाना नहीं है। किसी वस्तु को व्यवहार में न लाने का अर्थ उसे नष्ट कर देना है। जिस तरह मृत व्यक्ति के हाथ कोई पाप कर्म नहीं करते, क्योंकि वे बेकार हो गये होते हैं। देखो, उसके हाथों को सभी अपवित्र समझकर नहीं छूते। बेकार हाथ, सेवा, उपकार, नेकी, भलाई से दूर रहने वाले हाथ अपवित्र हैं, मृत तुल्य हैं। कुछ क्षण चुप रहने के बाद गुरू जी ने फिर कहा–भाई! पहिले गुरुद्वारे में सेवा करते हैं, इसके किये हुए कर्मों की मैल उतरती है, फिर हृदय स्वच्छ हो जाता है। शुद्ध हृदय में वाहिगुरू का कीर्तन और याद–नाम और परमात्मा के गुण वर्णन का वास होता है। जब गुण-वर्णन और नाम स्मरण से आया और निर्मल होकर सहज घर में आता है तो सभी जगह परमात्मा व्याप्त दिखायी देता है। सभी में उसी के रूप का आभास होता है। तब सेवा स्वभाव का अंग बन जाती है। अब जो कुछ सीखकर सिख ने अनुभव किया है उसके व्यवहार में आ जाता है। गुरमत का सार यही है सभी अंग पवित्र हैं–शरीर के सभी अंग शुभ कार्यों के करने और नाम-वाणी से पवित्र होते हैं।

सिख युवक ने सुनकर सिर झुका दिया। क्षमा प्रार्थना की और सेवा करने लगा। धन से सेवा की। गुरू मार्ग पर दान देता और गुरू संगत, गुरमुखों की सेवा में धन व्यय करता। गुरू जी की तन-मन से सेवा करता/साधु-संगति, गुरमुखों, गुरू संगत की सेवा करता। मन में वाहिगुरू का नाम धारण करता। परमात्मा की कीर्ति मन में बसाता। सतिगुरू सुन-सुन कर प्रसन्न होते। अन्त सेवा करते हुए सतिगुरू की कृपा हुई, वह धन्य-धन्य हो गया।

❑ ❑

४८ दीना बेग पैंडे खां युद्ध

दिल्ली नगर है। पातशाही दरबार है। दिल्ली का सूबेदार एक फौजी सरदार को कहता है–

दिल्ली का सूबेदार–भाई अदीना बेग!

काहिलूर की दूण सिधारो। तहि राजन के काज सुधारो। कुछकु सैन श्री गुरू हुजूर। पाइ रख्यो तिस देश फतूर। हजरत को आयहुं परवाना। करहुं प्रति कउ तहि प्रसथाना। (सू॰ प्र॰)

यह हुकुम सुनकर अदीना बैग (प्रसिद्ध नाम दीना बेग) तैयार हो गया। अदीना बेग मुगल सेनापति था। उसका मनसब पांच हजारी था। वह युद्ध कला में निपुण और प्रख्यात था। दूसरा सरदार जो इस काम के लिए चुना गया उसका नाम पैंदा खाँ या पैंडे खान था। वह भी पांच हजारी मनसब रखता था और प्रख्यात योद्धा था। ऐसा लिखा गया है कि उन दोनों के अधीन लगभग दस हजार फौज थी जो आनन्दपुर की तरफ चल पड़ी।

जब राजाओं को गुप्त सूचना मिली कि दो मनसबदार बहुत बड़ी तुर्क फौज लेकर दिल्ली से चल पड़े हैं तो वे भी योजनानुसार आगे-आगे दूसरे रास्ते से आनन्दपुर की तरफ चल पड़े और आगे जाकर उनसे जा मिले। इन राजाओं में मुख्य कहलूरिया राजा और बीर सिंह जसपाल थे। इन्होंने सारे दाव-पेंच, स्थान, गुरू के हाल तथा आनन्दपुर साहिब के भेद बता दिये।

उधर गुरू जी को भी खबर पहुंच गयी कि दिल्ली से फौज हमला करने के लिए आ रही है। सतिगुरू जी उन दिनों सत्य-धर्म के प्रचार में व्यस्त थे। सुनकर मुस्कराये 'करता पुरख के रंग' कहकर वीर रसी ठाठ में व्यस्त हो गये। जितनी तैयारी हो सकती थी कर ली गयी। यह कमाल इस चढ़ती कलाओं वाले गुरू का था कि एक तरफ विद्या दरबार लगते, कविता पाठ होता, ग्रंथों की रचना होती, टीका होती, दूसरी तरफ धर्म का प्रचार होता। परमात्मा से मिलन, संसार सागर से मुक्ति के उपाय होते। इन्ही कर्मों को करते हुए अचानक युद्ध और संघर्ष सामने आ जाते। आप अचल, अडिग अपने रंग में लीन, उपस्थित समस्याओं को सुलझाने में लग जाते। कोई चिंता नहीं होती, हृदय में वैसी ही

उमंग रहती, मानो हर रंग में व्यस्त हो जाने की तैयारी पहले से ही हो। फिर युद्ध-संघर्ष, वीर रस पूर्ण काव्य राजनैतिक कठिनाइयों में भी सत्य के मार्ग पर डटे रहते। कभी झूठ या बुरे ढंगों का प्रयोग नहीं करते।

जिस समय खबर मिली कि तुर्की फौजों ने रोपड़ पार कर लिया है और राजे भी साथ हैं तब भाई उदय सिंह और दया सिंह जी हरावल अपनी फौज को लेकर भिड़ने के लिए आगे बढ़े जिससे कि युद्ध आनन्दपुर नगर से जरा हट कर ही हो। तुर्क सेना अब कीरतपुर पार कर आयी थी और इधर से सूरमें आनन्दपुर से बाहर एक नाले पर उनसे टकराये और उनके आते ही तीरों गोलियों की वर्षा कर दी। इस हमले को रोकने के लिए गुरू जी भी साथ आये थे। जितने भी युद्ध हुए सभी में यही रंग देखने को मिलता है। हमले को रोकने के लिए गुरू जी ने खुद युद्ध भूमि में कदम रखा। उन्होंने कभी भी किसी पर पहले हमला नहीं किया। यह भी बैठे-बैठाये धूम मच गयी कि आप आगे आकर हमलावर से टकराये। गुरू जी के इस युद्ध के सम्बन्ध में लिखा है–

रिपुजान ढोए। गुरू तैयार होए। करा चोल पायो। निखंगं सुहायो। कुदंड सँभारा। कठेरं ऊदारा। मंगायो सु नीला। शिगारय छबीला। चढयो तातकाला। रिपु पुंज काला। जिगा सो कलगी। सुहावे ऊतंगी।

इस तरह हमले को रोकने के लिए खालसा ने गुरू जी के नेतृत्व में नाला पार कर वहां ही फौज को रोक लिया और पहाड़ की तरफ अड़ कर खड़े हो गये। दोनों ओर तलवारें चल रहीं थीं और वीरों को लग रही थी पर–

थिर सिंह झलै। नहीं पैर हलै। तुर्फगै चलावै। तुरंग फंधावै। जिसो को तकावै। तिसी को गिरावैं। दसं बीस गेरे। थिरे और हेरे।

ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि हमलावार की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। राजाओं के कथनानुसार तुर्क समझे थे कि इधर-उधर की नीची जाति के कुछ लोग गुरू की सेना में है। उन्होंने सोचा था कि आक्रमण खीर खाने की तरह सहज होगा। पर अब वे समझ गये कि यह आक्रमण तो कठिन काम है। जिस समय इस घमासान युद्ध को देखा और पाया कि मुगल फौज के पैर उखड़ रहे हैं तो पैंडे खान आगे बढ़ा। उसकी इच्छा थी कि वह दो हाथ गुरू जी के साथ कर ले। वह उन्हें सहज ही मार डालेगा। फिर जंग की जरूरत ही नहीं रहेगी। वह डील-डौल वाला प्रख्यात सूरमा था और युद्ध विद्या के दाँव-पेंच में निपुण था। आगे बड़कर आया और इस तरह गरजा–

दीन मजहब को युद्ध इह हम जुझन को आए। गुरू तुमारे बड बली मोकउ बहुत सुनाए। लरौं ताहि संगा। पिखै मोहि जंगा। अबै आप आवै। सु हाथ दिखावै। दिखै मोर हाथा। लरै बान साथा। अहै चाहि मोरी लरौं नाहिं ओरी। पिखो तीर विद्या। करैं बीर भिद्या। (सू० प्र०)

जब यह आवाज़ गुरू जी के पास पहुँची उस समय वे सेनापति को मैदान-ए-जंग के दाँव-पैंच समझा रहे थे। वे बता रहे थे कि शत्रु की सेना विशाल है, हम कम हैं और हमें किस तरह खुद को बचाते हुए लड़ना चाहिए जिससे विजय मिल सके। शत्रु की गर्जना सुनकर गुरू जी ने नेतृत्व सेनापति को सौंपा और घोड़े को कुदाकर आगे ले आये। पैंदा खां के सामने आकर कहने लगे-गुस्से से भरे खाँ सुनो। तुम्हीं सशस्त्र आये हो। हमारे बिना कुछ कहे तुमने आक्रमण किया है। तुझे मारना बुरा काम नहीं। पर हम शौर्य वाले हैं, तुझे अरमान न रह जाये, इसलिए पहले तुम वार करो। तब पैंडे खाँ ने कहा-पहले आप वार करो। आप हिन्दुओं के पीर हो। मेरा तीर लग गया तो तुम बचोगे नहीं मेरा तीर बड़ा जालिम तीर है, जो पल में ही खाक में मिला देता है। गुलाब का फूल जिस तरह जरा सा मिलने पर, बिना किसी यत्न के नष्ट हो जाता है वैसे ही आपका नाश हो जाना है। वास्तव में वह गुरू जी को पतला देखकर मन में सुख मना रहा था। उसे मालूम नहीं था कि उस समय के तीरंदाजों में वे अद्विितीय थे। भीम चंद जैसे सूरमे उनकी तीरंदाजी के कायल थे पर पठान को अपनी वीरता और तीरंदाजी पर अभिमान था। उसे गुरू जी पतले-दुबले और सहज ही उनके तीर का निशाना बन जाने वाले लग रहे थे। पठान का अहंकार से भरा वचन सुनकर धैर्य के अवतार ने कहा-सुनो खान! मैंने आप पर आक्रमण नहीं किया। अकारण आपने हमला किया है। हमलावार आप हैं, इसलिए इस द्वंद्व युद्ध में भी पहल आपकी ओर से होनी चाहिए। पठान सुनकर खुश हुआ। उसने सोचा पहले वार करने में ही लाभ है। मैं एक तीर में ही युद्ध समाप्त कर दूंगा। गुरू गलती कर रहा है जो मुझे पहले वार करने का मौका दे रहा है। दोनों वीर शस्त्रों से सजे हुए थे। निशाने का स्थान ढूंढ लेना सहज नहीं था। अनुभवी खान ने गुरू जी के माथे और भवों के बीच के स्थान को निशाना बनाने की सोची। उसने इस ढंग से तीर रखकर छोड़ा कि माथे और भवों के बीच के स्थान में धंस जाए, पर निशाना लगाने वाले की चाल को वीर-बांकुरे गुरू जी ताड़ गये और ऐसे कदम उठाया कि निशाने पर तीर नहीं बैठा और कान के पास से निकल गया। तब गुरू जी बोले-खान जी! आप तो बहुत बड़े तीरंदाज हैं। किस से यह विद्या सीखी है? चूक गया न निशाना। तुम्हारा प्रयत्न व्यर्थ गया। खैर चूक गया तो चूक गया। एक बार और कोशिश कर लो, कहीं मन में अरमान न रह जाये।

पठान लज्जित हो रहा था, गरूर कम हो रहा था। वह हैरान था कि उसका हाथ कांपा है या गुरू अधिक प्रवीण है और दाव बचा गया। मेरा वार तो कभी खाली नहीं गया। उधर गुरू जी एक और वार करने के लिए कह रहे हैं। वह सोच रहा था, वार करना भी चाहता था, पर शर्म दूसरा वार करने की आज्ञा नहीं दे रही थी।

पाठक हैरान होंगे कि गुरू जी उसकी गर्जना पर क्यों सामने आ गये और उसे पहले वार करने के लिए क्यों कह रहे थे। जब पहले वार से जान बच गयी तो

क्यों कह रहे थे कि एक वार और कर ले? खुद को क्यों खतरे में डाल रहे थे। आजकल के यूरोपीय युद्धों में तो, मार देना, कत्ल कर देना, लाखों को मारकर खुश होना, जैसे भी हो मार देने का रिवाज है। कोई धर्म नियम नहीं कत्ल करना ही मुख्य है। असल बात यह है कि उस समय एक आन होती थी, वीर रस से पूर्ण शूरवीरों में एक धर्म होता था, जिसे शौर्य कहते थे। उसके अपने नियम होते थे जैसे कि एक दल का कोई बड़ा शूरवीर जब द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारता था तो उसका धर्म होता था आगे बढ़कर लड़ना। कई बार उन दोनों की विजय-पराजय से ही युद्ध का निर्णय हो जाता था। आजकल के युद्ध चालबाजी के युद्ध हैं। इनमें शौर्य नहीं है। इसका निशान तक नज़र नहीं आता। अब तो जैसे भी हो मार दो, तबाह कर दो ही प्रमुख हैं। पुराने समय में असली शूरवीरता थी और युद्धों में उच्च आचरण देखने को मिलता था। इसलिए गुरू जी का शौर्य यही है कि ललकार को स्वीकार करके मुकाबला करे और पहला वार शत्रु को दें। पर शौर्य से भी महाशौर्य के स्वामी गुरू जी ने पहले वार से बचकर फिर शत्रु को वार करने का अवसर दिया और कहा कि तुम एक वार और कर लो। यह वीरता को प्रकट करता है। पठान ने एक दो वार न की और स्वीकार किया कि इस तरह दूसरा वार करते हुए उसे शर्म आती है। पर क्योंकि आप कई बार ललकार चुके हैं कि दूसरा वार भी मैं करूं। मैं आपका वचन नहीं ठुकराता। तैयार हो जाओ, मेरा अचूक तीर आ रहा है।

पूरी शक्ति थी, धनुष-बाण विद्या की पूरी प्रवीणता के साथ, अपने अनुभवी हाथों से खान ने तीर चलाया। पर वह ओढ़े हुए दुशाले को चीरता ऊपर की ओर चढ़ गया और दूर जाकर गिर गया। शूरवीर का दूसरा वार भी खाली गया। पठान अब बहुत लज्जित हुआ। उसके दल में सनसनी छा गयी। उसकी तीरंदाजी की धाक आज खाक में मिल गयी। वह अब भागकर पीछे जा नहीं सकता था। शौर्य की आज्ञा यही है कि अब दो वार गुरू जी को दे। पठान शौर्य धर्म से बँधा खड़ा था। गुरू जी ने ललकारा–खान! अब मेरा वार है तैयार हो जा। तेरी शक्ति मैंने देख ली है अब तुम मेरा वार देखो। पठान बोला–दो वार आप लो और दिखाओ अपनी तीरंदाजी। गुरू जी बोले-क्या पता एक ही वार काफी हो। अब गुरू जी ने निशाना साधा। पठान शस्त्रों से सुसज्जित था, कोई स्थान निशाने के लिए खाली नहीं था। कान के पास थोड़ा-सा नंगा स्थान गुरू जी ने देख लिया। उसी स्थान पर निशाना लगाने की सोचकर तीर छोड़ दिया। पठान घोड़े को इधर-उधर मोड़ रहा था जिससे निशाना न लगे। पर गुरू जी का तीर इस प्रवीणता से उस समय छूटा कि आपके अंदाजे समय पर ठीक निशाने पर बैठा और कान के पास लगकर अन्दर धँस गया। तीर की चोट से पठान घोड़े से नीचे गिर गया। अब उस समय के शौर्य के अनुसार गुरू जी फुर्ती से तलवार तानकर पठान के पास पहुंच गये। यह समय वेग और पराक्रम का होता है। तलवार बिजली की फुर्ती से आ

रही थी कि निराश पठान की आवाज़ निकाली–मुझे रख लेना। पर तलवार अपना काम कर गयी और गुरू जी की आवाज़ आयी–अब कौन सा समय है। जब पैंडे खां मारा गया तो फौज निराश हो गयी। जबकि उन्होंने फिर से मुकाबला किया, पर खालसा के हौसले बुलन्द थे। मुगल सेना पैंतरा बदल–बदल कर लड़ती हुई पीछे हटती गयी। इसी युद्ध में दीना बेग भी जख्मी हो गया। उसे संभालकर मुगल सेना का एक दस्ता तेजी से पीछे हट गया यह देखकर बाकी सेना निराश हो गयी और पीठ दिखाकर भागने लगी। खालसा सेना ने उनका पीछा किया।

पहाड़ी राजा भीमचन्द आदि इस पराजय को देखकर बहुत दुखी हुए। खालसा की वीरता से भयभीत होकर, रास्ता बदलते हुए पहाड़ों में भाग गये। खालसा में विजय का उत्साह था वह भागते हुए शत्रु को दबाये जा रहा था। जब शत्रु बहुत दूर चले गये तो गुरू जी ने सवार भेजकर खालसा को वापस आने के लिए कहा। हमारा हुकुम दो कि मैदान छोड़ गये, पराजित और निराशा भागे हुए शत्रु का पीछा न करें और अब लौट आयें। आदेश पाकर खालसा वापस लौट आया और लौटकर गुरू जी को फतह बुलायी:–

वाहिगुरू जी का खालसा
श्री वाहिगुरू जी की फतह

पातशाह, शत्रुओं को खिदराबाद तक खदेड़ दिया है, आपका आदेश पाकर लौट आये हैं। गुरू जी ने कहा–भागते हुए को क्या मारना। खालसा जी, सहजता से चलो।

अब जख्मी लोगों की देखभाल का प्रबन्ध किया गया। मैदान–ए–जंग से घायल सैनिकों को इलाज वाले डेरे में पहुँचाया गया। शहीदों का अन्तिम संस्कार किया गया। शत्रु दल के मृत सैनिकों की उनके धर्मानुसार सद्गति की गयी। आनन्दपुर साहिब पहुंचे तो नगरवासियों ने जय जयकार की। कवियों ने छन्दों की रचना की। ऐसे समय पर रचे गये छंद वीर रस पूर्ण होते थे। श्री गुरू जी के दरबार में, उनको और उनके करतबों, गुणों, विशेषताओं को अपनी आँखों से देखने वाले विद्वानों ने इस तरह से वर्णन किया है–

(गुरू जी की तीरंदाजी का कमाल)

कस तरकस धरकस बरकस धर,
ऐसे सर कस हित चित बित गाढो है।
कीने घमासान रंग भूमि के मैदान हीर
बाजत निशान लै हथियार हथ बाढो है।
श्री गोबिन्द सिंह की कमान ते चलै हैं तीर,
उरवार होत पारावार पार ठाढो हैं।
बखतर बेह, बखतरी बेह बांके बेह,
बानन सों बेह कै बरा सो बह काढो है।

❑ ❑

४९ प्रसंग एक माई

कलगी वाले गुरू दसमेश प्यारे
एक दिन दीवान में शोभायमान थे
दूर से आवाज़ आयी किसी के रोने की
फिर नज़र आई एक वृद्ध औरत
इशारे से गुरू जी ने उसे पास बुलाया,
'अमृत-पान कर और सिंहनी होकर
आँख से नीर और मुख से आह निकलती है।'
हाथ जोड़कर, शीश झुकाकर वह बोली–
'मेरे पति जी आकर सफल हुए,
चरण लगकर आपके जंग अन्दर
नाम जपते और सत्य कर्म करते
करतब पिता के सुन्दर रहे पीछे
दोनों पुत्र भी सिंह हो बीर बांगे
साथ वैरियों, द्रोहियों जंग करते,
सिखी सिदक को निबाहते हुए
शहीद हो गए इस संसार से।
अब है तीसरा पुत्र जो रहा बाकी
कुछ सुध-बुध था होश नहीं उसे
लक्षण बताते हैं बचेगा नहीं बच्चा
मैं हूँ भटकती, बावली हुई जाती
उसकी मौत का शोक नहीं रत्ती भर मुझे
नहीं सफल चली देह सेवा में
उसे करो राजी लगाओ सेवा में
यदि अंत भी निकट है तो लो सेवा
दासी सिंहनी आपने शुद्ध की
ऐसे ही जायेगी क्या कोख मेरी

विरद बाने को आप सम्भालते हैं
फिर सफल कर्म में लो सेवा

गुरू जी–

धन्य-धन्य है सिंहनी सिदक तेरा
भले जगत के लिए खुद मरी
पापियों को मौत पकड़ती है जैसे बिल्ली
सेवा वालों को ऐसे पकड़ती है जैसे
रक्षक लोक परलोक और जगत वाली
बाग में है शोभायमान जैसे माली
साथ ध्वनि आई कुछ विनय वाली
जिसकी उमर थी समय ने बहुत जाली
मुख से कहा–बता क्या हुआ तुझे?
कहां से शोक की चुभी है अनी तुझे?
चिंता कहां से हुई है घनी तुझे?
'आज आकर कुसमय बनी मुझे
सिंह शोभित हुए आप के दास हुए
समक्ष जूझ बैकुण्ठ वासी हुए
शरण आपकी सफल स्वास हुए
पुत्रों के लिए पूर्ण खास हुए
झंडे आपके नीचे आ खड़े हुए
बीर बांकुरे सूरमे लड़े दोनों
घाट मौत के 'नाम' में चढ़े दोनों।
ये दो नैन भी उनको नहीं रोये।
उसे ताप ने आकर पकड़ लिया
शक्ति छीन ली, चारपाई से बांध दिया
यदि ऐसे ही ताप चढ़ा रहा
इसी शोक का मुझे सांप है डँसा।
ऐसे ही जाता देखकर रोती हूँ
व्याकुल इसीलिए अधिक होती हूं।
चरण आँसुओं से में धोती हूं
मरे सेवा में, विनय यही गाती हूं।
लाज मेरी आपने रखनी है
सिदक वाले कहेंगे सिंहनी खाली है।

जान बख्शो और करो सुलक्षणी मुझे
सेवा बिना न आये मौत उसे।
जीवन मुक्त है तू संसार अन्दर
वंश भेंट की सारी सेवा अन्दर।
चूहा पकड़ लेती अपने मुंह अन्दर
अपने बच्चों को पकड़े तो न लगे दांत
तेरा पुत्र नहीं बनेगा मौत का चूहा
राजी होकर करेगा पंथ की सेवा,
डोल मूल न गुरमखे! रह तकड़ी
सफल होगा सेवा कमाता वह
सेवा में करेगा वह शीश भेंट
जन्म मरण में वह फिर नहीं आयेगा
तरे पति और पुत्र तू आप तरेगी
जीवन मुक्त हो मिलेगा पिता से
सफल जन्म का जगत अन्दर
हाथ से खुद करते हैं जो सेवा
गुरू पंथ या देश या जगत के लिए
सेवा बिना नहीं होते पूर्ण कार्य
तेरे सिदक ने उसकी की है रक्षा
अमृत रब का उसने चखा है
तेरे पुत्र ने मौत को धकेल दिया है
जान काल ने उसे छोड़ दिया है
तेरी रक्षा साई खुद पूरी करेगा
शूरवीरता को देख हृदय शीतल होगा
चरण प्रभु के नित्य वह रहेगा।
चाव सेवा का जिसके हृदय में आया।
जिसने वंश को सेवा में है लगाया।
किसी ने सेवा के साथ प्यार पाया।
'नाम' बिना न किसी ने प्रभु पाया।

❑ ❑

५० करीम खां का उद्धार

जिसके पास ताकत आ जाती है, वह दबदबे वाला हो जाता है। वह अपनी ताकत का उचित उपयोग नहीं करता। अपने अनुचित व्यवहार के कारण वह पशु हो जाता है। वह अपने इरादे और मनोरथों को ताकत से पूरा करना चाहता है। इन्साफ और धर्म का, नेकी और उपकार का, सच और वास्तविकता का ख्याल छोड़ देता है। वह तो चाहता है कि सभी उसी की बात को मानें इस तरह जब वह अत्याचार करने लगता है तो कहते हैं–जोरावर का सात बीसे सौ होता है।

दुनिया में जितने भी बलशाली हुए अन्त में मर गये। जो बलशालियों के शिकार हुए वे भी मर गये। बलशालियों की अपकीर्ति ही संसार में स्मृति के रूप में रह जाती है। यह अपकीर्ति रवायतों, इतिहास, गीतों आदि के माध्यम से जनता सुनती और पढ़ती है। प्रत्येक पाठक बलशालियों के अन्याय पर अफसोस प्रकट करता है और दीन-दुखियों के लिए उसके हृदय में दया और सहानुभूति पैदा होती है। पर दुख इस बात का है कि इन्हीं पढ़ने-सुनने वालों में से जब कोई ताकतवर बन जाता है तो वह भी मानवता को भूल जाता है और अन्याय और अत्याचार करने लगता है।

इस पाठ को दुनिया ने पढ़ा पर सीखा किसी ने नहीं। बलशालियों की ताकत चलती रही। बलशालियों ने देखा कि उनसे पहले के ताकतवर लोग अन्त में मर गये और अपने पीछे बदनामी छोड़ गये। फिर भी ताकतवर की सख्ती और अत्याचार रुके नहीं। प्रायः शक्तिशालियों ने कहा कि वे जनता का भला करना चाहते हैं, पर वास्तव में उनके सभी प्रयत्न अपने अहं की तुष्टि के लिए ही होते थे। इसी अन्याय, अत्याचार और शोषण को दूर करने के लिए श्री गोबिन्द सिंह ने शस्त्र धारण किये। वे शस्त्र अत्याचारियों के शस्त्रों को नष्ट करने के लिए तथा उनके बल तथा अहंकार को तोड़ने के लिए थे।

जिस समय साहिब श्री आनन्दपुर साहिब में ज्योति जला रहे थे और असहायों में नया जीवन भर रहे थे उस समय सरहदी पठानों के एक जोरावर सरदार ने अपने भाई और उसके कबीले का कत्ल करके गद्दी को सम्भाल लिया था। परन्तु कत्ल किये गये सरदार का एक नवयुवक पुत्र किसी तरह बच निकला।

उसे मालूम चल गया कि उसकी खोज हो रही है। जान और माल को सबसे कीमती समझ कर वह हिन्दुस्तान की तरफ भागा। मार्ग की कठिनाइयों, यात्रा के कष्टों, अकेलेपन के दुखों को सहता हुआ, सरहद की अविश्वसनीय धरती से निकल कर वह हिन्दुस्तान में आ गया। पंजाब की ऊपरी नदियों को पार करके वह लाहौर पहुँच गया और रोजी-रोटी की तलाश में लग गया, पर सफलता नहीं मिली। निराश होकर वह सुलतानपुर और फिर जालन्धर आ गया। जो कुछ वह साथ लाया था समाप्त हो गया, काम कहीं मिल नहीं रहा था। वह आगे चलता जा रहा था। उसे अब सफर भी पैदल करना पड़ रहा था। खाने-पीने के लिए भी कुछ नहीं था। सरदार का बेटा था, भीख माँग नहीं सकता था। कहीं कोई काम मिलता तो कर लेता। इसी से जो मिलता खा-पी लेता। भगवान के सहारे वह जालन्धर से होशियारपुर की तरफ चल दिया। उसने सोचा कि यदि कोई वली फकीर मिल जाये तो वह भी फकीर हो जाये। वह भगवान के रास्ते लगे। दुनिया तो उसने देख ली, चारों ओर धोखा ही धोखा और अत्याचार है–'दुनियाँ माअलूम, अहले दुनियाँ माअलूम।' इस बुरे हाल में वह उत्तर-पश्चिम के रास्ते चलता गया। डावाँडोल, भूखा-प्यासा वह सफर कर रहा था। वह सात दिन तक भूखा-प्यासा रहा। भूख से इतना व्याकुल हो गया था कि सोचने लगा–उसे जो भी मिले वह उसे खा ले। उसे एक कुत्ते का पिल्ला मिला। चारों तरफ देखकर उसने उसे उठा लिया और बगल में दबा आग की तलाश में चल पड़ा। सोचा–कहीं से आग मिल जाए तो किसी एकान्त स्थान में जहाँ उसे कोई न देखे–आग जलाकर वह इसका माँस भून कर पापी पेट की भूख मिटाएँ। पर उसका मन कह रहा था–यह गोश्त हराम है, पर पेट कहे हलाल है। उसे याद आया–मैं सरदार का बेटा हूं, राज्य को भोगने वाला हूं क्या यह मेरी शान में है कि मैं यह गोश्त खाऊँ? दिल कहे–बाप की बादशाही की याद पेट नहीं भर सकती, भूख तो पैसों से और पैसे न होने पर भक्ष्य-अभक्ष्य कुछ भी खा लेने से मिट सकती है। ऐसा सोचता हुआ–कहीं से उठ रहे धुएँ को देख वह उसी की सीध में चला। थोड़ी ही देर में वह वहाँ पहुँच गया। क्या देखता है कि कुछ आदमी कुएँ से पानी निकाल रहे हैं। आग जल भी रही है और बुझ भी रही है। लोग अपने डेरे-तम्बुओं को उखाड़ रहे हैं। कुछ चल पड़े हैं, शेष चलने की तैयारी में हैं। उसने सोचा कि किसी काफिले ने रात यहाँ बितायी है और अब कूच करने की तैयारी कर रहा है। सेवा करने वाले और अगुआ आगे आकर खड़े हो गये हैं और प्रबन्ध करने में लगे हैं। सभी को पंक्ति में खड़ा किया जा रहा है।

: २ :

पठान के बेटे ने अब गौर से देखा–तो क्या देखा कि एक काफिला कूच कर रहा है तथा दूसरा आ रहा है। जो आ रहे हैं उनमें से कुछ बहुत ही सुरीली आवाज़

में कुछ गा रहे थे। कुछ कलाम पढ़ रहे थे और डेरा लगा रहे थे। किसी के हाथ में झण्डा है तो किसी के हाथ में कुदाल या फावड़ा। कुछ जवान सफर की थकान की परवाह किये बिना वृद्धों के पैर दबा रहे हैं। इस तरह उस काफिले को देख वह समझ गया कि वह व्यापारियों का काफिला है। लगता है ये खुदा के बन्दे हैं। तब उसने एक से पूछा कि वे कौन लोग हैं तथा कहाँ जा रहे हैं।

एक ने जवाब दिया कि हम सिख हैं और अपने गुरू के दर्शनों के लिए जा रहे हैं।

पठान–आप सीक हो सीक, सीक क्या है? है---- बाबा नानक के सीक?

सिख–हां, गुरू नानक देव के सिख, अपने गुरू के पास जा रहे हैं।

पठान–पर गुरू नानक का तो देहावसान हो चुका है।

सिख–उन्हीं की ज्योति जिस ज्योति स्वरूप में विराज रही है, वे संसार में हैं। उन्हीं के दर्शनों के लिए जा रहे हैं।

पठान–वे कहाँ हैं?

सिख–इस नदी के पार, कुछ मीलों की दूरी पर वे आनन्दपुर में निवास कर रहे हैं। वे परमात्मा द्वारा भेजे हुए ज्योति स्वरूप हैं। उनका पवित्र नाम है–साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह।

पठान–आपने मालूम भी किया है कभी? पैगम्बरों और बलियों की निशानी करामात होती है।

सिख–अच्छा··? पर वे तो खुद हैं, खास जाति में से आये हुए, अन्तर्यामी हैं। दुखों को दूर करने वाले हैं। शरणागत को शरण देते हैं। करामातें तो हाथ जोड़े उनके पीछे घूमती हैं।

पठान–हिन्दू हैं?

सिख–**'ना हम हिन्दू, न मुसलमान।। अलह राम के पिंड परान।।'** उनकी जाति, गोत्र, दीन, मजहब रब है।

पठान–ठीक है, फकीरों की, अल्लाह वालों की क्या जाति? पर वे उस तरह के मुसलमान तो नहीं जिस तरह का मैं हूं। यदि मैं उनकी शरण में जाऊँ तो मुझे तो वह मुँह भी नहीं लगायेंगे।

सिख–उनके दर नीच-ऊँच, हिन्दू-तुर्क का कोई अर्थ नहीं। वहाँ नफरत का वास नहीं। वे तो सूर्य के समान हैं जो सभी को प्रकाश देता है। उसके पास प्रेम की सुगन्ध है, नफरत की दुर्गन्ध नहीं। पर वे दीन फकीर नहीं, वे सभी प्रकार के बल-पराक्रम वाले हैं। शमशेर (तलवार) उनके हाथ में है, पर वह गरीबों की रक्षा करती है और अत्याचारी को अत्याचार करने से रोकती है।

'शमशेर' सुनकर पठान का हृदय उछला। अच्छा! शमशेर धारण करने वाला भी फकीर होता है? फिर खुद ही सोचने लगा—हजरत भी तो शमशेर वाले थे। अल्लाह की हिकमत है, अत्याचार तो अब बहुत बढ़ गये हैं। किसी वली अल्लाह को अल्लाह ने शमशेर की बरकत भी दी है। उसे दीनों को शरण देने की शक्ति दी है। फिर वह सिख से पूछने लगा—मेरा मन उनके दर्शनों को कर रहा है। क्या आप मुझे साथ ले चलेंगे।

तब सिख ने कहा—बड़ी खुशी से ले चलेंगे।

पठान—मैं गरीब हूं।

सिख—तेरा रूप, तेरा शरीर तो राजकुमारों जैसा है। हां वस्त्र जरूर गरीबों वाले हैं। वैसे उसकी दरगाह में अमीर-गरीब का कोई भेद नहीं है। वह दर निर्धनों का रक्षक है और अमीरों को भी शरण देता है। तुम चलो और अपनी आँखों से देख लेना।

यह सुनकर उसने मन में सोचा कि यह साथ बहुत अच्छा है। यदि कोई खुदा का प्यारा मिल जाये तो उसके साथ दुख दूर हो जायेंगे। तब उसने बगल में दबे पिल्ले को नीचे छोड़ दिया और हाथ धो लिए और सेवा कार्य में लग गया। तभी उस सिख ने देखा कि उसके शरीर में शक्ति नहीं है, चाल कमजोर है, बाँहों में जैसे जान ही नहीं, चेहरा उतरा हुआ है और आँखों में भूख नज़र आ रही है। उसने सोचा—यह बहुत भूखा है।

उस सिख ने ऐसा सोचकर कहा—भाई! हम तो खाना तैयार करके खा-पी चुके हैं। पर हमारे पास अब भी खाने-पीने का समान है। आप भी भोजन कर लें तो फिर आगे चलें। तब उस पठान ने कहा—आपका भला हो।

जब वह भोजन कर रहा था तो उस सिख के डेरे के एक अन्य वैद्य सिख ने सारी कथा सुनने के बाद सोचा कि यह पठान का बेटा आन-शान वाला है, पर है कई दिनों का भूखा। तब उसने कहा—भला हो खान जी! यदि आपने कल भोजन किया था तो आज भी कर लो और यदि कई दिनों से नहीं किया है तो निस्संकोच बता दो जिससे आपके लिए कोई नरम भोजन तैयार किया जाए। कहीं ऐसा न हो कि भोजन करने से आपके पेट में पीड़ा हो जाए। तब पठान के चेहरे पर शर्म से पसीना आ गया, पर हिम्मत करके कहने लगा—रब आपको नेकी दे, कई दिनों से अन्न नहीं मिला। अब भी शर्म करता हूं कि आपसे अन्न किस अधिकार से मांगूं। तब वैद्य ने कहा—रब के बन्दे! सारा अन्न परमात्मा की कृपा से पैदा होता है। अन्न उसका है, धरती उसकी है, जल उसका है, आदमी तो परिश्रम करता है, हल चलाता है, खेती बीजता और काटता है। व्यक्ति की हड्डियों में शक्ति भी परमात्मा ही देता है। इसलिए सभी कुछ परमात्मा का है। हम सब उसी की सन्तान हैं। इसलिए हमारा एक दूसरे पर भाईपन का अधिकार है।

यह सुनकर पठान के नयनों में नीर आ गया। कहने लगा—या अल्लाह! इस दुनिया में मेरे चाचा ने सगे भाई, मेरे बाप को परिवार सहित मार दिया। मुझे दर-दर भटकने के लिए छोड़ दिया और यहाँ कैसे आदमी मिले हैं, जो बेगाने, गैर मज़हब वाले को भी अपना भाई कह रहे हैं और इस गरीबी और असहाय अवस्था में अपना रहे हैं। जरूर इनका पीर पहुँचा हुआ वली है। वह जरूर अल्लाह का पैगम्बर होगा, पैगम्बरों का भी सरदार होगा—जिसकी शिक्षा इतनी प्यार वाली है। इतने में वैद्य ने इशारा किया। संगत में से कुछ लोग फल ले आये। वैद्य सिंह ने कहा—आप पहले ये खायें। कुछ मील चलने पर गाँव के लोग संगत को आया जान दूध और कड़ाह प्रसाद (हलुआ) ले आये थे। वैद्य सिंह ने पठान के बेटे को दूध दिया। उसके बाद फिर खाने के समय उसे खिचड़ी दी और फिर प्रसाद। इस तरह वह राज-पुत्र जो भूख से मर रहा था और जो भक्ष्य-अभक्ष्य का ख्याल भी छोड़ चुका था, आनन्दपुर साहिब पहुँच गया।

: ३ :

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी, जगत गुरू स्वामी सिंहासन पर विराजमान थे। चारों ओर सिंहों और प्रेमियों का दरबार सजा हुआ था। आज एक ऊँचे दमदमे और खुले मैदान में दरबार लगा हुआ था। एक बड़ा शामियाना तना हुआ है, जिसके नीचे इलाही दरबार सजा हुआ है। गुरू जी अचल, नयन मूँदे हुए, खुद में लीन बैठे हैं। बन्द नयनों से लगता है कि वे शांत, एकाग्र चित्त और परमात्मा के रस में लीन जीवित मूर्ति हैं। सुन्दर चेहरे के चारों ओर मधुर प्रकाश दीप्त हो रहा है। दर्शन करने वालों के नयन शीतल हो रहे हैं। इस मनमोहक, एकाग्र चित्त, शान्त रूप को देख-देखकर सभी अटल मूर्तियों की तरह समाधिस्थ लग रहे हैं। स्वामी के आसपास इतने आदमी बैठे हैं, पर इतनी शन्ति है कि कोई आवाज़ नहीं आ रही यहाँ तक कि लोगों के श्वास लेने की आवाज़ भी नहीं आ रही। ऐसे धीरे-धीरे लोग श्वास ले रहे हैं। परमात्मा के रंग में रंगे साहिब के नयन कमल की तरह विकसित हुए। मन्द-मन्द सम्पूर्ण दृष्टि एक बिन्दु पर पड़ रही है। फिर नयनों ने धीरे-धीरे मस्त हो रही पलकों को उठाया फिर एक लम्बा साँस लेकर उनकी कृपा दृष्टि चारों तरफ घूम गयी। सभी के नयन साहिब के नयनों से अमृत-वर्षा की बूँदें ऐसे लेने लगे जैसे पपीहा स्वाति बूँद को प्राप्त कर प्रसन्न होता है। कुछ क्षणों के बाद आपने इशारा किया। मेवड़ा हाज़िर हो गया। आयी हुई संगत प्रार्थनाएं करने लगी। वह संगत, जिसके साथ पठान आया था पेश हुई। सभी पर कृपा हुई, कुशल-क्षेम पूछा, वरदान दिया। जब यह संगत भी अपने स्थान पर बैठ गयी तब साहिब ने अपने एक सेवक को आज्ञा दी कि आखिरी कनात के साथ जो एक दीन युवक खड़ा है, उसे ले आओ। उसका नाम 'करीम' है। तब सेवक ने आकर उस पठान के बेटे को जो शर्म के कारण सबसे पीछे कनात के द्वार के पास खड़ा था आवाज़ दी—'हे करीम खान! कृपा के पात्र। चलो, आपको सतिगुरू बुलाते हैं।' करीम खान सिर झुकाकर,

हाथ जोड़कर पीछे-पीछे चल पड़ा और अदब के साथ पीठ थपथपाते हुए कहा-हे रब के बन्दे उठ। अपनी व्यथा कह। तब उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा-हे मालिक। मैं एक राज्य कर रहे पठान सरदार का बेटा हूं। मेरे पिता को चाचा ने मार कर सभी कुछ सम्भाल लिया है। मुझे भी मारना चाहता है। मैं जान बचाकर भाग आया हूं। मैं अति दीन और दुखी हूं। दुनियाँ खो बैठा हूं, दीन तक मेरी पहुँच नहीं। मैं संसार में असहाय हूं, जैसे पेड़ से टूटा सूखा पत्ता। न मेरा ठौर ठिकाना जमीन पर है, न आसमान में, न पूर्व-पश्चिम, न उत्तर-दक्षिण। हवा के झोंके जिधर चाहते हैं मुझे उड़ाकर ले जाते हैं। इस डाँवाडोल हालत में मुझे भूख ने घेर लिया। छः सात दिन मैं भूखा रहा। मौत मेरी तरफ देख रही थी-मैं हलाल-हराम की तमीज भूल कर मौत का मुकाबला करने लगा था कि अचानक आपके सिखों का दीदार हुआ। उनकी कृपा से मेरे प्राण बच गये, मेरा दीन बच गया। उनकी कृपा से इस दर का ज्ञान मिला तो शैतानों की धरती को फिर से स्वर्ग बना रहा है। उनकी कृपा से ज्योति-स्वरूप साहिब के दर्शन हुए हैं। यही मेरी व्यथा भरी कहानी है। शरणागत हूं शरण मांगता हूं।

साहिब ने चारों तरफ देखा। सारा दरबार देख रहा था कि देखें इस दुखी पर क्या कृपा होती है। साहिब ने फिर पठान पुत्र की ओर देखा और सेवक को हुकुम दिया कि इस नौजवान को ले जाओ। इसे साबुन और दही के साथ खूब स्नान करवाओ, नये कपड़े पहनाओ और फिर लेकर आओ। सेवक उसे लेकर चला गया।

: ४ :

अब दरबार में एक और रंग खिला। एक जमींदार था जो आनन्दपुर के पास ही एक गाँव में रहता था, वह हाजिर हुआ। जब वह माथा टेककर बैठ गया तो भाई दरबारा सिंह-श्री गुरू जी के लंगर का प्रबन्धक हाजिर हुआ और बोला-पातशाह लंगर तैयार है। तब साहिब ने कहा-संगत में प्रसाद बाँटो। हमने भोजन कर लिया है अब और नहीं करना। तब दरबारा सिंह और संगत हैरान होकर देखने लगी कि साहिब ने अभी प्रसाद तो पाया नहीं फिर इसका क्या अर्थ हुआ कि 'हमने भोजन कर लिया है।' तब साहिब बोले-भाई! बाजरे का प्रसाद (रोटी), सरसों का साग, मीठी दही और ताजा मक्खन हमने भर पेट खा लिया है अब और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। दरबारा सिंह ने फिर आश्चर्य से देखा तब आपने नये आये जमींदार की तरफ इशारा करते हुए कहा-उस सिख ने जो एक तरफ बैठा है, हाँ उसने मुझे बाजरे की रोटी, दही, मक्खन, लस्सी, साग के साथ खिलायी है। तब सिखों ने उसकी तरफ देखा और कहा-हे सिख! तुम बहुत भाग्यशाली हो। पर अपने किस समय सतिगुरू को भोजन कराया? वह सिख खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर कहने लगा-साध संगत, गुरू के खालसा जी, मैंने भूल की है। मेरे क्षमाशील दाता ने मेरी तुच्छ भेंट को अपने दर स्वीकार कर लिया है, बात इस तरह

है कि गुरू जी कृपा से मेरा बाजरे का खेत पक गया। मैंने सोचा कि जिस प्रकार सतिगुरू ने हमारा कल्याण करना है, मेरे अन्न के प्रत्येक दाने का भी कल्याण हो। मैं मूर्ख हूं मैंने सोचा कि यदि एक ग्रास (रोटी का टुकड़ा) साहिब की रसना से लग जाये तो सभी दानों का कल्याण हो जायेगा। यही सोचकर मैंने बाजरे का बारीक आटा पिसवाया और घरवाली से रोटी बनवायी। मक्खन से तर करके, साथ में मक्खन और सरसों का साग और लस्सी लेकर सुबह घर से चल पड़ा। रास्ते में सोचा–मैं गरीब हूं, मेरा अन्न भी मोटा है, पर साहिब ने यदि रोटी का एक टुकड़ा भी स्वीकार कर लिया, एक टुकड़ा ही मुंह में डाल लिया तो मेरे खेत का कल्याण हो जायेगा। हाँ जी, हर दाने में प्राण जो हुए। जब मैं चलता-चलता नदी के किनारे आया तो पाँच सिंह बैठे थे। वे अमृत वेला में स्नान कर, वाणी पढ़कर, नाम-ध्यान में लगे बड़े आनन्द में सजे हुए थे। मैंने उन्हें गुरू के लाल समझकर 'वाहिगुरू जी की फतह' बुलाई तो उन्होंने भी बड़े प्यारे से फतह बुलाई और कहने लगे–गुरू के प्यारे! तुम कहाँ जा रहे हो? तब मैंने कहा–खालसा जी! गुरू के हुजूर प्रसाद लेकर जा रहा हूं, जिससे वे कुछ स्वीकार कर लें। तब उनमें से एक सिख–जो भक्ति में मग्न था, बड़ी मुग्ध धारणा में बोला–भला हो खालसा। पंच में परमेश्वर। गुरू घर में ही आया है न? तुम गुरू के सिख हो, प्रसाद लाओ, यहीं से गुरू की रसना को लगा देते हैं। ये सिख निस्वार्थ है, इन्हें पान करा दो। गुरू जी को पहुँच जायेगा। देखो गुरू जी ने कहा है–'**सतिगुरू बिगसै गुर सिख मुख पाए।**' सतिगुरू दाता जी। खालसा साध संगत ज़ी। मैंने सोचा हमारे गुरू जी कहा करते हैं–हम संगत में व्याप्त हैं। इसलिए मैं गुरू के प्यारे सिखों की आज्ञा न ठुकराऊँ, मैंने प्रसाद उनको करा दिया। मैं सतिगुरू के लिए कल फिर अन्न बना कर लाऊँगा। मैंने प्रसाद उन सिखों के आगे रख दिया। उन्होंने अरदास की और वाहिगुरू-वाहिगुरू का भोजन किया। भोजन करने के उपरान्त उन्होंने अरदास की–हे सतिगुरू! सिख की इच्छा पूर्ण करनी। इसका दिया आपको स्वीकार हो। अरदास करके वे सिख फिर नाम-स्मरण में लग गये। मैंने सोचा–अब मैं सतिगुरू को प्रसाद तो नहीं करा सकता, पर पास आ गया हूं। दर्शन करता जाऊँ। पर यहाँ आकर क्या देखता हूं कि गुरू सिखों का वचन पूरा हो गया है। सिखों के मुंह में गया भोजन सतिगुरू को पहुँच गया है। उस समय भक्त वत्सल दीनबन्धु सतिगुरू ने कहा–

हे सिख! वह भोजन मैंने ही खाया है, मुझे ही भूख लगी हुई थी। समय पर तुमने भोजन कराया। तुमने जो सिखों को भोजन कराया उसकी खुशी मुझे हुई है–'जो सिखां नू लोड़ सो गुरू खुशी आवै।' प्रातःकाल जागकर, पवित्र होकर स्नान करके, निष्कपट भाव से, जो गुरमुख, अभ्यागत सिंह, ईर्ष्या से रहित होकर नाम-स्मरण करता है, उनकी ज़ो सेवा करता है, वह सेवा मुझे पहुँचती है। वह मेरी सेवा है। जो उनकी निन्दा करता है, वह मुझे दुख देता है, उनके संकट दूर नहीं

होंगे। हे सिख! प्यार और पवित्र भावना से तैयार किया अन्न तूने नाम के रसिक मेरे प्यारे सिखों को खिलाया, वह अन्न मुझे पहुँचा है। मैं तृप्त हो गया हूं।

साहिब के इस 'गुर सिख प्रेम' को देखकर सारी संगत के नयन भर आये। वह सिख तो चरणों पर सीस रखकर रुदन करने लगा। सतिगुरू ने अपनी कृपा दृष्टि से उसे निहाल कर दिया। सिख के मन में अब यह विचार आया कि जो गुरू साग और बाजरे की रोटी पर रीझता है और कृपा करता है, पर मैं अपना घर-बार, माल, परिवार उसका नहीं समझता, बल्कि अपना समझता हूं। क्या मैं यह गुरू की वस्तु गुरू जी से छिपा कर नहीं रखता। क्या यह चोरी नहीं? मैं तो चोर हूं। गुरू और परमेश्वर की कृपा को अपनी समझता हूं। ऐसा सोचते समय उसका मोह समाप्त हो गया–उसे सभी कुछ परमात्मा का नज़र आने लगा। तब उसने सोचा कि मैंने तो सेवा करनी है और रोटी खानी है। सभी कुछ परमेश्वर का है। उससे मोह नहीं होना चाहिए। मोह तो गुरू परमेश्वर के चरणों के साथ होना चाहिए। इस तरह दाता के प्रति प्यार प्रमुख हो गया और 'दान' का प्यार पीछे पड़ गया। इस तरह नाम दान लेकर, नाम-स्मरण करता वह घर लौटा फिर घर में वह इसी उच्च दृष्टि से रहा। कभी-कभी वह उसी तरह प्रसाद पका कर लाता और सतिगुरू जी प्रसन्न होकर उसे स्वीकार करते।

: ५ :

अब सेवादार करीम खाँ को दरबार में ले आये। सतिगुरू ने करीम खाँ को इतना सम्मान दिया कि सवारी के लिए घोड़ा और दस सवार उसकी सेवा में देकर उसे सरदार बना दिया। रहने के लिए घर दिया। सरदारों वाले कपड़े और वर्दी पर फूल लगा दिये। जब बुलायें तो बेटा कह कर आवाज़ दें। वह भी गुरू भावना में तत्पर रहता। जो हुकुम होता बजा लाता। फिर सतिगुरू भगवान ने एक पठान घराने में उसका विवाह भी करवा दिया। करीम खाँ सुबह उठकर, स्नान करके दीवान में उपस्थित होता, जो हुकुम होता उसे प्यार से बजा लाता। वह कहा करता कि साहिब का हुकुम मेरे लिए कुरान का हुकुम है। इस तरह कुछ समय बीत गया। दीवान में रोज उपस्थित होने से कीर्तन कान में पड़ता। पठान-पुत्र पर उसका प्रभाव पड़ने लगा। एक दिन एकान्त समय में उपस्थित होकर दोनों हाथ जोड़कर उसने सतिगुरू के चरणों में अरदास की–हे सच्चे पातशाह! मैं तो दुनिया का धिक्कारा हुआ था आपने सरदारी देकर फिर से राजकुमारों वाला जीवन मुझे दिया। मेरा रोम-रोम आपका आभारी है। पर हे दाता! आसपास कोई और वस्तु है जो सिख आकर प्राप्त करते हैं और अपना परलोक संवारते हैं, जबकि मैं उसके लायक नहीं, पर जिस तरह पहले नालायक पर कृपा की है यह कृपा भी करो। मुझे भी दान दो जिसे सिख 'नाम दान' कहते हैं। मैं भी वैसे ही कर्म करूं और मुझे भी आपके दर से फकीरी प्राप्त हो। सतिगुरू सुनकर मुस्कराये और कहने लगे–बेटा, नाम की साधना कठिन है। क्योंकि यह वस्तु

पहले कृपा की है फिर साधना की है। कृपा हो जाए और साधना न हो तो अपराध होता है। पहले तुम अपने आपको तैयार करो जिससे साधना कर सको।

करीम खाँ–पातशाह! मैं कौन हूँ साधना करने वाला। कृपा करोगे तो साधना का बल भी दोगे मैं तो वही हूं जिसकी किस्मत में एक पाव अन्न भी नहीं था। अब राज-पुत्रों की तरह रहता हूं। यह तो सिर्फ आपकी कृपा है, मेरी साधना नहीं। अब यदि सिख बना लोगे तो भी आपकी कृपा ही होगी। मुझ पर यह कृपा करो।

श्री सतिगुरू जी ने उस पर कृपा कर उसे 'नाम दान' दिया तो वह लगा नाम-स्मरण करने। रात को तीसरे पहर उठकर वह नाम जपने बैठ जाता, फिर दीवान में उपस्थित होता। दिन में जो हुकुम होता उसे पूरा करता। उठते-बैठते नाम-स्मरण करता। शनैः शनैः मन निर्मल हो गया। वाहिगुरू के चरणों के प्रति आकर्षण और प्यार जाग गया। कभी-कभी विवेक विचार करे। गुरू सिखों का आदर सत्कार करता तथा विद्वान गुरू सिखों की सत्संगति और परमार्थ की बातें करता। कभी-कभी समय मिलने पर सतिगुरू भी उससे प्रेम-भक्ति की बातचीत करते।

एक दिन श्री गुरू जी एकान्त में बैठे थे तब करीम खाँ सम्मान के साथ उनके चरणों में आकर बैठ गया। बातचीत करते हुए उसने कहा-हुजूर! एक प्रार्थना है, गुस्ताखी माफ करके कृपया सुन लें तो आपकी बहुत मेहर हो। सतिगुरू मुस्कराये और कहने लगे वत्स कहो। तब वह हाथ जोड़कर बोला-हे खुदावंद! आप जो पदार्थ खाते हैं वे आप में योग और भगवद् भक्ति और प्रीति का भाव पैदा करते हैं, वैसे ही जैसे कस्तूरी मृग खाता तो घास है पर उसके पेट में सुगन्धित कस्तूरी पैदा होती है। पर वही पदार्थ जब हम खाते हैं तो हमारे अन्दर काम-भाव पैदा करते हैं जैसे वही घास गधे के पेट में जाकर उसके अन्दर राख में लोटने का भाव पैदा करती है। हे भगवान मुझे बताओ वह कौन सा पद है जहाँ पहुँचकर नाम का अभ्यास करने वाले पर पाँचों विकार अधिकार नहीं पा सकते। उसे तृष्णा का ताप नहीं लगता, मौत का भय नहीं रहता, और उस रस में, जिसे नाम रस कहते हैं उसमें वह स्थिर रहता है। मेरा प्रश्न मेरी ढीठता है। पर आपकी कृपा पाकर मैं इस तरह खुलकर बात करने लगता हूं। जैसे पहले कृपा की है वैसे ही कृपा करना। हे पातशाह! जन्म-मरण का भय दूर हो जाये। सांसारिक पदार्थ जिनकी आपने मुझ पर कृपा की है उनका मोह समाप्त हो जाएँ। जिसने सदा रहना है उसी अविनाशी रूप में मेरा मन स्थिर रहे।

श्री गुरू जी बड़ी गम्भीरता से उसकी बातें जो उसने विस्तार से कही थी सुन रहे थे, जब वह चुप हो गया तब आप भी चुप बैठे रहे। कुछ क्षणों बाद कहने लगे-वत्स सुनो! आज से दसवें दिन तुमने मर जाना है। यह कहकर सतिगुरू उठकर चले गये और वह अत्यन्त भयभीत अपने डेरे की तरफ चला गया। सोचने

लगा मैंने संसार के कठिन दुख भी देख लिए हैं। मुझे फिर से सभी सुख भी मिल गये। सभी आराम और सुख के सामान गुरू जी ने मुझे दिये। फिर सतिगुरू ने मुझे नाम-दान दिया। पदार्थ और स्त्री ने तो साथ नहीं जाना, वे तो यही रह जायेंगे। केवल नाम ही साथ जायेगा। अब जब मैंने ही नहीं रहना, पदार्थों के साथ जाना नहीं, इसलिए इनके मोह से छूटने से पहले मैं इन्हें छोड़ दूं। पर कैसे छोड़ूं? इनमें से वासना खींच लूँ और मन को तथा वासना की टेक को एक परमेश्वर के नाम में लगा दूँ, जो मुझे प्राप्त है, जिससे कि जीवन को जा थोड़ा सा समय है, उसे अधिक से अधिक मैं भजन में लगाऊं। सतिगुरू की वाणी कहती है-

सरब तिआगि भजु केवल रामु॥ (गउ: कबीर)

मैं मन से सभी कुछ दूर कर केवल नाम का स्मरण करूं। ऐसा सोचकर वह नाम स्मरण में लग गया। दिन-रात नाम स्मरण करता रहा। मौत पास जानकर उसमें वासना उत्पन्न नहीं हो रही थी। यदि उठती भी तो मन उन्हें बाहर निकाल देता कि तू अब तैयार है। वासना से तुमने अब क्या लेना? अब तुमने कितने दिन जीना है जो वासना से ग्रस्त होता है। वह फिर अरदास में लीन हो जाता है कि हे वाहिगुरू! आप ही अविनाशी है, मुझे अपने दर्शन दो, मैं आपको प्राप्त करूं, मुझे अपने चरणों में स्थान दो अपनी शरण में लो। जो चाहो सो करो पर अब मुझे अपनी शरण में जरूर ले लो। इस तरह सभी वासनाएँ दूर हो गयीं, उसका मन परमात्मा में लग गया। दसवें दिन उसे ऐसे लगा कि कोई उसके बन्धन काट रहा है-हृदय के नयनों से। उसे ख्याल आया कि क्या मरेगा, मरेगा शरीर। मैं तो शरीर नहीं। मैं तो परमात्मा का अंश हूं। परमात्मा अविनाशी है उसका अंश भी अविनाशी है। यह अंश अब परमात्मा में लीन उसी तक पहुंचा है। संकल्प मर गये हैं, वासनाएँ मर गयी हैं, शेष मैं हूं, उसी का अंश, यह नाशवान नहीं। अंश का अपने समग्र से वियोग दुख का कारण था, वह दूर हो गया। इस वियोग में जो अहं को धारण करने वाला था-वह ही दुख-सुख का जनक था। जब वह नही तो बाकी खुदा है, रब है, वाहिगुरू है। अहं गया, मैं गया। हां सचमुच मैं तो मर गया 'मैं' जिसे मैं जीवन समझता था मर गया। पर वह 'मैं' नहीं मरी जो अविनाशी है **'हऊ न मूआ मेरी मुई बलाइ॥'** मैं मर गया। सतिगुरू का कथन सत्य हो गया। मुझे सतिगुरू ने मृत्यु देकर अविनाशी कर दिया। वाह कलगियों वाले, तेरी रमजें। वाह मेरे जुल्फों वाले मुरशिद। वाह तेरे संकेत, वाह मेरे सरदार! गमजे किधर इशारा करते है और फल किधर देते हैं। 'तूने दसवें दिन मर जाना है। वाह! वाह!!'

हे मन। शायद अब देह ने मरना हो, दाती जी का यह तात्पर्य भी तो हो सकता है। वह जाने। आये शरीर की मौत आये। अब मरने का मुझे कोई भय नहीं। हाँ, पर एक बात है, इस मौत से पहले मुक्ति देने वाले गुरू के दर्शन इन

नयनों से करते हैं। चल, चरणों में पड़, माथा टेक और कहो–हे दाता! वह मौत तो मेरी आपने मार दी, जिस मौत से सभी डरते हैं। मुझे नहीं, आपने तो मेरी मौत को मारा है। अब यदि शरीर ने मरना है तो अपने चरणों में मृत्यु दो और यदि शरीर ने जीना है तो कलम लगी शाखा की तरह तेरे साथ लगे जो जीवन ने लगन पायी है, उसी में जीऊं। मैं अब फिर अंहकार में पड़कर न जीऊं।

इस तरह से विचार करते हुए प्रसन्न मन वह दाता गुरू जी के चरणों में उपस्थित हुआ। श्री सतिगुरू ने देखा कि चेहरे पर प्रसन्नता है, माथे पर लालिमा की आभा है, मुस्कराये और बोले–सुनाओ वत्स। जीवित हो कि मर गये।

करीम खाँ–पातशाह! मर गया। पर आपकी कृपा से मर कर जी उठा मुझ मूर्ख को क्या पता था कि आपके एक वचन से ही मुझे नया जन्म मिल जाना है। आपके वचन से भयभीत होकर मैंने मन को एक ओर स्थिर कर लिया। उस एकाग्रता ने नश्वर अज्ञानता को समाप्त कर दिया। कभी न मरने वाले जीवन की आपने मुझे समझ दी। आप धन्य हैं। जो वचन किया, किया, पर रमज के साथ किया। इस रमज ने मेरा लोक-परलोक संवार दिया।

सतिगुरू जी–पहले यह तो बताओ कि इतने दिन तेरे खाने-पीने ने तेरे मन में रज-तम या कामना और वासना के भाव जिसे तुम कहते थे, या अन्य बुरे भाव पैदा किये।

करीम खाँ–नहीं।

गुरू जी–इन दिनों में तुम्हें पोष्टिक भोजन खाने के लिए मिल रहे थे।

करीम खाँ–दाता जी! मुझे तो इसका ज्ञान भी नहीं कि मैंने क्या खाया।

सतिगुरू जी–पर क्यों?

करीम खाँ–पातशाह! मैं तो निश्चित मौत के भय के कारण नाम-स्मरण में मस्त था।

गुरू जी–भय किसका?

करीम खा–भय मौत का। लग रहा था कि मौत आ रही है। इसलिए मन में यही विचार आ रहा था कि जितना नाम-स्मरण कर सकता है कर ले।

श्री गुरू जी–अब आप समझ गये होंगे कि खाने-पीने के पदार्थ गुरमुखों पर विकारी प्रभाव नहीं डालते। गुरमुख आचरण को ही सत्य समझते हैं। उसके अन्दर कामनाएं और वासनाएं भगवद प्रेम की पैदा होती हैं। जिनका प्यार हृदय से सच्चे पातशाह के साथ नहीं, जिन्होंने परमात्मा को जीवन से अलग करके देखा है, वे शरीर के भोगों में लीन रह शरीर और मन की शक्तियों को खो देते हैं। जिनके हृदय में परमात्मा से प्यार है, परमात्मा उन्हें स्पष्ट कर देता है कि शरीर नश्वर है, इसका मरना जीवन अर्थहीन है, तुम राम का अंश हो, वह अविनाशी है। यह अंश

भी अविनाशी है। इस अंश को परमात्मा के साथ मिला कर रखो। यदि तुमने नश्वर से प्यार किया है तो उसे तोड़कर अविनाश से प्यार करो, तभी तेरा मृत्यु भय दूर हो जायेगा। जब मन का संकल्प जीवन-मरण की सीमा को पार कर जाता है तो अमर हो जाता है। सबसे पहले है काल का भय। इस भय से घबरा कर निठल्ले बैठना और रोना उचित नहीं। शरीर तत्वों से बना है, तत्व नाशवान हैं इन्हीं से बने शरीर में 'मैं' का वास है। मैं शरीर नहीं है। मैं सदा जीवित अविनाशी प्रभु का अंश है और उससे अलग रहना मौत और दुखों का कारण है। उसके साथ उसके नाम स्मरण द्वारा मिले रहना, यह सदा के जीवन सागर में मिले रहना है। फिर उसके हुकुम को पहचानना है। जो भी जगत की रचना है, उसी के हुकुम से हुई है। जो हो रहा है, उसी के हुकुम से हो रहा है। अहंकार का भाव नहीं होना चाहिए। अहंकार ही हमें परमात्मा से अलग करता है। **'कहु नानक जिनि हुकुम पछाता॥ प्रम साहिब का तिनि भेदु जाता॥'** वत्स! जब शरीर ने रहना नहीं, पर रहते हुए उसने कुछ तो करना है, इसलिए जो करना है नेकी वाला कर। इसी तरह संसार में रहते हुए नेक कर्म करते हुए जीना चाहिए।

करीम खाँ—आपने सत्य फरमाया है। पर पातशाह! इस संसार में विभिन्न मत, विभिन्न धर्म, कौम, जातियों, नस्लों का भेद करके क्यों अलगाव पैदा किया जा रहा है। सभी अपनी तरफ खींचते हैं और दूसरे को बुरा भला कहते हैं। आप एक नए पंथ के प्रवर्तक हैं आपके इस नये पंथ में अलगाव नहीं, वैर नहीं खींचतान नहीं, यह कैसे हैं।

गुरू जी—सुनो भाई—

कोऊ भयो मुंडीआ संन्यासी कोऊ योगी भयो,
भयो ब्रह्मचारी कोऊ यतीअनु मानबो।
हिंदु औ तुरक कोऊ राफजी, इमाम साफी,
मानस की जात सभै एको पहिचानबो।
करता करीम सोई, राजक रहीम उई,
दूसरों न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक ही की सेव सभ ही को गुरदेव एक,
एक ही सरूप सभै एकै जोत जानबो॥८५॥
देहुरा मसीत सोई, पूजा और नमाज उई,
मानसा सभै एक पै अनेक को प्रभाव है।
देवता अदेव जछ गंध्रब तुरक हिंदु,
न्यारे-न्यारे देशन के भेस को सुभाव है।
एकै नैन, एकै कान, एकै देह, एकै बान,
खाक बाद आंतस औ आब को रलाव है।

अलह अभेख सोई, पुरान औ कुरान उई,
एक ही सरूप सभै एक ही बनाव है॥८६॥

वास्तव में यही सच है। हमारा भी एक मार्ग है, पंथ है। पर यह तालाब में दरारें पैदा करने वाला स्थिर नहीं, परन्तु दरारों को मिटाने वाला बहता शीतल जल है। हमारा मार्ग यह है कि आपस में वैर भाव मत रखो, प्रेम भाव धारण करो, प्रेम करो, भजन करो, परमात्मा के पास जाओ। जिससे कि मन की अलगाव वाली मैल उतरे और व्यापक दृष्टि मिले। संकुचित और धोखा-धड़ी वाली आत्मा-परमात्मा में वास नहीं करती। यही शिक्षा देने में, जीवों को गुरमुख बनाकर परमात्मा के साथ जोड़ने ओर ईर्ष्या वाले मार्ग को नष्ट करने में लगे हुए हैं। वे प्रजा पर अत्याचार करते हैं, हम सुमति देते हैं कि ये तुम्हारे ही भाई हैं, इन्हें प्यार करो। धर्म एक मार्ग का नाम है, और मार्ग परमात्मा का है। परमात्मा प्रेम है। प्रेम स्वरूप के मार्ग पर छुरी और कत्ल, वैर तथा विरोध का प्रयोग मत करो। वे अब इस पंथ को भी नष्ट करना चाहते हैं। हमने उनकी चल रही तलवार के सामने अपनी तलवार पेश की है जिससे यह ढाल बन द्रोही की तलवार को तोड़कर संसार में सुख शान्ति स्थापित कर सके। हे वत्स! परमात्मा में लीन रह और परमात्मा की सृष्टि के साथ वैर रहित रह। जगत में काम करते हुए गुरसिख खुद को न्यौछावर कर देता है। गुरमुख अहंकार से दूर रहते हुए, नेकी और सदाचार के साथ भले के काम करता हुआ परमात्मा के हुकुम पर दृष्टि रखता है। हमार भी पंथ है। शहर में लगी आग को बुझाने वालों का एक जत्था है। यह निस्वार्थ सेवकों को जत्था है, जिसकी स्थापना शान्ति स्थापित करने के लिए की गयी है। इसीलिए हम पंथ के हर व्यक्ति को नाम दान देते हैं, परमात्मा के साथ प्यार देते हैं और यह ज्ञान देते हैं कि इस संसार में सदा नहीं रहना, इसलिए बुरे कर्मों द्वारा जीवन को बिगाड़ो नहीं, यह तो चलती सराय है, जितना नेकी का काम कर सको करो। शरीर नश्वर है उसके लिये पाप-कर्म मत करो। उसके लिए झूठ बोलने और बुरे कर्म करने का क्या अर्थ? यदि कहो कि धर्म और उपकार के लिए पाप कर लो तब भी उल्टी बात हुई। मजहब का रास्ता है प्रेम सागर के पास ले जाने वाला और 'नेकी कुल के पास पहुँचाने वाला' वहाँ झूठ, असत्य, वैर-विरोध भला क्या टिकेगा जिन्होंने सत्य को पहचान लिया है वे पवित्र हो जाते हैं। नाम-स्मरण करते हैं, जिसमें अहंकार का नाश होता है और परमात्मा से मिलन होता है। वत्स करीम! देखो यह जीवन थोड़े दिनों का है, पर आत्म जीवन सदा का है। अविनाशी जीवन आत्म-जीवन है अब जब तुम समझ गये हो कि यह अंश अपनी वास्तविकता को उसके स्मरण से पहुँच गया है तब तुम अमर और सुखी हो गये हो। अहंकार दूर हो गया है, अब न काम है, न क्रोध, न लोभ न मोह, न तृष्णा है और न वासना। तुम अन्तरात्मा से जुड़ रहे हो–

मिलिअै मिलिआ ना मिलै-मिलै मिलिआ जो होइ।

अन्तर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीअै सोइ॥ (वार सूही महला ३)

महाराज इस तरह की बातें कर रहे थे, वह राजपुत्र अपने में ही समाता जा रहा था, मानो अपने आप से जुड़ता हुआ उसी में लीन हो गया हो। सतिगुरू चुप हो गये। अपने आप में वह अनुभव के देश में मग्न हो गया। कुछ समय के बाद जब नयन खुले तो उसे बाहर भी परमात्मा का ही प्रकाश नज़र आया। सभी जगह उसी का प्रकाश था। यह देखकर उसके नयन फिर मुंद गये। कई बार उसने नयनों को बन्द किया और खोला। अब जब उसने नयन खोले तो सतिगुरू के सुन्दर चेहरे पर पड़े। आप उस समय किसी दगदग कर रहे इलाही रंग मे थे। वह क्या देखता है कि जिस असीम, अनन्त में वह सो गया था, वह तो मेरे सामने बैठे शरीर में साक्षात विद्यमान है। यह जलवा अजीब था। वह प्रकाश असहनीय था। जो रस उसे आ रहा था उसका वर्णन सम्भव नहीं। इस रस से जब वह चिंतन में आया तो उसने चरणों में सिर धर दिया। उसके शरीर में बिजली की एक लहर दौड़ गयी। वह चरणों से लिपटता है और मन कहता है–बड़े-बड़े योगी संन्यासी खुदा को ध्यान का विषय नहीं बना पाये, पर देखो प्रेम के वशीभूत कैसे वह इस शरीर को ध्यान का विषय नहीं बना पाये, पर देखो प्रेम के वशीभूत कैसे वह इस शरीर में बैठा है और मेरे नयनों को साक्षात जलवा दे रहा है। वाह! वाह! धन्य है, विरद उस रब का, अल्लाह का, वाहिगुरू, मेरे अपने वाहिगुरू का।

श्री सतिगुरू ने उसका शीश बड़े प्यार से उठाया, सिर पर हाथ फेरते हुए कहा–वत्स! लगा रह अपने रंग। तेरे लिए अब यही कर्म है, इसी रंग में लीन अपनी जीवन यात्रा को समाप्त कर।

करीम को होश आया, वह कृतज्ञ हो गया। बोला–वाह पातशाह! आत्म ज्योति के प्रकाशक! मैंने सोचा था कि मैं राज्य गँवा कर कंगाल हो गया हूं। पर आपने मुझे पुनः ऐश्वर्य प्रदान किया मुझे सरदार बना दिया। मुझे क्या पता था कि मैं अमूल्य राज्य–आत्म राज्य गँवा कर अभी भी कंगाल हूं। हाय! उस राज्य के खोने का मुझे ज्ञान तो था, पर इस राज्य के खोने का मुझे ज्ञान नहीं था। हे दाता! तुम धन्य हो, जिसने नाम दान देकर, मेरे नयनों को खोल दिया, मुझे आत्म-राज्य प्रदान किया जो सभी राज्यों में श्रेष्ठ है। धन्य हैं आप! हे गुरू गोबिन्द सिंह! मोक्ष के दाता। आप धन्य हैं! आप धन्य हैं! ऐसा कहते-कहते वह अन्तर्मुखी हो गया और कुछ समय बाद कादर कर्ता करीम के देश चला गया।

सूचनाः इधर आत्म रंग खुलते हैं और उधर युद्ध के बादल घिर आते हैं। जिसके लिए गुरू जी की पूरी तैयारी होती है। पहाड़ी राजाओं ने फिर आक्रमण किया। जमतुल्ला गुज्जर को साथ ले लिया। घोर संग्राम मचा, जमतुल्ला मारा

गया। पहाड़ियों ने बहुत तैयारी की थी, उधर खालसा पंजाब से सुसज्जित हो बड़ी गिनती में आनन्दपुर आ गया। रोज घमासान युद्ध होता। मस्त हाथी का किले पर आना, सिंहो का उसको जख्मी करके वापस भगाना आदि का वर्णन अगले प्रसंग से स्पष्ट होता है।

गीत

एक प्रार्थना

टेक–हाँ कौन है जो ऐस वेले आ करे दिलदारीआँ
अब साँझ है, हाँ साँझ है, अब साँझ है अन्धकारपूर्ण
पड़ रही है बर्फ अब, अब हो रही है शीत।
न प्रकाश, न चाव है, न उष्णता खेलने वाली,
दिल को हंसाने वाली सखियाँ, अब गयीं सारी।
अब अकेली हूं, अब मैं हूं, अब मैं से मैं हैं डर रही,
सोच सहमती सोच से, अकल-अकल से हारी।
तू बता कलगी वाले! तुझ से बाहर क्या है भला,
हाँ कौन है जो इस समय आकर करे दिलदारियाँ।
हे बेकसी का यार तू, है कल का बेली तू ही
है दर्द का दर्दी तू ही, दुखों को दूर करने वाला तू ही।
खुद को अपनी सहम से, खुद को अपनी कैद से
तलवार तेरे प्यार की देती है छुटकारा।
ज़ालिम डराये तूने सदा, मजलूम को लिया गोद में
फिर दिल ऊंचे किये ओर दी सरदारियाँ।
पा ताकत तुझसे चिड़ियाँ ने, बाजों को संकट में डाला
कस्तूरियों ने मार शेर ली थी बरखुरदारियाँ।
उजड़ों को बसाया तुमने सदा, बिगड़ों को संवारा सदा,
अब जगत हैरान है देखकर ये गुलकारियाँ।
आओ अवगुण क्षमा करो, अब देर का बेला नहीं,
हे रहमत के मालिक! आओ सदके सभी।
मैं वारी जाऊं नाम पर, और आपकी याद पर
और याद के इस आसरे जाऊं मैं बलिहारी।
हाँ डोर अपनी याद की इस गम में मुझे दो
निज लगाव में रखना, देकर कसक प्यार की।

पीली परियाँ

थल सूखे थे, बन भी सूख गये, जूहें हुई हरी।
खिलखिलाती खड़ी सुन्दर सरसों, मानो पीली परियाँ
कलगी वाले के मार्ग पर दरस प्यार की भरी।
आया वारने के लिए है खड़ी, हाथ पर जान धरी।

❑ ❑

५१ बचित्र सिंह

आनन्दपुर–शत्रुओं से घिरा आनन्दपुर–में रणजीत नगाड़ा बजा। यह निशानी है 'आसा दी वार' का भोग पड़ने की। अब जंग का काम आरम्भ होना है। रणजीत नगाड़े की गर्जना ने बता दिया कि वाहिगुरू का स्मरण, वाहिगुरू का कीर्तन युद्ध भूमि में भी नहीं छोड़ना है। सिखी की नींव अकाल पुरुष जी पर है, उन्हीं की अराधना हर समय होनी चाहिए, अमृत वेला उनके कीर्तन का है इससे खालसा ने कभी विमुख नहीं होना। वाहिगुरू और वाहिगुरू से विमुख की बहादुरी, शूरवीरता, हठ, कष्ट सहना कोई अर्थ या मूल्य नहीं रखते, क्योंकि वह शक्ति का कर्म है, वह अहंकार का चमत्कार है:

सूरे एहि न आखीअहि अहंकारि मरहि दुख पावहि।
अहंकारि मुए से विगुती गए मरि जनमहि फिरि आवहि॥

(वा॰मा॰म॰ ३)

आन्तरिक झुकाव, लगाव, दृष्टि सदा वाहिगुरू में लगी रहे तो व्यक्ति वाहिगुरू का है, उसके साथ लगा हुआ है, उसकी लौ व्यक्ति में लगातार आ रही है, हां, वह स्वामी के जीवन के साथ लगा स्वामी के जीवन के साथ जी रहा है। वह अहंकार में नहीं। वह जो कुछ करता है परमात्मा के हुकुम से करता है। उसके कर्म 'अकर्म' हैं, उसके कर्म उच्चा सदाचार हैं, उसके कर्म परमात्मा को स्वीकार हैं। वह जो है–"करम करत होवे निहकरम" का रंग खुद में रखता है। वह सिख है, वह सिंह है, वह ही खालसा जी है। रणजीत नगाड़े ने मानो उत्तेजित किया हो–उठो, स्वामी की आराधना करके, सुन्दर हो गये खालसा जी उठो। कीर्तन करके कीर्तन से अलग न हो जाओ, पर अन्तरात्मा के अखण्ड कीर्तन में जाग्रत खालसा जी–'पूरन जीत जगै घर मैं' रसना के तख्त पर सदा पातशाह के नाम को बैठा कर रखने वाले खालसा जी। हाँ, ऐसे ही जियो खालसा जी। 'मुख ते–हरि चित्त में जुध्ध बिचारैं।' मुंह पर युद्ध और चित्त में हरि के निवास वाले और बाहर और अन्दर से जाग्रत खालसा जी अब युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

'खेतु जु मांडिउ सूरमा अब जूझन को दाऊ'

युद्ध के मैदान में उनसे जूझना है जो परमात्मा से अलग हो गये हैं, अकारण आक्रमण कर रहे हैं। जो वैरियों के गोले बनकर अपनों को मारने के लिए आ गये हैं।

वीर बाँकुरे, त्रिछैले, मुछैले, दाड़ियों से सज्जित चेहरे वाले खालसा जी वाहिगुरू वाहिगुरू का उच्चारण करते साहिब गुरू गोबिंद सिंह के आसपास उनका प्यार पा बैठने लगे हैं। कमर कस कर सज रहे हैं, खड़ग धारी हैं, ढाल बंधी हुई है, क़न्धे पर कमान है, किसी ने बंदूक पकड़ी हुई है तो किसी ने तलवार, किसी ने कुछ तो किसी ने कुछ।

हाँ जी, किले के बाहर शत्रु दल में अब कोलाहल मच गया है। ढोल, तुरियाँ, रणसिंगे, जोर-जोर से बज रहे हैं।

अपने सूरमों, योद्धाओं की ओर कलगीधर महाराज ने एक नजर से देखा फिर बोले-मटू सिंह और सेवा सिंह नजर नहीं आ रहे।

इतने में दो सिंह आये, माथा टेक कर गुरू-चरणों में अरदास की-पातशाह दूनी चंद रात को अपने साथी-जो वह माझे से हुजूर की सेवा में लड़ने के लिए लाया था-साथ लेकर भाग गया है। मटू सिंह, सेवा सिंह भी साथ ही चले गये हैं।

गुरू जी-रात को क्या कोई नयी घटना घटी?

सिंह-नयी बात तो पातशाह जी कोई नहीं हुई।

कल साँझ के समय जो आपने कहा था कि दूनी चंद राजाओं के हाथियों को मार भगायेगा उससे वह डर गया और मौत के भय से भाग गया।

गुरू जी-यह कैसे पता लगा कि वह इसी कारण भागा है।

सिंह-पातशाह! वह रात को अच्छे-अच्छे सिंहों से मिलता रहा और उन्हें भाग जाने के लिए प्रेरित करता रहा। श्री गुरबख्श सिंह के साथ वह क़ाफी समय विचार विमर्श करता रहा। उन्होंने उसे बहुत समझाया और विस्तार से बताया कि-

अधिक भाग तेरे कुछ जागे। जा पर कृपा सिंध अनुरागे। काज आपना, कर हैं आपे। तेरे करि हैं अधिक प्रतापे॥१२३॥ (गुर बिलास सुखा सिंह)

फिर उन्होंने कहा-दूनी चंद हिम्मत रख। साहिब सभा में बैठ कर लाखों में से एक को पुकारे तो वह धन्य हो जाए। देखो हमारा साहिब तो 'आप' है। उनकी बताई सेवा में उनका लाभ नहीं। वह हानि-लाभ से ऊंचे हैं। उसमें लाभ हमारा ही होता है। दूनी चंद सेवा तो बहाना है प्रभु की कृपा का। पर दूनी चंद को मौत का भय बहुत त्रास दे रहा था कहने लगा-हाथी ने जब मुझे चीर देना है तो मैंने यश-प्रताप का क्या करना है? उन्होंने समझाया कि यदि वे तुझे हाथी के सामने भेजेंगे तो शेर का बल भी देंगे, तुम भरोसा करो और सूरमा बनो। मौत का विचार भी कर ले। सिख सूरमा मौत से भयभीत नहीं होता। परमेश्वर के प्यारे को मौत का भय होता ही नहीं। सतिगुरू ने हम सभी को पहले जीना सिखाया है, फिर उन्होंने मरना सिखाया है। ऐसे मरना इस तरह के जीने का सफल अंत

है। मरना एक क्षण है, एक पल है। मरना यहाँ आँखें मूंदना और वहाँ (परलोक में) खोलना है। मरना अब मौत दिखती है, पर मरकर किसी और अवस्था में नया जन्म होता है। हे सज्जन! सतिगुरू ने कहा है कि किसी से भयभीत न हो। मौत दुखदायी नहीं, मौत का भय दुखदायी है, त्रास से मुक्त हो, भय दूर कर, शेर बनकर झपट। पर दूनी चंद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मौत के भय ने उसे जीते जी मार दिया। वहां से उठकर वह मझैले के मोर्चे में गया और उन्हें प्रेरित किया और आधी रात को काफी साथी लेकर भाग गया।

श्री गुरू जी सुनकर चुप हो गये। फिर बोले–

महाराज जू कृपा सिंध बरदान–'सनमुख जो सो
मेल लिहु भजै सो देवहु जानु॥' (गुर बिलास)

मौत से डर कर भागा है दूनी चंद। हमारे पराक्रमी पूर्ण पद के सिख सालोह का पोता, हाँ मौत से डरकर, पर मौत सामने खड़ी है। यदि मौत हाथी के साथ जूझने में है, तो क्या हर क्षण, हर कदम पर, हर अवस्था में मौत नहीं है।

जो कहुं काल ते भाजके बाचियत तो कि हकुंट कहो भज जईऐ
आगे हूं काल धरे असि गाजत छाजत है जिह ते नसि अईऐ
ऐसोन कै गयो कोई सु दाव रे जाहि उपाय सो घाव बचईऐ
जाते न छुटीऐ मूढ कहु हसि ताकि ना किऊ शरणागति पईऐ।

(बचित्र नाटक पा॰ १० धि, छंद ९७)

मरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो॥ (वड म॰ १)

मरने से कभी मत डरो। मरने से डर कर भागे हैं मझैल साथी मसन्द के। मझैलों का तो युद्ध में विवाह हुआ है, युद्ध तो उनके गले पड़ा है, युद्ध तो उनकी रोटी के साथ लिपटा हुआ है। हाँ, यह जीवन जंग है, अंग-अंग में, रंग-रंग में। चलो जाने दो, जो पीठ दिखा गये। पीठ दिखाने वालों की पीठ मत देखो। जो समक्ष हैं उन्हीं का दीदार करो। आओ युद्ध भूमि में खरे उतरो।

एक सिंह–रात को जो हाथी वाली खबर आयी थी वह सच है। जसवारी हाथी तैयार कर रहे हैं जो लोहगढ़ के दरवाजे को टक्कर मार कर तोड़ देगा और पहाड़ी राजा हल्ला बोलकर किले पर अधिकार कर लेंगे। इसी को वे अपनी विजय समझते हैं।

---

१. दूनी चंद की यह दशा हुई कि जब वह मोर्चे से रस्से के सहारे नीचे लटका तो उसके शरीर के वजन से रस्सा टूट गया। वह नीचे गिरा और उसकी एक टांग टूट गयी। उसके साथी उसको बुरे हाल में लेकर निकले फिर चारपाई पर लिटा कर अमृतसर ले आये। वहां एक सांप के डसने से वह मर गया।

गुरू जी (मुसकरा कर) हाँ, मेरा कोई शेर उस हाथी के माथे पर वार करेगा और वह मस्त हाथी अपने ही दल को रौंद डालेगा। 'करे पर को आये घर को।' हमारे लिए तैयार किया गया हाथी उन्हीं का श्रृंगार करेगा। बदी सदा खुद पर ही पड़ती है। नेकी पानी पर पड़ी तेल की बूंद की तरह सभी तरफ फैल जाती है।

फिर महाराज जी ने चारों तरफ दृष्टि डाली। अपने आस-पास बैठे सूरमाओं के चेहरों पर बिजली की चमक-सी उनकी दृष्टि पड़ी। श्री साहिब जी के रात को 'पलंग पहरे' का बीस-पच्चीस जवानों का एक दस्ता था। इनमें एक सूरमा था–बचित्र सिंह। वह दक्षिण पंजाब का वासी और भाई दास नायक का पोता था। अमृत-पान करने से पहले वह राजपूत था। गुरू जी की आलौकिक दृष्टि उस सूरमे पर टिक गयी। उसके हाथ में भाला था। वह खुद को न्यौछावर करने वाली प्रीति में खड़ा था। श्री साहिब ने आवाज दी–हे मेरे बचित्र सिंह। चिंघाड़ते मद-मस्त हाथी का मुंह तुमने मोड़ना है। तेरे नेजेबाजी ने आज सफल होना है। 'तैयार हो जाओ और लोहगढ़ में चले जाओ।'

यह सुनकर सूरमा आगे बढ़ा, सिर झुकाकर हाथ जोड़कर वह बोला–

जीत हार जानों नहीं दयाला। हुकुम मान सिर धरों उताला।।
सेवक चलयो उर तिह जैहै। जिह दिश दइया सिंधु फुरमैहै।।
(गु० बि० सू० सिंह)

मोहि मरन को चिंत न कोई तुमहिं दास की लाजा।
खरो होन मिस मेरे इक है आप करहु निज काजा।।२१।। (सू० प्र०)

श्री गुरू जी सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। सिख की पीठ थपथपाई और आशीर्वाद दिया। और प्यार से कहा–'मेरा शेर, मेरा शेर।'

बचित्र सिंह बड़ा सूरमा था। लम्बा कद। नेजेबाजी में निपुण, शरीर के सभी अंग मजबूत अर्थात् अंग-अंग में वीरता थी। गुरूचरणों में उसका अडिग विश्वास था। वह निर्भय सूरमा अपने कठिन काम के लिए तैयार हो गया। इस तरह जब वह कस-कसा कर तैयार हो गया तो सतिगुरू जी ने उसे एक कीमती नेजा दिया। उसका लम्बा हत्था इस तरह का बनाया गया था कि जोर पड़ने पर दोहरा हो जाए पर टूटे नहीं। यह नेजा सतिगुरू जी ने अपने खजाने से मंगा कर बचित्र सिंह को हाथी का सिर फोड़ने के लिए दिया। एक सुन्दर और मजबूत घोड़ा जो नेजेबाजी के युद्ध में प्रशिक्षित था, सवारी के लिए दिया। सतिगुरू का आशीर्वाद लेकर सिंह घोड़े पर सवार हो, मूंछों को ताव देता उमंग और उत्साह से लोहगढ़ की ओर चल दिया–

भौंहै चढ़ी कमान मनिंदै मूछन पर कर फेरा।
खड़ग सिपर ते कमरकसी दिढ़ बरछा कर महि फेरा॥२९॥
बख्शयो बल बिसाल कलगीधर वध ग्योमन उत्साहु।
कुचर को पपील का जानत हतो तुरत रण मांहु॥३०॥
वधयो प्रमोद भयो तब गदगद परयो चरन गुर आगे।
दे थापी तत्काल उठायोः—'करहु जुंघ अनुराग'॥२॥
चतर प्रदछना दे प्रभु केरी सम सों फते बुलाई।
पिखत खालसा चलयो अंग को असु पर दृष्टि चलाई॥३२॥
कर वंदन पग भयो अरूढनि, बरछा हाथ हुलारा।
दूसर कर महिं बाग तुरंग की लै गुर नाम पधारा॥३३॥ (सु० प्र०)

: २ :

श्री सतिगुरू ने आज के युद्ध की सारी योजना अपने सरदारों को समझा दी। सभी अपने-अपने स्थानों पर डट गये। सतिगुरू जी खुद एक ऊंचे दमदमे (मोर्चा) पर जाकर बैठ गये जिससे सारी युद्ध भूमि दृष्टि में रहे। जो खेल आज होना है वह सब दिखे जिससे समयानुसार वे सेना को आदेश दे सकें। उदय सिंह, आलम सिंह जैसे सूरमा गुरू जी के पास बैठे।

दूसरी ओर से सेना आगे बढ़ी, आगे हरावल, फिर घोड़े पर सवार राजा केशरी चंद, साथ मदमस्त भूरा हाथी, जिसके माथे पर लोहे का तवा बांधा गया था और शरीर पर भी अन्य कवच थे, सूँड में तलवार बंधी थी जिसे वह दांये-बांये घुमा रहा था। पीछे असंख्य सेना हमले के लिए तैयार खड़ी थी। यह देखकर आलम सिंह ने कहा—साहिब जी। यह केशरी चन्द बड़े अहंकार में आ रहा है यदि युद्ध में यही मारा जाये तो फैसला हो जाये।

गुरू जी—ऐसा सोचना उचित नहीं। यह रणभूमि है। खुले युद्ध का अवसर है। कोई ज्यादा वीरता दिखाये, जान अर्पित करे, मरे और मारे।

आलम सिंह—कोई वीर बांकुरा सिंह भेजो। बचित्र सिंह तो हाथी से जूझे और वह केसरी को ललकार कर कहे कि आ भई हो जाएं दो-दो हाथ।

यह सुनकर गुरू जी बोले—अपना सिर हथेली पर लेकर कोई आगे बढ़े, आमने सामने मारना-मरना तो युद्ध का धर्म है।

तब उदय सिंह ने खड़े होकर विनती की—पातशाह! यदि आज्ञा हो तो आपकी शक्ति के सहारे में उसे ललकारूं। रणभूमि में मैं उस महा अहंकारी का सिर काट के आपके चरणों में प्रस्तुत करूं। हाँ, वह अपने दल के साथ है और मुझे अकेले ने हिम्मत करनी है, आहुति की तरह कुण्ड में पड़ना है। पर यदि आप कृपा करें तो मैं सशस्त्र सेना में घुस कर और उस तक पहुंच कर उससे

लोहा लूं। योद्धाओं का यही कर्म है। मैं किला-कोट को चीर कर उससे युद्ध करूंगा और निश्चय जीतूंगा। श्री जी! आप तो मालिक और पालक हैं। श्री जी के प्रताप से सभी सम्भव है। मुझे शत्रु का भय नहीं, मौत का भी भय नहीं, बस मुझे तो यही दिख रहा है कि शत्रु सेना को चीर कर, रंघड़, पठान, पहाड़ी सभी को चीर कर बिजली की तेजी से साँप को पकड़ लूं। आप आशीर्वाद दें।

यह सुनकर श्री जी ने उदय सिंह के लिए रणनीति तैयार की। एक प्रशिक्षित घोड़ा मँगाया गया। एक लम्बी और तेज धार वाली, असली फौलाद की तलवार और एक बरछा गुरू जी ने खजाने से मँगवाया। अब दूसरा सूरमा उदय सिंह आज्ञा लेकर लोहगढ़ पहुंच गया।

किले के अन्दर नाहर सिंह जत्थेदार था और शेर सिंह लोहगढ़ का दूसरा या उपजत्थेदार था। हाथी बढ़ता आ रहा था। दोनों तरफ नेजे वाले थे और आगे रास्ता साफ करने के लिए बंदूकधारी और तीर कमान वाले थे। उनका उद्देश्य लोहगढ़ पहुंचना था और सिख चाहते थे कि शत्रु पास भी न फटकने पायें। दोनों ओर से चल रही गोलियों का कवि संतोख सिंह ने सुन्दर वर्णन किया है-

गोरियां दुडरीआँ[१] सु छोरियाँ शरीर फेरि।[२] गोरीआ धनेरीआ बखेरीआ जे लोथ घोर।।६।। झुंड मुंड टुटिगो प्रचंड घमंड ही घालि।[३] टूटि हाथ पाइगे सु जंग कंध श्रोण डालि।[४] नैन कान नाक उठ ग्रीव भाल सीस लाग। फोरि देति गोरीआँ उतार देति कांहु पाग।।७।।

सवैया:-

बान सटा सट[५] छूट चले गन बीर कटाकट होने लगे।
नाद चटापट ऊठत दीरध होत हटाहट सूर अगे।।
तीखन भीखन[६] मार मची, रज शोण रची, भट चीर पगे।।७।।
अंगन भंग तुरंग भए गहि पेट फटे रणखत डिगे।।८।।
छूछ फिरे हिहनावत हैं हय, हाक पुकारना हैं कहि कऊ।
भारथ दूसर होति भइउ जमु मारि मर किहठां भर दोउ।।
धूल उठी अंधकार भइउ बड़ धूम उठयो जनु बारद होऊ।
होहि प्रकाश बरूद धूखैं तड़िता समता कहु पावति सोउ।।

---

१. दोनों तरफ से गोलियां चलीं।
२. फोड़ने लगीं।
३. सिर, मुँह, टूट गये, घमासान युद्ध हुआ।
४. हाथ, पैर, जंघाएं कट गयीं और खून बहा।
५. भयानक।
६. सूरमों के वस्त्र खून से भीग गये।

एक मोर्चे का नाम अगमपुरा था शत्रु ने पहले सारी ताकत उसी तरफ लगायी—

लोदी सूर निआजी चले, बावण खैल पठाण जु भले।।
राजे सरब गिरन के जानहु, गुजर रंघड़ अधिक प्रभानहु।।

(गु॰ बि॰ सं॰ सिंह)

इस आक्रमण में केसरी चन्द्र आगे के दस्ते में था और बिलासपुर का राजा पीछे था। कटोची, हंडूरी दायें-बायें हो गये थे फतहचंद तथा अन्य राजा अपने-अपने समुचित स्थानों पर खड़े किये गए थे। अगमपुर उन्होंने पूरा जोर लगाया। सिंहों ने भी डट कर टक्कर दी। बड़ी देर तक दोनों ओर वीर कटते मरते रहे। शत्रु दल की बहुत हानि हुई, पर वे गिनती में अधिक थे। सिंह अब किले के अन्दर चले गये। अगमपुर का मोर्चा खाली देखकर शत्रुओं ने उस पर अधिकार पा लिया। कुछ सेना उन्होंने अगमपुर छोड़ दी। बाकी सशस्त्र सेना हाथी को आगे लेकर लोहगढ़ की तरफ चली।

मोर्चे से धकेले गये सिख लोहगढ़ आ गये। अब पहाड़ी दल पर किले के अन्दर से गोलियों की वर्षा होने लगी। बड़ी कुशलता के साथ ऊपर से गोलियाँ चल रहीं थी और तीर बरस रहे थे। उस समय की बन्दूक आज की तरह जल्दी-जल्दी नहीं चलती थी। तब भी समयानुसार सिखों का बन्दूक चलाना उनकी कुशलता और निपुणता मानी जाती थी। पर शत्रु दल गोलियाँ खाता, जोश से भरा, मार की परवाह न करते हुए आगे बढ़ता आ रहा था वह गिर रहे सैनिकों की परवाह किये बिना आगे बढ़ रहा था। आगे हाथी पीछे सेना तलवारों और नेजे-भालों को चमकाती दरवाजे के पास आ गयी। किले में विचार हुई कि बचित्र सिंह को अब हाथी का सामना करना चाहिए। सतिगुरू की रणनीति अब रंग लायेगी।

ऊपर से गोली तीर चल रहे थे पर उनकी परवाह किये बिना शत्रु दल आगे बढ़ रहा था। वह इस ख्याल में था कि हाथी एक ही टक्कर में दरवाजा तोड़ देगा और शत्रु किले में प्रवेश कर जायेगा और फिर तलवारें चमकेगी कत्ल होगा और किले पर उनका अधिकार हो जायेगा। पर तभी अचानक दरवाजा खुला, दुश्मन समझे किले वाले शरण मांगने आ रहे हैं, थोड़ा रुक गये। महावत ने हाथी

---

१. अगमपुर के सिखों ने बड़ी वीरता दिखायी। थोड़े होने पर भी शत्रुओं के दांत खट्टे किए, सिंह लड़ते जा रहे थे और साथ-साथ लोहगढ़ की तरफ हटते जा रहे थे। यह सिखों की रणनीति थी कि जब अगमपुर शत्रु दल ज्यादा इकट्ठा हो जाये तब उसे लोहगढ़ की तरफ बढ़ने दिया जाये, जहां बचित्र सिंह हाथी को वापस भगाकर शत्रुओं के लिए मुसीबत खड़ी कर देगा और इस समय का लाभ उठा शत्रु पर विजय पा ली जाए। पहाड़ी राजा सिखों की इस रणनीति को नहीं समझ पाये। अगमपुर को छीन कर पहाड़ी राजाओं ने अपनी विजय समझी। बिना सोचे-विचारे के लोहगढ़ पर टूट पड़े।

की चाल को रोका। दरवाजे में से उड़ते सांप की तरह घोड़ा झपटा, शूरवीर बचित्र सिंह ने हाथी के सामने जाकर उसकी सूंड में बंधी तलवार का वार बचाते हुए, इतनी जोर से नेजा हाथी के माथे पर फेंका कि वह लोहे का तवा चीरता हुआ हाथी के माथे में धस गया। बचित्र सिंह ने हाथी की सूंड के दाव को देखा और फिर बरछे की ओर अन्दर धकेल कर मथानी की तरह घुमा दिया। हाथी के माथे से खून की धारा बहने लगी।

कवि संतोख सिंह ने इस घटना का सुन्दर वर्णन किया है।

चरबत उठन[1] लाल बिलोचन फकरत मूछ उठाई।
भ्रकुटि चढ़ी कुटिल, मुख, लाल शमस महाँ छबि छाई।।३५।।
मनहुं क्रोध ते शर सटा उठ भीखन[2] दरशन होवा।
तोमरि धरिकै हाथ उभारयो हाथी मस्तक जोवा।[3]।।२६।।
पग को बल रकाब पर करिकै उछलयो आसन छोरा।
सम शरीर को उज[4] संभरिकै हय फाँदयो गज उरा।।३३।।
सैफ बचाइ चलाइ सु बरछा तवा पुलादी फोरा।
बरयोजाइ गज मस्तक मैं जब पुन करि जुग कर जोरा[5]।।३८।।
करयो धसावन, प्रविशयो ऐसे उपमा कहो बनाई–
क्रोच सैल में जिम शिवनंदन बरछी मार धसाई।[6]।।३८।।
पुन तोमर[7] को दनहुं कर में बल से बहु झकझोरा।
खैंचि निकासयो शोणत लिपटयो कीनस अपनी उरा।।४२।।
बरछा लगत चिंघारयो दीरघ कुंचर[8] सीस निवाय।
जनु गुर सिख ने बंधन ठानयो मैं भूलयो इतआयो।।४३।।

(सू० प्र० रा० ४–२६)

अब हाथी क्रोध से भरा पीछे की तरफ मुड़ा। मुड़ते ही मानो काल भयानक रूप धारण करके अपनी सेना पर टूट पड़ा हो। जो भी पास आया उसके पैरों तले कुचला गया। जो भी पास फटका उसकी सूंड में बधी तलवार का शिकार हुआ। जिसने उसे मोड़ने का प्रयत्न किया उसने उसे परलोक पहुंचा दिया। मदमस्त और

१. होंठ चबाता हुआ।
२. बली, शेर की भयानक उठी हुई अयाल।
३. देखा।
४. बल।
५. दोनों हाथों का जोर लगाकर।
६. क्रोच पहाड़ में जैसे शिवजी के पुत्र ने बरछी मार कर धसाई थी।
७. बरछा।
८. हाथी ने।

घायल हाथी ने ऐसा घमासान मचाया कि प्रत्येक को प्राणों के लाले पड़ गये। वे जो एक मोर्चा जीत कर अहंकार से भरे हुए थे और अपनी विजय को निश्चित समझ निश्चिंत हो गये थे, इस अचानक हलचल से भागने लगे और एक दूसरे पर गिरने लगे। एक ओर हाथी तलवार चला रहा है, दूसरी ओर पैरों तले पीस रहा था। इस मार ने पहाड़ी राजाओं की सातों सुधें भुला दीं। उन्हें आँखों के सामने प्रलय नज़र आने लगी।

इस विपत्ति के समय यदि कुछ पहाड़ियों ने साहस कर, हाथी को पुचकार कर, ललकार कर किले की तरफ मोड़ने का प्रयत्न किया भी तो किले में बैठे सिंहों के इशारे पर भाई बचित्र सिंह तथा अन्य योद्धा आगे बढ़ते और अपने लम्बे-लम्बे नेजों की नोंक को वे हाथी को पीछे से चुभो देते जिससे वह और अधिक क्रोध से अपने ही दल पर भागता और खीझ कर अपने ही दल पर टूट पड़ता। कवि संतोख सिंह कथा लिखते हुए कहते हैं कि पहाड़ियों में अब भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'अमुक तो हाथी की तरह घरवालों पर ही टूट पड़ा है।'

इस हलचल और भागम-भाग का सिखों ने पूरा लाभ उठाया। अगमपुर का मोर्चा छोड़कर सिख मानो हार गये थे, अब वैरी दल में घमासान मचा रहे थे। लोहगढ़ से गोलियों और तीरों की बरसात हो रही थी और दूसरी ओर हाथी तबाही मचा रहा था–

एक उर प्रभु को दल मारत। दूजी उर गइंद[१] पछारत।
यों तुरकन को कटक अपार। कीनी मार पलक महि छारा॥२१८॥
जोन दिशा वहि नाग[२] सिधारत होत सथार अगै दल जाई।
बारन[३] बाज न राज बिचारत[४] पैदल सैन गिरै बहु भई।
काल सभान सु क्रीड़त है गज कौन सकै तिह को छबि गाई?
पौण समान फिरयो हित बारन[५] अभ्र[६] किध अरि[७] सैन पलाई॥२१५॥

(गुर बिलास सुख सिंह)

सिंह सूरमे किले में से कूद कर मैदान में आ गये थे। आलम सिंह, शेर सिंह, नाहर सिंह, उदय सिंह आदि जत्थेदार अपने-अपने दस्तों के साथ

---

१. हाथी।
२. हाथी।
३. हाथी।
४. हाथी, घोड़े और राजा आदि किसी का विचार नहीं करता।
५. रोकने के लिए।
६. बादल।
७. वैरी।

जगह-जगह युद्ध मचा रहे थे। बचित्र सिंह अपनी विजय की खुशी में दूने उत्साह से शत्रुओं को दबा रहा था। अब काफी पीछे हट कर केसरी चन्द ने अपने आपको सम्भाला। कुछ सुरमों को इकट्ठा किया और टक्कर लेने के लिए तैयार हो गया। उदय सिंह ने देखा कि केसरी चन्द अब उसके पास ही है ललकार-ललकार कर अपनी बिखरी सेना को समेट रहा है। सूरमा धनुष बाण से सिंहों को मार रहा है और अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ रहा। अब समय है कि दो हाथ कर लिये जायें। झट घोड़े को एड़ी लगा मैदान में कर लिया-

उदे सिंह तबि धायो बरछा हाथ लै।
मोर मनिंद नचायो, बाग उठाइ कर।
ललकारत रण आयो, बाहर निकसिक।
जथा शेर गरजायो देख मतंग गन॥१३॥
उदै सिंह तबि चमूँ चीर सम कीनस बेग बिलन्द।
दबटत काटति डाटति भट बहु सिमर गुर सुखकंद॥१७॥
जहां केसरी चंद खरेवा बान कमान संधाने।
अमैंठति अैंचतिबल करि सिंघन को हतिहाने॥१८॥
तहां पहुंचि ललकारयो थिर रहु सिंह अनकि तैं मारे।
सम कोप उटा छिन महि लै हौं कहां छोभ तूं धारे॥१९॥ (सू॰ प्र॰)

यह ललकार सुनकर और एक महान बलि सिंह को अपने सिर पर आया जानकर, केसरी चंद ने बड़ी फुर्ती से एक तीर छोड़ दिया। यह तीर उदय सिंह के घोड़े की खुरगीन में लगा। अब दाव बचाकर उदय सिंह ने शमशेर (तलवार) सूतली, जैसे कि बिजली चमकी हो और फुर्ती से हल्ला बोल दिया और राजा का सिर काट कर जमीन पर गिरा दिया।

कुंडल सहित सुभत मुख मंडल सिर को काटि उतारा।
धर पर धर ततकाल परयो गिर महा शत्रु को मारा॥२२॥ (सू॰ प्रकाश)

तलवार को झट से म्यान में डाला और नेजा सम्भाल कर राजा के शीश को उसमें पिरो लिया। अब उदय सिंह ने घोड़े को ऐड़ी लगायी, उसे मोड़ा और हवा की तरह उड़ता किले में आ गया। उदय सिंह ने फुर्ती से निकल जाने के बाद केसरी चंद के मर जाने की खबर से शत्रु सेना में बचा-खुचा उत्साह ही जाता रहा। उधर उदय सिंह के किला में पहुँचते ही लोहगढ़ से और सेना निकली और एक जोरदार हल्ला और बोल दिया। मोहकम सिंह, हिम्मत सिंह, साहिब सिंह आदि जत्थेदारों ने आज की विजय को पूरा किया।

अपनी सेना की दशा देखकर और सिंहों को बढ़ता जोर देखकर हंडूरी राजा को गुस्सा आया। उसने तीर कमान सम्भाला और एक तरफ से मौका देखकर

आगे बढ़ा, अपने योद्धाओं को भी आगे बढ़ाया। उसने तीरों की वर्षा कर दी। दूर से एक तरफ शत्रु सेना को बढ़ते हुए देखकर जत्थेदार साहिब सिंह ने राजा को पहचान लिया। सोने की जीन की चमक से राजा नजर में आ गया। साहिब सिंह ने अपने घोड़े को मोड़ा और एक जगह खड़े हो बंदूक का निशाना लगाया। गोली राजा को लगी। वह मरा तो नहीं, पर घायल हो गया। उसे पीछे हटना पड़ा। उसकी यह हालत देखकर गुलेरी का दिल टूट गया वह भी पीछे मुड़ गया। बाकी के राजा भी हाथ से मैदान गया समझ निराश हो गये और पीछे लौट गये।

: ३ :

पहाड़ी, तुर्क, पठान, गुज्जर, रंघड़ सभी भाग रहे थे और विजयी खालसा उनका पीछा कर रहे थे कि अचानक एक सवार श्री गोबिन्द सिंह महाराज का संदेश लेकर पहुंचा:

खालसा जी! साहिब का हुकुम है–

भागे अग्र, मगर नहीं कीजै।

इह बच मोर कान सुन लीजै॥२१०॥ (गु॰ बि॰ सु॰ सिंह)

सूर्य अस्त हो रहा था अब श्री गुरू जी मोर्चे से उतरे और अपने सुन्दर ठिकाने पर डेरा लगाया। सेना के सरदार अब रात के समान, पहरे, तथा मोर्चो को मजबूत करने के काम में लगे थे। इतने में उदय सिंह उपस्थित हुआ। आज की विजय का एक मुकुट उसके सिर पर भी था। उसने नेजे में पिरोया सिर आगे लाकर रख दिया। साहिब ने उदय सिंह की तरफ देखा, कृपा की नज़र डाली। फिर आगे बढ़ कर गले से लगा लिया। पीठ पर हाथ फेरा फिर केसरी के सिर की तरफ देखते हुए कहा–अकल के कोट व्यक्ति का शीश है। काश! इसमें मूर्खतापूर्ण अहंकार न होता। फिर आदेश दिया–शत्रु सेना में यह शीश सबसे अधिक अभिमानी था। खालसा के विरोध से भरपूर था। पर सामने जूझ रहे शूर का, इस समय अपनी रक्षा में असमर्थ पड़ा है। इसका सम्मान करो। इसलिए सम्मान के साथ ले जाओ। एक योद्धा की जिस सम्मान से अन्तिम क्रिया होनी चाहिए, वैसे ही करो।' फिर आसमान की ओर देखते हुए अपने आसपास देखा और कहा–यह है मनुष्य का अंत। जो सिर कहता था–मैंने मारना है, अत्याचार करने हैं–कैसे भूमि पर पड़ा हुआ है। जाओ, केसरी चंद जी। वाहिगुरू क्षमा करें, तुम्हें वाहिगुरू क्षमा करें। ऐसा कह–शीश को ससम्मान विदा किया–उधर से बचित्र सिंह जी नेजा हाथ में लिए आ गया–नेजा साहिब के चरणों में रख दिया और चरणों में सिर रख दिया। साहिब ने सूरमे का सिर उठाकर छाती से लगा लिया। और कहा–सूरमों के सरदार, मेरे बेटे! धन्य हैं तुम्हारे कर्म! धन्य सिखी! धन्य वाहिगुरू! जैसे हाथी का सिर तुमने तोड़ा है ऐसे ही सदा बदी का सिर तोड़ो, जुल्मों का सिर तोड़ो। हाथी अत्याचारियों

का प्रतीक था, अत्याचार का रूप धारण करके आया था। खालसा ने जुल्म का सिर फोड़ दिया। प्रिय सिखो! धरती जुल्म से कांप उठी है, जान हथेली पर रखकर जुल्म का सिर फोड़ दो। खालसा वही जो सदा बदी से जंग करे। वाहिगुरू जी के 'प्रेमराज' को जगत में फैलाना है, प्यार के साथ शिक्षा के साथ। मौका आने पर तलवार से जुल्म का मुंह मोड़ना हे, वीर बनकर, शूरवीर बनकर, उमंग, उत्साह और चाव के साथ। वीर व्यक्ति वैर, विरोध, ईर्ष्या, द्वेष में कभी नहीं मरता। हम वैर रहित हैं, वह रहित रहना है। हम निर्भय हैं, निर्भय रहना है, कभी कमीनेपन में आकर युद्ध नहीं करना। वीर रसिको! उमंग, उत्साह से वीर रस उत्पन्न होता है, हां, चाव, उत्साह, उमंग और खुशी से। वीर का हृदय सदा उमंग से भरा रहता है जिसमें से दान, दया और युद्ध की तीन धाराएं निकलती हैं।

इतना कहकर खुद घायलों की चिंता में लग गये। स्थान-स्थान से घायल उठाकर डेरे पर लाये जा रहे थे। जर्राह तथा अन्य सेवक मलहम पट्टी कर रहे थे। यह देखकर साहिब प्रसन्न हुए। फिर साहिब ने जख्मों पर बांधने के लिए साल के पत्ते दिये।

वह छोटी-सी सभा हुई। सभी जत्थेदार तथा उपजत्थेदार उपस्थित थे। दूसरे दिन के युद्ध तथा रात के पहरे के सम्बन्ध में विचार हुआ। इसके बाद रहिरास का दीवान लगा। पाठी सिंह ने मेघनाद की गम्भीर आवाज़ में पाठ किया। भोग पड़ा, अरदास हुई, कड़ाह प्रसाद बांटा गया। सारे किले में, मोर्चों में कड़ाह प्रसाद जख्मियों और स्वस्थ सैनिकों में दिल खोलकर बांटा गया। इसके बाद श्री जी ने निम्न शब्द का उच्चारण किया–

मरणु मुणसा सूरिया हकु है जो होइ मरनि परवाणो।
सूरे सेई आगै आखीअहि दरगह पावहि साची माणो।
दरगह माणु पावहि पति सिउ जावहि आगै दूखु न लागै॥
करि एकु धिआवहि ता फलु पावहि जितु सेविऐ भउ भागै।
ऊचा नहीं कहणा मन महि रहणा, आपे जाणै जाणो॥
मरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरहि परवाणै॥३॥

(वडहंस म॰ १)

हे शूरवीरो! देखो, सतिगुरू नानक देव जी क्या कहते हैं–

हे सूरमे मनुष्य! मरना तो सही बात है पर तभी जब मरना साहिब को परवान हो, मरना उसके दर में लिखा जाए। फोके अहंकार का लड़ना शूरवीरता नहीं। शूरवीरता की निशानी है कि उसका परमात्मा के दर में स्वागत हो। दर में उनका सम्मान होता है और दुखों से वही बचते हैं जो यहां से सम्मान के साथ जाते हैं। यहां से सम्मान से वही जाते हैं जो परमात्मा का स्मरण करते हैं, वे ही

सेवा करते हैं। परमात्मा की आराधना सेवा का ही फल है जिससे भय दूर होता है। जगत में पदार्थ और पति के विनाश का भय, मित्र-सम्बन्धियों के नाश का भय, अपने शरीर के नाश का भय, यम का भय दूर हो जाते हैं। ऐसे सूरमा निर्भय सूरमा अपने बल का अभिमान नहीं करते और न ही अपनी कामयाबियों पर गर्व करते हैं। वे अपनी शक्ति का बखान नहीं करते। जानने वाला (परमात्मा) सभी कुछ जानता है। वे अजर एक परमात्मा की आराधना करने वाले सूरमा होते हैं। उनका मरना परमात्मा के दर स्वीकार होता है। वैसे मरना सही बात है–प्रत्येक ने मरना है, सच है, मरना सच है, जीना असत्य है, क्योंकि एक दिन मर जाना है। पर मौत वही ठीक है, जो स्वीकार हो।

प्रिय खालसा! आज शत्रु दल के बड़े-बड़े सूरमे आपने मारे हैं, पर अपने दल से भी अनेक प्रिय बिछुड़ गये हैं। अपनों के मरने का शोक धारण नहीं करना। वे नाम वाले, सुरति वाले व्यक्ति थे, इसलिए उनका मरना परवान मरना है। जगत में सभी ने मरना सीखना है। जो मरना सीख जाता है, वह जीने की कला सीख जाता है। संसार से जाना जो हमें गुरू अर्जन देव जी ओर श्री गुरू तेग बहादुर जी ने सिखाया है, वह सर्वोच्च बात है। वे 'आप' थे और आपके कौतुक सबसे ऊंचे और पवित्र थे, वे जगत को बता गये कि यह रास्ता है, यही तरीका है।

जीव अमर है, मौत उसे मार नहीं सकती, इसलिए मरने का कोई अर्थ नहीं। एक बाह्य 'दशा-बदलाव' है। अन्तर की 'दशा-बदलाव' मौत नहीं है। फिर मौत क्या है? कहीं सो जाना कहीं जाग जाना। हां सूरमे के लिए यह एक खेल है। मौत तो आंख का झपकना है जो हमें मौत से अमौत के घाट उतार देता है। मौत जन्म-मरण का द्वार बन्द करके अमर जीवन के द्वार खोल देती है, पर मरना सीखो, सीख कर मरो तो करना जीवन है–

मरणु न मंदा आखीऔ जे मरि जाणै ऐसा कोइ॥
सेविहु साहिब संम्रथ आपणा पंथु सुहेला आगै होइ॥
पंथि सुहेलै जावहु तां फल पावहु आगै मिलै वडाई॥
भेटै सिउ जावहु सचि समावहु तां पति लेखै पाई॥
महली जाइ पावहु खसमै भावहु रंग सिउ रलीआ माणै॥
मरणु न मंदा लोका आखीऔ जे कोई मरि जाणै॥२॥

(वड॰ म॰ १)

उठते, बैठते चलते-फिरते, खाते-पीते, खाली बैठे, काम करते, आराम में या व्यस्त रहते हुए, जिस रंग में भी हों, जिस संग में भी हों, जिस काम में हों, हर समय परमात्मा के साथ जुड़े रहो। 'भेटे सिउ जावहु' परमात्मा से मिले रहो, इस मिले रहने के रंग के साथ ही जगत से प्रस्थान करो। यहां अन्तरात्मा मिली रहे तो परलोक में सुख मिलेगा। मरने का तरीका है–'भेरो सिउ जाणा।'

माते मतंग जरे जर संग अनूप उतंग सुरंग सवारे॥
कोट तुरंग कुरंग से कूदत पउन के गउन को जात निवारे॥
भारी भुजान के भूप भली बिधि निआवत सीस न जात बिचारे॥
ऐते भए तो कहां भए भूपत अंत को नांगे ही पाये पधारे॥२॥
जीत फिरे सभ देस दिसान को बाजत ढोल मृदंग नगारे॥
गुंजत गूड गजान के सुन्दर हंसत ही हय राज हजारे॥
भूत भविख भवान के भूपत कउन गनै नहीं जात बिचारे॥
श्री पति श्री भगवान भजै बिनु अंत कउ अंत के धाम सिधारे॥
(सवैया, पा॰ १०)

खालसा वाहिगुरू का है, फ़तह वाहिगुरू की है। ऐसी फतह खालसा की है। तुम शेर हो, और बलवान हो जाओ, सर्व बलवान से मिलकर। सर्व समर्थ से लगे रहो, लगे रहोगे तो जगत का नूर बनोगे, लगे रहोगे तो जगत के सुखदाता बनोगे, लगे रहोगे तो तुम जगत में रस-रूप तथा रसदाता बनोगे।

रहुरास ने दिन के कामों की मैल, भूल, खेदपूर्ण कार्यों के संताप को दूर कर दिया, अब उज्जवल और निर्मल मन से सभी परमात्मा के नाम से लीन है। रात बीते परमात्मा की गोद में, सुबह हो परमात्मा की आराधना के साथ। 'आशा दी वार' का अमृत पियो और सारा दिन रण भूमि में वीरता दिखाओ। सूरमों की शूरवीरता 'भेटे सिंउ' रहे, परमात्मा में लीन रहे। यदि फतह प्राप्त करके आओ तो 'भेटे सिउ' आओ। यदि आगे (परलोक) जाने का हुकुम आये तो 'भेटे सिउ' जाओ।

साहिब अब चुप हो गए। संगत में अजब रंग छाया हुआ था–सच्चे पातशाह के कौतुकों का। इस तरह अचानक टूट पड़े शत्रु से मुकाबला करने में आंख भी नहीं झपकी। उनसे जंग कर रहे हैं और फिर किस तरह अमृत वेला के दीवान और संध्या के दीवान सजते हैं। वाहिगुरू को आराधना और कीर्तन में कोई अन्तर नहीं आने देते। जिस समय जगत के योद्धा अपने सूरमों में अधिक से अधिक अहंकार तथा झूठा अभिमान पैदा करते हैं, यहां हर समय उनके दिलों की रक्षा हो रही है। मन वाहिगुरू के कीर्तन का मंदिर है। उस मन में अखण्ड कीर्तन होता है। शरीर सेवक है, अन्तर का वाहन है, शरीर से सेवा लेते हैं। मिथ्या अभिमान नहीं करते। जंग हो रहे हैं, शूरवीरता दिखायी जा रही है, पर श्री गुरू ग्रंथ साहिब का आदेश है कि सूरमा अहंकार और अन्धकार में न पड़े। पर उत्साह पूर्ण वीरता में शूरवीरता हो, उसी को व्यवहार में ला कर दिखा रहे हैं। आप महान योद्धा है, महान राजनीतिज्ञ हैं। राजनीति की कठिनाइयों में हैं। पर आप 'आप' हैं, अवतार हैं, पैगम्बर हैं, गुरू अवतार हैं, अवतारों और पैगम्बरों से ऊंचे गुरू पद के हैं। देखो, कैसे शांत रस और वीर रस दोनों सिख के हाथ में दे दिए हैं। कैसे दोनों काज हो रहे हैं।

आप अब उठने के लिए तैयार हो रहे थे कि किसी प्रेमी ने कहा–सच्चे पातशाह जी! साहिब नन्द लाल जी आपके दर्शनों का, आपके नयनों को एक टक देखते 'दरशन अमृत' पीते हुए कुछ लिखते रहे हैं। आशा है आपने कोई रस रंग रचना की है।

साहिब जी–भाई जी! दिव्य नयनों वाले! क्या बात है।

नंद लाल जी–मेरे सुन्दर सुलतान जी! दिन भर आपके दिव्य रूप को देखता रहा हूं। आपके कौतुक देखता रहा हूं। आपके रंग-रस देख रहा हूं। किसी स्वाद में पंख लग रहे हैं, सुरति आपकी अगम दशाओं के होठों की सुगन्धि के हिलोरे ले रही है। कृपा है, दाता जी।

साहिब जी–कुछ लिखा है तो सुनाओ।

नंद लाल जी–रचना आपकी, दवात आपकी, सिर आपका दिया हुआ, हाथ आपके, फिर मेरा क्या अस्तित्व? मेरे साहिब! आप ही कहलवाते हो–यह तो 'गोया' कथनहार है। आपका किया आपके द्वारा बुलवाया हुआ। इतना कह कर भाई साहिब ने अपनी गजल पड़ी–

कीसत इमरोज कि सोदाइ निगारे दारद,
बादशाह हसत दरीं दहिर कि यारे दारद।
द नम अै शोख कि खूने दो जहां खाहद रखत,
चशमे मसते तो कि इमरोज खुमार दारद।
दामने चशमे मरा खूने जिगर रंगी करद,
दिले दिवानहे मा तुरफह बहारे दारद।
सायाए तूबाए फिर दोस न खाहद हरगिज,
हर कि मनसूरे सिफत सायाह्ये दारे दारद।
रुए गुलगूने खुद ऐ शमअ बरअफ्रोज दमे,
दिल परवानह उ बुलबुल बते कारे दारद।
बहरे दीवा नह अगर सिलसिलहा मे साजेद,
दिल 'गोया' बखमै जुलफ करारे दारद।

फारसी कविता के नुक्ते से जिस रूहानियत और अंदाज का प्रयोग कवि ने किया है उससे माजर का स्पष्ट बिंब भाई नंदलाल जी ने इस गजल में उभारा है। सभी ने वाह! वाह!! की। दो-चार कवि जो उस समय उपस्थित थे फड़क उठे। एक ने इसकी व्याख्या की। फिर ऐसा कौन था जो भाई नन्दलाल जी के प्रेम के रंग के साथ अपने मन को रंग फड़क रहे दिल के साथ कलगीधर पर बलिहार न हो गया हो। पर सच्चे पातशाह जी नयनों को बंद किए वाहिगुरू के रंग में मगन थे। तू ही है, तू ही है के संगीत में प्रत्येक रंग प्रत्येक रोम, खून की

एक-एक बूंद, मन, बुद्धि, हां, सारा शरीर, 'तू ही है, तू ही है' की संगीत लहरों में लहरा रहा था। प्रेम स्वरूप, खुद ही जो प्रेम है, तू ही है, तू ही है का राग-धुन बने साहिब, प्यार के झरने में, प्यार के रंग में लहरा रहे थे। 'चुभी रही स्रति प्रभु चरनन महि' कहने वाले, अपने प्रभु जी के चरणों में 'तू ही है, तू ही है' की गूंज में मुग्ध थे।

मामूली प्यार वाले जो प्यारे के प्यार में रह जाते हैं, वे धन्य हैं, पर वे मानों जगत के पातशाह हैं, जिन्होंने प्यार को सौदा के दर्जे तक पहुंचाया है। 'कीसत' का संकेत दूनीचंद की तरफ है, पातशाह का संकेत बचित्र सिंह, उदय सिंह आदि सच्चे प्रेमियों की तरफ है। निगार (प्रिय) से मुराद श्री गुरू सिंह साहिब जी की है।

खुमार से मुराद सतिगुरू के नयनों में कृपा की मस्ती से है, जो अपने प्यारों के लिए दो जहानों को उनके ऊपर वार देता है, दो जहानों को उनके ऊपर सदके करता है।

गुरू जी की कृपा और सिखों के प्यारे ने मेरे दिल का उमंग, उत्साह, वैराग्य, प्यार से पागल कर दिया है अथवा आज की गुरू जी की वीर रस तथा शांत रस पूर्ण सुन्दरता को देखकर दो जहान आपके सदके हो जाने वाले के आशिक हो गये हैं।

यह देखकर गुरू जी के प्यारे सिख सूली की छांव को--जो गुरू जी के हुकुम में हैं--प्यार करते हैं और कल्पवृक्ष की छाया की आवश्यकता को अनुभव नहीं करते। अर्थात् प्यारे के हुकुम में मौत को सुखों से ऊंचा नहीं समझते।

हे सतिगुरू! तू अपने जीव दाते सुन्दर नूरानी चेहरे को और रोशन कर क्योंकि आशिक लोग ऐसा मासूक ढूंढते-फिरते हैं जिस पर वे फिदा हो सकें। संकेत है कि आपके नूरानी चेहरे के नूर ने मृतकों को भी जीवित कर दिया। उनमें प्यार के प्राण डाल दिए और अब वे प्यार से भरे आप पर न्यौछावर होना चाहते हैं।

राजाओं ने, तुर्कों ने वेतन तथा जागीरों का लालच देकर फौजें इकट्ठी की हैं, पर तेरे प्रेमियों ने तेरे प्यार के लिए खुद को न्यौछावर करना स्वीकार किया है। अपने प्राणों की भेंट दी है। वे तेरे प्रेम के लोभ में हैं।

: ५ :

आज सुबह जब हरिमंदिर साहिब में श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी के समक्ष 'आसा दी वार' का भोग पड़ चुका था, तब अरदास करने वाले ने कहा--साध संगत जी। यहां से उठकर अकाल बुंगे साहिब में दीवान है, सब सज्जन वहां उपस्थित हों एक अति जरूरी मामले पर विचार करना है।

थोड़ी देर में ही श्री तख्त साहिब जी के समक्ष दीवान सज गया। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि 'हमारी नगरी के मसन्द और अगुआ भाई दूनी चन्द

जी ने जो पहले सतिगुरू की जी जान से सेवा कर चुके थे, इस अवसर पर भी बड़े चाव से और बड़ी हिम्मत के साथ इस क्षेत्र से पांच सौ जवानों को इकट्ठा करके इस जंग में काम आने के लिए ले गये थे। गुरू ने कृपा की, पर रण के समय खुद भाग आये। अकेले ही नहीं भागे। यहां से गये जवानों में से भी बहुतों को भगा लाये। यह जो बात हुई है, जिस की तरफ से हुई है, ठीक नहीं हुई है। उन्होंने हुकुम न मानकर मालिक जी को पीठ दिखायी है, परन्तु जब संसार बात करेगा तब सारे क्षेत्र का नाम बदनाम होगा। दूसरी बात यह है कि सच्चे पातशाह, अपना राज्य बनाने के लिए नहीं लड़ रहे। आप तो परमात्मा के रंग में रंगे रहते हैं। वे जगत के पदार्थों से विरक्त है, पूर्ण त्यागी हैं। आप तो जल के कमल की तरह माया में बैठे खेलते रहते हैं। युद्ध हमें स्वतन्त्रता दिलाने के लिए करते हैं। हम जो मर चुके थे–प्राण देकर ऊंचा किया है। ऊंचा रहना सिखा रहे हैं। कलह अच्छी नहीं, पर जब राक्षसों, मलेच्छों ने हमारी सहनशीलता, आश्रय, प्यार और नेकी का लाभ उठाकर हमें पकड़ लिया है और ऐसे पकड़ लिया है कि अब हमें अपने धर्म की स्वतन्त्रता भी नहीं। मंदिरों को जबरदस्ती गिरा कर मस्जिदें बनायी जा रही, बच्चे-बच्चियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जा रहा है, जनेउओं को तोड़ा जा रहा है, प्रजा पशु के समान हो गई है। इसलिए सतिगुरू जी हमें अपनी रक्षा करना सिखा रहे हैं और मलेच्छों का मुंह तलवार से सीधा करने के लिए अपने प्राणों की बलि देने को तत्पर हैं। इसलिए हमारा धर्म है कि इस युद्ध में खुद को न्यौछावर करें। जंग हमारे लिए, हमारे भले के लिए और हमारे उद्धार के लिए है। अब हमारे जो भाई जंग के मैदान से लौट आए हैं, वहां कोई पातशाही और जागीरें नहीं जिससे वे और फौजें वेतन पर रख लेंगे। ऊपर से मुकाबला है राजाओं के साथ, रंघड़, गुज्जरों के साथ, पठानों, मुगलों और तुर्कों के साथ वैसे उसके दर किसी चीज की कमी नहीं, पर हमने अपना धर्म पूरा करना है।

इस बात की खबर तो घर-घर पहुंच गयी थी, सभी जगह हाहाकर हो रही थी, पर ग्रन्थी सिंह ने आज दीवान सजा दिया था जिससे एक मत से निर्णय हो सके। यह बात सुनकर पहले तो दूनी चन्द को बुरा कहा गया, फिर किसी ने कह दिया कि दूनी चन्द ने भाई सालोहू के नाम को कलंकित कर दिया है। इस पर सिंह ने कहा–यह कलियुग है–**'अहिकर करे सु अहिकरु पाए कोई न पकड़ीऐ किसे थाइ॥'** भाई सालोह पंचम पातशाह का प्यारा सिख था, उसका नाम सदा उज्जवल है। आपके उज्ज्वल नाम को दूसरा कैसे कलंकित कर सकता है। भाई सालोह गुरू नगरी का महान उपकारी हुआ है उसका टोभा लोहगढ़ के किले के पिछवाड़े सतिगुरू के हुकुम से तथा संगतों के आराम के लिए अपनी आभा फैला रहा है। उसका नाम, परमात्मा के नाम स्मरण से, नाम रूप से निकल अनाम और अरूप वाहिगुरू में, नाम और नामी के स्वरूप में पहुंच चुका है। वह सदा उज्ज्वल

गुरमुख है। शेष रहा–दूनी चंद सूरमा था, विश्वास पात्र था, अब भी बड़ी उमंग में गया था, पर माया बड़ी प्रबल है, इस समय शेखी की जगह नहीं, मौत सामने देख दूनी चन्द डर गया, और भाग गया। **'जस जीवण अपजस मरना'** वह मर चुका है, अब कैसा जीना? बेचारा चारपाई पर पड़ा है, दुख पा रहा है। हमारे गुरू सभी की गलतियों को क्षमा करते हैं, जगत कुछ भी कहे, हम कुछ न कहें। कर्म ही बोलते हैं, फिर जीभ क्यों कुछ कहे। सतिगुरू कर्मों पर कृपा करें, वह दर कृपा का है, हम गलतियों के पुतले हैं।

यह सुनकर कुछ समय तक शोर मचता रहा। फिर एक युवक, सजीला जवान उठा और सीस झुका कर गरज कर बोला–

साध संगत जी! सिंह जी ने अपार कृपा कर हमारे बड़े भाई सालोह जी का यश सम्भाल लिया है, पर हम दूनी चन्द जी की सन्तान हैं। उनके अपराध के अधिकारी हम अधिक हैं। वे घर में चारपाई पर हैं। जिस दिन से आये हैं, परिवार ने उन्हें प्यार नहीं किया, जबकि बेटा होने के कारण सेवा करना हमारा धर्म है, पर तब भी सेवा करते हुए भी हम दुखी हैं। परिवार उनसे विरक्त है। गुरू 'गुरू' है और सभी सम्बन्धों से प्रिय है। गुरू 'गुरू' है और सभी से बड़ा है। गुरू से सम्बन्ध है तो सभी से है, नहीं तो जगत में कोई नहीं। मेरा भाई अनूप सिंह और मैं स्वरूप सिंह दोनों ही अमृतधारी सिंह हैं। हमारे पितामह श्री दूनी चन्द जी ही हमें आनन्दपुर लेकर गये थे और उन्होंने ही अमृतपान करवाया था। अब ५०० जवान लेकर बड़े चाव से युद्ध करने के लिए गये थे। पता नहीं क्या हुआ कि मुंह मोड़कर आ गये। होनी बलवान है, मौत का भय बुरा है, बहुत प्यार वाले ही अपने प्रिय के लिए प्राण देते हैं। गुरू कृपा करें, वह ही अपने साथ लगाए और उसे अन्त तक पूरा करे। अब हमारी प्रार्थना यह है कि जो हो गया सो हो गया, हमारा परिवार गुरू का दास है, हम विमुख नहीं होंगे। हम दोनों भाइयों के शरीर हाजिर हैं। हम साध संगत समक्ष अपने अपराध को स्वीकार करते हैं और आनन्दपुर जाकर अपने शरीर को गुरू चरणों में अर्पित करने के लिए तैयार हैं। वे चाहें तो क्षमा करके अपनी सेवा में लगा लें, चाहे तो नेजे पर टांग कर गिद्धों के आग़े फैंक दें। हमने अब मांस के इन पिंडों को गुरू के ओदश पर न्यौछावर कर देना है। साध संगत जी हमारे इन बेकार के शरीरों को स्वीकार करें और सच्चे पातशाह के आदेश से बलि होने का सम्मान दें।

दूनी चन्द के पोतों की यह कुर्बानी यह प्रेम देखकर लोगों के हृदय द्रवित हो गये। 'धन्य सिखी, धन्य सिखी', 'धन्य भाई सालोह' की आवाजें गूंजने लगीं। तब सिंह बोले–

खालसा जी! देख लो आप भाई सालोह को कह रहे थे, उन्ही की वंश से ये सूरमे उभर कर आये हैं। देखो, हमारे अगुआ का घर ही कितना सुन्दर है

जिसने आपको गुरू समझ रखा है। धन्य है गुरू सिखी का प्यार और श्रद्धा। अब आप की क्या आज्ञा है क्या स्वरूप सिंह और अनूप सिंह जत्थेदार बनें और जत्था तैयार करें? जो कभी माझे के सिंहों के कारण आयी, उसे माझे के सिंह ही जाकर पूरी करें।

इस कथन पर लगभग पचास जवान और सामने आये। कुछ सिंह तैयार होकर गांव की तरफ चले गये जिससे कि वे वहां सारी बात बताएं जिससे जत्थे के साथ चलने के लिए कुछ और सिंह तैयार हो जाएं। जो लोग दूनी चन्द के साथ भाग कर आये थे उनके घर वालों ने उन्हें मुंह नहीं लगाया। न घर में और न संगत में, उन्हें कहीं आदर नहीं मिला। गुरू कलगियों वाले को ऐसा प्यार सिखी में था। यह प्रेम-अग्नि दिल में जलती है। इसने फकीरों के जत्थे से अत्याचारी पातशाही का चिराग गुल करवा दिया।

सिंह जी ने अब एक सन्देशा सतिगुरू की सेवा में भेज दिया जिससे कि उन्हें सूचना मिल जाए कि दूनी चन्द के पोते एक और जत्था लेकर पहुंच रहे हैं।

'लिखतुम आपके दर का कूकर करम सिंह, साध संगत खालसा सुधासर हरीमंदिर तख्त साहिब अकाल बुंगा जी का सेवक, आपकी सेवा में साहिब साहिब साहिब श्री मालिक पालक रक्षक दोनों जहान के श्री श्री श्री कलगीधर जी महाराज जी, आप जी, आप जी, दोनों कर जोड़ आपके चरणों में शीश टिका कर सारी साध संगत का सिर आपके चारणों में टिका रहे, श्री वाहिगुरू जी का खालसा श्री वाहिगुरू जी की फतह।

तुम दाते ठाकुर प्रतिपालक नाइक खसम हमारे॥
निमख निमख तुमही प्रतिपालहु हस बारिक तुमरे धारे॥१॥
जिहवा एक कवन गुन कहीऐ॥
बेसुमार बेअंत सुआमी तेरो अंतु न किनही लहीऐ॥१॥ रहाउ॥
कोटि पराध हमारै खंडहु अनिक बिधी समझावहु॥
हम अगिआन अल्प मति थोरी तुम आपन बिरदु रखावहु॥२॥
तुमरी सरणि तुमारी आसा तुमही सजन सुहेले॥
राखहु राखनहार दइआला नानक घर के गोले॥२॥

(धना० महला ५)

भूलने वाले हैं, कृपा करना, विनती है, सिंहों का एक जत्था हाजिर होगा, दूनी चन्द के पोते स्वरूप सिंह और अनूप सिंह की जत्थेदारी में भाई सालोह की श्रद्धा देखते हुए कृपा करना, क्षमा करना, दर पर स्वीकार करना, गुरमुखता, संमुखता का दान देना। गुरमुखों के लिए मनसुखों और विमुखों को क्षमा करना।

'हम भूलि बिगाड़ह दिनसु राति।' शेष प्रार्थना हलकारा सिंह आपसे मौखिक रूप से करेगा।

कुछ ही दिनों में दो सौ सिंह तैयार हो गये। श्री अकाल तख्त साहिब पर इकट्ठे हुए। जत्थे में जाने वाले वीर तथा उनके परिवार वाले सभी उपस्थित थे। दोनों सुन्दर जवान पोते शहीदी के सेहरे बांधकर संगत में खड़े थे। माताएं, बेटों को गले लगा लगा कर आशीर्वाद दे रही थीं। नयनों में नीर भर कह रही थी– देखना तुम पहले की स्याही धोने जा रहे हो कहीं और मत लगा आना। पिता पीठ पर हाथ फेर आशीष दे रहे थे कि जाओ बेटा जन्म सफल करो और कुल का मुख उज्ज्वल करो। बहने गले में सेहरे डाल रही थीं और आशीष दे रही थीं–जैसे तुम बहनों का प्यार लेकर जा रहे हो वैसे ही उज्ज्वल मुख लेकर बहनों के सामने आना। तुम आओ, विजय प्राप्त कर के आओ, विजय से विवाह करना। बहने तब आरती उतारेंगी और कहेंगी–वीर आये फतह दुल्हन को लेकर आए। जी-जी आये जुग-जुग आये।

इस तरह का नजारा, स्वयं को अर्पित कर देने वाला और गुरू प्रेम का उस समय दिख रहा था। देखने वालों के आंसू नहीं रुक रहे। अभी सिंह तैयार होकर विदा हुए–

कट कसकै गुर दिश चल परे।
दोश पितामा को वड धरै।
जो मझैल धरि शरधा मिले।
लेकरि संग अनंदपुर चले। (सू॰ प्र॰)

सिंह चले, पर भेष बदल कर, शस्त्रों को छिपा कर जिससे किसी को पता न चले कि ये लोग कौन हैं और कहां जा रहे हैं। कहीं रास्ते में ही कोई अटक न पड़ जाए। शनैः शनैः चलते हुए वे क्षमाशील सतिगुरू के परवाने सतिगुरू पर न्यौछावर होने के लिए आनन्दपुर पहुंच गए। साहिब ने उन्हें स्वीकार किया।

❑ ❑

५२ प्रसंग भाई जोगा सिंह

पेशावर शहर, शादी हो रही है, चारों तरफ चहल-पहल नजर आ रही है। दीवान लगा हुआ है, संगत बैठी है। दशवें गुरू का प्यारा सिंह है, उसका विवाह हो रहा था पर उसका दिल गुरू के चरणों में था। विवाह कार्य सम्पन्न हो रहा था, दो लावें हो गयी थी, आधी और रहती थी। तभी एक गुरू का सिख आनन्दपुर से आया। उसने बिना किसी विलम्ब के एक कागज़ पकड़ा दिया। जोगा सिंह ने गुरू जी के पत्र को अपने सिर से लगाया, फिर खोल कर उसने अपनी आँखों के आगे किया। उसमें गुरू की आज्ञा थी। सतिगुरू ने लिखा था—जोगा सिंह मेरा सिख है, इस पत्र को पढ़ते ही चला आये। वह किसी भी हालत में हो रत्ती भर भी ढील न दिखाये। वह बिना एक पल का विलम्ब किये आनन्दपुर को चल पड़े। अरदास पढ़ कर उसने नयनों से लगा ली। धन्य धन्य मुंह से निकला। गुरू ग्रन्थ साहिब के आगे उसने शीश झुकाया और बाहर की तरफ चल पड़ा। सभी प्रिय सम्बन्धी ससुराल वाले, संगत कहती रही—भाई बीच में विवाह को क्यों छोड़ रहे हो, तुम्हारे मन में यह क्या आ गया। उसने कहा—मुझे सतिगुरू ने बुलाया है, अब मैं कैसे रुक सकता हूं। गुरू जी ने लिखा है कि क्षण पल की देर भी न करना। गुरू जी की यही आज्ञा है। गुरू का आदेश सुनकर संगत ने भी सम्मान में सिर झुका दिया। सभी ने गले में पल्ला डाल लिया और दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी धन्य गुरू, धन्य प्यारे सिख श्रद्धा को पूरा करो, मन डोले नहीं, उसे सुदृढ़ करो। आपने ही अपने साथ लगाया है, इस साथ को अन्त समय तक निबाहना। संगत के नयन भर आये। जोगा सिंह की सिखी को देख अदब से सभी के दिल भर आए। उन्होंने जोगा सिंह के चेहरे पर आभा देखी। गुरू की सिखी बाल से भी बारीक है और तलवार की धार से भी तेज है। पर जो श्रद्धा से धारण करते हैं वे आलौकिक सुख अनुभव करते हैं। जोगा सिंह उठकर चल दिया फिर उसने मुड़ कर नहीं देखा। प्रिय भाइयों ने उसके लिए एक घोड़ा भेजा। सिंह शीघ्रता से घोड़ा दौड़ाये जा रहा था। मन में प्रसन्न हो रहा था कि उसका घर खुशियों से भरा हुआ है। जब वह लाहौर में पहुंचा तो सोचने लगा—प्यारे गुरू ने दास से फर्ज पूरा करवा लिया है। मैं उस पर बलिहारी जाता हूं। अमृतसर पहुंच कर उसने दर्शन किये, गुरू जी को धन्यवाद दिया। इसके बाद उसके दिल में अहंकार आ गया। गुरू का रूप अब प्रकट नहीं हो रहा था। जैसे-जैसे मंजिल पास आ रही थी उसका अहंकार बढ़ता जा रहा

था। उसका मन कह रहा था उस जैसे कर्म संसार में कोई विरला ही कर सकता है। गुरू प्रसन्न होकर दास से कहेंगे–तू पूर्ण सिख है। वाह सिख प्यारे तू सन्देशा मिलते ही आ गया। तू शूरवीर सिख है। जब वह जालन्धर पहुंचा तो उसका मन कहने लगा–सुनो प्यारे। तू पक्का सिख है, मैं तुझ पर बलिहार हूं। स्व की पहचान, स्व की खोज, स्व को ढूढ़ना सिख इन्हीं बातों को हरदम हृदय में रखते हैं। जोगा सिंह के हृदय से ये बातें उठ गयीं। उसमें 'मैं' बढ़ गया, अहंकार फैल गया, बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अन्तर से परमात्मा में लीनता की तार खिसक गयी। अहंकार अन्तर में प्राणों में धस गया था। रसना तो नाम स्मरण कर रही थी पर हृदय में खाई पैदा हो गयी थी। जब वह होशियारपुर पहुंचा तो एक जगह डेरा लगाया। उसे अब 'पाठ' का समय भी याद नहीं रहा, नित्यनेम भी भूल गया। उसने नये वस्त्रों को धारण किया और घूमने के लिए निकला। सैर करता हुआ वह बाजार में निकल गया। एक चौबारे पर उसकी नजर पड़ी। वहाँ उसने एक सुन्दर स्त्री को बैठे हुए देखा जिसकी आँखें चमक रहीं थी। वह वही खड़ा रह गया। उसकी नजर उस स्त्री पर ही गड़ी थी। वह खुद को भूल गया, उसे अपनी याद नहीं रही। नयन मसताने थे जैसे कि किसी ने जादू कर दिया हो। सिंह जी वही खड़े के खड़े रह गए–हैरान और बौराए हुए। सिंह के पैर अपने आप चल पड़े, स्त्री के आकर्षण में, वह विवश था। पर कौतुक कुछ और ही हुआ। उसे बदले हुए रूप नजर आये। उसने देखा सफेद बादल के टुकड़े की तरह कुछ घूम रहा है। उसके आगे उसने एक आकार ले लिया–एक सजीला जवान खड़ा था। उसके हाथ में तलवार थी आंखों में गुस्सा था, भवें कमान की तरह चढ़ी हुई थीं। उसका सूरज की तरह चमकता जलाल वाला रूप देख कर योगी मोह निद्रा से जाग उठा–कुछ रोता और कुछ हंसता हुआ। अब दिल में सहम गया था–ऊपर नजर उठाकर देख भी नहीं पा रहा था। वह नजर को ऊपर उठाता, पर वह बार–बार नीचे गिर जाती। उसके पैर अटक गये, वह पीछे की तरह मुड़ा और डेरे पर आ गया। पश्चाताप ने उसे घेर लिया, सारा नशा दूर हो गया। यह क्या, मैंने ऐसा धोखा कैसे खाया। अभी भी मेरा मन निर्मल नहीं है, अभी भी मैं अपराधी हूं। मेरा असली रूप आज मुझ पर ही प्रकट हो गया है। गुरू की कृपा से ही आज तक मेरा यह रूप छिपा हुआ था। मैंने तो मन में सम्मान धारण कर लिया था सोचने लगा था मेरा जैसा यति संसार में दूसरा नहीं है। इस अहंकार ने गुरू को भी विस्मृत कर दिया। मेरी नाम स्मरण की तार टूट गयी, मैं कितना नीचे गिर गया। जो श्रद्धा मेरे मन में थी वह कहां चली गयी। तू तो सुसरी की तरह सो गया था, तुझे अपना ज्ञान भी नहीं रहा था। यह तो सतिगुरू की ही दया थी जिन्होंने अपनी शरण दी। मुझे अपने साथ लगा लिया था और

मेरी 'मैं' को खत्म कर दिया था। गुरू को छोड़कर जब मैं 'मैं' हो गया तो उसके अपने रंग दिखाये। उसने मुझे घोर गर्त में डाल दिया था, परन्तु गुरू ने मुझे फिर सम्भाल लिया। मुझे बुरे विचारों से निकाल लिया, बुरा करने से बचा लिया, मुझे होश में खोटे कर्म करने से बचा लिया। धन्य है गुरू! वह सिखों का रक्षक है, पापों से उबारता है, कठिन समय में सहायक है, अभयदान देता है। मैं सिख कैसे हो गया, अहंकार को तो मैंने अभी धोया नहीं। हे गुरू! मेरे मैं को समाप्त कर दो। मुझे अपनी शरण में ले लो। अब मैं और सहन नहीं कर सकता। हाय! अब मैं क्या करूं? मैं कैसे गुरू जी को अपना मुंह दिखाऊं? मैं अब आनन्दपुर कैसे जाऊं? कैसे अपने आप को छिपा लूं। हाय! मैंने तो पाठ का समय भी खो दिया, नाम को विस्मृत कर दिया, अब स्वामी को याद करूं। ऐसा सोचते हुए वह पाठ करने लगा–फिर अरदास की–सच्ची, स्वच्छ, सुन्दर चमक फिर हृदय में उभरी। अब वह सोचने लगा है कृतघ्न तू देख! मां कैसे बालक को प्यार करती है। बालक दीपक की लौ को पकड़ना चाहता है, मां उसे हटा लेती है। गुरू कृपा करने वाला है, मां की तरह उसने भी उसकी रक्षा की है। वह तो बह चला था, उसे अपने हाथ का आश्रय दे बचा लिया। उस गुरू की कृपा से निराश होना उचित नहीं उसी के द्वार पर जा और उसके चरणों में गिर पड़, हृदय में ज़रा भी संकोच न कर। पाप बुरा है, पर शक उससे भी बुरा है, वह तो दूरी को बढ़ा देता है। वह तो कृपा की छाया में नहीं जाने देता बल्कि दूरी को बढ़ा देता है।

वह प्यारा सिंह गुरू जी के पास पहुंच गया। इस स्थान पर पहुंचते ही व्यक्ति में परिवर्तन आ जाता है। वह गिराता नहीं, पर हृदय से अहंकार को निकाल आगे बढ़ाता है। जैसे पहाड़ की यात्रा होती है–पहले चढ़ाई आती है तो फिर उतराई, पर वह ऊंचाई पर ले जाती है, हर उतराई और ऊपर जाने के लिए रास्ता देती है। यदि गुरू रक्षक है तो व्यक्ति कभी रसातल में नहीं जाता। ऐसी ही कठिन मंजिल सिख के सिर पर आयी थी। वह किसी तरह बचकर निकल आया, उसका पैर फिसला नहीं। ऐसा भी उचित नहीं कि वह सिख बुरा था कि जिसके मन में बुरे विचार आये। वह गिरने से बच गया, यह उसका पहला ही अपराध था, मन में पश्चाताप था, वह सिख आगे बढ़ा अब उसका मन नाम में लग गया था। अब गुरू के प्यार के अतिरिक्त उसके मन में और कोई विचार नहीं आ रहा था। जब वह गुरू जी के पास पहुंचा तो उसे अन्दर बुला लिया गया। वह दीवान में दोनों हाथ जोड़ कर और सिर झुका कर खड़ा था। गुरू ने कहा–वाह मेरे सिख। तुमने खूब हुकुम की पालना की है। सिख रोता हुआ गुरू के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा–हे कलगी वाले मेरी रक्षा करो। हे स्वामी! हे प्यारे! मैं मूर्ख और गलतियों का पुतला हूं। मुझ पर कृपा करो। मैं कृपा के

योग्न नहीं, पर क्षमा करो। मुझे अपने द्वार का कुत्ता बना लो, पर धक्के मार कर बाहर न निकालना मेरे अवगुणों की ओर न देखना। गुरू ने कहा–मेरा वास तो तेरे हृदय में था, परन्तु मन में अहंकार धारण कर तूने ही मुझे विस्मृत किया, और अन्तर से प्यार की डोर को तोड़ा। मैंने उस अहंकार को निकाला, तुने फिर अहंकार पाला, तुम कुसंगति में पड़ गये थे। तुम तो गिर रहे थे, मुझे तुम्हारी रक्षा करनी पड़ी। तेरा धर्म बचाने के लिए मैंने तुम्हें दर्शन दिये। जिससे तुम होश में आये और दुष्कर्म करने से बच गये। तुम कठिनाई में पड़े, मुझे कठिनाई में डाला। अहंकार ढीठ होता है, उसके मोह को तोड़कर सदा परमात्मा में लीन रहो। फिर सतिगुरू ने दया दिखाते हुए उसे अपने और करीब कर लिया। उसे अभय और नाम–स्मरण का दान दिया। अहंकार के नष्ट होते ही हृदय में प्रभु प्रकट हुए, सदा के लिए उसका प्रभु से मिलन हो गया। ऐसा मिलन जिसमें दूरी न आये और वियोग न हो। भगवान की यह विचित्र रीति है कि जो उससे एक बार मिल जाता है वह फिर उससे अलग नहीं होता। पर परमात्मा से मिलन अहंकार के समाप्त होने पर ही होता है। अहंकारी को परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। जिस सिख ने यह शिक्षा ग्रहण कर ली है वह ही गुरू रूप हो जाता है। जो परमात्मा की इच्छा को मान उससे हृदय लगाता है। वह जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

❑ ❑

५३ ईश्वर रक्षक है तेरा ईश्वर रक्षक है।

कहर (विपत्ति, संकट) वाला घेरा पड़ गया था। रास्ते सब बन्द हो गये थे। एक तोपची निशाना लगाये खड़ा था, तोपों के मुंह उसने एक तरफ किए हुए थे। पलँग पर बैठे हुए गुरू जी को देखकर उसने गोला दाग दिया। राम सिंह उस समय गुरू जी को पंखा कर रहा था। गोला उसे लगा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। गुरू जी चढ़ती कलाओं वाले थे। निर्भय थे गुरू जी ने धनुष पर तीर चढ़ाया इससे पहले कि तोपची तोप में गोला भरता। गुरू जी ने धनुष से तीर छोड़ दिया। नागिन की तरह फुफकारता तीर चला जिसने तोपची को डँस लिया। तोपची जमीन पर गिर पड़ा। पास ही दूसरा तोपची खड़ा था। उसने तोप में गोला डालना चाहा, परन्तु तभी गुरू जी ने दूसरा तीर चला दिया। उसने दूसरे तोपची की लीला को समाप्त कर दिया। तोप में गोला भरता हुआ तोपची अब जमीन पर लेटा हुआ था। उसका गर्व मिट्टी में मिल गया था। राजाओं का दिल टूट गया, उनके पैर उखड़ गये। जैसे सन्ध्या को पशु भाग कर घर वापस आते है वैसे ही राजा भी घरों को भागने लगे। राजा जीत कर भी हार गये थे, अब वे पूछने वालों को क्या उत्तर देंगे। कलगी वाले को किसी का खौफ नहीं था। वे कभी भी निराश नहीं हुए। उनमें गुस्सा नाम मात्र नहीं था। वे तो सदा चढ़ती कलाओं में रहते थे। वे तो सदा जीवन न्यौछावर करने को तत्पर रहते थे। उत्साह और जीवन देने वाले गुरू जी स्वयं ही हैं।

❑ ❑

५४ राय बिसाली

राज भवन बिसाली में राय जी एकान्त में बैठे हैं। वे गहरी सोच में डूबे हुए हैं। तभी सेवक ने आकर कहा–वजीर साहिब आये हैं। राय ने पहले तो सेवक की बात को सुना ही नहीं। दूसरी बार कहने पर उन्होंने बात सुनी। फिर कहा– 'अच्छा आने दो।' वजीर आया, नमस्कार की और चरणों में बैठ गया और कहने लगा–आप आराम कर रहे थे। मैं किसी समस्या पर विचार-विमर्श करने आया था। आपकी राय जरूरी है। इसलिए इस समय कष्ट दिया। राय साहिब यदि कठिन समस्याओं पर विचार आप नहीं करेंगे तो कौन करेगा? राज-पाट तो अच्छा, पर इस अच्छाई में सिरदर्द भी कम नहीं। उधर संसार राजा की प्रशंसा करने के लिये उठ खड़ा है, इधर जमाने की समस्या राजा के सामने सिर उठाकर खड़ी हो जाती है। फिर राजा के पास एक 'विचार' ही तो है। इस सोचने से ही तो सिरदर्द होता है, परन्तु कठिनाइयों की नदी व्यक्ति सोच-विचार के द्वारा ही पार करता है। इसलिए जो नया विचार तेरे मन में आया है उसे कहो।

वजीर–आप ठीक कहते हैं। पर जिस हँसी खेल से और कविता करके आप मुसीबतों का स्वागत करते हैं और उन्हें मेहमान समझते हैं। वह आपको ही शोभा देता है। राजनीति और कविता को आपने ही एक म्यान में डालकर रखा हुआ है। जी हाँ। उस पार हो रहे घोर संग्राम में से भीम चन्द का दूत गुप्त संदेश लेकर आया है।

राय–(विस्मित होकर) क्या है संदेशा, किसके नाचने पर नाच रही हैं पुतलियाँ? वह भी आधी रात को। पहले तो राज सिंहासन को शूलों की सेज कहा जाता था, और सिर का मुकुट सिर-पीड़ा का कारण समझा जाता था। पर अब तो राज्य गुलामी का प्रतीक हो गया है। हाँ क्या है संदेश–गोले राजाओं का?

वजीर–संदेश यह है कि इस समय गुरू गोबिन्द सिंह मैदान में हैं। ऊपर से तथा पूर्व की तरफ से सभी राजाओं ने उसे घेर लिया है। नीचे से सरहिंद के सूबेदार की सेनाओं ने घेरा हुआ है। वह बड़ी शूरवीरता के साथ लड़ रहा है जिसकी हमें आशा नहीं थी। ऐसी शूरवीरता से जो पुस्तकों में तो पढ़ी-सुनी है पर कभी आँखों से देखी नहीं थी। तब भी हम डटे हुए हैं। यदि पश्चिम की तरफ से आप नदी पार करके उन्हें घेर लो तो हम उन्हें बीच में ही पीस देंगे।

तब उठी हुई अग्नि जिसने सारे जंगल को जला दिया है—अभी भी आग को सदा की नींद सुलाया जा सकता है।

राय—(ठण्डा साँस लेकर) हाँ, (सोचकर) हाँ (माथे पर अंगूठा और तर्जनी रखते हुए) ठीक (आँखें बन्द करके) हूँ⋯(फिर देखते हुए) हाँ, सो सकती है सदा की नींद। फिर आपने क्या सोचा है?

वजीर—हमारा सरहिंद के सूबेदार के कहने पर इस जंग में न जाना, मेरा कहने का मतलब है कि उसने हमें ललकारा नहीं है, अच्छा नहीं है। इस जलती हुई अग्नि में खुद ही कूद पड़ना राजनीति भी नहीं है। संदेश भी गुप्त रूप से आया है, परन्तु यदि दूत ऐसे ही वापस चला गया तो भाई-चारा टूट जायेगा और सूबेदार की आँखों में यह बात सदा चुभती रहेगी।

राय—ठीक है (माथे को दबाते हुए) यह तो हुई कठिनाइयाँ, इनका समाधान क्या खोजा है?

वजीर—(खीझकर) मना नहीं करना चाहिए। कुछ दिखावा तो करना ही होगा, चाहे अन्दर से हम कुछ न करें।

राय—कैसे (आँखें बंद करते तथा चेहरे का रंग बदलते हुए) कैसे?

वजीर—दूत को तो हाँ कह दें और कुछ सेना लेकर नदी के पार चले जाएँ। गुरू जी को मैं गुप्त रूप से समझा दूँगा कि हमने लड़ना नहीं है, आप हमारी चिन्ता नहीं करना। इससे हमारी दोनों से बनी रहेगी।

राय—दोनों से बनी रहे⋯हाँ, होते तो दो ही पहलू हैं। सोचते हम यही हैं कि बात दोनों से बनी रहे, पर बनती नहीं है, प्राय: दोनों से ही बात बिगड़ जाती है। हाँ, एक तरफ होने से एक तरफ जरूर बनी रहती है, पर यह नीति नहीं। नीति तो है दोनों को ऊपर से खुश करना और अन्दर से जड़ें काटना। हाँ वजीर, हम भी राजपूत हैं, हमारा भी कर्तव्य है, हम शूरवीर हैं, कुछ भला हमें भी करना चाहिए⋯पर कठिनाई है⋯

वजीर—अब वह राजपूती गयी। अब तो चिन्ता यही है कि राज कैसे बचे। जिस कीमत पर भी बचे, राज्य बचे, राज्य बचे। एकता में, इकट्ठा रहने में ही बल है। सैकड़ों हिन्दू राजे यदि इकट्ठा हो जायें तो फिर भय किसका? पर हमें तो स्वार्थ ने और आपसी फूट ने मारा है।

राय—ठीक है, पर अब क्या करें? (इतना कहकर राजा ने आँखें मूँद ली)

वजीर—मुझे तो वही बात सूझी है।

राय—सोचो, यदि गुलाम हमारे संदेश पर विश्वास नहीं करें, क्योंकि कई बार मेरे भाई राजे झूठी कसमें खा चुके हैं, और नदी पार करते ही हम पर टूट पड़े तो मारे गये न सभी⋯

वजीर–(सोचकर) यदि मैं गुरू को समझा आऊँ, वचन ले आऊँ, तभी हम नदी पार करें। हम तो झूठ को राजनीति की नींव समझते हैं। पर वे तो परमात्मा पर विश्वास रखते हैं, जो कहते हैं, पत्थर पर लकीर होता है। वे वचन से कभी नहीं टलेंगे।

राय–ठीक है, पर वे हमें भी औरों की तरह पाजी समझ लेंगे।

वजीर–पर इसका हमें क्या डर है? जो समझते हैं समझते रहें हमारी तो दोनों से बनी रहेगी।

राय–पर मैं पाजी नहीं हूँ। मैं इन्सान हूँ, राजपूत हूँ। मैं जानता हूँ कि गुरू सत्य पर खड़ा है, वह निर्दोष है, देश और प्रजा का हित चाहता है। उसके सभी युद्ध धर्म युद्ध हैं। मलेच्छों से मुक्त कराने के लिए वह खुद को न्यौछावर क़र रहा है, वह मर्द है, पूरी आन-शान वाला है, वचन निभाने वाला है, वह निर्भय है, उसे मौत का भय नहीं। वह कभी बदी की गोद में नहीं जाता। कभी पाप के आँगन में नहीं जाता। वह अपने आप में सुखी है। वह सुखों को पीठ देकर दुखों को खुद झेलता है, उन्हें ललकारता है, उनसे संघर्ष करता है। उसकी नज़र में खुद को पाज़ी बनाना मृत्यु से पहले मर जाना है। वह मौत तो एक क्षण का कष्ट है और वह मौत क्षण क्षण की मौत है। जितने क्षण हमने और जीना है, मरते ही रहना है और इसके नक्शे को साथ ले जाना है। अपने साथ मौत के घाट के भी पार। बताओ मैं मर के भी न मर सकने वाली मौत कैसे मर जाऊँ?

राय जी के नयन बदल गये। कुछ देर बन्द रहने के बाद खुल गये। वजीर काँप गया। झूठ की नींव पर खड़ी नीति की दीवार इस आँधी से गिर गयी।

राय (अब फिर निर्मल नयनों से देखते हुए) हाँ वजीर जी। क्या समाधान उस समस्या का जो तुम लेकर आये हो?

वजीर–फिर तो रास्ता साफ है। महानता वाला। हम दूत को मना कर देते हैं कि जो बात तुम कहते हो, हमसे वह नहीं हो सकती। हमारे लिए यह कठिन है, बदले में जो होगा हम सहेंगे। जरूरत पड़ी तो वीरता से सामना करेंगे और शूरवीरता को चाँद लगा देंगे।

राय–हाँ कह दो दूत से कि हम भाइयों से.....

वजीर–(बात काटते हुए) पर महाराज! आप गुरू का इतना पक्ष क्यों ले रहे हैं।

राय–गुरू का पक्ष। सत्य का पक्ष, धर्म का पक्ष। गुरू का कोई पक्ष नहीं। नहीं, गुरू से भी पक्ष है। वह गुरू जो है। यदि गुरू राजा हो, पक्षपाती हो भूमि का, तब तो तोला बराबर, पर गुरू तो सच्चा है, सदा नेकी पर खड़ा है, उसके लिए फिर क्या सोचना? गुरू का पक्ष सभी भले लोगों का धर्म है।

वजीर–कैसे सिद्ध किया है कि गुरू है गुरू का गुरू है सत्य।

राय–(आशा की वार का गुटका हिंदी में लिखा हुआ, आगे रखकर) वजीर! इसे पढ़ो। यह है झूठ, कपट, फरेब, बनाने और गिराने के• रंगों की चिकित्सा की पुस्तक।

वजीर ने पुस्तक लेकर सम्मान से सिर पर रखी और मस्तक से लगायी।

राय–आपने पुस्तक को सिर पर रखा वह तो मैंने देखा, परन्तु यदि इसे हृदय में रखोगे तो आपको परमात्मा दिखेगा।

वजीर–जैसी आपकी आज्ञा। लगता है इसी ने आपको गुरू का गौरव प्रदान किया है। यह शुभ हुआ है। अब बताओ क्या आज्ञा है?

राय–कह दो कि मैं भाइयों के विरुद्ध नहीं, पर मेरे भाग्य में लिखा है कि महाभारत के युद्ध में से उनके हिस्से आया हूं, जिनके हिस्से में भगवान कृष्ण आये थे। यह थोड़े से शब्द जिस अलौकिक स्वर में, नयनों की चमक के साथ, भावना मय चेहरे के साथ कहे गये थे उससे वजीर समझ गया कि राय के विचारों में परिवर्तन लाना अब सम्भव नहीं। अब उसे कुछ कहना उसे नाराज करना होगा इसलिए सिर झुकाकर चल पड़ा-जैसी राज-राजेश्वर की आज्ञा।

वजीर ने घर जाकर दूत का बहुत सम्मान किया, उसकी खातिर की, कुछ धन दिया और कहा कि महाराज स्वस्थ रहीं हैं–संदेश सुनकर इतना ही कहा है कि राम भली करेंगे। दूत ने दो-चार बार बात घुमाकर गहराई तक जाने तथा वास्तविकता पता करने की कोशिश की, पर वजीर ने राय के अस्वस्थ होने का बहाना किया और यही कहा कि राम भला करेंगे। इसके अतिरिक्त वजीर ने दूत को और कुछ नहीं कहा। वह और उसका मालिक इसका अर्थ लेते हैं यह बात उन्हीं पर छोड़ दी।

सामने खड़ी समस्या का समाधान खोजना वजीर के लिए और कठिन हो गया था। वह समझ गया था कि राय का झुकाव गुरू जी की तरफ है। वह अपने कर्मों को अब सत्य के रास्ते पर लेकर जा रहा है, अब वजीर के लिए नीति का निर्वाह और कठिन हो गया था। वह नीति जिस की नींव सत्य पर हो, वजीर को बहुत कठिन लग रही थी। झूठ सच का फेरबदल करना, बदी के साथ मेल करके, कुछ फूट डालकर काम निकाल लेने वाली नीति तो वजीर जानता था, पर सत्य के मार्ग पर खड़ी स्वच्छ नीति के निर्वाह के लिए उसे पवित्र बुद्धि की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। वह सोच रहा था कि कैसे राय साहिब के विचारों की, सत्य की तथा मन की आन-शान की रक्षा हो तथा पतित राजाओं और विदेशी बादशाह से भी बनी रहे मैं भी वजीर हूं इसलिए मेरे मालिक का जिसका मैनें नमक खाया है उसका राज्य भी बना रहे। बादशाह सिखों को देखना

भी नहीं चाहता। उनके नवें गुरू को वह शहीद कर चुका था अब उनकी नजर उनके सिर उठाकर चलने वाले सुपुत्र पर है। कभी शाही इशारों पर उसे हिन्दू राजा घेर लेते हैं, कभी सूबेदार फौजें लेकर आ जाते हैं। इधर फकीरी ठाठ है तथा उधर बादशाह की सेना, दौलत और सामान है। आखिर इन माँस खाने वालों ने सभी कुछ खत्म कर देना है। गुरू ने तो कभी सच से हिलना नहीं, किसी जगह पहुंचकर असत्य की नीति अपनानी नहीं। स्पष्ट है कि किसी-न-किसी दिन सभी कुछ समाप्त हो जायेगा और यदि हमारे राय भी इसी रास्ते पर चल पढ़े तो भगवान ही रक्षा करे। पता नहीं हमारा अब क्या बनेगा।

वजीर इन्हीं ख्यालों में खोया हुआ था कि उसे चिकित्सा की पुस्तक की याद आ गयी, जो राय ने उसे दी थी। सोचने लगा कि राय की दी हुई पुस्तक को वह पढ़े और देखे शायद उसी में से कोई रास्ता निकल पड़े और कुछ नहीं तो इतना ही पता चल ही जायेगा कि राय के विचार आजकल किस तरफ मोड़ ले रहे हैं। जबकि रात थी, फिर भी दीपक के पास बैठ वह पुस्तक पढ़ने लगा।

घंटा बजा। रात का तीसरा पहर था। नदी पार से शीतल हवा के झोंके आ रहे थे। कभी-कभी तेज हवा आती थी और उस हवा के साथ सुरीली आवाज़, किसी गीत को गाने की आवाज़ आती थी, जैसे कोई प्यारा बड़े सुर के साथ कुछ गा रहा हो। नीला आसमान चमक रहा था। तारे मन्द चाल से जैसे नाच रहे हों। उनकी गति का मधुर प्रभाव हृदय पर पड़ रहा था। शोर-गुल वाली दुनिया मौत की छोटी बहिन की गोद में लेटी हुई थी। इस शान्तिपूर्ण वातावरण में प्रकृति अपना स्वभाव दिखा रही थी। नदी पार से आ रही थी सुरीली आवाज़ जो खुशी की तरंगे हृदय में छोड़ रही थी ऐसी तरंगे जो उत्तेजित नहीं कर रही थीं पर अन्दर ही अन्दर किन्हीं गहरी भावनाओं की ओर ले जा रही थी। जहां जाकर मन की अलगाववादी, फूट वाली वृत्ति समाप्त हो जाती है और एकता, भाईचारे में लीन हो जाती है।

अब तो बिसाली में से भी ऐसे ही प्यारे राग की आवाज़ स्पष्ट आने लगी थी। राज घर का पिछला दरवाजा धीरे से खुला, कोई बाहर आया, दरवाजे को बन्द किया गया, छेद में चाबी डाली गयी, चाबी घूमीं और वह बाहर आया व्यक्ति तेजी से चल पड़ा। हां, वह संगीत की स्वर लहरी की सीध में चल पड़ा। हां, वह संगीत की सीध में ही गया। बिसाली की दीवारों, छत्तों को पार कर, गलियो-कूचों को पार कर, राज भवन से बाहर जूहों तक संगीत जा रहा था और आमन्त्रित कर रहा था। इसका संदेश दे रहा था।

वह व्यक्ति संगीत की सीध में चलता जा रहा था और वहां पहुंच गया। छोटी सी कच्ची जगह है—पर खुला और बड़ा। दरवाजा खुला है—कोई भी अन्दर जा सकता था कोई रोक-टोक नहीं। वह व्यक्ति भी अन्दर चला गया। अन्दर घी का दिया जल रहा था। संगत बैठी थी और कीर्तन हो रहा था। हैं! बिसाली में

कीर्तन। आसा की वार का। बिसाली की नदी के पार तो दाता जी युद्धरत है और इस पार सिख प्रसन्नता से घर बैठे हैं और आसा की वार का कीर्तन कर रहे हैं। हां जी, है तो आसा की वार और कीर्तन भी सिख कर रहे हैं, पर सभी जवान सिख तो नदी के पार जा चुके हैं। वे तो नदी के पार जिनके नयनों से प्यार का झरना बहता है उस मित्र के पास, प्यार पर न्यौछावर होने के लिए जा चुके हैं। अब तो इस पार केवल वहीं है जो उनके प्यार में जीवित हैं, स्त्रियां या बच्चे होने के कारण, बुढ़ापा में कदम होने के कारण या अवस्था के कारण। ऐसा लगता है जैसे वे कह रहे हों–

मेरा मित्र, मेरा स्वामी उस पार खड़ा है।
मेरे प्राण गोता खा रहे हैं।

हां, प्राण गोता खाते हैं, प्यार के सागर में, संगीत में, रस में और अरदास में। मेरे स्वामी हमारे दाता की विजय हो, धर्महीन राजाओं और उनके अत्याचारी मालिकों की पराजय हो। जीत और फतह की बैजयंती माला हमारे दाता के गले में पड़े। हां, कामयाबी हमारे कलगियों वाले को मिले और पराजय मिले धर्महीन और पाशविक वृत्ति वाले बादशाहों को। हां, पराजय की धूलि इन्हीं के माथे पर पड़े। दाता जी बिसाली की सिंहनियां, बच्चे, बूढ़े धर्मशाला में आसा की वार का दीवान सजा रहे हैं और अरदास कर रहे हैं जो नदी के पार हैं, युद्ध भूमि में हैं वे भी आसा की वार का कीर्तन कर रहे हैं। उस पार के कीर्तन की आवाज़ मंद-मंद हवा क़े साथ आ रही है और इस पार के दीवान को रिझा रही है और हृदय में अलौकिक तरंगें उत्पन्न कर रही है। हां, यही है समय जिसे कहते हैं अमृत वेला। अमृत की वर्षा हो रही है। अमृत 'रस देश' में लेकर जा रहा है, परमात्मा में लीन कर रहा है।

मायामद में डूबे वजीर साहिब रोज सुख की नींद सोते थे, पर आज सो नहीं सके नदी के पार युद्ध हो रहा है, युद्ध का क्या पता क्या मोड़ ले ले? क्या पता कौन इस रास्ते से गुजरे और बिना मतलब अड़ कर खड़ा हो जाये। वे ऐसी ही बातें रोज सोचते थे। पर आज तो वजीर के दिमाग में एक आँधी चल रही थी। अब क्या होगा? कैसे निर्वाह होगा? ऐसे विचार उसे सोने नहीं देते थे। आज वजीर जी राय की दी हुई पुस्तक पढ़ रहे थे–शायद कोई रास्ता मिल जाये। पर उसके उपदेश तो उसे किसी और ही देश में ले गये–

तुरे पलाणे पउण वेग हर रंगी हरम सावारिया।
कोठे मंडप माड़ीआं लाए बैठे करि पासारियां।
चीज करनि मनि भांवदे हरि बुझनि नाही हारिआ।
करि फुरमाइसि खाइआ वेखि महलति मरणु विसारिआ।
जरु आई जोबनि हारिआ॥१७॥

वजीर जी सोच में डूबे हुए थे कि तभी हवा के झोंके ने पन्ना पलट दिया फिर नजर पढ़ गयी पढ़ी हुई पंक्तियों पर–

लबु पाप दुइ राजा महता कूड़ होआ सिकदारु॥
कामु नेबु सद पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु।
अंधी रयति गिआन हूणी भाहि भरे मुरदारु।

हे मन! यह तो समस्त प्रजा की मूर्ति है। हवा ने फिर पृष्ठ पलट दिया–

कूड़ु राजा कूड़ु प्रजा कूड़ु सभु संसार॥
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणुहारु॥
कूड़ु सुइना कूड़ु रूपा कूड़ु पैनणहारु॥

माया के मद में मस्त वजीर ने सिर पर यह स्वर हथौड़े की तरह बज रहा था उसने मन की निर्मलता के स्थान दानवता को छिपाया हुआ था। राम...राम... कांपते स्वर में वजीर के मुख से निकला। नैन मुंद गये और मन के आगे नश्वर संसार निकल गया। सब नश्वर है। ठीक है। बुढ़ापा जवानी को खा रहा है। राजा- प्रजा सभी एक दिन मर जायेंगे। कहाँ हैं माता-पिता और उनके जनक। अज्ञान। हा राम।

इतने में कानों में धर्मशाला से आ रही आवाज़ पड़ने लगी। प्रभु में मन लगाने का समय यही है। अमृत रस का समय यही है। 'कूड़ राजा' वाला पद कानों में पड़ा। यह तो वही जो मैंनें पढ़ा है।

वजीर साहिब का घर धर्मशाला के पास ही था। पर अमृत वेला में वे कभी उठे ही नहीं थे, नहीं तो कभी का मन-परिवर्तित हो गया होता। जिसके कानों में आसा की वार का स्वर पड़ता है वह जीवन से सभी दोषों को निकाल कुंदन बना देता है। कान उधर ही लगे हुए थे। कीर्तन को सुन रहे थे। संगीत मन को मोम बना रहा था। पिघली हुई मोम के शब्द के अर्थ अपना प्रभाव छोड़ रहे थे। वजीर काफी देर लेटा-लेटा सुनता रहा, अन्त में उठा। आज उसको पर लग रहे थे। वह भेष बदल कर जा रहा था जिससे उसे कोई पहचाने नहीं। जिससे वह मौका देखकर संगत में बैठ जाए और सुनकर देखे कि यह कैसी जादूगरी है।

वजीर उठकर पत्नी के पलंग के पास गया। सोचा उसे उठाऊं और चुपचाप पीछे के रास्ते निकल जाऊं और वह दरवाजा बंद कर ले जब वह आये दरवाजा खोल दे जिससे नौकर चाकर किसी को पता न चले। पर पत्नी के बिस्तर के पास जाकर उसने देखा कि वह खाली है, पत्नी है ही नहीं। वजीर को चिंता लग गयी। इधर-उधर ऊपर नीचे सभी तरफ उसने देखा, पर जो वस्तु घर में हो ही नहीं, वह भला कैसे मिल सकती है। चालक मन ने क़हा-पत्नी अच्छे घर की लड़की है। एक पहर ठाकुर की पूजा में गुजारती रही है। अब भी किसी अच्छे कर्म में होगी, यदि खोयी नहीं तो सुबह सब पता लगा लेंगे। इससे मन कुछ स्थिर हुआ। अब वजीर पिछले रास्ते से जाने लगा, पर वह बाहर से बन्द था। इससे पता चल गया कि उसकी पत्नी इसी रास्ते गयी है। अब सीधे रास्ते से जाने के सिवाए

वजीर के पास कोई रास्ता नहीं था। अन्दर के पहरेदार को हुकुम दिया, अन्दर से दरवाजा खुल गया। बाहर के पहरेदारों ने सलाम की। वजीर साहिब के पहरेदार निजी नौकर सभी बाहर आ गये। वे हैरान थे, पर वजीर साहिब से कुछ पूछने की हिम्मत नहीं कर सकते थे।

अतरू मालिक का नमक-हलाल नौकर था। जैसा कि उस समय हर खानदान, हर बड़े आदमी के घर हुआ करते थे। मालिक का भेद मालिक से अधिक सम्भाल कर रखते थे। मालिक का पसीना गिरने से पहले अपना खून बहा देते थे। ये गुण उनका धर्म थे। कई बार ये नौकर पीढ़ियों से अपने मालिकों के साथ चले आते थे। इसी तरह अतरू का दादा वजीर के पास आया था और उसका बाप वजीर के बाप के पास रहा था। अब अतरू वजीर के पास काम कर रहा था।

मंजिल पर पहुंचने से पहले ध्वनि आ रही है। वजीर ने अपने चारों तरफ चादर लपेट ली। अतरू को बाहर बैठने के लिए कहा और खुद दरवाजे के पास पहुंचकर अन्दर जाते-जाते रुक गया। उस समय दरवाजे के पास खड़े एक वृद्ध पुरुष ने कहा स्वामी तुम्हारा भला हो। अन्दर आ जाओ। यहाँ सभी का स्वागत है। अमृत रस को पियो और जीवन सफल करो। वजीर जो झिझक गया था, अब अन्दर चला गया और सीस झुकाकर एक तरफ बैठ गया उसे किसी ने कहा कि आगे बैठो या पीछे। जिसे जहां जगह मिली वह वही बैठ गया। आसा की वार का कीर्तन हो रहा था। संगत खुद ही सस्वर गा रही थी रागी नहीं थे। संगत बच्चों, वृद्धों तथा स्त्रियों की थी। संगत उनकी थी जो प्यासे थे, जिनके मनों ने जीने का रास्ता ढूढ़ लिया था। खुद ढूढ़ा हो या घर के सज्जन सम्बन्धियों के साथ रहकर मिला हो। ये वे लोग थे जो आसा की वार की निर्मल धारा से अपने मन को धो रहे थे। उनके मन पर दैनिक व्यवहार से पड़े बुरे प्रभाव प्रवृतियों में पड़ी धूलि, और काम-काज से आये अलगाव के प्रभावों, आसा की वार दूर कर रही थी। मन को धोकर आसा की वार सच्चाई, निरोगता, स्वस्थता और नेकी का प्रभाव दिलों पर डाल रही थी। मर जाना वास्तव में और उत्तम जीवन में जन्म लेना है, किसी आलौकिक रस को प्राप्त करना है। यह भाव संगत के मनों पर रोज लिख देती थी आसा की वार। मर्द को मर्द बनाने का रास्ता दिखाती है। हां, वाहिगुरू को प्रेम का पुंज बताकर, जीव को प्रेम करने का मार्ग दिखाकर, आशा की वार समझा देती है कि सदा तैयार रहो, पता नहीं प्रेम का स्वामी किस समय कृपा कर दे। सदा उसकी याद में, उसके प्यार में रहना चाहिए। उसकी याद उसका 'नाम' है। नाम स्मरण करते समय मन परमात्मा की तरफ रहता है। साहिब का यह चिंतन ही प्रेम बन जाता है।

इस नाम से ही व्यक्ति प्यारे के चरणों के साथ जुड़ता है। मन सदा तैयार है उमंग में है। उसकी इच्छा है कि प्रभु उस पर कृपा करे। वह प्रतीक्षा में है

उसकी इच्छा है प्यार की कृपा की, प्रभु जब भी मिले अपने रंग और अपनी मौज में मिले, वह क्षण में आये या जन्मों युगों को लपेटकर आये पर जब भी आये हमें गाफिल नहीं पाये। जबकि उसकी कृपा हमें सोये से उठाकर भी मिल सकती है, परन्तु हमारी उत्कंठा, हमारा आकर्षण, हमारा प्यार रोके रुक नहीं सकता। हमारा मन लगा रहना चाहिए। हमने सावधान रहना है। परमात्मा से लगाव या प्यार का रूप है उसकी याद। निरन्तर याद बनाये रखने के लिए 'नाम-स्मरण' का अभ्यास जरूरी है। हां जी! आसा की वार नाम की तैयारी सिखलाती है। याद प्रेम स्वरूप है। यही ही उमंग पैदा करती है। हमें बतलाती है कि मन में प्रभु की याद विकसित हुई। तेरे सभी गुण तथा मन की निर्मलताऐं नाम के लिये तैयार है तेरा नाम प्रिय की प्रतीक्षा में है। पर कृपा तो उसकी करामात है। वह यत्नों साधनाओं, हठों, तपस्या से नहीं मिलती। वह तो साहिब की वस्तु है तथा साहिब के हाथ में है। साहिब प्रसन्न हो जाएँ तभी उनकी कृपा होती है। साहिब का प्रसन्न होना उनकी मौज है, यह हमारे वश में नहीं। पर हमारा कर्म और धर्म है, प्रिय के प्यार में रहना। उसकी इच्छा तथा उसकी प्रतीक्षा करना हमारा धर्म है। साहिब जी इसे धर्म-कर्म कहते हैं। 'केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागे।' धर्म का कर्म है प्रभु स्मरण अर्थात प्रेम। इच्छा करना, उमंग होना, विरह में रहना, चिंतन करना और प्रीतम के चिंतन में रहना। ऐसी है आशा की वार जो बताती है कि हमने दैनिक जीवन में किन कर्मों को नहीं करना। वह हमें लाभ के काम करना सिखाती है वह है लगे रहो प्रेम में।

इस मगलकारी आसा की वार का दीवान लगा हुआ था। प्रत्येक सज्जन कीर्तन के स्वर के साथ एक स्वर हो रहा था। इसी संगत में इस समय वजीर बैठा हुआ था वजीर का मन जबकि राजनीति की चालों से भरा हुआ था, पर कीर्तन तथा नामी पुरुषों की संगति का अपना प्रभाव होता है। वजीर के मन पर भी प्रभाव पड़ा। इतना सुन्दर प्रभाव उसके मन पर पहले कभी नहीं पड़ा था। कैसे विचार और स्वाद 'इस मग्नता और अर्थ विचार' साथ-साथ चल रहे थे।

आज संगत ने भोग कुछ पहले ही डाल दिया क्योंकि एक स्त्री ने कुछ विनय करनी थी। संगत उस स्त्री को 'सत्त तिली' कहकर बुलाती थी। अपना यही नाम उसने संगत को बताया था। जब भोग पड़ा तो माई ने विनय की कि नदी के पार हमारे साहिब घोर संग्राम में व्यस्त हैं। वे पातशाह हैं, पहुंचे हुए फकीर हैं, उनके लिए संग्राम क्या! हमारे ही पापों, हमारी ही कुटिलताओं तथा बुराइयों को दूर करने के लिए वे युद्ध कर रहे हैं। लोग दुख पाते हैं अपने कियों का, कोई दुख पाता है अपने देश, कौम और बिरादरी के किये कर्मों का। पर हमारे सतिगुरू दाता कष्ट झेल रहे हैं देश के दुखों को दूर करने के लिए। देश ने पाप किया कि वह विदेशियों, यवनों, मलेच्छों से पराजित हुआ। सदियों से

करवट नहीं ली और दुख सहन करता रहा। अब न आन है, न शान है, न धर्म है न धाम है, सिर्फ कष्ट है। मोतियों के थाल भर-भर कर पुत्रियों को डोली ले जाकर हम मिलते है कि जैसे भी हो हम जीते रहे और खाते-पीते रहे। हमारे दाता ने यह संघर्ष रचा है क्योंकि अत्याचारी राजा प्रेम से, सहिष्णता से, उपदेश से नहीं समझा। अब उसे उसी की भाषा में समझाया जाये जो बोली वह बोलता और समझता है। उसकी भाषा ताकत है, उसकी इस ताकत को तोड़ना होगा तभी वह होश में आयेगा। मेरे प्रिय भाईयो! संगत के कई नवयुवक गुरू की सेवा में सफल हो रहे हैं, पीछे आप वृद्ध तथा हम स्त्रियां हैं। अबलाए और नवयुवक हो रहे हमारे बालक। पर हममें भी दाता ने शक्ति दी है, प्रकाश दिया है। अब हमारा खून ठंडा नही रहा है वह उबल रहा है कि हम भी कुछ करें। संगत आज्ञा दे तो कुछ रसद-पानी को सेवा हम करें? वहां आवश्यकता नहीं क्योंकि वहां तो वे प्रवाह 'साहिबी' हैं, पर हमारी चाकरी तो प्रवाह वाली है।

इतना सुनकर सभी ने कहा—वाह! वाह! धन्य साधु संगति। धन्य साधु संगति। धन्य माई सत्ततिली। माई को स्वामी ने तृप्त किया है। सभी ने अपनी जेबों में हाथ डाला, जो जिसके पास था वह उसने दे दिया। पलभर में ढाई सौ रुपया इकट्ठा हो गया। वह धन माई ने ले लिया और बोली शेष प्रबन्ध मैं करूँगी। किसी ने नहीं कहा कि माई से रसीद लो, धन की रखवाली करो। ऐसा क्यों हो? सभी आसा की वार के बच्चे हैं, धुल चुके हैं, आत्म मंडल के एक ही परिवार के सदस्य हैं।'

वजीर को चिन्ता हो गयी कि कहीं लोग उसे पहचान न लें, क्योंकि दिन चढ़ गया था। वह शीश झुकाकर, खुद को चादर में लपेटे वहाँ से खिसक लिया। वह माई के कुछ शब्द सुनकर ही चल पड़ा था, पर जहाँ वह बैठा था उससे कुछ दूर ही वह रुमाल में बँधी गठरी छोड़ आया था जिसे धन इकट्ठा करने वाले ने उठाया। इसे खोलने पर कुछ मोहरें और एक कागज मिला। कागज पर लिखा था—यह माया सफल करनी। साध संगत की कृपा हो। किसी को पता न चला कि वह कौन रख गया है। माई अपने अति सादे रूप में सादगी की मूर्ति थी, माया लेकर चली गयी। अभी तक संगत को पता नहीं था कि माई किस घर से आती है, कहाँ से आती और जाती है? पर धन्य है वे हृदय जो इतने सरल हो गये थे कि किसी के मन में संशय नहीं था कि धन राशि चरणों तक पहुंचेगी या नहीं।

: ३ :

चढ़ते हुए सूर्य की आभा में श्री गुरू गोबिन्द सिंह खड़े हैं। उनका बांया हाथ घोड़े की पीठ पर है। वे चढ़ते हुए सूर्य की किरणों में दुश्मनों की चालों को दूर से देख रहे हैं। तभी एक निर्धन सिख पास आया और माथा टेककर, हाथ जोड़कर बोला—अरदास है?

गुरू जी—कहो खालसा जी?

सिख–पातशाह (धीरे से) दास नदी पार से आया है। बिसाली का राय आपके चरण चूमना चाहता है। उसकी अरदास हैं कि हुजूर जो नदी पार करके बिसाली आ जायें और आराम करें। उसके घर को अपना समझें। राय खुद आपसे विनय करने के लिए आ रहा है। आप हुकुम करें कि पहरे पर खड़े सिंह रोक-टोक न करें जिससे राय साहिब की हजूरी में हाजिर हो जाए।

गुरू जी–(आँखों को कुछ पल मूँदकर, फिर खोलते हैं) वह खालसा कौन है? दड़का सिंह। इधर आओ।

दड़का सिंह घोड़ा दौड़ा कर आता है–साहिब जी हुकुम करो।

गुरू जी–इस सिंह के साथ नदी पार जाओ। राय बिसाली आ रहा है उसे सम्मान से ले आओ।

दड़का सिंह (घोड़े से उतरकर, कान में) राजाओं का विश्वास नहीं पहले तसल्ली कर लूँ कि जैसे वे आयें हाजिर करूँ?

गुरू जी–सम्मान की सीमा में रहते हुए तसल्ली कर लेना, परन्तु आवश्यकता नहीं है। राय सज्जन है, समझ वाला है। वाहिगुरू से प्रेरित है।

सीस झुकाकर दड़का सिंह आये हुए सिंह को पीछे बैठाकर चला गया। कुछ ही समय में राय अपने वजीर और कुछ योद्धाओं को साथ लेकर आ गया। राय जी ने चरणों का स्पर्श किया और फिर विनय की।

प्रभु जी चलह संग अबि मेरे। रिदे जानि करि अपने चेरे।।३३।।
निज पावन *कहु करी अहि पावन+। जिनि ते हीए सदन मम पावन।
नगर बिसाली अपने जानहुं। रहहु निकेत बास को ठानहु।।३४।।
सिंघ मेखला अवनी सारी।। महाराज प्रभु! अहै तुमारी।
भीम चन्द आदिक गन राजे। मूढ मती सभ करहिं कुकाजे।।३४।
.....हिंदु धरम की भुजा भए हो। पर उपकारि कृपाल थिए हो।
सरब शिरोमण दीपक दीपह। तुमरी समसर को अवनीय?।।३९।।
नर लीला के बनि अनुसारी। करहु कृपा श्री प्रभु उपकारी।।४१।।
अपने नगर जानि कर धामू।। रचन जंए ते करो अरामू।। (सू॰ प्र॰)

विनती सुनकर सतिगुरू जी ने कृपा दृष्टि से देखा और कहा–

पूरब जनम तपयो तप जबै। सतिसंगति भी कीनसी तबै।।
तिस को फल ते कहु हुई आयो। चाहति बंधन आपन गवायो।।४४।।
उपजी सुमति आनि इस समे। निर्भय होए गुरु घर के निमै।
सभि के संग हमार बिखण। बिन बिचार आय इस बेरा।।४५।।
है जकर इम भाउ तुमारे। गमनहिं नगर बिसाली मझारे।
तूँ चलि प्रथम अपन घरि मांही। हतिबे रिपु हम मिटहिं सु नाही। (सू॰ प्र॰)

---
* चरणों को, + पाना, प्राप्त करना, = पवित्र।

शीश झुका, आज्ञा को सिर माथे स्वीकार करके राय चला गया।

आधी रात बीत चुकी है। वजीर जी लेटे हुए हैं, पर जाग रहे हैं। सतिसंग हो आये है। राय द्वारा दी गयी पुस्तक पढ़ चुके हैं। सतिगुरू के प्रति संगत का प्रेम देख चुके हैं। अब राय के साथ जाकर साहिब के दर्शन कर आये हैं। हां सभी नीतियाँ भूलकर, राय की इच्छा को पूरा कर आये हैं। कवि जी ने लिखा है:–

निज परधान संग कहि सुनि कर।
हम चढि आनहि पुरि निज, सतिगुर।

इससे स्पष्ट है कि राय ने वजीर को भी अपने पीछे लगा लिया है। वजीर प्रभावित भी हो चुका है, पर मन में फिर नीति पंख फैला लेती है कि यदि पहाड़ी राजे, सूबेदार क्रोधित हो गये तो फिर क्या बनेगा? दूसरी सोच स्त्री की थी कि रात को वह कहाँ गयी थी। आज वह उसका पीछा करेगा। सो वजीर चुपचाप लेटा हुआ जागता रहा।

तीसरे पहर का घण्टा बजा। वजीर की पत्नी उठी। पति को हिलाकर, कान में बोली–मालिक जी जाग रहे हो? पर मालिक जी तो जागते हुए भी सोये पड़े थे। स्त्री ने समझा पति गहरी नींद सो रहा है। स्त्री ने स्नानघर जाकर स्नान किया। वजीर देखता रहा। नहा धोकर सादा खद्दर का लिबास पहना। वह फिर पति को देखने आयी कि सो रहा है कि ज़ाग गया है। उसे सोया देख वह पीछे के रास्ते गयी। अपने साथ अपनी मन प्यारी दासी सखि को ले गयी। उसका नाम रामो था। बाहर से दरवाजा बन्द करके रामो ने चाभी अपनी जेब में डाल ली। वजीर साहिब सभी देख रहे थे। वे सीधे रास्ते से जाकर एक घर के पीछे छिपकर खड़े हो गये–वहीं से वे दोनों निकलीं। थोड़ी-सी दूरी रखकर वजीर उनके पीछे-पीछे चला। वह क्या देखता है कि उसकी पत्नी आसा की वार के घर में चली गयी है। वह भी पीछे-पीछे चादर लपेट कर चला गया। उसने अपने मुंह को भी कुछ ढका हुआ था। वहाँ जाकर उसे पता चला कि माई 'सत्ततिली' तो उसी की पत्नी है। वजीर जी के मन में जो बात अभी तक चुभ रही थी वह तो दूर हो गयी थी। पर वह हैरान था कि उसकी पत्नी आसा की वार की रसिक कैसे हो गयी और इस स्थान तक कैसे पहुँची? चाहे वह मुझसे चोरी यहाँ आ रही थी, पर भगवन प्यार की खातिर आ रही थी। कल यहाँ से रुपये इकट्ठा करके रसद पहुँचाने के लिए ले गयी और मुझे पता भी नहीं। इतने कठिन काम को उसने कैसे पूरा किया होगा। इस विस्मय में सतिगुरू की प्रशंसा का भाव भी था, पर हैरानगी दूर नहीं हो रही थी। जिस समय भोग पड़ा तो माई ने बताया कि रसद कल ही गुरू जी के पास पहुँच गयी थी। उसी समय एक सिंह ने बताया कि वह नदी पार से आया है और उसने कुछ आवश्यक काम करने हैं। सतिगुरू जी इस संगत से बहुत प्रसन्न हैं। उस सिंह की बातचीत से मालूम चल गया कि रसद

पहुँच गयी है–वह रसद लगभग पाँच हजार की है। संगत ने ढाई सौ रुपया इकट्ठा किया था। पाँच सात सौ की मुहरें थीं जो संगत को गुप्तदान के द्वारा प्राप्त हुई थीं, पर यह पाँच हजार कहाँ से आ गया। माई सत्ततिली का गहरा प्यार तो सभी जानते थे, पर आज मालूम चल गया कि माई पैसे वाली है, और सतिगुरू से उसे अपार प्रेम है। जब संगत ने शाबासी दी तो माई ने कहा–यह तो सतिगुरू की कृपा है। दास का सम्मान क्यों करते हो। माया (धन) वे ही देते ओर लेते हैं, जीव तो पुतले मात्र हैं। अब वजीर साहिब और हैरान हुए कि उनके घर से इतना दान भी हो जाता है और उन्हें खबर नहीं। इसका प्रेम कितनी गुप्त चाल चल रहा है कि मेरे कानों को आहट भी नहीं होती।

अब घर की तरफ मुड़े तो वजीर घर पहुंच गया और पिछले दरवाजे के पास खड़ा हो गया। जब सत्ततिली ने अन्दर प्रवेश किया तो बनावटी गुस्सा दिखाते हुए वजीर ने कहा–'दिन में बिल्ली से भी डरें और रात को नदी तैरें' बताओ इस समय कहाँ से आ रही हो।

स्त्री ठिठक गयी, हैरान हुई, पर न तो डरी और न घबराई।

वजीर (कड़ी आवाज़ में)–कौन सी नदी तैर कर आई हो।

सत्ततिली–विषय नदी, भवजल की नदी।

वजीर–पहेलियां? हैं, पीरों से पाँच?

सत्ततिली–'सचु सभना होए दारू पाप कढै धोइ' सचु, बिल्कुल सच जी। मैं सत्संगति में गयी थी। सत्संगति से ही आयी हूं। भवजल से तैरने के लिए जाती हूं।

वजीर–सत्संगति तो फिर चोरी क्यों?

सत्ततिली–यदि हुकुम दो तो अन्दर चलकर बातचीत करें। कहीं नौकर-चाकर न आ जाएँ।

वजीर–अच्छा।

अन्दर आकर आराम से बैठते हुए।

सत्त–चोरी तो कोई नहीं थी, पर लुकाव था। आपका झुकाव सतिगुरू की तरफ नहीं था। मुझ मरती को जीवन का कण यही से मिला। प्यासा जिस तरह पानी की तरफ भागता है मैं जीवन जल की प्यासी विवश उठकर दौड़ी जिससे कि जीवन रूपी अमृत मिल जाए। इस सत्संगति में झूठ के लिए स्थान नहीं। अब चाहे मारो चाहे रखो। बुराई करो या क्षमा करो। सत्य तो यही है।

सत्य और सरलता, निर्भयता और सम्मान देखकर वजीर को आश्चर्य हो रहा था। सोचने लगा–राय और रानी का प्रभाव पड़ा–जो इस निर्भयता और सत्य बोलने से स्पष्ट है। उसमें वह साहस और प्राणों का संचार हो रहा है जो बड़े-बड़े राजाओं में नहीं है। यह मेरी अबला स्त्री, जिसका पालन घर की दीवारों में हुआ,

जो तिनके के हिलने से भी डर जाती थी, पंख उड़ता हुआ जाता था तो सहम जाती थी वह भी निर्भय है, सच पर खड़ी है, फिर प्यार और सम्मान में हैं, चतुर और साहसी भी है। इसने पांच हजार की रसद कैसे पहुंचायी होगी। इन विचारों ने उसके हृदय को प्रशंसा के भाव से भर दिया। बनावटी क्रोध अब दूर हो गया था। नीति का पूंज वजीर दो दिन आसा की वार का कीर्तन सुन उसके प्रभाव में आ गया था। सीधा और साफ प्रश्न उसके मुंह से निकल गया—यह रसद किसने खरीदी, किसने लादी, किसने नाव पर चढ़ाई, किसने उतारी तथा किसने लंगर तक पहुंचाई सत्तिली तो औरत जाति है।

सत्त—कृपा, कृपा, कृपा हो।

वजीर (हैरान होकर) कृपा से क्या मतलब है?

सत्त—आप भी आसा की वार के प्रभाव में है—धर्म स्थान पर हो आये हो कृपा है।

वजीर—कैसे?

सत्त—चाहे मेरा पीछा करने के लिए गये थे या सतिगुरू की कृपा से प्रेरित होकर गये थे, पर जैसे भी हो आप सत्संगति में गये थे जरूर, तभी आपको रसद और पांच हजार का तथा सत्तिली का नाम मालूम चला। आप गये हैं न आसा की वार के मंदिर में। आपने अमृत वाणी का स्पर्श पाया है—इसी बात की खुशी है। मेरे मालिक जी! साईं ने कृपा की, आप भाग्यशाली हैं कि सत्संगति में गये, वे चरण पवित्र हैं जो आसा की वार का द्वार स्पर्श कर आये। धन्य है प्रेरणा देने वाला दाता!

वजीर (अब पर्दा और नीति को भूलकर)—मैं तो साहिब के द्वार भी हो आया हूं और उन्हें न्यौता भी दे आया हूँ कि आओ हमारे नगर में आकर वास करो।

सत्त—धन्य! मेरी अमृत माता धन्य। धन्य मेरी लाढ़ प्यार करने वाली रानी अम्बा। आसा की वार मेरी सभी इच्छाएँ पूरी करें।

सत्त—मेरी इच्छा थी कि आप भी इस अमृत कुंड से अमृत रस पियें। कहते हैं सिकन्दर भी अमृत कुँड के पास गया था, पर अंधकार के कारण वापस लौट आया। मैं कहती थी—हाय! यह मुझ में ही कमी है कि मैं अमृत रस पीती हूँ और अपने मालिक को पिलाने में असमर्थ हूं। मैं पीती जाऊँगी और वे प्यासे रहेंगे। पर आपके नीति वाले दिमाग के आगे मैं मूर्ख कोई रास्ता नहीं खोज पा रही थी। धन्य मेरी आसा की वार, जिसने मेरी सभी इच्छाएँ पूरी कर दीं।

वजीर—(मुस्कराकर) आश्चर्य है। मेरे मालिक को भी सत्संगति की समझ और साहिब की कदर मिल गयी। उसने ही मुझे आसा की वार की पुस्तक दी। मेरी स्त्री जो मुझे मालिक समझती है उसे भी समझ आ गयी और मैं विचारों

की नदी में बहता रहा और सूखा का सूखा रहा हाँ यह भाग्य के ही कौतुक हैं, अचरज हैं।

सत्त–जैसे क्षीर भवानी लोगों की देवी है वैसे ही यह अमृत भवानी आसा की वार मेरी देवी है। उसने, जैसे भी हुआ अपने दरबार की ओर खींच ही लिया न। जैसे उसने राजा को चाट लगायी, जैसे मुझे आकर्षित किया। हे मालिक जी! आप को भी उसने खीच लिया। उस रानी के मार्ग न्यारे हैं।

वजीर–मुझे तो आश्चर्य है कि तुमने बचपन में ठाकुर पूजा की, दाज में ठाकुर को साथ लेकर आयी, तीन घंटे तक रोज पूजा करती थी। फिर तुम इस तरफ कैसे चली गयीं।

सत्त–पता नहीं, जब से ठाकुर मिल गया, वही ले गया होगा। पति जी! क्या पता, वही पूजा–मेरे दिल में तो भावना थी–वही विकसित हुई हो। क्या पता उसी ने मेरा मन निर्मल किया हो और इस जागृत ज्योति, संगीत वाहिनी, आशा पूरक देवी, आसा की वार ने मुझे अपनी शीतल छाया में तभी खींच लिया हो।

वजीर–वह मार्ग कैसे मिला?

सत्त–एक दिन मुझे मौत का भय हुआ। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतनी देर मैंने ठाकुर की पूजा की और अभी भी मन से मौत का भय नहीं गया। इन्हीं विचारों में खोयी मैं सो गयी। कोई पहर भर रात रहती होगी कि तड़प कर उठ बैठी। मन में अब भी वही भय था। उस समय कानों में आसा की वार की आवाज़ आयी। समझ तो कुछ नहीं आ रहा था, पर स्वाद आ रहा था। फिर रामो को कहकर सारे भेद मालूम किये। मैं रोज सुबह उठकर धुन सुनती, पर प्रतिदिन इच्छा बढ़ती जा रही थी कि बीच में बैठकर सुनूँ, समझूँ भी और रस भी लूँ। मन करे, आप से बात करूँ, पर डर लगे कि कहीं आप क्रोधित न हों। जब एक बार आप इलाके से बाहर गये तो मैं रामो को साथ लेकर पहली बार पीछे के रास्ते गयी और भोग पड़ने से पहले ही अन्धेरे–अन्धेरे में ही लौट आयी। बस उसी दिन से समझ भी और स्वाद पड़ गया। ठाकुर खुद ही पत्थर दीखने लगा। मालिक जी! क्रोधित मत होना, मैं सत्य कह रही हूं। ठाकुर का अपमान नहीं कर रही। देखो, नामदेव और धन्ना जी बड़े ठाकुर भक्त थे, जब उन्हें समझ आ गयी तो उन्होंने भी ठाकुर को पत्थर ही कहा। कबीर जी ने भी कहा है–

कबीर पाहन परमेसरु की आ पूजे सभु संसार।।
इस भरवासे जो रहे बूड़े कालीधार।।

यदि मेरे मुँह से पत्थर निकला है तो क्षमा करना, मेरे वश में नहीं, मैंने तो सत्य कहा है। मैं भी पूजती थी मानती थी, पर अब ठाकुर अंग संग नजर आता है। हे स्वामी इस तरह रस में बंधी मैं जाने लग पड़ी। मैंने चोरी नहीं की। डरती थी कि आप दुनिया में इज्जत को देखते हुए, या किसी नीति के कारण मुझे रोको नहीं। मैं आपके हुकुम को टाल नहीं सकती थी और बिना वहां गये मैं जी नहीं

सकती थी। मेरी भूल को क्षमा करना और अपने भले के लिए मुझे सहन करना। मेरे वश में कुछ नही, मुझे इस सत्संगति का मोह है, उसका आकर्षण है।

वजीर अपनी स्त्री की सादगी और सत्यता की कदर कर रहा था और द्रवित हो रहा था—पवित्रात्माएँ हों तो ऐसी, मैं केवल छल-कपट जानता हूं। इसके बिना राज्य करना भी तो सम्भव नहीं। मेरे ही घर में कितने साफ दिल वाली स्त्री है, जिसमें छल-कपट नहीं है। उसकी सादगी और पवित्रता के आगे तो मेरा दिमाग भी काम नहीं कर रहा। सच है—भवजल में से ऐसे लोग ही पार उतरेंगे। वजीर ने अपने इस कोमल भावों को रोक लिया और चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुए पूछा यह काम तो सादगी और भक्ति भावना के हैं, परन्तु युद्ध भूमि में रसद पहुंचा देना, और मुझे तथा संगत को मालूम न चलने देना कि यह स्त्री कौन है—ये सब बातें तुमने कहाँ से सीखी?

सत्त—स्त्री के सात या नौ अवगुण शास्त्रों ने गिनाये हैं, मैं उनसे खाली कैसे रह सकती हूं? पर स्वामी जी! आपके चरण मेरे सामने हैं, चरण पादुकाएँ हैं, मैं सत्य कहती हूं मैंने कोई चलित्र नहीं किया। रामो का भाई शहर में बनिया है उसकी काफी बड़ी दुकान है। रामो ने उसे कहा कि इस तरह रसद पहुंचानी है, तुम ही प्रबन्ध करोगे और तुम ही पहुँचाओगे। इस काम को करने के बदले में तुम्हे सौं रुपये मिल जायेंगे। पर दो बातें करनी होगी—एक मुझसे यह मत पूछना कि भिजवाने वाला कौन है और किसी को बताना नहीं कि किसने भिजवाया है। पार जाने पर यदि सतिगुरू पूछें तो कह देना बिसाली की संगत ने यह रसद भेंट स्वरूप भेजी है। यही सच है। वह आदमी अच्छा है, सुबह वार सुनता है, उसे मालूम था कि संगत ने पैसा इकट्ठा किया है, पर उसे यह पता नहीं चल सका कि सत्ततिली माई ने पांच हजार कैसे बना लिया और उसकी बहिन को सत्ततिली कहां मिली और सत्ततिली कौन है? यदि वह आदमी खोटा निकलता तो बहुत बुरा होता। पर वह तो मेरी देवी रानी आसा की वार का लाडला है। वह तो खरा मनुष्य बन चुका है। स्वामी जी! उसे सौ रुपया इस कष्ट के बदले में देना तय हुआ था उसने वह भी नहीं लिया। कहने लगा—परमात्मा ही सभी कुछ करवाने वाला है, सो करता कादर करीमुदे जीआ रिजक, संवाहि हैं हमें खाने-पीने को वही ही तो दे रहा है, फिर मैं उसका मार्ग बताने वाले—सतिगुरू की सेवा का मूल्य लूँ जो अपने स्पर्श मात्र से नये प्राणों का संचार करते हैं?

सतिगुरु विटहु वारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ॥
जिनि करि उपदेसु गिआन अंजनु दीआ इनी नेत्री जगतु निहालिआ॥

उस सतिगुरू की सेवा का मूल्य लूँ। इस तरह नित्य आसा की वार सुनने वाले ने इस कठिन काम को भी कर दिया। आपको शायद पता नहीं कि मल्लाह लोग पीरों-फकीरों से सदा डरते हैं। उनको सतिगुरू की सुनकर खुशी हुई और प्रसन्नता के साथ रात के अँधेरे में सारा माल लाद कर पार ले गये। वैसे वे अन्धेरा

हो जाने पर नाव नहीं चलाते। फिर स्वामी जी देखो, उन्होंने भी मजूदरी नहीं ली– कहने लगे वे परमात्मा की ज्योति हैं, हमें वे ही तो पालते हैं, कठिन समय में यदि हम उनके काम आये हैं तो उनसे मजदूरी लें। जिस के सिर पर परमात्मा हो, नहीं वे तो स्वयं ठाकुर है, उनसे मजदूरी कौन लेगा? आपको याद होगा मल्लाह (केवट) ने श्री रामचन्द्र जी से भी मजूदरी नहीं ली थी। कहने लगा–तू भी किसी का। मल्लाह (परमात्मा) है, जब मैं तेरे पास आऊँगा तो तू भी बिना मजदूरी के मुझे पार पहुंचा देना। हमारा दोनों का तो एक ही काम है–वही बात इन लोगों ने की वह तो सुनी थी यह प्रत्यक्ष देख ली। मेरे स्वामी जी! मैंने तो सीधे-सरल ढंग से सच बात कह दी है, यदि अनजाने में कोई गलती हो गयी हो तो अपनी पत्नी की लाज़ रख लेना और क्षमा कर देना–आदमी गलतियों का पुतला है। (आँखों में आंसू भर आये)।

इस बात को सुनकर वजीर का दिल भी भर आया। सच मेरी अकल से तो काठ भी नहीं तैरता पर इसने तो अपने भोलेपन और विश्वास से पत्थरों को भी तार दिया है। (असम्भव को सम्भव बना दिया है।) 'विश्वास ही व्यक्ति को मुक्त करता है' किसी ने यह सच कहा है।

सत्त–क्या आप मुझसे नाराज हैं? क्या मैं बुरा कर्म करती रही हूं।

वजीर–(संकोच से) नहीं सीता। तुम तो सचमुच सीता हो। तुम सत्य को प्रेम करने वाली सीता हो। (नरमी से) मुझ जैसे राक्षस के पल्ले तुम कैसे पड़ गयी? मैं इस समय सभी नीतियों को छोड़ सच कह रहा हूं। तेरा भला हो गया तुझे तो राम मिल गया। मैं तो माया के जाल में फंसा रहा, तुम सीधे रास्ते चलीं। लोग कहते हैं स्त्री-पुरुष के कर्म आपस में बट जाते हैं। मैं शायद तुम्हारे शुभ कर्मों के कारण ही आसा की वार के द्वार गया हूं। यह तेरे सत्य की करामात है कि राजा मुझे उपदेश दे। राजा मेरे लिए जनक के समान ज्ञानी और मैं सुखदेव की तरह उसका शिष्य हो गया उसी विचार में मैं रात भर जागा। उसी ने मन में संशय पैदा कर किया कि तुम कहाँ जाती हो। फिर तुम्हारे ही शुभ कर्मों से मुझे सतिगुरू के दर्शन हुए। मैं उनके दर्शन करके, उनके वचन सुनकर तथा उनका साहस देखकर हैरान था (प्रसन्नता के स्वर में) हम उन्हें आमन्त्रित कर आये हैं, पर अभी वे आये नहीं। वे सत्य पर अटल खड़े हैं। वे अवश्य आयेंगे, पर पहले अपने बंदों को पार उतारेंगे। स्त्रियों, बच्चों तथा शस्त्रहीन लोगों को पहले पार उतारेंगे। वे खुद रक्षा करेंगे, फौज को बाद में नदी पार करायेंगे। कुछ दस्ते युद्ध करते रहेंगे, तोपें चलती रहेंगी, शत्रु के सामने पीठ दिखाकर वे भागेंगे नहीं। पैतरा बदलकर सभी की रक्षा करेंगे। अति पवित्र और सच्चे सूरमा इस पार आयेंगे। उन्हें मौत का रत्ती भर भय नहीं है। सच कहता हूं यदि मैं होता तो प्राण बचाकर भाग आता–फौज और साथी जाते भाड़ में। राय तीन बार संदेशा भेज चुके हैं पर वे शत्रुओं के सामने डटे हुए हैं।

सीता! राजा भी तेरी तरह उनके प्यार में व्याकुल है। एक मैं ही बीच में सूखा खड़ा था। तेरे विश्वास ने मेरे अन्दर भी अविश्वास के सरकण्डों में गन्ने का रस भर दिया है।

सत्य–यह करामात है–'नानक सा करामाति साहिब तुठै जो मिलै।' आप पर साहिब खुद प्रसन्न हुए हैं। धन्य मेरी आसा की वार, सत्य की देवी।

वजीर–(आंसू से भरी आंखों और मुस्कराहट से भरे होठों के साथ)–इस संगत में तुम्हारा नाम सत्ततिली क्यों पड़ा, तुम्हारा नाम तो सीता है।

सीता–जब मैं छोटी थी और घर में खेला करती थी तब एक बावले से साईं हमारे घर आया करते थे। वे मुझे प्यार से कहते थे–भाग्यशालिनी हैं, जन्म सफल करेगी। पिता-माता इससे प्रसन्न होते थे। एक दिन मुझे गोदी में लेकर मेरा चेहरा देख रहे थे तो बोल पड़े–तुम तो सत्त (सात) तिली हो। पिता जी हंस पड़े और पूछने लगे–क्या बात है महाराज! तो मेरे पिता को पास बुलाकर कहने लगे–गिनो, इसके मुंह पर सात तिल हैं। आप भी देखो–छोटे-छोटे हैं, सरसों के दाने की तरह छोटे-छोटे। एक भवों में है सबसे छोटा, नाक पर है और एक ठोढी पर, दो कान पर हैं, गालों पर हैं। हैं तो सात–फिर हुई न आपकी लड़की सत्ततिली। वे जब भी आते मुझे सत्ततिली ही कहते और आशीर्वाद देते–भाग्यशालिनी हो, अच्छा वर मिले, साहिब की चरणधूलि इसके माथे लगेगी, सत्ततिली को ठाकुर मिलेगा। जब मैं सत्संगत में गयी तो सुख मिला तो मुझे याद आया कि साईं का वर फला है। तब मैंने सोचा कि वर तो सत्ततिली को मिला था सत्संगति की कृपा का सीता को तो वर मिला नहीं था? इसलिए संगत में मैंने उनका दिया हुआ नाम ही बताया। मैंने सच-सच बताया है। सीता का नाम छिपा कर आपके भय से रखा। यह मेरी भूल है, मुझे क्षमा कर दो।

: ५ :

रणभूमि, नदी का किनारा। राय बिसाली वाला विनय कर रहा है–साहिब जी! आपके चरणों का आकर्षण बैठने नहीं देता–कृपा करो ओर बिसाली चलो। आप हैं तो सभी कुछ है। घमासान युद्ध हो रहा है। इसका इस समय यही अन्त उचित है। आप तो दाता हैं, मैं तो आप से मोह के वशीभूत कह रहा हूं।

वजीर–साहिब जी! आपका विरद है, आप भक्त वत्सल हैं, नदी पार कई पपीहे आपके दर्शनों के लिए तरस रहे हैं, आप जरूर चलो?

गुरू जी–राय साहिब के योग्य प्रधान। आपका प्रेम श्रेष्ठ है, आकर्षित करता है, परमात्मा का आदेश भी यही है, शत्रु की तरफ से संधि के जितने सन्देश आये हैं वे धर्मशून्य हैं। जंग का रंग गहराता जा रहा है, पर हम पीठ नहीं दिखायेंगे, भागेंगे नहीं, अपने लोगों को बचाते हुए पार आना है जैसे सूरमा शूरवीरता से चलता है, वैसे ही।

वजीर–सच है, आपकी सत्यता सूर्य है। इसी से सभी प्रकाश उत्पन्न होते हैं। मेरा मन छल-कपट और मोह वाला है, पर दाता! आपके प्रताप से प्रकाश में आया हूँ, और आपके मूल्य और कदर को मेरे दिल ने समझा है। जैसे भी सम्भव है नदी पार चलकर हम सभी को तृप्त करो।

गुरू जी–सत्य वचन। ऐसा ही होगा। आप चलो और अपने साथ सभी को ले चलो, योद्धा और उनके परिवार, बच्चे, बूढ़े, जख्मी और बीमार। इनको पहले अपने साथ ले जाओ और नदी पार कराओ। किनारे पर नावें तैयार खड़ी हैं, कुछ पार से और बुला लो। इनके पीछे आयेगी फौज। हमने ऐसी योजना बना ली है कि लड़ते, मारते, बढ़ते, दाएं-बाएं से रास्ता बनाते शत्रु से हर क्षण लोहा लेते हुए उन सभी लोगों को जिनकी यहां आवश्यकता नहीं है नदी पार करा दें। फिर हमारे जो योद्धा आज बच जायेंगे, वे पार आयेंगे। उस समय तक शत्रु थककर चूर हो जायेगा और मौत से लड़ता हुआ नदी से दूर होगा तो हम अन्धेरे में नदी पार कर जायेंगे।

राय–आपकी इस योजना पर मैं कुर्बान, मैं बलिहारी जाऊं आपकी वीरता और युद्ध कुशलता पर। यदि आप सत्य और इखलाक को एक तरफ रखकर युद्ध करते तो पता नहीं क्या हो जाता। एक आप ही हैं संसार में जो धर्म युद्ध कर रहे हैं और धर्म के सभी अंगों की पालना कर रहे हैं। पर कौन कदर करता है? समय बीत जाने पर, भविष्य में लोग आश्चर्यचकित होंगे ओर आपके व्यक्तित्व को अद्वितीय अनुभव करेंगे।

गुरू जी–सब परमात्मा के रंग हैं। उन्हीं के हुकुम को बजा रहा हूं। चेतना परमात्मा के चरणों में है, उन्हीं में लीन। परमात्मा से लोगों का जो अलगाव है, दूरी है, वह नहीं होनी चाहिए। चाहे आदमी जीते चाहे हारे। जितने मार्ग युद्ध में विजय के हैं, वे प्रभु चरणों में चेतना के विरोधी नहीं होने चाहिए, मेरी युद्ध की नीति में उनके लिए कोई स्थान नहीं। मुझे तो सीधी राह पर चलना है। हां वही रक्षक है, वही रक्षा करेगा। फिर दूसरा कौन मार सकता है? क्या कोई ऐसा है?

कहते-कहते उनकी आंखें प्रभु भक्ति में लीन हो गयीं।

राय–हो सके तो शीघ्र चलो। हो सके तो बिना लड़े चलो।

सुनि कर श्री गोबिंद सिंह धीर।
कहयो चलहु ले संग बहीर।
हम इस तुरक संग करि जंग।
भूप गुमान करहि सभि भंग।
रुंड मुंड रन बिखे बिखेरों।
तोल लराई सभि बिधि हेरों।।४।।

राय ने शीश झुका लिया। वह वापस चल पड़ा। उन्हीं के साथ शस्त्र विहीन अन्य लोग भी चल पड़े। जैसा सतिगुरू ने कहा था राय शेष लोगों को लेकर पार चला गया। उधर शत्रुओं ने जब देखा कि एक हिस्सा नदी को पार कर रहा है तो युद्ध और घमासान हो गया। आक्रमण पर आक्रमण होने लगा और सतिगुरू के योद्धा योजना के अनुसार शत्रु दल पर टूट पड़े। साहिब जी खुद जगह-जगह पर तीरों की वर्षा कर रहे थे और तोपची तोपें दाग रहे थे। दूसरी तरफ सेना का हिस्सा नदी पार करता रहा। युद्ध का विस्तार लम्बा है। युद्ध घमासान था। वजीर अपने लोगों से कह रहा था कि इतना घमासान युद्ध उसने पहले कभी नहीं देखा।

सिख हर क्षण लड़ते हुए नदी की ओर बढ़ रहे थे और डटकर मुकाबला कर रहे थे। वे केवल आक्रमण को रोक ही नहीं रहे थे बल्कि आगे बढ़कर हल्ला भी कर रहे थे। उनकी बुद्धि और विचार तथा योजना और बहादुरी इस युद्ध में सभी नजर आ रहा था। सिख सेना तीन भागों में बंटी हुई थी–शत्रु के सामने श्री अजीत सिंह दो हजार सूरमाओं के साथ टक्कर ले रहा था और आगे कदम बढ़ा रहा था। उसके अधीन अन्य सूरमा थे–उदय सिंह, आलम सिंह, दया सिंह तथा मुहकम सिंह। उसके आगे अर्थात बीच में एक हजार सेना के साथ–साहिब चन्द था जिसने अजीत सिंह की हर समय सहायता करनी थी तीसरी जगह सतिगुरू स्वयं थे। कभी दाएं तो कभी बाएं से आगे निकल शत्रु के आक्रमण को तोड़ते। उन्हें थका और दुखी कर रहे थे तथा योजनानुसार बढ़ रहे थे। आपके तीरंदाजी के कमाल से प्रलय आ गयी। युद्ध का हाल बहुत लम्बा है, पर सार यही है कि गुरू जी नदी के किनारे पर पहुँच गये। यह देखकर वजीर खां और पहाड़ी दल का जोर हल्का पड़ गया। इस समय के युद्ध का वर्णन करते हुए कवि संतोख सिंह ने लिखा है–

बहुरो घात हाथ नहीं आवै हुइ मवास किस थाना।
शाहु हुकुम बी पकरनि केरा नांहि ते करि दिहु दाना। (सू॰ प्र॰)

इससे स्पष्ट है कि गुरू जी के योद्धाओं की प्रेरणा कभी गुप्त और कभी प्रकट रूप से उनकी चाल ही थी। यह युद्ध केवल पहाड़ी राजाओं के साथ नहीं था।

नदी के पास आ जाने से एक तरफ श्री अजीत सिंह और एक तरफ साहिब चन्द जी हो गये थे। गुरू जी दोनों तरफ से आक्रमण करते हुए आगे बढ़ रहे थे। शत्रु की सारी शक्ति इस समय साहिब चन्द पर थी। वह बड़ी शूरवीरता से लड़ रहा था। वह डटकर मुकाबला कर रहा था और आगे बढ़ रहा था। वह इतनी वीरता से लड़ा कि सारी शत्रु सेना को उसने रोक लिया। वैरी के कदमों को उसने आगे बढ़ने से रोक लिया। अन्त में साहिब चन्द असंख्य सेना का सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। दूसरी तरफ अजीत सिंह ने इतनी जोर से आक्रमण किया कि शत्रु दल को साहिब चन्द को छोड़ उस तरफ मुड़ना पड़ा। किसी ने

जाकर साहिब जी को सूचना दी कि साहिब चन्द शहीद हो गया है तब साहिब जी ने कुछ जवानों को अजीत सिंह की तरफ भेजा जिससे वे पूरी ताकत से शत्रुओं के कदमों को रोकें। मैं भी वहीं पहुँचता हूँ। साहिब जी ने कुछ जवानों को साथ लिया ओर बिजली की फुर्ती से आगे बढ़े और कुछ ही समय में साहिब चन्द जी के शव तक पहुँच गए। आमने-सामने युद्ध हो रहा था। पहाड़ियों को मारते और उन्हें पीछे धकेलते हुए फुर्ती के साथ साहिब चन्द के शव को सम्भाल लिया। एक तो वैरियों को मारा दूसरे अपने वीर सेनापति की लाश उठाकर ले आये। उधर वजीर खां को सूचना मिली की साहिब चन्द के स्थान पर गुरू जी स्वयं आ गए हैं। साहिब चन्द के शव को उठा लिया गया है। तब उसने उधर से दबाव हटाकर इधर डाल दिया। इस उधेड़बुन में उनकी शक्ति बट गयी। युद्ध जारी था। पर बढ़ते हुए शैल से जैसे चट्टान टकराकर टूट जाती है, वैसे ही शत्रुओं के साथ हुआ। उधर गुरू जी फिर नदी तक पहुँच गए थे, श्री अजीत सिंह भी पहुँच गए थे। शत्रु सेना का एक दल आगे बढ़ रहा था, अब शत्रु सेना पर एक करारा हमला सिंहों ने कर दिया–

पिख अजीत सिंह गमने आगे, उदे सिंह रिसधारी।
आलम सिंह, दया सिंह पहुंचयो मुहकम सिंह अगारी॥११॥
बखशीश सिंह, बखशीश सिंह जुग, ईशर सिंह सु क्रोधा।
शेर सिंह, देवा सिंह, उमड्यो, बर बचित्र सिंह जोधा॥१२॥
नाहर सिंह, गरजा सिंह गरजयो, अजब सिंह ततकाला।
गयो अजाइब सिंह तहां को संत सिंह रिपुकाला॥१३॥
अनिक सिंह, भगवान सिंह तहि महा सिंह हय प्रेरा।
धरम सिंह, साहिब सिंह धाए, राम सिंह रिस होरा॥१४॥
कहि लग गिनो सुभट बर गुर को, गये हटावन आगे।
चमूं मलेछनि रोकति उडते, सिंह सु बरजनि लागे॥१५॥

सूरज अस्त हो चुका था। यह शत्रु का अन्तिम हल्ला था जिसका सामना सिहों ने पूरी वीरता से किया–

दोनहुं को भट भेड़ भयंकर, शस्त्र पुंज बर खाये।
हाय वथ ह्वै कै गुर जुथे, मथहि मार उलटाये॥१६॥
हली चमूं अविलोक वजीदे जथेदार पठि और।
तित को जाए तुरंगम प्रेरेति, रोक लए तिस ठौरे॥१७॥

उधर से सतिगुरू तीरों की वर्षा कर रहे थे–

खपरे तीछन भीछन सतिगुरु ऐंचि ऐंचि गन मारे।
हय समेत रण खेत रहयो सो सगी कितिक संघारे॥१८॥

(सू॰ प्र॰ रुत ४-४५)

वजीर खां का नया जत्थेदार भी मारा गया। पर दल बंटा हुआ होने के कारण युद्ध अभी भी जारी था। दूसरी तरफ–

उत ते श्री अजीत सिंह मोर आगा बिन रिपु कीनो।
जो पहुंचहि रोकन तित दिसको होइ सु प्रान बिहीनै॥१९॥

अब गुरू के दल की योजना इस प्रकार थी–

आगे गुर सुत मध गुरु थित, पाछै सिंह जुझारे।
करे कदन शस्त्र अनगन ही लोथ पोथ पर डारे॥२३॥
शस्त्रण बल ते दूर रखो रिपु सलिता तरो सुखेना॥
पार गुरु जुति सिंहनि सभि दलउर मलछी सैना॥

(सू॰ प्र॰ रु॰ ४-४५)

शत्रु दल ने भी नदी पार करने का यत्न किया पर–

सलिता विखे प्रवेशन चाहति परैं तीर अरु गोरी।
मरे कितक बहि गए बीच ही, थिरे उरारहि ओरी॥२५॥

राजे और वजीर खां ने फैसला किया कि अब आगे बढ़ने का मतलब व्यर्थ में अपनी सेना को मरवाना है। गुरू जी के पार चले जाने से हम मुंह दिखाने के लायक तो रह गये हैं। शाह को लिख देंगे कि नदी के पार भगा दिया है। विजय हमारी हुई है और आनन्दपुर खाली है। पर संसार जानता था कि अति घमासान युद्ध हुआ है और थोड़े से सिखों ने टिड्डी दल की जान आफत में डाली हुई थी। गुरू जी अन्त तक लड़ते हुए बड़ी कुशलता के साथ योजना बनाकर नदी के पार गये थे। अपने सेनापति का शव तथा अन्य घायलों और मृतकों को भी साथ ले गये थे।

: ६ :

नदी के पार अर्थात् सतलुज के पार, दुआबे में राय बिसाली के घर सतिगुरू अपने दल सहित सकुशल पहुँच गये। किनारे पर लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। जब सतिगुरू ने धरती पर पैर रखे, जय जयकार हुआ, शंख ध्वनि हुई, रणजीत नगारे का नाद गूँज उठा। थोड़े कदम रखे तो राय बिसाली, वजीर और संगत जिसमें बच्चे स्त्रियाँ और वृद्ध थे, दर्शनों के लिए खड़े थे। उनके पीछे अन्य लोग और साफा बाँधे सिंह खड़े थे। राय ने आगे बढ़कर चरणों पर सिर रखा। सतिगुरू जी ने छाती से लगाकर प्यार दिया और कहा–निहाल! फिर वजीर ने माथा टेका। सतिगुरू ने फिर कहा–कल्याण। अब संगत ने साहिब जी के दर्शन किये। माई सत्तिली जो सभी पर्दों को उतार संगत में आयी थी आरती का थाल लेकर आगे बढ़ी। आरती करते समय उसने आज पहली बार आसा की वार के दाता के दर्शन किये। उसके नयन खुशी के आँसुओं से भर गये। चेहरा लाल हो गया। शीश झुका नहीं, आँखें मुंदी नहीं वह तो दाता के दर्शन में सभी कुछ भूल गयी।

उसकी चेता रस में लीन हो गयी। जब होश में आयी तो शीश झुकाया और प्रेमपूर्ण वाणी में आरती उतारी। फिर उसने एक तुरला जिसे फूल और मोतियों से गुँथा था साहिब जी की कलगी में लगा दिया। राय जी ने विजय माला आपके गले में पहनाई। सभी ने नमस्कार की। फिर रात के लिए डेरा जहाँ सजाया गया था सभी ने वहीं डेरा लगाया। रहिरास दीवान सज गया, भोग पड़ा और कड़ाह-प्रसाद बाँटा गया।

हर्ष या शोक, जंग या सुलह, पूजन हो या अकेले सदा परमात्मा के रंग में लीन दाता अपने विरद से पीछे नहीं होते। अब भी आपने आराम नहीं किया। डेरे पर घायलों की मलहम पट्टी हो रही थी, वहाँ आप गये। जवानों से मधुर वचनों में बोले। घावों को सहलाकर आशीष दी। साल पत्र तथा पत्थर, चून, जड़ी-बूटियों को कूटा जा रहा था। ज़ख्मों पर तेल लगाया जा रहा था। कई घावों पर टाँके लगने जरूरी थे। निपुण जख्मों को नमक-पानी से धोकर टाँके लगा रहे थे। दाता की इतनी कृपा थी कि कमर की पेटी खोलने से पहले वे घायलों को देखने आये थे। सभी के दिल उनकी प्रेम-कृपा से भर गये। इधर का प्रबन्ध देख, सान्त्वना देकर खुद नदी के किनारे चले गये जहाँ मरे हुओं के लिए चिता तैयार थी। साहिब चन्द जी के सम्मान योग्य अन्तिम संस्कार का प्रबन्ध किया। अरदास की। सतिगुरू ने अपने पवित्र हाथों से अग्नि दी। उनके मुख से आशीष निकली--अपने दर स्थान देना। चले गए सज्जनों की आत्माओं पर परमात्मा की कृपा हो। कृपा! कृपा!! कृपा!!! यह प्यार करके डेरे पर आये--मल्लाहों को पुरस्कार दिये। एक दस्ता पार भेजा गया जिससे मालूम चल सके कि शत्रु अब अपने डेरों में चला गया है या नहीं। कोई सिंह घायल रह गया हो तो उसे लेकर आओ। किसी सिंह की लाश पड़ी हो तो उसे उठा लाओ। इतना करने के बाद सभी के आराम तथा खाने-पीने की व्यवस्था को देखा। जब तसल्ली हो गयी तब कमर को ढीला किया और भोजन करने के उपरान्त आराम किया।

दिन में काम से थकी दुनिया को आराम देने के लिए रात आती है, रात भी बीतती जाती है। धीरे-धीरे बिना किसी को बताये--ऐसे जिससे पता ही नहीं चलता कि रात बीत रही है। इतनी धीमी चाल से रात चलती है कि दुखों से पीड़ित व्याकुल लोग इसें कभी न बीतने वाली रात समझने लगते हैं। पर देखो, रात बीत ही जाती है। शायद इसलिए कि रात को लोगों को नींद आये और सुख दे परन्तु अधिक नींद कहीं लोगों को सुस्त न बना दे इसलिए आज की रात भी अमृत वर्षा करती, मधुर चाँदनी फैलाती, अलौकिक नूर का दर्शन करवाती, चुपचाप लोरियाँ देती ताजगी देती, शीतलता प्रदान करती धीरे-धीरे बीत गयी और चली गयी अपने आराम के देश। नहीं किसी और देश को आराम देने के लिए शीतलता प्रदान करने के लिए। पूर्व से सूर्योदय हुआ, अरुणिम आभा फैल गयी। चिड़ियाँ चहकने लगी। मन्द-मन्द पवन चलने लगी। संसार जाग गया और प्रिय से प्यार वालों ने नदी किनारे आसा की वार का भोग डाला।

चउथे पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ।।
तिना दरीआवां सिउ दोसती मनिमुखि सचा नाउ।। (माझ वार महला २)

हाँ, नदी के किनारे, सतलुज के किनारे आसा की वार का भोग पड़ा। कड़ाह-प्रसाद बाँटा गया। सतिगुरू ने एक दस्ते को भेष बदल कर दरिया के पार जाने के लिए कहा जिससे कि शत्रु के जागने से पहले एक बार और घायलों या शवों को तलाश लिया जाये। कहीं कोई घायल रह न गया हो, कहीं कोई जीवित बहादुर लाशों के नीचे दबा रह न गया हो।

अब सुबह हो गयी थी। राय, साहिब जी के चरणों में उपस्थित हुआ—

राव बिसाली की तबि आयहु चरन सरोजन बंदे।
करहि बारता संघर केरी, होवति रिदे अनंदे।।४५।।
मुझ को जान आपना चेरा, नगर चलहु द्रिग हेरो।
चरन सरोजनि पाइ निकेतहि, पावन कीजहि मेरो।।४९।।
वसतु दासु की घर ते आदिक सभ अपणी प्रभु जानो।
रहहुसु बरतह, करुना करिकै मन भावत सुख ठानो।।५०।। (सू॰ प्र॰)

राय की प्रेम भावना से खुश होकर श्री गुरू जी तैयार हो गये और उसके महल में जाकर डेरा लगाया। राय ने सुन्दर सज्जित कक्ष में उन्हें ठहराया और हर प्रकार से सम्मान किया। उसने इतना सम्मान किया कि श्री अजीत सिंह तथा अन्य प्रियजन उससे बहुत प्रसन्न हुए—

श्री अजीत सिंह सकल खालसा राव भाव को हेरे।।
श्री प्रभु निकटि प्रशंसा ठानति प्रेमी भाग बडेरे।।५४।।
सरब भांति कर सभिहूं सुख भा, बांछत वसतु पुचाई।।
खान-पान करि अधिक अनंदे, गुर ते खुशी कराई।।५५।।

इस सरह बिसाली में श्री गुरू जी का डेरा लग गया—

बसे बिसाली नगर महिं गुरु गरीब निवाज।
आए राव बंदन करै सेवै जितिक समाज[१]।
बैठे निकटि बाक गुरू सुनै। भाग आपने दीरघ गुनै।
सगल खालसे लगहि दीवान।
श्री अजीत सिंह थित हुइ आनि।। (सूरज प्रकाश)

कुछ दिनों के बाद ही आनन्दपुर की जगह बिसाली ही आनन्दपुर बन गया। संगतें इधर ही आने लगीं।

---

१. राजा धर्मपाल को सत्संग और भक्ति से बहुत प्रेम था, इसलिए हर समय गुरू जी के वचन, तथा कीर्तन, जो गुरू जी के दीवान में दोनों समय होने का नियम था, वह बड़े प्रेम और श्रद्धा से सुनता था। (तवारीख गुरू खालसा)

: ७ :

राजघर में एक कमरे में रानी तथा वजीर रानी बैठी हैं।

रानी–सीता! गुरू महाराज की कृपा हो। मैंने तो अभी दर्शन किये हैं दिव्य मूर्ति हैं, मैं भगवान की कथा नित्य सुनती रही हूं, पर दर्शन करने से मालूम चला कि भगवान यही है।

सीता–हाँ, ये तो भगवानों के भी भगवान हैं। ये गुरू भगवान है। सबसे बड़ा भगवान। प्रभु की कृपा है कि आपके हृदय में भी प्रेम जगा है। राय जी तो काफी समय से प्रभु स्मरण में लगे हुए हैं।

रानी–जी हाँ, उन्होंने काफी समय पहले सिखों के एक दीवान में आसा की वार सुनी थी। तभी से पोथी लिखवा ली और रोज़ पढ़ते हैं, और विश्वास वाले व्यक्ति बन गये, पर मैं पत्थर ही रही। अब तो मेरा मन भी नरम हो गया है। अब मुझे भी अमृत वेला में उठने, स्नान करने और आसा की वार सुनने में बड़ा आनन्द आता है। मन धुल जाता है, कभी दो आँसू आ जाते हैं तो हृदय शीतल हो जाता है। सारा दिन मन हल्का-हल्का रहता है।

सीता–आसा की वार की यही करामात है। वह मन को धोकर निर्मल कर देती है। विचार उच्च हो जाते हैं। मन कमीने-पन से निकल विशाल हो जाता है। नीचे संकल्प पीछा छोड़ देते हैं और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं। चित्त परमात्मा से जुड़ जाता है, शुभ भाव पैदा होते हैं। इसी रंग में फिर परमात्मा के नाम में मन लीन हो जाता है। नाम स्मरण से अम्बर से कृपा की वर्षा होती है, अहंकार नष्ट हो जाता है, और सुगन्धित अपनत्व मुसकराता है, तब होश आती है कि मनुष्य जीवन इन सुन्दर रस को भोगने के लिए ही था। जिन रसों में जीवन का यौवन बीता होता है, वह मैले और उदासी वाले और धूलि के समान लगने लगते हैं।

रानी (आह भरकर)–कभी मेरे भाग्य भी मुझे वहाँ ले जाएँगे?

सीता–भाग्य यहाँ तक तो ले आये हैं कि गुरू भगवान आपके घर आ गये हैं। अब गुरू भगवान जी वहाँ ले जाएँगे जहाँ ले जाने के लिए वे इस दुखों से भरे सँसार में आये हैं।

रानी–दाता जी अब यहीं रहें तो कितना अच्छा हो? क्या लेना है अब आनन्दपुर जाकर? यह धरती भी तो उनकी अपनी है।

सीता–भावना सुन्दर है, प्रार्थना करो, पर दावा नहीं करो, क्योंकि वर्षा वहीं होती है जहाँ उसकी जरूरत हो, पर वर्षा को कोई बाँध कर नहीं रख सकता। अलौकिक पुरुष महान कार्य के लिए पृथ्वी पर आते हैं और अपने वेग से चलते हैं। कोई प्यार, आकर्षण उन्हें बांध नहीं सकता। उनकी अपनी कोई लालसा नहीं होती। वे प्रसन्न होते हैं, ठहरते हैं और फिर चल पड़ते हैं।

रानी–पहले आपने ही तो कहा था कि प्यार से परमात्मा को भी बांध लिया जाता है, आपने कोई पद भी पढ़ा था कि भगतों के द्वारा बांध गये परमात्मा भी छूट नहीं सकते।

सीता–हाँ ठीक है। प्रेम के खिचाव से परमात्मा को भी बांधा जा सकता है, पर वह हमें भवसागर से पार लगाने के लिए। वे प्रेम-स्वरूप हैं, प्यार के स्पन्दन से प्यार पर रीझ जाते हैं। हमारे प्यार का स्वाद लेते हैं। फिर कभी वियोग नहीं होता, ऐसे बँध जाते हैं परमात्मा। ऐसा नहीं है कि हमारी छोटी-सी इच्छा के कारण खुद छोटे हो जाएँ। हमारे प्यार के कारण हम छोटों को अपने साथ मिलाकर बड़ा कर लेते हैं। वे प्रेमस्वरूप है, हमें प्रेम का दान देते हैं।

जेवडु आपि तेवड तेरी दाति॥

अब देखो गुरू जी ने आपको और हमें अपने चरणों से लगा लिया है। नाम दान की कृपा की है। हमारी अन्तरात्मा सुखी हो गयी है। पर यह तो सम्भव नहीं कि मेरे या आपके घर सुखों में मस्त होकर रह जायें। आपका राजघर है आपने आराम और सुख पेश किया है, पर देखो वे कैसे अपना दल लेकर दरिया पार चले जाते हैं। कैसे राजाओं की वापस जा रही फौजों को ललकार आते हैं? आपने सुना होगा कि एक दिन बिलासपुरी के अच्छे दांत खट्टे कर आये थे।

रानी–जब झगड़ा खत्म हो गया तो फिर आराम क्यों नहीं करते।

सीतापुर–आनन्दपुर बसा हुआ है। सारी प्रजा तो योद्धा है नहीं। यदि उन्हें वापस जाते हुए राजा लूट लें तो कौन है उनका रक्षक? लोहगढ़ आदि किलों में रक्षा के लिए थोड़ी सिख सेना है। यदि राजाओं की लौटती सेनाएं वहां आक्रमण कर दें तो। उन्हें खत्म कर किले गिरा दे तो? इससे तो गुरू जी की रणनीति पर दोष लगेगा। इसलिए दाता जी प्रजा की रक्षा, किलों तथा किलों के अन्दर की सेना की रक्षा के लिए आराम नहीं कर सकते। अपने चरणों में पड़े सुखों को नहीं भोगा। पार जाकर हल्ला करके शत्रु सेना को बता दिया कि वजीर खां जा चुका है और अब तुम लौटते हुए जंग के रंग में नहीं हो। यदि प्रजा पर हाथ उठाया तो समझ लो मैं भी तैयार बैठा हूं। सतिगुरू के हल्ले-गुल्ले से उन्हें अपने प्राणों की पड़ गयी और वे बिना आनन्दपुर को छेड़े बिना प्रजा को दुख दिये निकल गये हैं। अब गुरू जी नदी के पार जाकर शिकार खेलते हैं, किसी फौजी दस्ते से टकरा जाते हैं तो उन्हें अपने हाथ दिखाते हैं। इसका असर भीम पर यह पड़ रहा है कि वह सोचने लगा है, गुरू जी से वैर अच्छा नहीं है यह ताकत मारने से मरने वाली नहीं यह आग दबने वाली नहीं। पर राजा बेचारे भी क्या करें? उनकी पीठ पीछे तो मदारी है जो उन्हें नचा रहा है। यह सभी बातें मुझे मेरे पति ने बतायी हैं। वे कहते हैं कि झूठ की नीति पर तो सभी चलते हैं, पर सच की नीति पर चलने वाले केवल गुरू जी हैं।

सतिगुरू जी ने आपके महाराज को बताया है कि हमें राज्य की भूख नहीं, प्रजा दुखी है, विदेशी बादशाह जालिम हैं। मन्दिर तोड़कर मस्जिदें बना रहे हैं। काजी हिन्दु-हिन्दु के बीच न्याय करना हो तो रिश्वत लेता है और हिन्दु-मुसलमान के बीच झगड़ा हो तो मुसलमान का पक्ष लेता है। हिंदु राजे डोली लेकर तुरक से मिलते हैं, मानवता का इस सीमा तक पतन हो गया है। यदि राजा संगठित हो जाए और देश को मुक्त करायें, तो कितना अच्छा हो। पर राजे तो उल्टा तुर्क का पक्ष लेते हैं और अपने लोगों को दबाते हैं। इसलिए गुरू जी ने नाम स्मरण करने वाले और परोपकारी सिखों को प्रजा की सेवा में लगाया है। जिससे वे अपने प्रयत्नों से देश की परतन्त्रता को दूर करें। वैसे वे युद्ध नहीं चाहते।

रानी–गुरू जी तो महान नीतिज्ञ हैं।

सीता–नीतिज्ञ भी हैं और परमार्थी भी। देखो हमारे दिये हुए सुखों में मस्त नहीं हुए, पर हम सभी का कल्याण चाहते हैं। सत्संग होता है, कीर्तन होता है। नामदान दिया जाता है, पर उधर पार जाकर अपने दबदबा से नगरी बचा ली और वहशी सिपाहियों को लूटमार से रोका। राजाओं ने झूठी खबर फैला दी थी कि सतिगुरू हार कर नदी पार भाग गया है और सारी सेना कत्ल हो गयी है, घर डेरा लूट लिया गया है। सतिगुरू का नदी पार शिकार खेलने जाना, उनके राज्य में मुक्त विचरण करना से सिद्ध हो जाता है कि राजा कितने झूठे हैं। रानी जी! आप तो विद्वान हैं–मेरे पति जी बताते हैं कि इस तरह गुरू जी ने अपनी फौज प्रवीणता का जो कमाल दिखाया है इससे स्पष्ट होता है कि गुरू जी कुछ दिनों में ही आनन्दपुर चले जायेंगे। पर वे सीधे जायेंगे या किसी ओर ढंग से या जगत का कोई और उद्धार करते हुए-इसका पता नहीं। पर जायेंगे जरूर।

रानी–फिर हम क्या करेंगे? हमारा तो उनसे मोह पड़ गया है।

सीता–पर मोह नहीं, यह प्रेम है और प्रेम प्रिय की कृपा से ही खिलता है। विछोड़ा होने पर विराग में जाता है, विरह करता है, पर फिर कृपा में जाता है वही जीता है। हमारा मिलन मोह का नहीं जो टूटता है और दुख देता है, हमने मिलन में विकसित होना है, उसकी कृपा से भीगना है और नाम की तार से जुड़े रहकर उसके चरणों से नहीं बिछुड़ना। पर यह उनकी कृपा से ही सम्भव है।

: ८ :

बिसाली का राय और उसकी रानी एक दिन बैठे हुए बातें कर रहे थे।

रानी–महाराजा! आज तीसरा दिन है हमारे साहिब शिकार के लिए गये थे और अभी तक वापस नहीं लौटे। कुछ पता लगा कि वे कहां विराजमान हैं? परमात्मा न करे–कहीं किसी मुसीबत में तो नहीं फंस गये।

राय–ऐसी उम्मीद तो नहीं है–उनके साथ चुने हुए सूरमा हैं और हैं भी इसी नदी के उस पार नहीं गये थे। जिस दिन चले थे उस दिन बिभौर की तरफ मुख

था, इसलिए चिंता की कोई बात नहीं। कल आदमी भेजा है, आज सुबह तक ही खबर आ जायेगी। परमात्मा की कृपा हुई तो आज खुद ही वापस आ जायेंगे।

रानी—वाहिगुरू कृपा करे। हमारे तो वे जीवन के आधार हैं। मुझे और आपको बहुत चिंता होती है। सीता का अजब हाल है। उसका लगाव तो हमसे भी अधिक है, पर उसमें धैर्य भी अद्‌भुत है। कहती थी—ये तो परमात्मा के रूप हैं सतिगुरू जी ने सदा हमारी नगरी में तो रहना नहीं, वे अपने कामों को खुद ही जानते हैं और करते हैं। हवा की तरह कभी उत्तर कभी दक्षिण, कभी पूर्व और कभी पश्चिम में स्वेच्छा से विचरते हैं। प्यार के आगे उनका कोमल हृदय पिघल जाता है भाग्य लगाते हैं, पर अपने कार्यों को करते रहते हैं। किसी को तारना—उबारना, किसी की रक्षा करना-बचाना, किसी को दंडित करना-सुधारना, कहीं प्यार, कहीं कृपा, कहीं भय कहीं वैराग्य उस सरदारों के सरदार में अनेक कौतुक हैं। दूसरे दिन सीता ने उसे कहा था—छैलों के सरदार! तो मैंने कहा—क्या कहा तुमने? तो कहने लगी—सारे अवतार और भक्त साईं के छैले हैं और ये उन सभी के सरदार हैं।

राय—सीता, वही जिसे संगत सत्ततिली कहती है। बहुत स्वच्छ हृदय वाली है। छल-कपट को नहीं जानती सीधी-सादी है। पर बुद्धि इतनी है कि हमारे प्रधान जी अपनी नीति की चालें भी भूल जाते हैं। सीता की अकल मानो आत्मा की बुद्धि है जो स्व में टिकी हुई है और स्व के प्रकाश में रहती है, पर वजीर के ज्ञान और दूर-दृष्टि को भी देखती है और सुनती रहती है। इसीलिए सोने में सुगन्धि पड़ गयी है। पर सीता का निच्छल और सादा प्रेम, सभी को सतिगुरू के प्रेम में देखकर खिलता है। जगत-प्रेम परमात्मा की अमूल्य देन है। उस पर कृपाल जी भी रीझे हुए हैं।

रानी—उसका व्यवहार बहुत मधुर है। किसी को कष्ट नहीं देती। राजा जी! ईर्ष्या तो स्त्री के हृदय में वैसे ही होती है जैसे जल पर काई सदा पड़ी रहती है। पर सीता में ऐसी काई भी नहीं। वह सभी को देखकर प्रसन्न होती है। दाता जी के जितने प्रेमी देखती है उतनी ही प्रसन्न होती है। सीता कहती है उनके प्रेम के कारण ही हृदय में दाता की सुगन्ध बसी हुई है। सभी उसी सदा मुस्कराते महकते गुलाब की सुगन्ध पाते हैं। राजा जी! वह तो सतिगुरू की अनन्य भक्त है।

राय—प्रिय! यह उचित है। प्रधान जी मुझे कई बार बड़ी उदासी से बताते हैं कि उन्होंने तो अपनी पत्नी को दासी के समान रखा, पर वह तो महान और विशाल हृदय वाली देवी है। अब मैंने उसकी कदर पायी है। मुझे तो यह देखकर प्रसन्नता होती है कि वजीर जी के हृदय से सभी चालें निकल गयी हैं। दाता जी कहते हैं हृदय से छल-कपट प्यार के आकर्षण से ही दूर होते हैं।

तभी एक दासी आती है।

दासी–(दरवाजा खटखटाकर) रानी जी! मैं अन्दर आ जाऊँ।

रानी–आ जाओ।

दासी–(आकर) महाराज! बिभोर से सवार आया है। गुरू का सिंह कहता है राय जी के लिए दाता जी का सन्देश लाया है।

राय उठकर मर्दाना कमरे से चला गया और सवार को बुलाया।

सवार–महाराज जी! प्रभु की सदा आप पर कृपा बनी रहे। नाम चित आए। वाहिगुरू जी का खालसा, श्री वाहिगुरू जी की फतह।

राय–श्री वाहिगुरू जी का खालसा श्री वाहिगुरू जी की फतह। खालसा जी सुनाओ, क्या हुकुम लाये हो?

सिंह–सच्चे पातशाह शिकार के लिए गये हुए थे कि बिभौर के राय जी भी जंगल में आये हुए थे। वहां राय तथा उनके वजीर से मुलाकात हुई। राय का प्यार सतिगुरू को वहाँ ले गया। सतिगुरू बिना प्रेम के कहीं नहीं रुकते। कृपा के मालिक उसके प्रेम के वशीभूत वही टिक गये हैं और संदेशा भेजा है कि हम यहीं विचरण करेंगे। आप पर प्रसन्न हैं और नाम चित्त आये की आशीष दी है। अब यदि आज्ञा हो तो दल को संदेश दूँ कि वह भी वहीं पहुँचे।

यह सुनते ही राय जी के नयन बंद हो गये। दो-तीन आंसू आंखों में से गिरे होंठ कांपे, चेहरे पर सफेदी आ गयी, फिर होंठों को कस लिया, दांतों में नीचे का होंठ दब गया। फिर आंखें खोलीं और बोले–सिंह जी वह दास ही क्या जो बोले। मालिकों की मौज ही सेवकों के लिए आदेश है। पर मानना कितना कठिन है...

सिंह जी आपका भला हो। आप मुझे राय समझ कर नहीं महाराज का सेवक समझकर बताओ कि कहीं मुझसे कोई भूल तो नहीं हुई जो हमें त्याग गये? कोई बेअदबी, मेरे किसी अधिकारी या प्रजा के किसी बंदे से तो नहीं हुई जिससे मेरे कोमल चित्त दाता यहाँ से चले गये हैं।

सिंह–महाराज! आपका राज्य उन्नति करे। मैं तो दरबान हूं। मुझे क्या पता। जो कुछ भी मैंने सुना उससे आप पर खुशियाँ ही खुशियाँ हैं। गुरू घर का विरद है–भक्त-वत्सल। विभोर वाले राव और रानी, लगता है काफी समय से प्रेमी है। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए वहां टिक गये हैं। आप पर उनकी अपार कृपा है।

इतना कहकर सिंह जी ने विदा ली। लश्कर को सतिगुरू का हुकुम दिया। राव ने रानी को जाकर सारी बात सुनायी।

रानी–वाहिगुरू! दाता!......राव जी! महाराज की हम अपार कृपा है पर दिल डूबता जा रहा है।

राव–यही तो विरह है। यही प्रेम है। सतिगुरू की कृपा से दिल में पड़ा प्यार विरह की कसक मारता है।

वे इस तरह की बातें कर रहे थे कि सीता दम्पति आ गये।

राय–प्रधान जी वही घटित हो गया।

वजीर–हाँ, मैं सुनकर आ रहा हूं! सिख दल विभोर जा रहा है और महाराज जी वहीं टिक गये हैं। राय जी! मैंने तो कभी दिल की नरमी देखी नहीं। सारे संसार को झूठा, स्वार्थी समझकर अपने मतलब को ऊंचा रखना सीखा है। पर हाय! अब सच और प्यार को समझ लेने के बाद प्रीतम के वियोग की बात सुनकर मेरा मन कांप रहा है। मैं पता नहीं कितना और दुखी होता परन्तु सीता जी ने धैर्य बंधाया।

सीता–(नयन भरकर) मेरा कलेजा भी तो धंसा जा रहा है। पर देखो। उनसे हमारा कोई छोटा सा सम्बन्ध तो है नहीं जिससे हमें मोह हो गया हो। वह तो सदा जाग्रत ज्योति है, हमारे दाता हैं। हम जीते हों या मर जाएँ, वे हम से कभी बिछुड़ने वाले नहीं। हाँ, यह बुरा हुआ कि वे हमसे बिछुड़ गये। पर उनकी कृपा है कि हमारे कानों में उनकी आवाज़ पड़ी है। कृपा है कि वे हमारे घर आये कृपा है कि पत्थरों के आगे नाक रगड़ने वाला सिर जीते चरणों के साथ लग गया और शीतल हो गया। कृपा है कि प्यार वाला पवित्र हाथ हमारे सिर पर लगा आसा की वार कहती है–

करि हुकमु मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढीआं बुरिआईआ।।

हम स्वच्छ हो गये, हमें नाम की देन मिली, नाम से रस पड़ा, स्व रस मग्न हो गया। कृपा है। कृपा है!! कृपा है!!! मोह वाले बिछुड़ते हैं तो हम खाली हो जाते हैं। हमारा दाता हमें नाम रस से भर गया। यह रस अन्तर में बैठ गया है। नाम के बिछुड़े, रस न बिछुड़े, तो कोई नहीं बिछुड़ा। हमारा दाता। हमारे अन्दर है। कृपा है! कृपा है!!

कहते–कहते सीता रोयी खूब रोयी। पर उस पर परमात्मा की कृपा है। वह धीरज बंधा रही है। प्यार का स्पन्दन कृपा से मिलकर शीतलता प्रदान कर रहा है वैराग्य भी छुड़ा रही है।

सीता–हां, महाराज जी! प्रजा पालक जी! कृपा के मेघ ने कई स्थलों को तारना है, हमें तार दिया है, हमें प्रसन्न होना चाहिए कि हमारे जैसे अन्य लोगों को अन्य स्थलों पर भवसागर से पार ले जाने के लिए वे गये हैं। सदा जिओ! हमारे सिर के दाता जी।

चारों राजशी दिल इस समय कृपा और प्यार से किसी आश्चर्यपूर्ण रस में डूबे हुए थे। वाह! मेरे सुन्दर प्रभु! तेरे एक हाथ में मूर्खों की कुमति को दूर करने

के लिए तेग है और दूसरे हाथ में प्रेम की सुराही है जो प्याला भरकर पिला रही है और सुमति दे रही है। राजमद से प्रजा के धन से, हकूमत और पदार्थों के साथ बने पत्थर दिलों को कैसे रंग रही है। त्यागियों को तो यह रस मिलता है, पर तुम धन्य हो जिसने राज दिलों में फकीरी का रंग लगाकर प्रेम का रस पान करा दिया। वाह वाह दाता!

रात किहा विच खिड़ी चांदनी, गुरमुख रंग रंगीले।
देख अरश विच राज रहे ओ, छैल भलूक हठीले॥
इक हथ तेग, दुई विच प्याला, पिरम रसा दा भरिआ।
सुहणियां दे सुल्तान बख्श रहे, साकी बणे छबीले॥

कुछ क्षण प्रेम के रंग में चुप रहकर राव बोला–फिर अब क्या करें?

प्रधान–पहली अच्छी बात तो यह है कि आप मुझे आज्ञा दे, मैं विदा हो रहे सिख दल के पास बख्शी जी को साथ लेकर जाऊँ और कहूं कि चिकित्सा के लिए आप जितने सामान का हुकुम करेंगे–यह देगा। मेरे योग्य या राव जी के लिए कोई सेवा है तो बताओ। दूसरा काम यह है कि मैं बिभोर जाऊँ और आपकी ओर से प्रार्थना करूं कि वे डेरा बिसाली में ही लगाएँ। कुछ दिन बिभोर रहकर फिर बिसाली ही आ जाएं और हमारे सिरों पर सदा शोभायमान रहें।

राव–नीति की तो दोनों बातें ठीक हैं। पहली तो आप अभी जाकर पूरी करो। पर दूसरी पर विचार करने की जरूरत है। हमारा राजसी या भाई-चारे का सम्बन्ध गुरू जी से नहीं है। हमने सत्संग किया है, हम कृपा पात्र हैं, हम पर कृपा हुई है। क्यों सत्तिली माई सत्य पुरुष का संग ही तो सत्संग है न? उनकी कृपा से हमें नाम मिला है, नाम रस, नाम महारस!

बिखै बनु फीका तिआग री सखीए नामु महा रसु पीउ॥
बिनु रस चाखे बुडि गई सगली सुखी न होवत जीउ॥

उन्होंने अपने प्यार से अपने प्रेम से हमारे दिलों को जीवित किया है। क्यों सीता जी! ठीक है न कि नाम प्रेम नाम है? ठीक है न, सांई की याद, हमारा चित्त सांई के ख्याल में लगा रहे परमात्मा का प्रेम यही है, यही है। विहंगम मार्ग? अब बताओ जिसके प्यार से हमारा दिल भरा हुआ है, जिसका प्रेम रस से हृदय भरा हुआ है, उसके पास विनती करने यह दिल जाए या उसका मंत्री? आप तो उसके प्रेम में लीन हैं, बताओ।

सीता–हे प्रजा पालक! उसके प्रेम में भरा दिल जाए और उनके चरणों में ऐसे ही सेवक दिल जाए जिनका स्व अमृत रस से भरा हुआ है।

वजीर (देखकर) सीता! वाह! वाह!

तिथे सीतो सीता महिमा माहि॥

उसी सीतो सीता, उसी आलौकिक सौन्दर्य का प्रतिबिंब कहीं सीता तू ही तो नहीं है।

वजीर–हां राजन! यही ठीक सलाह है।

यह सलाह करने के बाद खालसा दल के साथ ही चलने की बात पक्की हो गयी। राव और वजीर कुछ जवानों को साथ लेकर सिख दल के साथ बिभोर पहुँचे सतिगुरू के दरबार मे उपस्थित हुए। राव ने चरणों पर सीस धरा। सतिगुरू ने प्यार की थरथराहट छोड़ने वाला हाथ रखा, फिर वजीर ने सीस चरणों पर रखा। सतिगुरू मुस्कराये और पीठ को थपथपाया। फिर गुरू जी ने राव की तरफ देखते हुए पूछा–सब आनन्द कुशल है।

राव–दाता की कृपा है। आपने कुशल बख्शी है:–

खेम कुशल सहज आनंद।
साध संग भजु परमानंद॥

पर मालिक जी हम अभी अबोध हैं, कृपा का हाथ सिर पर रखे रहें।

गुरू जी–प्रभ की उसतति करहु संत मीत॥
सावधान ऐकागर चीत॥

राजन! धर्म का राज्य करो, यही प्रजा की सेवा है, परमेश्वर के भय में कर्म करो, अपनी मति उसकी रखवाली में रखो। मति तभी उसकी रखवाली में होती है जब परमात्मा का स्मरण किया जाए। स्मरण का अर्थ है परमात्मा के दर झोली फैलाना। स्मरण परमात्मा की ओर खिचाव उसमें लीन होना है। स्मरण हजूरी वास है, स्मरण परमात्मा से मिलन है। स्मरण क़रो और इस जन्म को सफल बनाओ।

राव–सच है, आप जो करायेंगे वही होगा, पर मालिक जी आपका बिछोड़ा असहय है।

गुरू जी–वियोग में खिचाव होता है, वही सोये हुए मन को जगाता है, वही आलौकिक रस की प्राप्ति करवाता है। खिचाव ही प्राण हैं। हम आपके पास हैं। जो नाम में जीता है वह तो एक तार में पिरोया जाता है। एक तार में पिरोये हुए सदा मिले रहते हैं, वे कभी बिछुड़ते नहीं।

राव–महाराज! दास से कोई अवज्ञा हुई हो, कोई भूल, दास के किसी सेवक से हुई हो तो क्षमा करो वापस बिसाली चलो। हमारे नयन आपको पहचानते नहीं, कई बार नट मनुष्य के भ्रम में पड़ जाते हैं। गलती क्षमा करो और बिसाली को डेरा बनाओ।

गुरू जी–राव जी! आपकी, आपके अधिकारियों तथा सेवकों की तरफ से कोई भूल नहीं हुई। सभी ने प्रेम से सेवा की। हम सभी तरह से प्रसन्न हैं। यहां

के राव साहिब भी प्रेम में हैं। शिकार खेलते मिल गये। उनका प्रेम भाव ही हमें यहां ले आया और बांधकर बैठा लिया है। राव जी! हम तो हुकुम की तार में विचरते हैं यह भी परमात्मा का कोई रंग है जो हमें यहां ले आया है। मालिक पालक अकाल पुरुष के काम उसी के हुकुम से पूरे करने हैं। प्रेम ने खींचा है, हुकुम ने प्रेरित किया है इसी से यहां टिक गये हैं। अब आप सुख से बिसाली में रहो। ऐसा मत सोचो कि हम किसी कारण से उदास होकर आये हैं। आप से हम बहुत खुश हैं। नाम जपो, सत्संग करो। आसा की वार का दीवान सजाओ। सीता जैसे गुरमुख लोगों का सम्मान करो। स्वयं भी सत्संगति की ओट में रहो। आप सुख से राज भोगोगे। कोई कष्ट नहीं होगा। यदि कोई कष्ट आये तो खालसा को सूचित करना–

सुख सौं भोगहु राज समाजा।
करहु तिहावल अरहि जु काजा।
करि अरदास धरह मम ध्याना।
होहि मनोरथ पूर महाना॥२॥
शत्रु जोर जि तुम पर करै।
हेत सहाए खालसा चरै।
कर दीजहि सुध, सुनतिहुं धावै।
अनिक रिपुनि दे हाथ बचावै॥२६॥

यह आशीष, वर वचन सुनकर राव के नयन भर आये। वह चरणों से लिपट गया। धन्य! धन्य!! धन्य!!! की ध्वनि मुख से निकली। सभी हरि रंग में रंगे गये। सतिगुरू ने पावन करों से थपथपाया और झुके हुए सिर में सरूर भर दिया। उस कोमल दिल को अपने प्रेम की दात दी। उसका राज सुभाग हो गया।

फिर वजीर ने माथा टेका। सतिगुरू ने आशीर्वाद दी और कहा–घर का सत्संग बहुत बड़ी कृपा है, स्त्री-पुरुष हैं, नारी और पतिनी, अब दोनों को एक दूसरे का सत्संग है। सत्तिली सौभाग्यवती है और रानी जी को खुशी मिले, सारी सत्संगति में खुशी का वास हो।

वे दिल तो अलग होना नहीं चाहते थे, अलग होते हुए बार-बार सिर झुका रहे थे। राव और वजीर वापस चल पड़े। सब खालसा को फतह बुलायी। खालसा ने राव के प्रेम सेवा और चाव को देखते हुए 'सति श्री अकाल' का जैकारा लगाया। दोनों वापस नगरी में आ गये और भवसागर से पार लगाने वाले सतिगुरू विभोर में टिक गए।

सूचना–बिसाली कटार की धार की उस ढलान पर है जो सतलुज की ओर है। कीरतपुर साहिब के घाट से नदी लगभग ५ मील पश्चिम-दक्षिण की ओर

बिसाली है। बिसाली के तत्कालीन राय जी के नाम की खोज करने पर पुराने दस्तावेजों से राय सलाही चंद नाम मिला है। तवारीख खालसा में धर्मपाल नाम दिया गया है जो राय जी के बहुत धार्मिक होने के कारण उनको कहा जाने लगा था। राय सलाही चंद से लेकर अब तक के राय से पहले राय तक बिसाली के सभी राय केशधारी होते आये हैं। अमृतपान न करने के कारण नाम 'सिंह' नहीं हुए। गुरू जी ने राय सलाही चंद को एक कृपाण, कड़ा, एक पोथी तथा बचित्र सिंह बाला बर्छा प्रदान किया था जिनमें से बर्छा तो पिछले राय जी ने आनन्दपुर भेज दिया है और बाकी वस्तुएं सम्मान सहित उनके घर में रखी हुई हैं। जंगल में जहाँ जाकर गुरू जी ध्यान किया करते थे, आज तक थड़ा साहिब मौजूद है। राय साहब महीने में एक बार कड़ाह प्रसाद लेकर हाजिर होते थे। टिक्का राम नारायण सिंह जी बताया करते थे कि महल के अंदर जहां महाराज जी रहे थे, गुरुद्वारा है लेकिन अकाली जोर का भय यहां भी उदासी दे गया है।

कहा जाता है लेकिन इतिहासों में नहीं लिखा है कि सरहिंद प्रांत का जासूस वजीर खां राय के पास बिसाली आया था कि गुरू जी को चुपचाप हमारे हवाले कर दो लेकिन राय ने उसे कुछ पता नहीं चलने दिया और वह वापस चला गया। शायद ऐसा कोई व्यक्ति आया भी होगा तो गुरू साहब के बिभौर चले जाने के बाद, जो अपनी तसल्ली करके चला गया होगा कि वे यहां नहीं हैं। सतगुरू जी बिसाली से चलकर बिभौर गये थे, वहां की लीला अगले प्रसंग में है:-

❑ ❑

५५ राव बिभौर

रात काफी बीत गयी है पर राव जी घर नहीं लौटे। रानी मूर्छित पड़ी है। दासियां उसकी कलाई पकड़े बैठी हैं। वैद्य जी पास ही बैठे हैं और दवा दे रहे हैं, पर अभी होश नहीं आया है। राव की तरफ एक के बाद एक आदमी भेजा जा रहा है, पर वे अभी लौटे नहीं हैं।

सवा पहर रात बीत गयी थी जब राव उदयसैन महल वापस लौटे। रानी की दशा देखकर बहुत घबराये। वैद्य से पूछा तो उसने बताया—कोई गहरा सदमा पहुंचा है। उसी का असर है। नाजुक समय बीत चुका है, अब तबियत ठीक हो रही है। नाड़ी ठीक चल रही है, श्वास भी ठीक है। कुछ समय में ही होश आ जायेगा। अब कोई खतरा नहीं। फिर राव ने दासी से कारण पूछा, तो उसने बताया—महाराज जी! अच्छे भले बैठे हुए बातें कर रहे थे। जो संसार में हो रहा है उसके बारे में सवाल करते रहे। जब उन्हें बताया गया कि पहाड़ी राजाओं की विजय हुई है और गुरू जी घेरे में घिर कर घायल हो गये तथा देह त्याग गये हैं तब इधर-उधर देखकर चुप हो गये उनकी आँखें नहीं झपकी और एकदम गिर गये। तभी से अभी तक होश नहीं आया है। वैद्य जी पूरा जोर लगाकर थक गये, पर दशा वैसी ही है।

राव समझ गया कि रानी के हृदय को गहरा आघात पहुंचा है—उसी का यह प्रभाव है। कुछ पल सोचने के बाद राव ने वैद्य और दासियों को बाहर भेज दिया और रानी का हाथ अपने हाथ में लेकर प्यार से सहलाया, फिर धीरे से दबाया और कान के साथ मुंह ले जाकर धीरे से कहा—प्रियवर! गुरू जी बिसाली कुशलता से पहुंच गये हैं। इस बात को कई बार रानी के कान में दुहराया इससे रानी ने आंखें खोल दी। यह देखकर राव ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—गुरू जी कुशलता से बिसाली पहुँच गये हैं।

रानी—हैं! क्या! (कुछ पल चुप रहकर) आपने क्या कहा?

राव—गुरू जी कुशलता से हैं और बिसाली पहुँच गये हैं।

रानी—हैं। क्या बिसाली आ गये हैं?

राव—गुरू जी सकुशल हैं।

रानी—हैं! सकुशल हैं?

राव—सच! कुशलता से हैं।

रानी—मेरी कसम, सच बताओ।

राव—यह सच है। वे तो दुश्मनों को मार कर, उन्हें भगा कर, नदी पार करके बिसाली आ गये हैं।

रानी—कहाँ?

राव—बिसाली के राज्य में परिवार और लश्कर समेत पहुंच गये हैं।

रानी—और शत्रु?

राव—अपना सिर धुन रहे हैं। विजय नहीं मिली इसलिए अपना सिर पीट रहे हैं। नवाब सरहिंद वापस लौट गया है।

रानी की आँखें मूंद गयी। वह अब बेहोश नहीं हुई। ईश्वर की कृपा से वह खो गयी थी—उसकी आँखों से आंसू गिरे। जैसे-जैसे आंसू गिरे चित्त स्वस्थ हुआ, सिर साफ हो गया, स्फूर्ति आ गयी, पर अभी वह हिल-जुल नहीं पा रही थी।

: २ :

दो-एक दिन रानी पलंग पर ही लेटी रही। शरीर में शक्ति नहीं रही थी, पर वह वैसे ठीक थी—तीसरे दिन तक काफी स्वस्थ हो गयी।

शाम का समय था, तारे चमकने लगे थे, नीला-नीला आकाश कुछ बूंदे बरसा कर निर्मल हो गया था। पलंग हवा में बिछा है, राव पास ही बैठा हुआ है। कोई दासी पास में नहीं है। धीरे-धीरे दोनों में मर्म-स्पर्शी वार्तालाप हो रहा है—

रानी—सांईं जी! यह चुप कब तक? कब दर्शन होंगे?

राव—हां, बताओ तो सही आपको आघात कैसे पहुंचा।

रानी—हाय! याद करते ही फिर वही पीड़ा होती है। सांईं! ऐसा समय तो वैरी को भी न दिखाये।

राव—यदि दुख होता है तो मत बताओ।

रानी—नहीं जी, बताती हूं। निक्को बाहर से दौड़ी-दौड़ी आयी और कहने लगी—पापियों का जोर चल गया, गुरू जी घायल होकर...बस क्या बताऊँ? मेरी आंखों के आगे अन्धेरा छा गया, होश गुम हो गये, जगत अंधकार में डूबा दिखायी देने लगा। मैं अकेली थी डर कर मूर्छित हो गयी।

राव—निक्को बहुत मुर्ख है, वह तो महाबली है। वास्तव में उनका सेनापति साहिब चंद उस दिन मारा गया था। उस महाबलि ने बड़ी वीरता से संग्राम रचा था और शूरवीरता दिखलायी थी। उसकी शहीदी को ही शत्रुओं ने धूम मचा दी कि वे गुरू जी स्वयं थे। उस निराधार उड़ती हुई खबर को ही निक्को ने आपको सुना दिया। आपको दुख हुआ पर परमात्मा की अपार कृपा है कि वह खबर झूठी थी। वास्तव में वे नदी को पार कर गये हैं।

उन्होंने घोर संग्राम किया। सेना सहित, यहां तक कि घायलों और मुर्दों सहित नदी पार कर जाना सच्ची विजय है। इससे मूर्ख शत्रुओं के दिल टूट गये

और वजीर खां सिर धुनता वापस चला गया। सभी राजा अपने खाली हो गये खजानों को देखकर दुखी हैं। वैसे वे संसार को बता रहे हैं कि उन्होंने गुरू जी को नदी के पार भगा दिया।

राव–अब वे राव बिसाली के पास टिके हुए हैं। वही सारे योद्धा आराम कर रहे हैं। खुद शिकार पर जाते हैं, नदी पार करके बिलासपुर राजा की सीमा में अभी निर्भय विचरण करते हैं, उसकी जरा नहीं चल पाती।

रानी–वे कब चलेंगे? आप उन्हें कब आमन्त्रित करेंगे।

राव–जब आमन्त्रित करेंगे तभी आयेंगे।

रानी–अब तो पिघल जाओ, मुझ पर दया करो, प्यार क्या और चुप का घूंट क्या?

राव–अपनों और प्यारों पर कौन दया नहीं दिखाता, पर दैवगति प्रबल है। प्यार और चुप इसी में स्वाद है। प्यार और शोर, प्यार और पुकार, वह तो प्यार का व्यापार है।

इतने में निक्को फिर उछलती हुई आ गयी और हँसते हुए बोली–मैं अच्छी खबर लायी हूं।

रानी–कोई पक्की बात हो तो बताना। ऐसे ही बकवास मत करना।

निक्को–जी पक्की बात है। सतिगुरू जी ने बिसाली में डेरा लगा दिया है। संगत वहां आने-जाने लगी है, परन्तु आस-पास की ही। ऐसा लग रहा है कि अब वहीं रहेंगे। पार शायद अब न जाएँ।

रानी–सूचना तो सुन्दर है, पर कच्ची है, कोई और सुन्दर बात बताओ।

निक्को–बताऊँ! जरूर! जब वे शिकार पर जाते हैं तो दूर-दूर तक निकल जाते हैं। कल हमारे राज्य में भी उनके चरण पड़े थे।

यह सुनकर रानी के नयन भर आये, परन्तु राव के नयन बंद हो गये।

: ३ :

जब सतिगुरू जी ने नाहन के राज्य में पउंटा बसाया था और जमुना किनारे खेल रचाये थे तब नाहन के राजा को भवसागर से पार उतारा था। उसने गुरू जी को अपने राज्य में कुछ दिन रखा था, गुरू जी की सेवा-भक्ति की थी। यह रानी तब एक सुन्दर कन्या थी और नाहन के राजघराने की पुत्री थी। गुरू जी फिर पउंटा चले गये थे और बाद में आनन्दपुर चले गये। इस कन्या के विवाह का प्रबन्ध माता-पिता करने लगे। गुरबानी का प्यार कन्या के हृदय में पड़ चुका था। वह नियम से पाठ करती थी। सतिगुरू के आलौकिक दर्शन से वह जी उठी थी। वह उनकी कदर और प्यार में ही सुरजीत थी। जब माता-पिता उसके लिए वर ढूंढ़ रहे थे तब वह स्यानी उमर की हो गयी थी। उसने देश-लाज का भय छोड़

अपनी मां से कह दिया—मुझे ऐसे घर में नहीं भेजना जो गुरू जी का विरोधी हो। सभी पहाड़ी राजा उनके विरोधी हैं, और उनसे ईर्ष्या रखते हैं। जैसे हमारा नाहन का घराना गुरू जी से प्यार करता है, 'ऐसे ही किसी घर में मुझे भेजना।' माता का हृदय पुत्री के प्रति कोमल होता है। वह कोमलता कमाल की होती है। सतलुज के आर-पार, जमुना के आस-पास उसके माता-पिता ने कई घर देखे पर वे वैर-भाव वाले थे और जो प्रेमभाव वाले थे वहां योग्य वर नहीं मिला। बड़ी खोज के बाद बिभोर के राव का घर मिला। यहां यह तो मालूम चल गया कि राव कभी सतिगुरू से नहीं लड़ा, पर राव के स्वभाव का पता नहीं चल पाया कि कैसा है। सतिगुरू से प्यार वाला है कि वैर वाला। काफी पता करने पर यह मालूम हुआ कि राव चुप रहने वाला व्यक्ति है, उसके हृदय में क्या है किसी को पता नहीं, पर जब कभी युद्ध होता है तो यह लड़का करवट लेकर इतना जरूर कहता है कि छोड़ो राजाओं का विरोधी पक्ष, इसके साथ हम क्यों मिलें? वे मूर्ख हैं। लड़के का यह रुझान राजा को भी बचाकर रखता है। बिभोर के लड़के का यह रुख मालूम चल जाने पर कन्या का रिश्ता कर दिया गया—और विवाह हो गया।

जब कन्या नाहन से बिभौर आयी तो उसने ससुराल को गुरू वैर से रहित पाया। उसने यही सुना कि बड़े राव जी गुरू के पक्ष में ही बात करते हैं। अब उसकी इच्छा थी कि वह अपने पति को किसी तरह गुरू का प्रेमी बनाये। वह बाणी को प्रेम करने वाली थी, नित्य सुखमनी का पाठ करती थी, उसका पति सुनता था, पर कहता कुछ नहीं था। वह कई बार गुरू जी की प्रशंसा करती, बाणी की महिमा सुनाती, अपनी नाम प्राप्ति की अभिलाषा के बारे में बताती, वह चुपचाप सुनता, पर जवाब कुछ नहीं देता। यदि कभी जवाब दे भी तो कहे—फल बिना बोले ही लगते हैं।

कुछ समय बाद उसका पति राव हो गया, अब वह रानी हो गयी। स्वतन्त्रता और अधिकार बढ़ गए। उसने राव होकर भी दूसरा विवाह नहीं किया बल्कि उसका प्यार अपनी पत्नी के प्रति और अधिक हो गया। प्रियवर के अधिकार बढ़ गए थे पर एक ही बात नहीं बढ़ी थी—उसे लगता कि राव के मन में बाणी और गुरू चरणों के प्रति प्रेम नहीं बढ़ा है। रानी को भय था कि कहीं बिभोर राजाओं के साथ न मिल जाए, उसके राज्य में सिखों या गुरू के विरुद्ध कोई बात न हो, कहीं राव को मालूम चल जाए तो वह उसे ही दुरुस्त न कर दे, पर गुरू का यश या गुरू का नाम, गुरबाणी का पाठ और राव का उसे सुनने का उद्यम—रानी के राव में ऐसी कोई बात नहीं देखी। रानी यह देखकर कहती—हे प्रभु! मेरे लेख लिखते हुए, दुखों से साफ रखते हुए, जब मेरे मन की इच्छा का समय आता था तब तुम वह जगह खाली छोड़ देते थे। पर अच्छा! मेरा गुरबाणी का प्यार उस खाली स्थान

में खुद ही सुन्दर-सा लिख लेगा। जितना जोर रानी में था तथा एक पतिव्रता नारी जितना कुछ कर सकती थी उसने किया—पर बात पूरी होती नजर नहीं आ रही थी। हां, रानी के मन में यह भ्रम जरूर था कि राव साहिब उससे कुछ छिपाते हैं।

एक दिन राव और रानी रात को काफी समय तक बात करते रहे—प्यार सम्मान के प्रसंग चल रहे थे। रानी ने गुरू का यश सुनाया (पाठ सुनाया) राव ने सुना पर कहा कुछ नहीं। फिर वह सो गया। दो बजे के लगभग राव चुपचाप उठा, पल भर के लिए वह रानी के सिरहाने खड़ा होकर उसे देखता रहा। वह समझ गया कि रानी गहरी नींद सो रही है। अब राव चुपचाप वहाँ से चल पड़ा, पर आज रानी जाग रही थी। राव के इस तरह खिसकने पर उसे आश्चर्य हो रहा था। वह दबे पांव उसके पीछे गयी। राव ने दूसरे कमरे में जाकर एक चाबी निकाली और अलमारी को लगाई उस अलमारी के अन्दर सीढ़ियां थीं, वह उन सीढ़ियों से नीचे उतर गया। दरवाजा बन्द हो गया। जब थोड़ी रात रह गयी तो उसी अलमारी में कुछ आहट हुई। रानी छिप कर अभी भी देख रही थी, वह समझ गयी कि राव वापस आ गया है। वह जल्दी से पलंग पर आकर लेट गयी। राव ने देखा कि रानी वैसे ही सोयी हुई है तो वह भी सो गया।

अब रानी के जागने का समय था। उसने उठकर स्नान किया और फिर पाठ करने लगी। जब पाठ का भोग पड़ा तो दिन चढ़ आया था। रोज की तरह रानी ने राव को उठाया, स्नान कराया, कपड़े पहनाये तथा कुछ खिला कर दरबार में भेजा।

औरतों को हैरानी जल्दी चिपक जाती है। इतनी अच्छी रानी होकर भी वह हैरान थी कि अलमारी से रास्ता कहां जाता है। राव साहिब आज चाबियां भी भूल गये थे। राव जी के जाने के बाद मौका देखकर रानी वहां पहुंची। उसने अलमारी को खोला। कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया, परन्तु अलमारी का दरवाजा खुला ही छोड़ दिया और वह नीचे उतर गयी। आगे एक और दरवाजा था, पर वह भिड़ा हुआ था। उसको खोल कर वह अन्दर गयी तो एक छोटा-सा कमरा था। कमरें में कालीन बिछा हुआ था, तख्तपोश पड़ा था, ऊपर मंजी साहिब और चौर थी, एक तरफ खुरा था जिस पर चौकी पड़ी थी और उस पर जल से भरा एक लौटा था। अब कमरे को टटोलने पर रानी को एक और अलमारी नजर आयी। उसे खोला तो उसके अन्दर एक छोटे पलंग पर श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की छोटी बीड़ आराम में विराजमान थी। इस प्यारे दर्शन से उसका सिर झुक गया। फिर गहरे प्यार और विहवलता के स्वर में वह बोली— हाय विधना! तेरे छल! मुझे इतना गुरू प्रेमी पति देकर फिर क्यों तड़पाया। मेरी इच्छा पूरी करके, मेरे सीने से लगाकर भी मुझे वियोग में रखा। यह अनोखी चाल मेरे साथ क्यों चली? (सिर हिलाकर) वाह! वाह!! प्रभु की कृपा है! मेरा शरीर गुरू प्यारे की सेवा में सफल हुआ है। मुझ दासी

को सिख सिरताज मिला है। मुझे मालूम नहीं था, पर कोई बात नहीं। विधना बेदर्द है, किसी की गोद में मुराद देती है तब भी उसकी आँखों के आगे पर्दा तान देती है। प्रभु की कृपा से यह पर्दा भी दूर हो गया है।

रानी ने अब बड़े प्यार से प्रकाश किया और गद-गद स्वर में पाठ किया। रूमाल डाला, कमरे को सिर के दुपट्टे के साथ साफ किया, फिर सिर पर वही दुपट्टा लेकर कहा–

गुर सिखा की हरि धूड़ि देहि
हम पापी भी गति पाहि॥

कृपाण को उठाया, देखा और फिर रख दी, फिर गुरू बाबा को माथा टेका, अरदास की और उसी रस में भरी पीछे लौट आयी। बाबा जी का असवारा करना वह उसी मग्नता में भूल गयी। सीढ़िया चढ़ी, दरवाजा बन्द किया, ताला लगाया और अपने कमरे में आ गयी।

: ४ :

आज दिन में बहुत काम होने से राव साहिब थक गये थे, इसलिए रात को जल्दी ही सो गये। रात के दो पहर और कुछ घड़ी ही बीती थी तभी घंटे की टंकार राव साहिब के कानों में बजी वे उठ बैठे। रानी को सोया हुआ देखकर वे चले गये। परन्तु रानी वास्तव में जाग रही थी। उठकर पीछे-पीछे चल पड़ी। राव जी ने उसी तरह मोमबत्ती जलाकर अलमारी खोली, अन्दर से दरवाजा बन्द कर नीचे उतर गये। वे जाकर क्या देखते हैं कि श्री गुरू ग्रंथ साहिब का प्रकाश हो रहा है। उन्हें आश्चर्य हुआ, कुछ क्षण तक तो वे माथा टेकना भी भूल गये। सोचने लगे क्या वे असवारा करना भूल गये थे। यह ख्याल आते ही अफसोस हुआ। माथा टेक कर वह रो पड़ा–हाय राज्य मद! इस दरबार का मुझ से अपमान हुआ है। एक प्यार वाले व्यक्ति की तरह, एक दास भाव वाले गुलाम की तरह मैं सावधान क्यों नहीं रहा। इस तरह से दुख और अफसोस प्रकट कर उसने फिर सोचा–अच्छा, वाह वाह! मेरे अन्तर्यामी गुरू मुझे क्षमा करना। फिर पानी लाकर पाँच स्नाना किया (हाथ, पैर, मुंह, धोना) और एक कोने में बैठ गया। काफी समय वह चुपचाप बैठा रहा, मानों कहीं ध्यान लगा कर बैठा हो। पर फिर घबरा गया, मन जुड़ने के स्थान भ्रम में पड़ा हुआ था। उसे याद आ गया कि वह तो महाराज जी का असवारा करके गया था। यह सब फिर हुआ कैसे? मेरा भेद किस तरह खुल गया? उसके मन में बवंडर उठा। वह उठकर खड़ा हो गया। कमरे में इधर-उधर देखने लगा उसकी नजर गलीचे पर पड़ी–कुछ चमक रहा था। झुक कर देखा तो तिल्ले की कोई तार थी। अब तलाश का शौक और बढ़ा। वह ध्यान से देखने लगा तो एक छोटा मोती मिला, उसने उसे उठा कर देखा–

'हे भगवान! हे भगवान।' उसने फिर देखा तो मोतियों की एक छोटी-सी लड़ी मिली। 'हां प्रियवर जी! आपने आखिर मेरा भेद पा ही लिया। हे दाता! मेरी यह इच्छा है कि मेरे प्रिय को हवा भी न लगे, पूरी नहीं हुई। आदमी यदि नहीं बोले तो वह बंद डिब्बी की तरह है, जिसमें पड़ी वस्तु के बारे में कोई नहीं जान सकता। मैं बहुत चुप रहा, ढक्कन को बंद रखने की बहुत कोशिश की। पर चंचल प्रियवर! तूने मेरे अन्तर के रहस्य को हवा लगा ही दी। अच्छा! पर कहीं यह कोई और न हो। पर और कौन हो सकता है? यह तिल्ला और तारें उसी के दुपट्टे की हैं। यह मोती दुपट्टे पर मैंने ही कह कर लगवाये थे। मैंने ही लाहौर से मंगवाये थे। हां, मेरी प्यारी पर चोर प्रियवर! चोर की याददास्त अच्छी नहीं होती, उसे अपनी सलामती के लिए जल्दी होती है-कि वह जल्दी से जल्दी भाग जाये जिससे उसकी चोरी पकड़ी न जाए। यह जल्दबाजी ही उसे मैला करती है। वह काम को अधूरा छोड़ जाता है और कई बार अपने निशान भी छोड़ जाता है, जिससे वह पकड़ा जाता है। जल्दबाजी के दुपट्टे के मोती छोड़ गयी और असवारा करना भी भूल गयी।

इस तरह स्व कथन करते राव जी ऊपर आ गये। जल्दी से स्नान किया, कपड़े बदले और आसा की वार का पाठ करने लगे। फिर मत्था टेक कर बड़े प्यार से अरदास की। 'हे दाता! मेरा प्यार निबाहना, जिस प्यार को आपने लगाया उसे मंजिल तक पहुँचाना। यह हीरे का कण मेरे हृदय से बाहर न जाए। आज मेरा भेद खुल गया है। प्रियवर के मुंह को ताला लगाना जिससे यह भेद किसी और को मालूम न चले। हां, मुझ पर कृपा करो, अपने दर्शन दो। मेरा प्यार एक न दीखने वाली पीड़ा हो और आपके दर्शन औषधि का काम करे। मेरी छिपे रहने की चाह और छिपकर ही चले जाने की कामना पूरी हो।

: ५ :

रानी अपने कमरे में बैठी है, मन्द-मन्द पवन चल रही है। राव जी दरबाद से आज जल्दी ही आ गये हैं। रानी सुखमनी क़ा पाठ कर रही है। राव जी आकर बैठ गये और पाठ सुनने लगे। भोगे पड़ा-'उत्तम सलोक साध के बचन। अमुलीक लाल एहि रतन।' यह पद बार-बार कानों में गूंज रहा था और एक स्वाद दे रहा था-'यह साधु के वचन हैं, यह प्यार के पद अमूल्य लाल और रत्न हैं। लाल और रत्नों को छिपा कर रखते है। हां प्यार को छाज से साफ नहीं किया जाता वह तो अमूल्य रत्न है।' यह सोच कर राव ने मोतियों की टूटी लड़ी और तिल्ले की तारें रानी के आगे रख दी और कहा-जो रत्नों को इस तरह बिखेर देते हैं वे कैसे पढ़ लेते है-अमुलीक लाल एहि रतन।

रानी का रंग उड़ गया, पर जल्दी ही उसने अपने आप पर काबू पा लिया-

हाय! मेरा भेद भी खुल गया। राव की चोरी पकड़ कर रानी ने सोचा था कि उसने मैदान जीत लिया, पर राव के हाथ में मोती और तिल्ले की तारें देखकर वह समझ गयी कि उसकी चोरी भी पकड़ी गयी। दोनों एक दूसरे के सामने मानों एक दूसरे के चोर बैठे थे, पर वह लज्जित नहीं थे—क्योंकि वास्तव में चोर कोई भी नहीं था। दोनों एक सिद्धांत पर खड़े थे। जब दोनों की आपस में नजरें टकराती हैं तो दोनों के दिलों में अजीब से भाव पैदा होते हैं। रानी पति की बात सुनकर चुप रही, पर फिर बोली—लाल और रत्नों को डिब्बे में बंद कर सम्भाल कर रखते हैं, पर कभी न कभी उन्हें प्रकट करने के लिए। यदि उन्हें कभी भी प्रकट नहीं करना हो तो खान में पड़े हों या डिब्बे में पड़े हों—एक ही बात है। ज़ोहरियों की सम्भाल और कदरदानों की खरीद फिर किस लिए?

राव—पर चोरों से तो डब्बे और ताले भी बचाते हैं।

रानी—पर चाबियों के गुच्छे तो साधु के हाथ ही आते हैं।

राव—चाबियों को तो रत्नों से भी अधिक सम्भाल कर रखना पड़ता है।

रानी—चाबी वाले अपने मालिक के बिना और किसी को चाबी का भेद नही देते।

राव—धन्यवाद, प्रियवर! धुआँ निकल जाए तो आवा पीला पड़ जाता है।

रानी—पर अच्छी वस्तुएँ प्रकाश में ही सुन्दर लगती हैं। सूरज, चांद को घूंघट की जरूरत नहीं पड़ती।

राव—बीज को यदि छिपा कर न रखो तो कोंपल नहीं बनती, वृक्ष नहीं बनता। जड़ें अगर पर्दे में न हो तो वृक्ष मुरझा जाता है।

रानी—पर फल अन्धकार में नहीं पकते।

राव—पर उगने वाला बीज तो पके फल में भी छिप कर रहता है।

रानी—(सोचकर) कभी प्रकाश को छिपने की आवश्यकता अनुभव हुई है?

राव—प्रकाश अपने तेज और तीखेपन में छिपता है, सूरज पर्दा नहीं करता, पर कौन है जो उस पर नजर टिका सके।

रानी—फिर प्यार का सूरज धूमधाम से चढ़े।

राव—प्यार का कण चिंगारी की तरह होता है। चिंगारी राख में छिपी चमकती रहती है।, वह हवा के झौंके नहीं सहार सकती।

रानी—चिंगारी रुई के डिब्बे में छिप कर कभी नहीं रह सकती। प्रेम की चिंगारी तो हृदय में छिपी रहती है।

राव—पर किसी को छाज में डाल कर साफ करता भी नहीं देखा।

रानी—यह तो ठीक है, पर परवाना दीपक पर आये तो किसी घूंघट या चादर में छिपकर।

राव—पर जब परवाने आते हैं तो क्या वे तड़पते, मरते हुए आवाज करते हैं। प्यार पर पर्दा, प्यार चुप होना चाहिए।

रानी–तो क्या प्यार गूंगा है।

राव–हाँ, हया वाला है, शर्म वाला है।

रानी–बोलो तो मारे, दिखे तो पीड़ा दे।

राव–नहीं! बोलने और दिखने की जरूरत नहीं।

रानी–आवा की आग अन्दर ही अन्दर जलती है।

राव–नहीं, जीवित शरीर की अग्नि, जिसकी न लपट होती है न चिंगारी, न धुआं होता है न लौ, फिर भी जलती है, चमकती है गर्मी देती है। वह तो जान की सलामती का जामन है।

रानी–मैं समझी नहीं।

राव–कभी अपने शरीर की अग्नि को जलते हुए देखा है? पर वह है, वह जलती है और हमारे प्राणों की रक्षक है।

रानी–जब प्रारम्भ से ही लौ लगी हो, फिर अन्दर कुछ और बाहर कुछ और उसका भला कैसे निर्वाह होगा?

राव–अन्दर की लौ अन्दर रहे और बाहर की बाहर। अन्दर की लौ को बाहर के पर्दे नहीं फाड़ने चाहिए और बाहर की लौ को बाह्य रूप को ही संवारना चाहिए। लोगों से मुलाकात बाग-बगीचे तथा बजारों में हो तथा अपने प्रिय से महल के अन्दर।

रानी–गुरू जी का कथन है–गुझड़ा लघमु लालु मथै ही परगटु थिआ।

राव–लाल को गोंद लगाकर माथे पर बिंदी बनाकर नहीं लगाया जाता, उसे तो मुट्ठी में सम्भाल कर रखा जाता है। पर उसके पास होने की तासीर यही है कि वह माथे से प्रकट हो। हां, 'अनिक जतन करि हिरदै राखिया रतनु न छिपै छपाइआ।' छिपाने से न छिपना यह उसका धर्म है। उसकी विशेषता है, पर जिसके पास रत्न है उसका क्या धर्म है? अनेक यत्न करके हृदय में छिपाकर रखना।

रानी–हैं तो गुरू कथन, पर सूर्य किस से छिप सकता है, प्रेम किससे घूंघट निकाले, परमात्मा किस से छिपे।

राव–'काइरे बकबादु लाइउ।' (जरा रुककर) हां, 'जिनि हरि पाइउ तिनहि छपाइउ।'

रानी–फिर हमारा क्या हाल? दर्शन हुए, मीठे लगे, आलौकिक रोमांच हुआ। माँ-बाप ब्याह कर सोचने लगे, हमसे रोमांच नहीं छिपा। कुल की लाज, लोक लाज छोड़ कर मां को कह दिया–गुरू मधुर लगते हैं, गुरू निंदक के घर मुझे मत देना।' यदि मैं गुरू की प्रीति छिपा लेती तो आज मैं किसी विमुख के घर होती। मुझे अब घबराहट होती है कि यदि सिद्धान्त छिपा कर रखना है तो मैं अपराधिन हूं।

राव–सिद्धान्त न तो छिपा कर रखना है और न प्रकट करना। सिद्धान्त है प्रेम और उसकी लगन। इसका अपना स्वाद है। उसे सम्मान देना और उसके सामने

किसी अन्य की तलाश न करना। कई प्रेम को प्रकट करते हैं। वह प्रकट इसलिए करते हैं कि लोगों की प्रशंसा मिल सके। वे लोगों द्वारा की गई महिमा के रसिया हैं। कई प्रेम को इसलिए छिपाते हैं कि वह जब प्रकट होगा तो समाज उसकी अधिक कदर करेगा। इसलिए दोनों स्थितियों एक-सी हैं। प्यार हो, उसकी कदर हो, इसकी कीमत का पता चले, इसलिए इसे छिपा कर रखो, सुखी रहोगे। यह सहसा ही प्रकट हो जाए, तो विवशता है। जिन पर लोगों की वाह! वाह! असर नहीं करती, वे नाच कर प्यार करें, जिन्हें निंदा घेरती नहीं जैसा चाहे करें, पर मेरे जैसे का रास्ता छिपाव ही है। मुझे अपने लिए यही उचित लगता है कि मेरा पर्दा हटे नहीं। मेरे प्यार की चिंगारी छोटी-सी है—वह हवा के झोंके से बचे। प्रीतम तक मेरी पुकार मेरी जुबान से न जाए। मैं तो छोटा-सा परवाना हूं।

रानी—सांसारिक या परमार्थक?

राव—मन के सुख के लिए, केवल आन्तरिक सुख के लिए।

मेरा छिपाव इसलिए नहीं है कि पहाड़ी राजा प्रीतम के शत्रु हैं और वे मेरे से नाराज़ हो जायेंगे, या यदि मैं खुलकर प्रीतम की तरफ हो गया तो तुर्क पातशाह मुझसे रियासत छीन लेगा। यदि मैं प्रगट कर दूँ तो सिख मेरे सहायक हो जायेंगे। यह लाभ है, पर इस लाभ का मोह नहीं। मेरे प्यार का कण छोटा है, वह मुझे कंजूस के धन के समान प्रिय है। इसको कहीं नज़र न लग जाए, कहीं यह मुझसे छिन न जाए, कोई मुझसे छीन न ले। मैं इसे छिपाता हूँ कि यह सलामत रहे। हाँ मेरे प्यार की चिंगारी छोटी है, उसे हवा के झौंकों से बचाना चाहिए। बुलबुल अपने प्यार के गीत को गाकर जगत को मोह लेती है पर परवाना छोटा है, गरीब है। चुपचाप शहीद हो जाता है। चकोर प्यार के लिए कूकता है, नाचता है, पर कमल चुपचाप दर्शन करता है, पलक नहीं झपकता। पपीहा पिउ-पिउ की पुकार से पूरे जंगल को संगीत-मय कर देता है, पर सुरखाब का जोड़ा चुपचाप साथ-साथ रहता है एक को तीर लगे तो दूसरा भी प्राण त्याग देता है। प्रेम के अनेक रंग हैं, पर उसमें कृत्रिमता नहीं होती, यदि प्रेम है तो वह किसी स्थिति में रहे, पर मेरी स्थिति के अनुकूल प्यार का छिपाव ही है।

रानी—मेरी हार्दिक इच्छा थी कि आप दाता जी से प्यार करो, पर मुझे मालूम नहीं था कि आप तो दाता जी के प्यार में रंगे हुए हैं तथा आप नहीं चाहते थे कि किसी और को आपके इस प्यार के बारे में मालूम हो। मुझसे भूल हुई, मैंने दखल दिया और न जानने वाली बात को चोरी छिपे जान लिया। मैं क्षमा प्रार्थी हूं। पर मेरी याचना, पश्चाताप या क्षमा की याचना अब पहले की स्थिति को पैदा नहीं कर सकती—आप थे और आपका प्यारा था, तीसरे को खबर तक नहीं थी।

राव—चिन्ता मत करो, मैं नाराज़ नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि बात इसके आगे नहीं जायेगी। बात पति-पत्नी के बीच में है, किसी तीसरे को पता नहीं लगा

है—यह भी परमात्मा की इच्छा ही होगी। मेरे अन्दर भी चरण-स्पर्श की बड़ी इच्छा है, वह इच्छा भी अवश्य पूरी होगी। उस शुभ घड़ी की यह पहली चमक है। मैं भी दर्शनों के लिए तड़प रहा हूं, क्या पता उस इच्छा पूर्ति का ही झोंका है। आह मालिक! आह साहिब!

यह कहते हुए राव ने होंठ भीच लिए, नयन मूंद लिए चेहरे और शरीर में कँप-कँपी आयी, नयनों से अश्रु बहने लगे, नयन प्रेम मग्न हो गये। रानी इतनी तीखे आकर्षण से अपरिचित थी, उसका अन्तर थर्रराया और नयन भर आये।

: ६ :

अजीत सिंह—[१]यह वन बहुत सुन्दर है।

साहिब श्री गोबिन्द सिंह—इस वन में प्रवेश करते हुए ऐसे लग रहा है जैसे लम्बे समय के बाद आदमी घर लौटा हो।

अजीत सिंह—बहुत रमणीक और प्यारा स्थान है।

गुरू जी—क्या यह बिसाली का क्षेत्र है।

शोभा सिंह—पातशाह! बिसाली की सीमा तो समाप्त हो चुकी है।

गुरू जी—तभी। अच्छा! राज्य बदल गया है। हम तो कई कोस आ गये हैं।

शोभा सिंह—जी हाँ, अब हम बिभौर के क्षेत्र में हैं।

गुरू जी—हूँ, बिभौर।

अतीत सिंह—शिकार भी अच्छा मिलेगा।

गुरू जी—(मुस्करा कर) बहुत अच्छा।

(इतने में सुन्दर हिरणों का झुण्ड आगे से निकल गया)

अजीत सिंह—हैं! यहाँ तो शिकार खुद ही निशाने के सामने आ रहा है। आगे दौड़ कर निकल रहा है।

गुरू जी—कुछ प्यार सुगन्ध का देश है।

शोभा सिंह—राव बहुत चुपचाप रहता है, बहुत कम बोलता है। दो पहर बैठकर स्वयं रियासत का काम करता है। यहाँ दुख कम है, प्रजा सुखी है। एक ही विवाह किया है। रानी गुरू घर में श्रद्धा रखती है, नाहन के राजघराने की पुत्री है, बाणी से उसे प्रेम है, दान भी करती है। राव प्रेमी नहीं, उसे न दान का शौक है न शिकार का। कभी-कभी वैसे ही शिकार को चला आता है। पर अडोल आदमी है।

गुरू जी—अडोल पानी गहरा बहता है, गहरे पानी अडोल बहते हैं।

अजीत सिंह—महाराज! हम बहुत दूर निकल आये हैं, साथी पीछे रह गये हैं। अब वापस चलना चाहिए।

---

१. यह अजीत सिंह एक योद्धा है साहिबजादा नहीं।

गुरू जी–सोच तो पीछे लौटने की आती है, पर कदम आगे की ओर बढ़ रहे हैं।

अजीत सिंह–तो यहीं डेरा लगा लेते हैं। आप कमर की पेटी खोल लो। डेरे को यहीं ले आते हैं।

गुरू जी–पर दिल यहां भी नहीं ठहरता, आगे ही आगे जाता है।

शोभा सिंह–फिर आगे चले चलते हैं। भीम के राज में हम कभी रुके नहीं, फिर यह रियासत तो भले लोगों की है।

गुरू जी–केवल भले लोगों की या प्यार भी है।

शोभा सिंह–रानी को गुरू घर में श्रद्धा है।

गुरू जी–हाँ, पर इससे अधिक भी कुछ है।

इस तरह बातें करते हुए वे अपने घोड़ों को आगे चलाते गये। इतने में एक और शिकारी दल सामने से आता दिखाई दिया। थोड़ी देर में वह पास आ गया। दल का अगुवा घोड़े से उतर कर आगे आया और माथा टेक कर बोला–'धन्य भाग्य! आपके चरण इस रियासत में पड़े।'

गुरू जी–(तीर से उसकी पीठ थपथपाकर) इस रियासत में आकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। बड़ा सुन्दर स्थान है। आप कुशल तो हैं?

अगुवा–आपकी कृपा है। मैं रियासत का वजीर हूं। हमारे महाराज भले व्यक्ति हैं। मैंने कल ही उनसे पूछा था कि गुरू जी शिकार खेलते हमारी सीमा तक आ जाते हैं–यदि कभी आगे आ जाएँ तो हमने क्या करना है। श्री हुजूर कहने लगे–सभी पृथ्वी परमात्मा और गुरू जी की है, राव–राजा तो प्रबन्धक हैं, मालिक नहीं। महाराज जी। हमारे राव बहुत गम्भीर हैं, थोड़ा बोलते हैं। सिर्फ इशारा करते हैं। हम उनके दृष्टिकोण को ढूँढ़ लेते हैं। इसलिए उनके इस कथन से सभी नम्बरदारों को हुकुम दे दिया है कि जब भी आप आयें आपको सम्मान दें और जिस वस्तु की आवश्यकता हो जैसे दूध, रसद-पानी आपकी सेवा में हाजिर करें। जो भी आप माँगें प्रस्तुत करें। मैं आज शिकार पर था तो आपके आगमन की सूचना मिली। इसलिए सेवा पूछने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

गुरू जी–मन्त्री जी! हमें तो ऐसा लग रहा है जैसे आनन्दपूर आ गये हों। आप ऐसे लग रहे हैं जैसे कोई अपना हो, यह अपनी रियासत और अपना घर लग रहा है। आप सुखी रहें, राज्य-भाग्य बना रहे, राव सुखी रहे।

: ७ :

रानी–महाराज! मैंने सुना है श्री जी हमारे राज्य को अपने चरण कमलों से पवित्र कर रहे हैं।

राव–किससे सुना है।

रानी–निक्को से।

राव–यह निक्को भी कहाँ-कहाँ की खबर रखती है। आज दोपहर को ही मेरे पास सरकारी सूचना पहुँची है। इसे पहले ही कैसे मालूम चल गया।

रानी–हाथी के कान रखती है।

राव–फिर भी।

रानी–कोई ग्वालन आई है। पोठेहार से उजड़ कर जो लोग हमारे राज्य में आकर बस गये हैं उनमें से ही कोई एक है। वह अपने गांव से दूध की मटकी लेकर नगर को आ रही थी। वन में सतिगुरू को देखकर खड़ी हो गयी और बोली–'थोड़ा-सा दूध पी लो।' सतिगुरू जी ने कहा–'क्यों?' तो बोली–पता नहीं। पर आपको देखकर चाव आ रहा है।' आप बोले–'क्यों?' बोली–'मुझे पता नहीं, कलेजा धड़कता है, आँखें फड़कती हैं, उमंग उठती है, आप दूध पी लें।' महाराज बोले–'हम कौन हैं?' कहने लगी–'मैं नहीं जानती कि आप कौन हैं। पर देखकर चाव आ रहा है। सतिगुरू ने कहा–'कीमत लोगी।' कहने लगी–'दूध बेचा तो पुत्र बेचा, पुत्र बेचा तो फिर क्या रहा।' आपने उसकी तरफ देखकर कहा–'बिना कीमत कैसे पी लें।' बोली–हम कंगाल हैं, आपको देखकर मन शान्त हुआ, और क्या कीमत चाहिए।' आप बोले–'ऐसे नहीं पियेंगे।' यह सुनकर वह रो पड़ी, नयन मिट गये, रंग बदल गया। फिर नयन खोले, रोते हुए बोली–'न जाने कितने युगों से दूध लिये पीछे-पीछे घूम रही हूँ, फिर हमसे क्यों नहीं पीते।' ऐसे कहती वह बावली-सी हो गयी, फिर बोली–'क्या कीमत लूँ। पैसे लूंगी–वे एक दो दिन में खत्म हो जायेंगे। आप कीमत देकर पियेंगे? पियो, आप पी लो, कीमत दे देना, पर जितने बड़े हो, उतना बड़ा ही मूल्य देना पैसे तो खत्म हो जायेंगे। आपको बेचूँगी तो आप जितना मूल्य पाऊँगी। हाय राम! राम या कृष्ण, कृष्ण या परमात्मा, परमात्मा है कि वह, वह है कि मैं, मैं हूँ कि दूध, दूध है कि पैसे, पैसे हैं या दर्शन, दर्शन हैं या आप, आप हैं या मैं हूँ। (और बावरे पन में) यह जा रहा है दूध क्षीर समुद्र को, खुद ही मथना, खुद ही पीना, हम तो जा रहे हैं आपके देश।' वह इस तरह के अर्थहीन वाक्य कह रही थी कि कलगीधर के चेहरे का रंग बदला, भवों में बल पड़ गया, होंठ दांतों से दब गया, नयन मुंद गये, पल भर बाद उसके सिर से खुद मटकी उतारी, मुंह लगाकर दूध पीने लगे। जैसे-जैसे दूध पिया वह होश में आ गयी। कहने लगी–मैं! मैं कहाँ थी? वाहिगुरू यह क्या हुआ। वाहिगुरू का देश कौन-सा है। उस देश का राव कौन है? मुझे उस देश में कौन ले गया था? देश के राजा ने मेरी मटकी ले ली, सारा दूध पी गया। इतना सुन्दर और बली राजा कौन था, मुझे फिर यहाँ क्यों छोड़ गया? हैं! यह मेरे अन्तर कैसे ध्वनि उत्पन्न हो

रही है। रोम-रोम वाहिगुरू कह रहे हैं। मैं फूल की तरह हल्की कैसे हो गयी? मेरा वजन कहाँ गया? कैसा स्वाद आ रहा है। अच्छा हाँ यह तो दूध का मूल्य है। वाहिगुरू का देश था वह। उसके देश में यही सिक्का चलता होगा, अच्छा है मूल्य ले लिया, मैं मूर्ख कह रही थी ऐसे ही पी लो और वे कहते थे मूल्य ले लो। मुझे क्या पता मूल्य पैसा नहीं, मूल स्व है, स्व है। मैंने गौरस (दूध) दिया और राम रस पाया। लोगो देखो, व्यापारी आया है, सौदा कर लो। दूध दो और मूल्य में राम रस लो।

राव जी! इस तरह आश्चर्यजनक दशा में वह ग्वालन नगर में आयी। निक्को उसे जानती थी। वह उसे घर ले आयी, प्यार किया, बैठाया। जो कुछ उसने सुना मुझे बताया। वह ग्वालन अब पूरी तरह होश में आ गयी है। उसने सारी कथा खुद की सुनायी है। एक सहेली उसके साथ है, शेष कथा उसने सुनायी है। वह कहती है कि वे साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी हैं। वह आनन्दपुर भी रही है, पर दूध पिलाने वाली को अभी तक पता नहीं है कि वे कौन हैं? पूरी होश आने पर ही पता चलता है कि उसने कलगीधर जी को दूध दिया है और कीमत में वाहिगुरू का नाम ले आयी है।

राव ने वार्ता सुनी। रानी उनका चेहरा देख रही थी। बात करते समय कितनी बार रानी रोयी, उसके रोम खड़े हो गये, पर राव का चेहरा एक जैसा ही रहा, उस पर कोई भाव नज़र नहीं आया। एक दो बार होंठ दांतों के नीचे आया या एक दो बार अनोखे ढंग से उसने पलकें झपकीं, पर मालूम नहीं चलने दिया।

रानी से अब रहा नहीं गया। वह बोली—अब तो मुझे मालूम है कि आपको गुरू जी से प्रेम है, इतनी खुशी, इतनी शक्ति और प्यार की बात सुनकर भी आपके दिल को प्यार और आकर्षण अनुभव नहीं हो रहा।

राव—अन्दर की दुनिया के कौतुक अन्दर ही होते हैं।

रानी—कोई तीसरा नहीं बैठा है, पत्नी बैठी है। दिल को खुला छोड़ देते तो आन्तरिक रसों का भाव बाहर भी आ जाता।

राव—कोई बुलबुल है, कोई परवाना। परवाना बुलबुल की तरह कैसे उड़े?

रानी—मेरी दृष्टि में आपने अपने मन को बन्द करके रखा हुआ है।

राव—भूतों को बन्द रखना जरूरी है। खुल दी तो वे फिर सवार हो जायेंगे।

रानी—भूत क्यों? यह तो प्रेम-कण हैं, उन्हें चमकने दो।

राव—यदि अन्तर में प्रेम-कण हैं तो उन्हें बचाकर रखो। बोलने से चमक कम होती है, हाव-भाव प्रकट करने से दमक टूट जाती है, अन्तर प्यार के साथ घुल-घुल चले, पर नयनों को माथे को, कपोलों को होठों को रोमावली को खबर न हो। सुना नहीं तुमने दांये हाथ से दान करो पर बांये को मालूम न चले। इसी

तरह दिल प्यार करे तो, रोमांच पिछली तरफ, बाहर की तरफ, इन्द्रियों की तरफ क्यों जाएं?

रानी–हाय! इतना अधिकार। पर क्या आपका मन दर्शनों के लिए नहीं करता।

राव–समझ लो! तुम तो पत्नी हो अब बस करो।

रानी–अनादर के लिए क्षमा। यदि मन मेरे मन की तरह तड़प रहा है। तो दर्शनों की इच्छा कैसे पूरी होगी? चुप बैठने से क्या होगा?

राव–यह शरीर, मन, आत्मा, जन्म, राज्य-भोग, प्रियवर आप, सभी बिन बोले ही मिले हैं। दाता गूंगों की आवश्यकताओं को भी पूरा करता है।

रानी–(रोते हुए) चलो बिसाली चलकर दर्शन करें।

राव–कभी वृक्ष, पौधे, लताएं माली के पास चलकर जाते हैं? माली खुद एक-एक पौधे के पास जाकर पानी देता है, उनको पालता है। रानी! पौधे कभी माली के पीछे नहीं दौड़ते।

रानी–तो क्या कोई सिख, जिज्ञासु, परमात्मा को तलाश करने वाला, फकीरों, संतों तथा अवतारों के पास नहीं जाए।

राव–जायें, जरूर जायें, पर कभी भूले-भटके तथा अज्ञानी भी तो जाते हैं? उन्हें जाना नहीं आता। वैसे दीन-दुखी नहीं जाते। पौधे माली के घर जाने से इसलिए नहीं कतराते कि उन्हें उससे प्यार नहीं है। हो सकता है कि उनके पैर होते तो वे भाग कर जाते। मुझमें वह वस्तु नहीं है जो चलाकर ले जाती है।

रानी–फिर उन्हें आमंत्रित करते है। बिसाली वाले ने भी तो उन्हें आमंत्रित ही किया है। वे दीनदयाल हैं, जरूर आयेंगे।

राव–बिसाली वाले का स्नेह दृढ़ होगा या समय की आवश्यकता ऐसी होगी कि उन्हें आमंत्रित करने में ही उसने अपनी सेवा समझी होगी। पर मेरे लिए इस तरह उन्हें आमंत्रित करना उनका अनादर है।

रानी–तो वे सभी लोग जो अपने बड़ों को आमंत्रित करते हैं, उनका अनादर करते हैं।

राव–नहीं प्रिय! यह बात नहीं। पौधों के पास जिह्वा भी नहीं होती कि वे माली को आमंत्रित करें।

'मैं आमंत्रित करूं, मैं आमंत्रित करूं' यह कहते हुए राव की आंखों से आंसू गिरने लगे। पर उसने नयन बंद कर लिये। आंसू आँखों ने ही पी लिए।

रानी–फिर हमारी इच्छा कैसे पूरी होगी?

राव–माली पौधों को चुप आवाज को समझता है, वे चल नहीं सकते इसका उसे ज्ञान है। पौधों की आवश्यकता को वह पौधों से अधिक जानता है।

रानी–यदि कोई माली को खबर कर दे तो?

राव–यह माली माला फेरने वाला नहीं है, वह दिलों पर कृपा करने वाला, दिल को पिरोने वाला, सभी का मालिक है। प्रारब्ध से आया अन्तर्यामी है।

रानी–आप हिम्मत वाले हैं, पर यदि सारा संसार इसी रास्ते पर चले तो माली का काम कितना बढ़ जायेगा।

राव–माली की उंगली सारे जगत को गोवर्धन की तरह उठा लेती है। वह भार को हरने के लिए आया है।...सारा जगत मेरे रास्ते पर क्यों चलेगा? मैं इसलिए तो चुप हूं कि जिस रास्ते मैं चल रहा हूं, उस पर कोई न चले।

रानी–सभी सिख, संगत, जरूरतमंद, प्रेमी नित्य दर्शनों के लिए आते हैं।

राव–प्रत्येक अपने स्वभाव का दास है। परमात्मा ने उन्हें अपने स्वभाव के अनुसार चलने की शक्ति दी है। मैं जिस तरह से ढल गया हूं और मेरा स्वभाव जिस तरह का बन गया मुझे उसी के अनुकूल चलना है। जगत को, जो जाता है भाग्य वाला समझता है। यह मेरा स्वभाव है कि मैं नहीं चाहता कि कोई मेरी नकल करे। पर मैं जो कुछ हूं उससे भिन्न नहीं हो सकता। प्रियवर! कितना अच्छा होता है कि आपकी जिज्ञासा मेरा पर्दा उठाने तक न ले जाती। मनुष्य को बहुत कुछ जानने की आवश्यकता है, पर कुछ ऐसा भी होता है जिसे न जानना अच्छा होता है। आपने मेरा न जानने योग्य भेद जानकर खुद को चिंता में डाल लिया है। मैं जो कुछ बता रहा हूं, बताकर खुश नहीं, और बताने पर आपको तसल्ली भी नहीं हो रही। और मुझे बताना इसलिए पड़ रहा है क्योंकि आप भेद जान गयी हैं। आपकी और मेरी पीड़ा एक है, दुःख-सुख समान हैं, प्यार का सम्बन्ध है, अब कैसे न बताऊं? यदि आपको भेद मालूम नहीं होता तो आपको पूछने की और मुझे आपकी तसल्ली न करा सकने वाले उत्तर देने की आवश्यकता न पड़ती।

प्रियवर–आज पहली बार आपने मुझे कहा है कि इस दासी के साथ आपका प्यार का सम्बन्ध है। नहीं तो, आज तक आपका मुंह बंद रहा, पर व्यवहार में आपका प्यार अति का है। मुझसे भूल हुई, पर प्यार की लहर में। आपने कृपा की, मेरे अवगुण नहीं देखे, बल्कि अपने विचारों से अवगत कराया। जो आप कहते हैं ठीक है, पर मैं समझ नहीं सकी कि आप प्यार छिपाते क्यों हैं?

राव–मैं छिपाता नहीं। अंधेरे में रहने वाली चीजें अन्धेरे में ही ठीक रहती हैं। यह मेरा स्वभाव है। जड़ें अन्धकार में और वृक्ष प्रकाश में शोभा देते हैं।

प्रियवर–इतने सालों के बाद मुझे समझ आयी है कि बाहर से रूखे और खुरदरे लगने वाले के अन्दर अति प्यार वाला और कोमल दरिया दिल है। आप जैसे-जैसे प्यार करते हैं, बाहर से खुरदरे लगते हैं। आपका रूखापन अन्दर से पसीजने का चिह्न होता है। पर जगत में इस बात को कौन समझ सकता है जिससे

आपका कोई मित्र बने? यदि कोई बने भी तो वह कैसे रहे?

राव–यह मेरा दुर्भाग्य है। मुझे मित्रों की कभी की ही दात मिली हुई है। ऐसा ही सही–एक में अनेक को प्यार करने की शक्ति होती है। यह तो अपनी शक्ति है, कोई बात अच्छी या बुरी नहीं। जैसी अन्तर की अवस्था होती है, व्यक्ति वैसा ही करता है। मेरे दिल से जबान तक का रास्ता बहुत तंग है। उस गली से जब प्यार गुजरता है तो फंस-फंस जाता है, मेरे साथ यही कठिनाई है। मैं किसी शोखी में नहीं हूं।

प्रियवर–अच्छा सरताज जी! जगत में तो जैसा व्यवहार किया वह तो चार दिन की बात है, पर जहां दिल दिया, वहां न जाना, आमंत्रित न करना, न पत्र लिखना, न संदेशा देना, न सूचना। मेरा दिल छोटा है, विचलित होता है।

राव–जो आपने मेरा भेद जान लिया है–समझो नहीं जाना है। तुम्हारी चिंताएं स्वतः दूर हो जायेंगी या मुझे मेरे स्वभाव पर छोड़ दो, जो हो रहा है देखती चलो। तब आपकी चिंता कम हो जायेगी।

रानी–मेरी चिंता आपके प्रेम रस को पाने की है। कहती हूं–अब तो नारायण घर आ गये हैं। गंगा हिमालय छोड़ कर हमारे पास हमारे घर आ गये हैं–अब तो डुबकी लगा लें। आपको कृतार्थ हुआ देख मुझे भी शीतलता मिले।

राव–आप बिसाली चले जाओ, वहां बुला लाओ, जैसी कामना हो वैसा करो–मेरी तरफ से कोई रोक नहीं। पर मुझसे वह नहीं कराओ जो मेरे अन्तर में नहीं है। चलकर जाने की उमंग नहीं, आमंत्रित करने की हैसियत नहीं, प्रेम-कण मेरे अन्दर है पर छोटा-सा, वह भी प्रभु की कृपा से है, मेरा नहीं। मैंने तो उसे कंजूस के धन के समान सम्भाल कर रखना है कि कहीं फिसल न जाए।

रानी–यदि वे आनन्दपुर चले गये तो?

राव–यदि मैं आज मर जाऊं तो?

रानी–(रोते हुए) बस करो, मुझसे भूल हुई (हाथ जोड़कर) इस तरह अशुभ मुंह से न निकालो।

राव–अच्छा मैं आपकी तरफ से पूछता हूं–'फिर क्या होगा? और मैं खुद ही उत्तर देता हूँ–

'जे घटु जाए त भाउ ना जासी॥'

प्रेम-कण अन्तर से न जाए मुझ कंजूस का धन यही है, जिसके साथ यह प्रेम कण है वह अन्तर्यामी है, लोक-परलोक का स्वामी है, वह हृदय में बैठा सभी कुछ जानता है। जो वह करता है, वही उचित है।

रानी–आप एक राजनीति की बात भी सुन लो। आप गुरू जी के विरुद्ध कभी जंग में शरीक नहीं हुए, इसलिए राजा आपसे नाराज हैं। वे सभी चालक

है, जब आप कष्ट में होंगे तो वे भी कसर नहीं छोड़ेंगे। इधर सिखों से स्नेह नहीं, आड़े समय में इधर से सहायता नहीं मिलेगी। क्या यह अच्छा नहीं कि इधर आपका प्रेम प्रकट हो और एक आश्रय पक्का हो जाए।

राव—अब आप किसी और बात के करीब आ गयी हैं। राजनीति और प्यार दो बातें इकट्ठा नहीं हो सकती। यदि इसी भाव से उनसे मिलूं तो उसमें प्यार नहीं, यदि अन्दर हो भी तो मेरा मन कहेगा कि यह भुलावा है। यह तो प्रेम को भुलावा में डालने वाली बात हुई। न मिलने से प्रेम-कण निर्मल नज़र आता है मिलने से उस पर नीति का अन्धकार पड़ता है। हाय! मरो छोटा-सा प्रेम-कण निर्मल रहे? वह निर्मल तभी रह सकता है जब मैं अपनी चाल से चलूँ। बाकी रहा राज्य-भाग्य मैंने कोई तलवार नहीं चलायी, अपने आप मिला, जायेगा तो तलवार चलाऊंगा। तलवार चलाने से रह गया तो ठीक चला गया तो ठीक। न छोड़ना है, न देना है, जाने लगे तो न जाए सोचकर पूरा जोर लगाना है, जोर लगाने पर भी चला जाए तो दुख प्रकट नहीं करना। हाँ यह देखना है कि हृदय में जो प्रेम-कण है कहीं वह न चला जाए।

रानी—अब बस करो! मैंने आज अपने सरताज को बहुत कष्ट दिया है, आप अच्छे हैं, दानी हैं और अपने सिद्धान्त पर टिके हुए हैं। मैं चिंतित हूं, प्रतीक्षा की हिम्मत नहीं रखती। आप उसी मार्ग पर चलें, जो आपको उचित लगता है। प्रेम का तार न टूटे, प्रेम-कण छिने नहीं, प्यार मिटे नहीं, प्रेम की ज्योति बुझे नहीं। वही करो जिससे वह सलामत रहे। मुझे क्षमा करो कि मैं आपका भेद जान गयी और आपका ध्यान इतना इस विवाद में लिया।

राव—यह भी प्रारब्ध के आदेश से ही हुआ है, मैंने ऐसा ही समझा है, आप भी ऐसा ही समझें। अब कुछ मत सोचो। जो मार्ग मुझे दाता ने दिखाया है, मुझे उसी पर चलने दो।

: ८ :

वजीर—(राव के निजी दीवानखाने में) महाराज! राजेश्वर जी। उस दिन श्री गुरू गोबिंद सिंह के अचानक दर्शन हो जाने और मैंने जो किया वह आपको पहले बता चुका हूं। उससे पहले भी और बाद में भी मैंने रियासत में यह आज्ञा भिजवा दी थी कि उनका सम्मान हो तथा उन्हें जिस चीज की आवश्यकता हो पंच प्रस्तुत करें। सूचनाएँ आ रही हैं कि वे कभी-कभी शिकार खेलने इधर निकल आते हैं और कहते हैं—यहाँ तो आनन्दपुर की हवा बह रही है। ऐसा लगता है कि उनका मन यहां रहने को कर रहा है। यह नीति है और धर्म भी कि हम आदर से आमंत्रित करें और उनकी सेवा करें? आपकी क्या इच्छा है।

राव—आनन्दपुर की हवा बहने लगती है। अर्थात् उनको यह स्थान अपना घर लगता है। परमात्मा और गुरू मालिक जो हैं। उन्हें अपना घर लगता है। सभी घर परमात्मा के जो हैं।

वजीर–आमन्त्रित कर लें?

राव–पवन किसी के आमन्त्रण की प्रतीक्षा करती है? वर्षा क्या किसी के बुलाने पर आती है।

वजीर–सत्य है। पर मैं मंत्री हूं। जो बात राज्य के भले के लिये है वह कहना मेरा धर्म है। मालिक की आज्ञा में चलना भी मेरा धर्म है। उनको आमन्त्रित करने के लिए जैसे आपकी आज्ञा हो।

राव चुप हो गया, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मंत्री राव के स्वभाव को जानता था। कुछ अन्य राजसी काम करके कुछ समय के बाद वह चला गया। मंत्री का स्वभाव था कि अपने घर एकान्त में बैठकर राव की अस्पष्ट बातों पर सोचता और उत्तर तथा अर्थ खोजता। अब घर जाकर वह आज के वाक्यों पर सोचने लगा क्या पवन किसी के आमन्त्रण की प्रतीक्षा करती है? क्या वर्षा किसी के बुलाने पर आती है? पवन अपने आप आती है अर्थात् वे खुद आयेंगे। बुलाने पर वर्षा नहीं होती अर्थात् बुलाना उचित नहीं, वे बहुत बड़े हैं, इच्छा होगी तो खुद आयेंगे। आयेंगे तो उनका स्वागत है। यह अर्थ निकाल कर मंत्री ने इससे अधिक कुछ नहीं किया। यदि वे स्वयं रियासत में आये तो उनका सम्मान हो। पर बाद में उसने सोचा कि मैं मंत्री हूं, मुझे मालिक का भला सोचना चाहिए और भला इसी में है कि गुरू जी आयें, हम उनका आदर-सत्कार करें जिससे पहाड़ी राजा समझें कि इनके पीछे भी कोई है। यदि कहीं संकट में फँस गये तो सहायता किससे लेंगे। राजा के स्वभाव का पता नहीं चलता। वैसे तो भला है, किसी का बुरा नहीं चाहता, पर कुछ रूखा और खुरदरा है, पर गुस्से वाला नहीं है, अकेला रहना ही पसन्द करता है, पर चतुर, बुद्धिमान और नेकी करने वाला है। चुप रहता है, कम बोलता है, पर जो बोलता है तोल कर, सही और निशाने पर, वह फिर झूठ नहीं होता, हां, वह नीति के विरुद्ध होता है। किसी से उसे प्यार है, ऐसा नहीं लगता, पर उसे किसी के द्वेष नहीं। रानी बड़ी अच्छी है पर दासियाँ बताती हैं उससे विशेष प्यार नहीं, फिर यह भी आश्चर्य की बात है कि दूसरा विवाह नहीं किया, किसी दासी की तरफ भी नहीं देखता, किसी पर बुरी नज़र नहीं डालता। ठाकुर या शिव के द्वार भी नहीं जाता। घर में कोई मूर्ति भी नहीं है, कथा भी नहीं सुनता, मद-पान भी नहीं करता। तीर्थों पर भी नहीं गया, किसी गुरू को धारण भी नहीं किया, पर इन सबसे खाली भी नहीं लगता। हिंदु-मुसलमान, फकीर मौलवी कोई भी आये तो सम्मान करता है, पर ऐसे कि किसी को मालूम न चले। साधु संत, फकीर आये तो उनकी बात भी सुन लेता है, पर भींगता किसी से नहीं। मेरे साथ भी खुलता नहीं, पर मुझे उन्नति दी है, मेरे बच्चे के विवाह का सारा खर्चा दिया। यदि कहें रूखा है, तो ऐसा नहीं यदि कहें प्यार वाला है तो उसकी थाह नहीं। एक बात पक्की है कि भला है और

समझ वाला है। पर अकेला और एकान्त पसन्द करता है। उसे क्या पसन्द है, वह किससे खुलता है? इसका पता नहीं। परमात्मा ऐसे स्वभाव वाले की रचना भी कभी-कभी करता है। वाह वाह! मेरे स्वामी! मैं सौभाग्यशाली हूं। मैं सदा उसके पानी की जगह खून बहाऊंगा:

: ९ :

एक दिन राजा जी कुछ अस्वस्थ थे। एक मंत्री ने वैद्य के सामने विनय की कि यदि आप शिकार के लिए चलें तो कुछ मन-बहलाव हो जायेगा। वैद्य जी ने कहा कि बीमारी तो कोई खास नहीं ऐसे ही सर्दी सी लगी है। कई दिन काम ज्यादा होने से आप हिले-जुले भी नहीं। वैद्य ने कहा विचार उत्तम है। राजा जी ने कहा-वैद्य जी! सत्य वचन।

दूसरे दिन राव और मंत्री शिकार के लिए चल पड़े। दो-चार दिन में ही शिकार का आनन्द मिलने लगा। राव जी की तबियत अच्छी हो गई एक दो बार उसके कानों में आवाज़ पड़ी कि गुरू जी भी शिकार पर आये हुए हैं, पर वन में आमने-सामने मिलन नहीं हुआ।

एक दिन राव शिकार से वापस घर आ गया। प्रियवर के कमरे की तरफ गया तो अन्दर से मन्द-मन्द आवाज सुनायी दी। राव अब दबे पांव चला। धीरे से पर्दा उठाकर अन्दर गया तो देखा-रानी अरदास कर रही थी। अरदास की ही आवाज आ रही थी। अर्थ समझ आ रहे थे। अब दबे पांव राव पीछे हटा-वह नहीं चाहता था कि कहीं आहट से रानी का ध्यान हट जाए-या रानी यह समझ कर लज्जित हो कि उसकी अरदास को मैंने सुन लिया है। अच्छा है कि पुजारी अपने पूज्य से मिलने में अकेला हो। जैसे ही उसने दहलीज से बाहर पांव रखा रानी की आवाज उसके कानों में पड़ी। उन प्रेम-पूर्ण शब्दों का प्रभाव राव पर पड़ा। वह रो रो कर प्रार्थना कर रही थी-वह एकाग्र चित्त खड़ी थी । आवाज में सच्चा प्यार और विनय थी । उस कोमलता का राव के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह सभी कुछ भूल गया । जैसे वाद्य यंत्र दूसरे बज रहे वाद्य यंत्र की कम्पन को अनुभव करता है वैसे ही तार में पिरोया हुआ, पर्दे के पीछे छिपा हुआ राव का मन अरदास के भाव से पिघल गया और उसी रंग में बहने लगा।

दहलीज के बाहर अपने सिर को टिका कर राव खड़ा हो गया, स्व को भूल गया और अरदास में लीन हो गया। रानी कह रही थी-हे परमेश्वर जी। मेरे पति पर कृपा करो, कितने अच्छे और श्रेष्ठ हैं, कितने प्यार वाले हैं, उन्हें दर्शन दो। वे स्वस्थ है, उनका मन एकाग्र है, वे भरे हुए घड़े हैं, पर बोलते नहीं। मैं दीन हूं, शून्य हूं, बोलती हूं, घबराती हूं, प्रार्थना करती हूं, हे दाता जी। कृपा करो। दाता जी को हमारी कुटिया में भेजो। हमें दर्शन कराओ। न मुझे और न मेरे पति

को नाम-दान मिला है। जिसे नाम निवास कहते हैं अभी हम उससे रहित हैं।

बनु बनु फिरत उदास बूंद जल कारणे॥
हरिहां तिउ हरि जनु मांगै नामु नानक बलिहारणै॥

पति जी तो आपकी इच्छा में अटल खड़े हैं। मैंने पपीहे की पिउ-पिउ की तरह आपके आराम में बाधा डाली है। हे मेरे परमात्मा जी! बोलना अनादर है, पर मैं पंछी हूं, बोले बिना नहीं रह सकती। हे दाता। सुनो और पसीजो। शाह! सात सुरों के ज्ञाता और ८४ रागों के विद्वान भी पंछी के एक सुर, दो सुर या तीन सुर वाले राग को सुनकर पसीज जाते हैं। आप संगीत रूप हैं, संगीत के संगीत हैं, मेरे इस पक्षी आलाप पर रीझ जाओ, प्यार करो। दाता जी! आप रियासत में आते हो, पक्षियों-मृगों का शिकार करके चले जाते हो, कृपा करो, हम दोनों का शिकार भी करो। कोई बाण चलाओ जो हमारे कलेजे में उतर जाए कोई नयनों से बाण चलाओ जो हमारी आंखों से कलेजे में छिपे दिल को चीर जाए हमारे इस मनुष्य रूपी जवीन को बचा लो, हमें नाम दो, लिव दो, नाम का 'नाम महारस' दो, रस दो, रस लीन करो। कृपा करो, हे सतिगुरू दाता दर्शन दो! कृपा करो। दाता जी। कल्गियों वाले स्वामी जी कृपा करो। नयन तरस रहे हैं, दिल दर्शनों का इच्छुक है, इच्छा पूर्ण करो।

रानी ने घड़ी सवा घड़ी इस तरह से भावना पूर्ण अरदास की। रानी का दुपट्टा नयन-नीर से भीग गया था। राव दीवार से सिर टिकाये भाव में लीन खड़ा था। रूखा और खुरदरा दीखने वाला राव, इतना रसिक और संवेदनशील था, उसका चित्त इतना कोमल था कि अरदास की कोमलता में ही खो गया। वह खड़ा का खड़ा रह गया। वह दीवार से सटा एक मूर्ति सदृश्य लग रहा था। अरदास के बाद रानी ने खुद को सम्भाला, शरीर निर्बल पर फूल की तरह हल्का था। मुख पोंछकर धीरे से बाहर की तरफ चल पड़ी। दहलीज पार करते ही प्राण-प्यारे की अचल मूर्ति देखी। राव को देखकर उसने मन ही मन कहा-प्यारे सरताज! तेरी कोमलता और लीनता धन्य है। मैंने अरदास पूरी भी कर दी, पर सुनने वाला अभी तक रसलीन है। धन्य है! धन्य है!! इस तरह सोचकर दहलीज के दूसरी तरफ रानी हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। कुछ संशय हुआ कि राव जी कहीं क्रोधित न हों कि तुमने दर्शनों के लिए अरदास क्यों की? यह भी अनादर है, पर अच्छा अपना-अपना विचार है।

इतने में राव जी ने सिर उठाया-नयन खोले, कानों ने बताया कि आवाज बंद है, नयनों ने बताया कि आवाज करने वाली सामने खड़ी है। राव जी ने धीरे से कहा-तेरी अरदास बहुत मधुर और दिल को आकर्षिक करने वाली थी। उसने मुझे इतना मोह लिया कि मैं यह ही भूल गया कि आपके एकान्त और एकान्त की

अरदास का भागीदार बन गया। मुझ से यह अवज्ञा हो गयी। आप नाराज तो नहीं।

रानी—नहीं जी! आप बताओ, आपके संकल्प अनुसार मेरी अरदास अनादर तो नहीं।

राव—नहीं प्रियवर! राजा के दर बाजे बजते हैं, संकीर्तन होता है, ढोल वाला ढोल तूती वाला तूती, बीन वाला बीन, ढपली वाला ढपली बजाता है। राजा ने जो वाद्य यंत्र जिसे दिया है उसने वही बजाना है। राजा को वही स्वीकार है।

: १० :

ठाह! ओह गोली चली। काले रंग का डील-डौल वाला हीरा मृग मारा गया। किस की गोली लगी? वजीर की। सारा जत्था दौड़कर वहां पहुंच गया। राजा ने पहले हँस कर देखा, पर फिर देखकर बोला—आह! कैसा सरदार मृग है? वजीर! आपने मृग मारा, खुशी मनाई, हमने निशानाबाजी के लिए आपको बधाई दी, पर इसके झुंड का क्या हाल होगा? अब प्राण त्याग रहा है। कैसा छैला बांका खड़ा था। अब तड़पने की शक्ति भी नहीं रही। वाह! मृग राजा! आराम करो। देह का परिणाम यही है। कारण चाहे कोई भी हो। देखो मंत्री जी! बाकी का झुण्ड कितनी दूर निकल गया है। झुण्ड दौड़ गया है। सांई! संकट में कौन साथ देता है? कोई-कोई मादा मृग पीछे देखती है, शक्ति नहीं पर प्यार है, प्यार की चिंगारी बनी रहे।

बेज़बान पशु! जीवन कितना कीमती है, पर कितना सस्ता चला जाता है। कुदरत ने यह सुन्दर शरीर कितने समय में बनाया था, पर तोड़ते हुए कुछ क्षण ही लगे। जीवन की कितनी बहुलता है, पर छोटे-से-छोटे प्राण भी जाना नहीं चाहते। यदि जाते है तो कितनों को अपनी हाय लगा जाते हैं। (मृग की तरफ देखकर) तड़पता है। पीड़ा, हाय पीड़ा। इससे सभी भागते हैं, पर इससे कोई नहीं बचता? हर बात पर पीड़ा, फिर एक पीड़ा दूसरी पीड़ा का इलाज है, पीड़ा से भागना और पीड़ा के ही यत्न करना। पीड़ा, पीड़ा को सहना, पीड़ा-पीड़ा को हटाना पीड़ा हो तो होश आती है, बेहोश को पीड़ा से मुक्ति। होश और पीड़ा का विवाह। पीड़ा गुरू है, पीड़ा उस्ताद है, पीड़ा ही सही मार्ग पर डालती है। यदि कोई स्वयं ही सही मार्ग पर चले तो पीड़ा क्यों आये? अविद्या सही रास्ते पर नहीं जाने देती। पीड़ा हो तो ज्ञान आता है कि इधर पीड़ा है। इसकी उलटी तरफ पीड़ा नहीं है आराम है इसी पीड़ा के लिए ज्ञान की सीढ़ी है।

राव कांप उठा, राव आज बोल पड़ा, मंत्रियों और शिकारियों ने राव का सम्वाद सुन लिया।

राव से ऐसी गलती पहले कभी नहीं हुई थी—फिर आज क्यों हुई? यह रानी के सामीप्य का दोष है? पता नहीं, पर वजीर का रंग कुछ फीका लग रहा था। सोचने लगा राव का चित्त दुखी है, वे तो अफसोस प्रकट कर रहे हैं। मरते हुए

मृग को देखकर द्रवित हो गये हैं। इतना पहले तो कभी नहीं बोले। आज इसी लिए बोल रहे हैं क्योंकि उनके मन को आघात लगा है। राव को शिकार पर लाना ठीक नहीं।

राव की जबान फिर बेवश हो गयी–'यदि ऐसे मुझे तीर या गोली लगे और मारने वाला हंसे, मैं मरू और प्रजा रोये और साथी सभी दोड़ जायें।' हां, जिंदगी क्या है? शिकार करते समय यदि शेर सामने आ जाये तो तो मौत क्या मौल लेनी है। मौत! मौत! हां मौत का भय क्यों। जो वस्तु अटल है, एक दिन जिसने आना ही है, चाहे किसी बहाने आये, उसका भय क्यों? जो कुछ हो रहा है सो हो रहा है। (धीरे से जिससे और सुन न सकें) पर ये विचार साधुओं के हैं, मैं राजा हूं। मुझे शिकार करना है, युद्ध लड़ने हैं, कहीं पर भी कांपना नहीं है। पर राजा और साधु आदमी हैं और आदमी में दया होती है।

अब सचमुच में एक तीर आया और सर्र करता पास से निकल गया और तड़प रहे मृग को लगा। इतने में नम्बरदार आ गया बोला–मंत्री जी! कलगीधर महाराज शिकार पर आये हुए हैं। यह तीर जो मृग को लगा है उन्हीं का है। जाकर देखो इसमें दो-ढाई रत्ती सोना होगा यह उनके तीर की पहचान है। आओ, पास ही हैं। आपका हुकुम था कि पता देना।

मंत्री (राव को)–आज्ञा हो तो मैं दर्शन कर आऊं?

राव–हर दिल का रब से सीधा सम्बन्ध होता है, मैं रोकने वाला कौन हूं?

मंत्री–आप भी चलते या मैं याचना करके उन्हें यहां ले आऊं? अब इतना पास होकर भी न मिलना उचित नहीं।

राव–(मुस्करा कर) राव कैसे जाए? ब्रह्मरूप आप किस तरह आये? हैं? क्यों, यही नीति है?

मंत्री–आप विद्वान हैं, चलना नीति भी है और श्रेष्ठ आचार भी। आगे आपके विचार ऊंचे हैं।

राव–दीन, बीमार वैद्य के पास पहुंच नहीं सकते।

मंत्री–मेरा जाना तो फिर जैसी आज्ञा।

राव–जिस तरह आत्मा का प्रकाश, बुद्धि की रोशनी, समझ का उजाला तीन दीपक हैं। जो जिसे प्राप्त है उसके लिए वही श्रेष्ठ है।

मंत्री (सोचकर)–अनादर माफ। फिर मैं जाता हूं।

राव–हां मंत्री! यही योग्य है। योग्य अयोग्य राज्य में और योग संयोग परमार्थ में। अन्तर में वियोग के आने से योग की भूख लगती है। यह भूख लगने से ही संयोग प्राप्त होता है। योग्य-अयोग्य, योग-संयोग अलग विचार के हैं।

मंत्री, राव की बात को समझ नहीं पाया, सिर झुका कर चला गया। श्री गुरू जी के पास जाकर माथा टेका। श्री गुरू जी बड़े प्यार से मिले और बोले–मंत्री!

आपके राज्य में बहुत प्यार है। बाहर से लोग खुरदरे, रूखे नज़र आते हैं, पर जब कोई काम करते हैं तो बड़े नरम और कोमल भाव से करते हैं।

मंत्री–आप जी की कृपा है। लोगों पर राव जी का प्रभाव है।

गुरू जी–कुछ आपकी तरफ से प्रजा को आज्ञा भी है।

मंत्री–यथा राजा तथा प्रजा। मंत्री का धर्म तो राजा का हुकुम बजाना है राजा की इच्छा ही प्रजा को अमल में लाती है। मैं तो बांस का टुकड़ा, सुन्दर गले की सुर वायुमंडल को देने का सेवक हूं।

गुरू जी–शाबाश मंत्री! आज अभी तक हमें शिकार नहीं मिला, पहले तो आगे-पीछे शिकार ही शिकार घूमते थे। आज शायद सारे वन्य पशु भाग गये हैं।

मंत्री–आज आपका तीर दास द्वारा बिंधे एक मृग को आकर लगा है। हमारे द्वारा मारा मरता तो नरक में जाता, आप मुक्ति दाता के कर-कमलों से स्वर्ण-लोहा उसकी देह को छू गया है। आपने उसे पार उतारने के लिए ही तो तीर चलाया था।

गुरू जी (मुस्करा कर) मंत्री जी! आदमी का शिकार करना पाप है कि पुण्य? आदमी का शिकार।

मंत्री–जीवन दाता के हाथ से दी मौत भी जीवन है। उस तन का सौभाग्य है जिसे आपका तीर लगा। मैं कठोर हूं। नीति वाला चालबाज हूं। पर दाता जी आपके कमान की सौगन्ध है, मैं तो भाग्यशाली होऊंगा यदि एक तीर इस कमान से मेरे शरीर में सर्र कर जाए। इस समय यही भाव है, पर यह मेरा नहीं आपके चरणों का प्रताप है।

गुरू जी–यह दिल तो साधु का है।

मंत्री–नहीं जी! दिल तो नीतियों के कारण अनीतियों में रहता है। पर आज राव के मन में जो खलबली मची है, उसके चुम्बक आप ही हैं।

गुरू जी–वह कैसे?

मंत्री–मैंने एक मृग मारा था। राव जी ने वैराग्य किया। वह वैराग्य मुझे प्रेम के घेरे में ले आया। आपके दर्शनों ने निशाना ढूढ़ लिया। खुद ही घायल करके मायल कर दिया।

गुरू जी ने आगे बढ़कर मंत्री को छाती से लगा लिया और कहा–वाहिगुरू यह बिभौर है या भंभौर (हिला देने वाला) प्रेम के चक्र चल रहे हैं। राव कहां है?

मंत्री–मृत मृग के पास।

गुरू जी–चलो चलें।

मंत्री–राव मेरा स्वामी है, पर आप ज्योति स्वरूप है। आप कष्ट न करें, मैं उन्हें बुला लाता हूं।

गुरू जी–मंत्री! प्रेम नियम रहित होता है, प्रेम का नियम प्रेम है। गहरी आग, पर्वतों को चीर देती है। मंत्री जी–मां-बाप बच्चों को खुद ही पालते हैं, वे पालने से ही पलते हैं।

मंत्री—सच! दाता जी सच है। स्याना अपनी फिक्र खुद करने लगता है, बालक की चिंता तो मां-बाप को ही होती है।

गुरू जी—चेतना यदि बालक हो जाए फिर परमात्मा ही पालता है 'उह बालक वागी पालीऐ। उह बालक वागी पालीऐ।'

मंत्री—आपका विरद पतित पावन है। आप अवध से चलकर भीलनी के पास गये थे, वह खुद नहीं आयी थी। आप ही दुर्योधन का घर छोड़कर बिदर के घर रात रहने के लिए और भोजन करने के लिए गये थे। आपने ही गुरू नानक के रूप में एक भीलनी नहीं, एक बिदर नहीं, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, घर-घर, दर-दर जाकर कई भीलनियों और कई बिदर पार लगाये। आपका बिरद माली की तरह है, अपनों को पालना। ब्रह्म बिरद है आपका। आप रचने वाले, पालने वाले और पार लगाने वाले हैं। चींटी से राजा तक सभी की एक जैसी आपको चिंता है। धन्य! धन्य!

गुरू जी—जैसा आपके चित्त को रुचिकर हो।...हमने खोये हुओं को ढूढ़ना है अपनों को इकट्ठा करना है, स्वामी के दर पहुंचाना है। 'लोक सुखी परलोक सुहेले।'

इतना कह कर चल पड़े।

मंत्री कुछ धीरे चला, पर गुरू जी जल्दी में थे। रुक कर, मंत्री की तरफ देखकर मुस्कराये—'राव जी किस दिशा में हैं?' मंत्री जी ने उसी दिशा में उँगली कर दी।

दिलों के मरहम अकेले ही चल पड़े। मंत्री साथ जाने में झिझक रहा था। वह चाहता था अकेले ही जाएँ। राव ने किसी और के सामने खुलना नहीं है ये करामाती है, कहीं उसकी चुप को अदब की कमी समझकर नाराज न हो जायें। मंत्री खुद द्रवित होकर भी उनके आलौकिक रूप से अनभिज्ञ था, इसीलिए भ्रम में था। मधुर भाषी, सज्जन स्वामी भी कहीं नाराज हो सकते हैं। महाराज अकेले गये। मृत काले मृग के पास ही राव नयन बन्द किये जंगल में अकेले बैठा था। पास में कोई नौकर कोई साथी शिकारी भी नहीं था। राव ने सभी को भेज दिया था। वे अकेले बैठे थे। आँखें बन्द थीं, पर दाता का रूप, जिसे वणजारे का भेष धर वह आनन्दपुर में एक बार दर्शन कर आया था, अन्तर में बसा था। उसकी लुकाव की चाह इतनी गहरी थी कि तब भी बिना सामने आये चुपचाप दर्शन किये और उनकी मूर्ति को हृदय में बसा कर चला आया था। उस रूप को विस्मृत नहीं किया, मूर्ति दिल से उतरी नहीं, प्रेम की तार टूटनी नहीं, याद दिल से हटी नहीं।

हीरे मृग की मृत्यु पर उसका हृदय द्रवित हो गया था, कोमल भावों के कारण राव स्व से बाहर हो गया था, पर फिर अन्दर बन्द हो गया और अपने

छिपे प्रेम के संगीत में खो गया। मंत्री के जाते ही उसने सभी साथियों को नगर भेज दिया था और खुद मग्न बैठ गया था। वह ऐसा समाधिस्थ था कि गुरू जी के आने की चेतना भी नहीं हुई। महाराज! आत्म चेतना में लीन उसके चेहरे को देखकर गद्‌गद हो रहे थे। वे चाहते थे जिस तरह गाय दौड़कर अपने बछड़े को गले से लगा लेती है, वैसे ही गले से लगा लें। द्रवित हुए, प्यार में घुल रहे हैं, पर वह मोहनि मूर्ति अपने ध्यान में मग्न, अचल और बेखबर बैठी है। जिसके प्यार में पिरोया हुआ राव बैठा है, जिसके रस में वह लीन है, इस समय वह उनसे प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर पा रहा हां, वह अपने आन्तरिक लोक में उनके दर्शन कर रहा है, केवल बाय वातावरण से उसकी चेतना हट गयी है।

सतिगुरू जी उसके प्रेम, उसके इस रूप और अनुपम रूप को देखकर प्रसन्न हो रहे थे और उसके प्रेम के आकर्षण में खिचतें चले जा रहे थे। कुछ समय यह रंग देखकर आप खड़े-खड़े ध्यान के लोक में चले गये। जिस रूप में रियासत का राजा मग्न था उसी रूप में जाकर आज्ञा दी–'नयन खोलो।'

राव ने नयन खोले। जो दर्शन वह बन्द नयनों से कर रहा था अब उसे प्रत्यक्ष देख रहा था। वह चरणों से लिपट गया। ठोक-ठोक कर बन्द रखे हुए नयनों के फव्वारे फूट पड़े, बहने लगे और चरणों को धोने लगे। उसे नया स्वाद आ रहा था। उसने चरणों को और कस लिया। अब दाता जी ने जो नयन मूंद कर किसी आलौकिक स्वाद में खड़े थे नयन खोले: बैठ गये, उसका सिर उठाकर गोद में रखा, प्यार किया। इतना प्यार किया जितना कवि अतिश्योक्ति अलंकार में वर्णन कर सकते हैं। वैसे कलगीधर चुप थे, सिर पर हाथ फेर रहे थे, माथे पर प्रेम पूर्ण कर कमल लगा रहे थे, पर मुंह से कुछ भी नहीं कह रहे थे। उधर राव का रोम-रोम पुलकित हो रहा था–'वाहिगुरू' की ध्वनि निकल रही थी–दिल घुल मिल रहा था–

'नाम महा रसु पीउ'

नाम का महारस पियो। प्रेम वाले, बाणी से उज्जवल हो चुके मन से, सभी मैलों से रहित मन से। इस समय पिघल रहे मन से नाम का प्रवेश, नाम का रस प्रवेश हो गया, ना जीभ बोली ना कानों ने सुना। 'जैसी भूख तैसी का पूरकु' दाता ने राव को निहाल कर दिया। निहाल हुए राव ने अब नयनों को उठाया, दर्शन किया हर्षित हुआ, झूमने लगा–वाहिगुरू।

राव की चुप ने अब मुहर तोड़ दी–एक नये अन्दाज में। राव का स्त्री से प्रेम सिर्फ स्त्री-मात्र नहीं था, उसका प्रेम वाहिगुरू के प्रकाश में था। राव को मनोरथ पूर्ण हो गया। अब वह चाहता है कि रानी की इच्छा भी पूर्ण हो–वह भी दर्शन करे। उसने प्यार से कहा–महाराज जी! घर चलो, यदि यहीं से मुड़ गये तो मेरी स्त्री दर्शनों से वंचित रह जायेगी। धीरे से हाथ जोड़कर राजा ने कहा–कृपा¨पर फिर रुक गया।

विरद पाल बोले–सत्य बचन। चलो आज रात बिभोर ही ठहरेंगे। उठो चलें। राव उठा, दोनों चल पड़े। शिकार वही पड़ा रह गया। मंत्री और दास एक तरफ रह गये, सिख और सेवक दूसरी तरफ। जहाँ थे वहीं प्रतीक्षा में बैठे रह गये। (बाद में सभी सामान राजा के सेवकों तथा सिखों ने सम्भाला।) प्रेम की डोर किसी और तरफ मुड़ गयी थी। दायीं तरफ साहिब जी थे, बायीं तरफ राव। राव का हाथ महाराज जी के हाथ में था। वे पैदल चलते हुए बिभोर पहुंच गये। प्रकृति भी चतुर है, मानो जानती है कि राव-लुकाव-छिपाव चाहता है। वन में कोई मृग नहीं मिला, आकाश में कोई पक्षी नहीं उड़ा। ऊँचे आसमान में बादल छा गये जिससे कहीं सूर्य या चांद की नजर न लगे–रास्ते में कोई राहगीर भी नहीं मिला। नगर में पहुँचे तो रात हो गयी थी। किसी ने ध्यान नहीं दिया–साहिब और राव निकल गये। महल में प्रवेश करते ही राव ने पहरेदार को हुकुम किया कि जंगल से वजीर और सिखों को बुला ले। अब दोनों अन्दर चले गये और चलते-चलते रानी के कमरे के पास पहुँच गये। वहां कल वाला दृश्य नज़र आया। रानी अरदास कर रही थी। वैसी ही अरदास जैसी उसने कल की थी। दोनों साहिब और राव बाहर ही चुपचाप खड़े हो गये। पर कुछ क्षण बाद महाराज जी ने एक कदम अन्दर रखा और अचल खड़े हो गये। निर्मल आत्म रंग और प्रेम में विह्वल दुलारी की अरदास सतिगुरू जी ने सुनी, आप के दैविक नयन भी भर आये। हाय! प्रेम क्या जादू है? हे वाहिगुरू! ऐसे सच्चे प्रेम रस के लिए ही तो जगत में आपका प्रकाश है।

जब अरदास हो गयी और रानी ने नयन खोले तो क्या देखती है कि आँखों के आगे ध्यान मूर्ति प्रत्यक्ष खड़ी है। उसे लगा कि उसकी ध्यान मूर्ति का कहीं यह प्रतिबिंब तो नहीं। नयन बन्द करके फिर खोले। राजा का स्वभाव तो दिखावे का नहीं, वह आगे भी नहीं बढ़ रहा और न ही कहता है–आ गये हैं। चुप, सम्मान के साथ दहलीज में प्यार में मग्न, नाम रस में लीन, मूर्ति की तरह खड़ा है। प्रियवर आश्चर्य चकित है, नयनों को खोलती और बन्द करती है। दाता जी अव्यक्त पीड़ा के ज्ञाता है। खुद ही बोले–बेटा जी! हम आ गये। तेरे पति को वाहिगुरू ने अपने प्यार मंडल में बसा लिया है। आओ, तुम भी वाहिगुरू के देश चलो।

प्रियवर–आप हो? (दौड़कर) आप हो? हैं! सचमुच में आप हो? नहीं मेरे नयन ध्यान को देखते हैं और मेरे कान ध्यान मूर्ति की वाणी सुनते हैं।

गुरू जी–आओ बेटा! हम आ गये हैं।

रानी ऊपर नीचे देखती है, दायें-बायें देखती है–अपनी हथेलियों का आँखों के आगे करके देखती है, फिर बढ़ती है, झिझकती है, इसी समय दहलीज के पास खड़े अपने पति को देख लेती है। 'हां ठीक, तो जाग्रत अवस्था है, वे आ

गये हैं।' अब दौड़ कर चरणों में गिर पड़ी, फिर घुटनों के बल उठी और बड़ी कोमलता से बोली–'दाता जी! पति जी से मिले हो।'

गुरू जी–मिले हैं।

प्रियवर–मैं तो साहिब जी जल्दबाजी करती हूँ। एक बार फिर मिलो, मेरे बेजबान पति जी को गले से लगा लो, मैं देखूँ ओर मेरे नयनों को शीतलता मिले। फिर नयनों से आपके चरणों का स्पर्श करूं। दाता! कृपा करो। मेरे प्रिय को गले से लगा लो। मैं देखूँ, मेरे नयनों को शीतलता मिले।

इस प्रेम और स्व को न्यौछावर करने वाले प्रेम को देखकर साहिब जी के नयन भर आये। राव को गले से लगा लिया। रानी ने देखा, नयन शीतल हुए, अब विह्वल होकर चरणों में गिर पड़ी और चरणों से चिपक कर बेसुध हो गयी।

हाय! इन्सान के अन्तर की भूख अपने से उच्च के लिए है, हां, तेरे लिए है हे अदृश्य! तेरे लिए है। इन्सान के अन्दर तेरे लिए यह प्रीति कैसे छिपकर रहती है इसी छिपी प्रीति के कारण ही तो मनुष्य तेरे दर्शनों के लिए तड़पता है। वह हमारे नयनों में प्रकाश डाले जिससे हमारी भौतिक पदार्थ देखने वाली आंखें उसके दर्शन कर सकें और अन्तर की इच्छाएँ पूरी हो सकें।

जी हां, जरा दर्शन करो, रब का नूर कैसे खड़ा है और प्यार का इच्छुक राव कैसे छाती से लगा आलौकिक प्यार वाली कलाई के आलिंगन में है और किस तरह आत्म रस में लीन प्रियवर चरणों को आलिंगन में लिये पड़ी हुई है।

महाराज का दायां हाथ झुका। रानी को बांह से पकड़ कर उठाया, उसे खड़ा किया, सिर पर प्यार से हाथ फेरा और कहा–बेटा कहो–वाहिगुरू।

वाहिगुरू कौन कहे? जीभ ने कहा, पर वह अकेली जीभ पर समाता नहीं है उसका वेग असहनीय है। सभी रोम जीभ बन गये, पर वह अभी भी नहीं समाता अन्दर हृदय में चला गया, अन्दर से और अन्दर उससे भी अन्दर है! रानी को अब होश आयी और उसने कहा–'वाहिगुरू।'

कण-कण में वाहिगुरू दिखायी देने लगा। आत्म लहर आयी, रस छा गया। रस-आनन्द अन्दर बाहर छा गया। रस मग्न हो गये।

जोड़ा वाहिगुरू प्रेम से रंग गया, जो खुद से प्यार करता, अनन्त की इच्छा रखता था, अनन्त के प्रकाश की ओर चल पड़ा। रंग गया परमात्मा के रंग में, रस-रंग वाला पवित्र जोड़ा...।

अब महाराज जी को चौकी पर बिठाया, चरण धोये, पोंछे, पंच-स्नान करवाया, इतने में भोजन तैयार होकर आ गया–

भखय भोज लेहज अर चोसा।
कर पिआर वड थार परोसा।
चौंकी चारु बिसाल डसाइ।
तां पर सुजनी बिसद बिछाइ।
तां पर बिनती भाखि बिठाए।
दूसर चौंकी अग्र टिकाए।
तिस पर थार परसि धरयो है।
हाथ जोरि ढिग आप खरयो है॥१०॥ (सूरज प्रकाश)

महाराज जी ने भोजन किया, रात को सुन्दर स्थान में आराम किया। डेरा भी आ गया। सभी सिखों को अच्छे स्थान पर डेरा मिल गया था। रसद, प्रसाद, चारपाइयां, बिस्तरे आदि सभी आवश्यक वस्तुएँ पहुँच गयी थीं। दूसरे दिन एकान्त में राव जी ने विनय की–'यदि कष्ट न हो तो कृपा करके अब यहीं ठहरो।' दाता जी सुनकर मुसकरा पड़े और बोले–'सत्य वचन।'

अब बिसाली से सभी सिख, परिवार, संगत, डेरा बिभोर आ गया। राव के अनोखे प्रेम और रानी के अद्वितीय प्रेम भाव के कारण गुरू जी इतनी देर वहां रहे कि दूर-दूर से संगत वहाँ पहुँचने लगी। मानो बिभोर ही उनका निवास स्थान हो गया हो।

आनन्दपुर का आनन्द यहां था, सुन्दर छाया, पुष्प-उपवन और नदी का अनुपम दर्शन, ऊँचे-नीचे स्थानों के दृश्य सभी थे। जगत को पार लगाते, गुरू जी लम्बे समय तक वहां रहे–

इस प्रकार प्रभ सैर सराहा।
बसे तहाँ आनन्द पाहा॥३५॥...
ऊंच नीच थल बिखम कि सम हैं।
बहु रमणीक सुगम दुरगम हैं।
चलत बेग ते निरमल वा है।
बिना धूलि, बन बहु अवगाहै॥३७॥
कुसमति बन की प्रभा बिलोकैं।
संघने अधिक सुगंधी रोकैं।
जहि लग इछहिं बिचरति आवैं।
इस प्रकार निस दयोस बितावैं॥३८॥...
सुनि सुनि करि सिख संगत सारी।
आवहि दरशन इच्छा धारी॥३९॥

पूरब दक्खण पसचम केरे।
लै लै कर उपहार धनेरे।
परे बहीर चले बह आवै।
गुरबानी पठि गुरू धिआवै।।४०।।
इस प्रकार सतिगुरू बिसरामे।
अचल सथान शैल अभिरामे। (गु॰ प्र॰ सूरज)

कुछ समय वहां रहने के उपरान्त सतिगुरू जी फिर आनन्दपुर आ गये।

❑ ❑

५६ बख्शिंद महरम

हंस जी का प्रसंग

पूर्व दिशा से सूर्य उदित हुआ। आसमान बिल्कुल साफ है, हवा रुकी हुई है। कभी-कभी झोंका आता है। केलों का एक बाग है, जिनके पत्ते पीले पड़ कर सूख गये हैं। इन पर सारी रात ओस पड़ती रही है, पाला नजर आ रहा है। अब सूरज की गर्मी से पिघल रहा है। ऊपर के पत्तों से नीचे के पत्तों पर, और नीचे से उनसे नीचों पर और फिर धरती पर टप-टप बूँदें गिर रही हैं। हल्की आवाज़ पैदा हो रही है, ऐसे लग रहा है जैसे बूंदाबांदी हो रही हो।

इस बाग के किनारे पर चबूतरा है, जिस पर पश्मीना का शाल ओढ़े एक मोहिनी मूर्ति पूर्व की ओर पीठ किये बैठी है। आँखें बन्द हैं, शरीर अचल है, मन टिका हुआ है, चेहरे पर लालिमा, कोमलता, मधुरता और अन्तर-मुख लीनता का प्रभाव दिख रहा है। ऐसे लग रहा है जैसे किसी अनन्त प्रेम में मग्न हो।

अचानक आपके प्रेम अलसाये नयन खुलने लगे थे, पर आधा खुलने पर फिर बन्द हो गये। नयन खुलते तो सूरज की ताजा धरती की सीध में आ रही किरणें, सुन्दर नयनों पर पड़ कर एक सरूर देतीं और नयनों को बन्द कर देतीं। उस सरूर को पीने के लिए नयन फिर खुलते थे और उसे अन्दर समाने के लिए फिर बन्द हो जाते थे।

कुछ पल इसी तरह नयन खुलते और बन्द होते रहे, फिर पूरी तरह खुल गये। उसने नजर भरकर देखा। फिर गौर से देखा—धरती आकाश चारों तरफ नजर दौड़ाई और बोले—हमारे सामने तो पश्चिम की दिशा है फिर सूर्य इधर से कैसे उदित हो रहा है? व्याकुलता के पीठ की तरफ देखा, सूर्य वास्तव में काफी ऊंचा चढ़ आया था। फिर खड़े हो गये। दोनों सूर्यों की तरफ देखा फिर हँसकर कहा—'वाह! वाह! कमाल!

आगे बढ़े और पश्चिम के सूर्य के पास पहुँच गये तो क्या देखते हैं कपड़े पर आदमकद से भी बड़ा सूर्य का चित्र बना हुआ है। उस चित्र को इस तरह रखा गया है कि पूर्व से चढ़ रहे सूर्य की रोशनी उस पर पड़ती है और वह चमकता है। उसकी रोशनी चारों ओर फैल रही है। रंगों में ऐसी चमक है कि चढ़ते सूर्य की किरणों उस पर पड़ कर असली सूर्य की तरह फैल रही हैं। सूर्य के चित्र को इतनी कुशलता से बनाया गया है कि आसमान का रंग आसमान से तथा पृथ्वी का पृथ्वी

से मिल गया है। कदरदान इस प्रवीणता को देख-देख कर वाह! वाह! कह रहे हैं तभी आप की नजर जमीन पर पड़े एक कागज पर गयी लिखा था–

साधन को सिध शरणागत समर सिंधु सुधा धर सुंदर सरस पद पायो है।
कुल को कलस कवि कामना को काम तरु, कोप कीए काल कबीअनि गुन गायो है।
देवनि मैं दानव मुनिन हूं मैं जां को जस जाहर जहान चलि आयो है।
तेग साचो देग साचो सूरमा शरण साचो, साचो पातशाह गुरू गोविन्द कहायो है।[1]

उस कागज को पढ़ा और फिर मुस्कराये। फिर नजर उठा कर दूर तक देखा कुछ सिंह दूर हुकुम की प्रतीक्षा में खड़े थे। आपने इशारा किया तो सभी दौड़े चले आये। आपने पूछा–इसे कौन रख गया है? सभी ने कहा–'सच्चे पातशाह! पता नहीं कौन किस समय रख गया।' आप फिर मुस्कराये और चल पड़े। एक सिख इसी आदेश में खड़ा था कि इस मूर्ति को उठाना है कि नहीं। आपने पीछे देखते हुए कहा–चले आओ। पड़ी रहने दो। मूर्ति प्यारी है, कविता न्यारी है, पर हाथ क्षमाहीन है।

: २ :

जी हाँ! आप हैं साहिब श्री गोबिंद सिंह जी। जंगों, युद्धों, राजसी रंगों में फँसे मायावी व्यक्ति लगते हैं, पर देखा कितनी ठंड में अमृत वेला से आसन जमाये बैठे थे? कुछ दिनों से दीवान से उठकर यहां आ बैठते हैं। कभी भोग पड़ने से पहले और कभी भोग पड़ने के समय पहुँचते हैं। आज रंग में लीन बैठे ही रह गये। इतने कामों में व्यस्त रहने पर भी, वही कलगियों वाले, वही पूर्ण, वही गुरसिख, वहां रब के रसूल वाले, वही पूर्ण अवतार, वही गुरू हैं–

रविदास धिआए प्रभ अनूप॥
गुर नानक देव गोविंद रूप॥ (बसन्त महला ५)
वह प्रगटिउ पुरख भगवंत रूप गुर गोविंद सूरा॥
(वाः भाः गु॰ द्वितीय)

जब तीव्र प्रकाश से दीप्त आप सिखों के साथ चले गये तो केलों के पौधों के बीच से एक लम्बी, दुबली पतली सूरत निकली। मूर्ति के पास आकर खड़ी हो गयी और दूर चले गये पातशाह की तरफ देखती रही। जब घोड़ों की धूलि भी दृष्टि से दूर हो गयी तो एक आह भरी: तेरे दरबार आया था कि पनाह मिलेगी। आपको शरणागत, शरण शूर, शरणपाल सुना था। कला प्रवीण आपको कला का कदरदान कहते हैं। मैं तो आशा से आया था, परन्तु निराशा मिली। ओह! कर्म गति!

---
१. देखिये गुरू गोविंद सिंह जी का विद्या दरबार।

हैं। कदर तो पाई थी, कहा था, वाह! वाह! कमाल–

‘गुणी की वाह वाह जीवन दात्री
गुनी की चुप कलेजा काट जाती
बेसमझ सलाहें वह तो डाइन बावे की
मूर्ख की चुप, केवल सुख दात्री।’

गुणज्ञ ने कदर तो पाई, पर मुझे तो शरण की आवश्यकता थी, शरण नहीं दी, क्यों?

‘मूर्ति प्यारी है, कविता न्यारी है, पर हाथ क्षमाहीन है।’ हाथ क्षमाहीन है! पर दाता को कौन समझाये कि मैं यति हूं, सती हूँ, धर्म की मूर्ति हूं, पाप से रहित हूं, लोभ-मोह का विजयी हूं, चित्रकार हूं, छोटा-सा कवि भी हूँ–कौन जाकर बताए? लोग कहते हैं गुरू अन्तर्यामी हैं, फिर जानता क्यों नहीं। ‘हाथ क्षमाहीन है’ कुछ जान कर ही कहा होगा। यदि मैं क्षमाहीन नहीं तो उन्होंने कैसे कहा? मूर्ति से उनके हाथों की सुगन्ध ले लूँ। मैं क्षमाहीन कैसे हूँ? हो सकता है अपने इस अवगुण का मुझे पता न हो।

अब क्या करूं? जब सेनापति ने मेरी बात चलाकर दर्शन देने के लिए कहा था तब कुछ क्रोध में कहा था–मजलूम नहीं, जालिम है और आज कहा है–हाथ क्षमाहीन हैं।

: ३ :

सुन्दर सुहावने बाग में एक चबूतरा है जिसका फर्श पत्थर शिला से बना है ऊपर ईरानी कालीन बिछे हैं। सभा लगी हुई है। पचास-साठ कवि और विद्वान लोग बैठे हुए हैं। आपस में बातचीत हो रही है–

मरकर तो किसी ने वापस आकर बताया नहीं और जीवित वहाँ जा नहीं सकता–फिर कैसे पता चले कि नरक-स्वर्ग है। नन्दलाल ने तो कर्मों के अनुसार सुख-दुख, यश-अपयश, यही ही स्वर्ग-नरक बताये हैं। उदय राव ने कहा है जैसा बीजोगे, वैसा ही फल खाओगे। पण्डित कवीश्वर सेनापति ने कहा है–गुरू के दर्शन सेवन, स्मरण से ही व्यक्ति भवसागर को पार करता है। रावल ने कहा–जीव परमात्मा का अंश है, अपने अंश को कोई दण्ड नहीं देता। अल्लू ने कहा–हमारा शरीर पाँच तत्वों का पुतला है। परमात्मा की तरह ही मनुष्य है। अलग से चेतन-जीव कोई नहीं है। मधु ने माना कि चेतन मरता-जीता नहीं, आता-जाता नहीं, वह अजर, अखण्ड है, फिर लेखा कौन और किस से ले। चन्द ने कहा–चाँद चकोर बालक माता वाला प्रेम परमात्मा से रखो तभी कल्याण सम्भव है। बल्लू बोला–द्विविधा दूर होने से ही सुख मिलता है। लख्खे ने कहा–जीव के सिर पर पाप-पुण्य का लाखों मनों का वजन है, इन्हें त्याग कर ही जीव ऊंचा उठता है और

उसे सुख तथा आनन्द मिलता है। ईशर दास ने कहा—जगत तीन काल का नहीं है, आस्ति, भाँति, प्रेम रूप करके पारब्रह्म ही त्रिकाल है। जीव की रचना की तरह जगत एक सपना है। धर्म सिंह ने बताया कि अपना धर्म ही कल्याणकारी और सुख देने वाला है। ध्यान सिंह ने त्याग और वैराग्य को सभी दुखों का कारण बताया। माला सिंह ने सतिगुरू की माला जपने को ही परम तत्व स्वीकारा। आशा सिंह ने अनहद शब्द सुनने तक के अभ्यास को ही शान्तिदायक माना। (खालसा तवारीख)

ये बातें भाव से हो रही थीं कि तभी एक दूत आया। वह पत्र लाया था। वह पत्र नन्द लाल जी ने ले लिया। तभी गुरू जी के आगमन की सूचना मिली। सभी खड़े हो गये। सभा के मध्य स्वर्णिम पलंग बिछा हुआ था, ऊपर मखमली बिछौना था महाराज आकर उस पर बिराज गये—

बसत्र शसत्र के पहिरन करिकै।
सुन्दर अंग बिभूखन धरिकै।
सभा बिखै कलगीधर आए।
चामीकर प्रयंक जिस थाँए।

विराजते ही सतिगुरू ने कहा—

सिम्रित शासत्र पुंन पाप बीचारदे ततै सार न जाणी॥
ततै सार न जाणी गुरू बाझहु ततै सार न जाणी॥
तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी॥ (अनंद)

कुछ क्षण चुप रह कर गुरू जी ने कहा—

भाई! शास्त्र केवल कर्म, उपासना, ज्ञान, जीव प्रकृति, जीव और ईश्वर के स्वरूप का, सत्, रज्, तम्, गुणी माया का और तीन प्रकार के पुरुषों का निर्णय करता है, चौथे पद में रहने वाले पुरुष की अन्तर गति का वर्णन कौन करे?

जो केवल अपने और अपने सम्बन्धियों के खाने-पीने-पहनने के प्रयत्नों में ही शरीर को लगा देते हैं—वे पामर कहलाते हैं। जो इस जगत की विषय-वासनाओं को तुच्छ समझकर, परलोक के दिव्य भोगों को सुनकर, उन्हें प्राप्त करने के लिए पुण्य, दान, तीर्थ, व्रत, जप-तप करते हैं वे व्यापारी कहलाते हैं। जो अपने स्वरूप को समझने के लिए—मैं कौन हूँ, संसार क्या है? आदि प्रश्नों पर विचार करते हुए—आत्मा-परमात्मा के विचार में लगे रहते हैं, उन्हें जिज्ञासु कहते हैं। जो पुरुष अकाल के रंग में रंगे रहते हैं उन्हें मुक्त कहते हैं। (खालसा तवारीख)

अतः आवहु सिख सतिगुरू के पिआरिहो गावहु सची बाणी॥
बाणी तां गावहु गुरू केरी बाणीआं सिरि बाणी॥
जिन कउ नदरि करमु होवै हिरदै तिना समाणी॥

पीवहु अंम्रित सदा रहु हरि रंगि जपिहु सारिंग पाणी।।
कहै नानकु सदा गावहु एह सची बाणी।।२३।। (अनंद)

यह 'नदर करम' और गुरवाणी का प्रताप है। यह अमृत बाणी जिन्हें मिली और जिन्होंने गाई वे पूर्ण हो गये। उनका मन लग गया, वे फिर माया-भ्रम में नहीं पड़ते–

गुर किरपा ते से जन जागे जिना हरि मनि वसिआ बोलहि अंम्रित बाणी॥
कहै नानकु सो ततु पाए जिसनो अनदिनु हरि लिव लागै जागत रैणि विहाणी॥
(अनंद)

नौ-आठ पहर मन का लगाव। हर क्षण परमात्मा की लगन। उस मालिक की तरफ मन का रुझान। लौ लग जाए तो यहाँ भी सुख और परलोक में भी सुख। परमात्मा के रंग में रंगे रहो, उसी के रंग में रंगे रहो।

सतिगुरू बिना होर कची है बाणी।।
बाणी ता कची सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी।।
कहदे कचे सुणदे कचे कची आखि बखाणी।।
हरि-हरि नित करहि रसना कहिआ कछू न जाणी।।
चितु जिनका हिरि लइआ माइआ बोलनि पए रवाणी।।
कहै नानकु सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी।।२४।। (अनंद)

माया में रहते हुए, लगातार एक रस 'अनन्त' वाहिगुरू में मन लगाये रखो–

कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी
तिनी विचे माइआ पाइआ। (अनंद)

सभी ने शीश झुकाया, सभी के चेहरे खिल गये। पक्की लौ वाले उत्साहित हुए, कच्ची वाले आगे बढ़े, जिज्ञासु और तेज हो गये, जो परमात्मा के नाम में नहीं लगे, लग गये। अब भाई नन्द लाल ने आगे बढ़कर पत्र दिया।

जिसे पढ़कर श्री कलगीधर जी ने नयन बन्द कर लिए, फिर खोलकर बोले–निहाल सिख निहाल।

अब कवि सेनापति जी उठकर बोले–श्री हजूर सच्चे पातशाह! विनय है...

महाराज बोले–कवि जी! जिक्र मत करो। खुश्क कर्मों का बंजर पसन्द नहीं, नेकी, पवित्रता, धर्म, धर्म के व्रत पालने बहुत सुन्दर हैं, प्रिय हैं, पर यह मनुष्य रूपी चोला है, हर कोई भूल करता है, कौन है जो गलती नहीं करता, गलती पर निर्दयी हो जाना, परमेश्वर के प्यारे मंडल में कोई स्थान नहीं रखता।

तभी पास बैठे अल्लू ने कहा–'सच्चे पातशाह! कल एक सूफी फकीर बता रहा था कि किसी मत में पापों की माफी है ही नहीं, जैसा कोई करे वैसा ही उसके साथ

करो, तो किसी मत में लिखा है दोषी को एक बार माफ करो, तो किसी में सात बार करो। वह कहता था आपका गुरू कहता है–सत्तर बार माफ करो।'

सतिगुरू बोले–यदि आप बाबा नानक के हैं तो जो जितनी बार गलती करे और हृदय से पश्चाताप करे उसे उतनी बार माफ करो। गिनने की जरूरत नहीं। हम भूल करने वाले हैं, हमारा अपराधी भी गलती का पुतला है। यदि आप अपने अपराधों को गिनें तो आप चाहेंगे–हमें माफ करो। जब आप दूसरे के अपराधों को गिनते हैं तो क्या उसका मन माफी नहीं चाहता? इसलिए हमें भी क्षमा करना चाहिए। अपने दोषों की तरफ ध्यान देते हुए औरों के प्रति मधुर और कोमल रहना चाहिए, दूसरों के अवगुण देखते हुए कठोर चित्त और गर्वीला नहीं बनाना चाहिए। पापी को दण्डित करना संसार के अन्य प्राणियों के लिए सुखदायी है, पर क्षमा उससे भी श्रेष्ठ और महान है। हाँ धर्म का सूत्र और न्याय कहता है– जो जैसा करे, वैसा भरे। वैसे बदी सदा उलटती है और बदी करने वाले से ही चिपक जाती है। हाँ, दोषी को सजा भी दी जाती है। पर क्षमा सजा की निर्दयता के अंग को कोमल करती है।

अल्लू–पर हुजूर सच्चे पातशाह! यदि दंड न दिया जाए तो संसार का प्रबन्ध नहीं रह सकता।

गुरू जी–राजा अपने नियमों का पालन करता है और करेगा। राजा को निष्पक्ष होकर दंड देना चाहिए। राजा का दण्ड निष्पक्ष तराजू पर तुला हुआ होता है, पर वहाँ भी कभी क्षमा की जरूरत पड़ जाती है।

वाहिगुरू बख्शिंद है और उसके प्रिय बख्शिंद हैं। बख्शिश इलाही उमंग है, बख्शिश परमात्मा के प्रिय का उत्साह है।

सेनापति–फिर महाराज जी।...

गुरू जी–तुम जो बात करना चाहते हो उसमें परम कठोरता है, हम कठोर नियमों के नहीं बल्कि द्रवित पापियों के रक्षक हैं। नीचों में भी जो नीच है गुरू नानक उनके संगी साथी है, महा धर्मात्मा, व्रतधारी, नेकी के पुतले, पुण्यात्मा बने बैठे हैं, वे लोग हमसे दूर हैं। वे स्वयं को सुख में अनुभव करते हैं फिर हमारी उन्हें क्या आवश्यकता? हम तो आत्म रोगियों के वैद्य हैं, दुखियों के रक्षक हैं। तुर्क अत्याचार और पाप करते हैं, उनका भी इलाज कर रहे हैं। हमारी तलवार पिता का थप्पड़ और माँ की डाँट है, हमारी बाणी माता का दूध है, हमारी प्रेरणा पिता की शाबासी है।

सेनापति–फिर है कृपाल एक नजर।

सतिगुरू जी–चिता जल रही है। निरपराध जीते जल रहे हैं, जल रहे हैं पर मर नहीं रहे। हाँ सीख में पिरोये हुए कोयलों पर पड़े कबाब हो रहे हैं। खुद को कबाब

होता हुआ देख भी रहे हैं। ऐसी निर्दयता में निर्दयी का यार नहीं बनना। चिता बुझाकर कोई आये, पश्चाताप के आँसू बहाये, क्षमा मांगे, उसके बहते हुए जख्मों पर मैं मलहम रखूँगा, उसके जख्मों को सी दूँगा। अत्याचारों से थके हुए हाथों को आराम दूँगा, उसके रोते हुये नयनों को पोंछ दूँगा, हाँ, हाँ, मेरा परमात्मा बख्शिंद (क्षमाशील) है। हाँ, दया सिंह वह बीबी कहाँ है जो रात को रो रही थी।

गुरू जी ने हुकुम देते हुए कहा–काकी (बेटी) को ले आओ।

उसी क्षण सिख गये और बीबी को ले आये। सतिगुरू ने कहा–'बेटी! क्या घटित हुआ? बीबी नम्रता से बोली–'सच्चे पातशाह! तुर्क जबरदस्ती बांध कर ले गये। वहाँ से बड़ी मुश्किल से निकली हूँ। घर वालों ने निकाल दिया। संसार में अब कोई आश्रय नहीं।' तभी क्षमाशील होंठों से आवाज़ निकली–'तेरा आश्रय गुरू नानक है।' उसी समय अमृत तैयार करवाया गया। हुकुम हुआ–

जो सरणि आवै तिसु कंठि लावै
इहु बिरदु सुआमी संदा (बिहा: छंद महला ५)

लड़की के पति को, परिवार को, सर्व सिख समुदाय को हुकुम हुआ–जो भूला भटका, पापी, पुण्यत्मा, शरण आये उसे अंगीकार करो।

इतने में एक काकी और आ गयी, उसने बताया–पातशाह! मेरा पति ऐबी (अवगुण से भरा हुआ) है, और मैं सिख कन्या हूँ। मैंने अपने पति के सभी हुकुम माने, पर सिख धर्म के विरुद्ध (जैसे कि बाणी नहीं पढ़नी) नहीं माना। मैं उसे सिखी के लिए प्रेरित करती रही। अब उन्हें अपनी आत्म-मौत दिखायी दे रही है। वे नाम स्मरण करते हैं और गुरू की शरण में है। मैं उनकी सेवा करती हूँ। पर गुरू आज्ञा विरुद्ध जिन बातों के लिए मैंने उनका विरोध किया, उनके आगे नहीं झुकी और अपने हठ पर दृढ़ रही। मेरी उस भूल को क्षमा करें। इस पर हुकुम हुआ–तुमने अपने पति को सुमार्ग प्रदान कर कृतार्थ किया है। तुम उसे परमात्मा की राह लगा कर भाग्यशालिनी बनी हो। तुमने उसका भला चाहा है, तुम पतिव्रता हो। उसके प्रति ने क्षमा याचना करते हुए कहा–मैंने इसे भजन करने से, पाठ करने से, दान देने से रोका, मैं अपराधी हूँ। सतिगुरू ने उसे भी क्षमा किया और अमृत पान कराकर सिंह सजा लिया।

(तवारीख खालसा ५५७)

: ४ :

अलूचों के पेड़ों की एक झाड़ी है, पर सभी पत्रहीन हैं। न फूल, न फल और न पत्ते। पत्रहीन शाखाओं की उदासी छाई हुई है। इन पौधों के बीच धूप में बैठे हुए कवि सेनापति बातचीत कर रहे हैं–हंस जी! मैं भी दर्शनों के लिए

बहुत भटका हूं। देश-देशान्तर घूमा हूँ, साधु, तपी, हठी देखे हैं, पर मेरी दया कवि भिखे जैसे थी-

रहिउ संत हउ टोलि साध बहुतेरे डिठे॥
सनिआसी तपसीअह मुखहु ए पंडित मिठे॥
बरसु एक हउ फिरिउ किने नहु परचउ लायउ।
कहतिअह कहती सुणी रहत को खुशी न आयउ।
हरि नामु छोडि दूजे लगे तिन के गुण हउ किया कहउ।
गुर दयि मिलायउ भिखिआ जिव तू रखहि तिव रहउ॥२॥ (सवैये मः ३ के)

यहां आकर मेरी द्विविधा दूर हुई और शान्ति मिली।

हंस-मैं भी ऐसे ही यहां आया हूँ, पर समझ नहीं आता मुझे क्षमाहीन कहकर क्यों दूर रखा हुआ है। मैं आपको सत्य बताता हूँ कि:

१. मैं पूर्ण यति हूँ, पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ। मन और काया को वश में कर बचता रहा हूँ।

२. मैं अस्तेय हूँ। मैंने कभी किसी के धन का लोभ नहीं किया।

३. मैं सत्यवादी रहा हूँ। झूठ ने मेरी जीभ का स्पर्श कभी नहीं किया।

४. मैं अपरिग्रह हूं। मोह का पूर्ण त्याग किया है। यह त्याग यहां तक रहा है कि कुछ समय मैंने वस्त्र भी धारण नहीं किये।

५. अहिंसा मेरा परम धर्म रहा है। सतिगुरू मुझे क्षमाहीन कहते हैं। अहिंसा का पालन करते हुए कभी किसी जीव को दुख नहीं दिया। मैं जीवों पर दया करता हूँ। मच्छर और जूं तक को कभी नहीं मारा। मैं बैठते-उठते, चलते-फिरते अहिंसा के सिद्धान्त की पालना करता हूँ। इस लालसा में कि मेरी पूर्ण अहिंसा बनी रहे। मैं सभी कुछ खाना छोड़कर पत्तों पर आ गया हूं। पर एक दिन पत्ते पर भी सूक्ष्म जीव दिख गये। अब मैं वृक्ष की सूखी शाखाओं से बने आटे को खाता हूँ। पर एक दिन उसमें भी जीव देखे, मैंने उसे भी छोड़ दिया और साधारण भोजन करने लगा। इतनी अति करने पर भी विफलता का मुंह देखकर मेरे दिल को आघात लगा, निराशा छा गयी। मैं घबराकर फिर तलाश में निकल पड़ा। अब आप ही सोचो जिसने इतनी अहिंसा का पालन किया हो वह क्षमाहीन कैसे हो सकता है?

सेनापति-भाई, किसी जीव को दुख मत दो, यह तो सतिगुरू जी भी कहते हैं। पर आप तो उस अहिंसा में पड़े हैं जो हो नहीं सकती। गौ के जख्म में कीड़े पड़ जाएं, यदि उस पर दया न करें तो अहिंसा 'जीव दया' तक नहीं पहुंचती। गौ दुखी होकर मर जायेगी। जबकि उसके प्राणों को बचाया जा सकता है। गौ पर दया करके बरोजा तेल आदि डालकर कीड़ों को मारकर, गौ को स्वस्थ किया जा सकता है। तो क्या गौ पर दया करके जख्म के कीड़ों को मारने से हिंसा हो गयी।

हंस–ठीक कहते हो। मैं तभी तो उदास हो अपने मठ से चलकर जगह–जगह घूमता यहां आया हूं। मैंने अति अहिंसा की पालना की है, पर क्षमाहीन तो नहीं। मैं तुम्हें सच कहता हूं कि मैं यहां से भी चला जाता क्योंकि यहां सभी सामान राजसी हैं, पर मैं कितने समय से यहां चुपचाप रहकर देख रहा हूं कि:

१. आप और आपके सिख सत्य के प्रेमी हैं, पूर्ण सत्यवादी हैं।

२. सभी गृहस्थी हैं, परन्तु परस्त्री की तरफ़ कभी नहीं देखते, सभी दूसरे की मां–बहिन को सम्मान से देखते हैं।

३. सभी अस्तेय हैं। किसी सिख में किसी वस्तु के लिए लोभ नहीं देखा। त्यागी और विरक्त नहीं हैं, पर अपने हाथों की कमायी खाते हैं। पर–पदार्थ की तरफ देखते तक नहीं।

४. वैराग्य भी देखता हूँ, पर अनोखा। सभी गुरू के साथ राग में हैं, पर स्त्री–पुत्र, परिवार में रहते हैं। कोई मर जाए तो 'गुरू दर गया' कहकर 'हुकुम' कहकर धैर्य धारण करते हैं।

5. जैन और बुद्ध धर्म के अनुयायी तथा शास्त्रों वाले जिसे अहिंसा कहते हैं, उस सीमा तक इनमें नहीं हैं। पर दुख से पसीजते है, दुखियों की सेवा करते हैं, किसी को दुख नहीं देते। प्रजा का दुख देखकर युद्ध करते हैं। हिंसा होती है, पर वे कहते हैं कि हम अपने लोभ के लिए नहीं करते, दुखियों की रक्षा के लिए हिंसक की हिंसा से रोकते हैं। यदि उपदेश से माने तो, प्यार से माने तो, यदि न माने तो तलवार से। मैं देखता हूँ वे प्रजा का सुख चाहते हैं। मुझे यह अहिंसा अनोखी लगती है। मैं देखता हूं कि युद्ध के दुख पीड़ा मौत से वे अभय हैं, वे असंग हैं जैसे वीतराग होता है। पर जंग तो हिसामयी क्रिया है। पर मैंने यह भी अच्छी तरह देखा है कि इनकी तलवार म्यान में से कभी बाहर नहीं आती। वह बाहर आती है तो उपकार करने और अन्याय को रोकने के लिए। फिर गुरू जी में पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण कैवल्य में दिखते हैं। मैं देख चुका हूं, अजमा चुका हूं। पर समझ में नहीं आता कि पूर्ण वीतराग और ज्ञानी होकर कैसे जगत रक्षा की प्रवृत्ति ग्रहण की हुई है। मुझे आश्चर्य होता है कि प्रवृत्ति में निर्वृत्ति कैसे निभ रही है। ध्यान से देखने पर आपकी सभी क्रिया वीतराग वाली है। मैं चाहता हूँ कि मुझे भी समझ आये कि वह कौन–सा खेल है जो यहां चल रहा है।

सेनापति–सज्जन जी! आप और हम बाल सखा हैं। आपको चित्रकारी का और मुझे कविता का शोक था। आपको साधुओं की एक टोली अपने साथ ले गयी। आप तप, हठ, व्रत और समय साधनाओं में लग गये। मैं काव्य शास्त्र के

अध्ययन में लगा रहा। आप बता रहे हो कि आपको सुख की प्राप्ति नहीं हुई और मैं विद्या विज्ञान के रास्ते पर चलकर रस को प्राप्त न कर सका।

हंस—सुख-दुख दोनों का शमन करना है, शांति अवस्था में पहुँचना है। जिसे मैं शांति कह रहा हूं वांछित अवस्था नहीं है। इसलिए वांछित को सुख कहना भी उचित है।

सेनापति—सज्जन जी, यदि हम प्रत्येक पद को उसके शास्त्र मत अनुसार लक्षणों में विचार करेंगे तो हमारी विचार शास्त्रीय विवाद में बदल जायेगी मत, मतान्तर और शास्त्रों के निर्णयों पर विचार करते हुए हम चर्चा में ही रह जायेंगे। कोई सैद्धांतिक आत्मिक बात करें जिससे किसी निर्णय पर पहुंचकर इस नये आदर्श को समझ सकें।

हंस—यह कैसे सम्भव है?

सेनापति—हम जीव, पुरुष, आत्मा आदि पदों की जैन, खांख्य, योग, वैदांत आदि के विचारों में न जायें। शरीर में जीवित जो सत्य है उसे चेतना या आत्मा मान लें। शरीर का जो अचेतन अंश है उसे प्रकृति, माया या किसी और सिद्धांत के अन्तर्गत रखकर न सोचें। उसे जड़ या अचेतन, या मादा, या प्रकृति कुछ भी कह लें। इस तरह सभी के सिद्धान्तों को ले लें कि वे जीव, पुरुष, आत्मा को चेतना वाला मानते हैं और इसे 'बांधने' वाले सामान से स्वतन्त्र कराना चाहते हैं।

हंस—ठीक है। जहाँ कहीं बात एक दूसरे से मिलने लगेगी तब उसे अलग कर लेंगे।

सेनापति—अच्छा, अब सुनो आपने जो पाँच व्रत कहे हैं—अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, इन्हें दर्शन ने पांच यम कहा है। नाम कोई भी रख लें। यह ठीक है कि ये 'शुभ आचरण' हैं। ये वे हैं जिन्हें मनुष्य प्राप्त करे और सुख पाये। मनुष्य का मनुष्य के प्रति जो कर्त्तव्य है वह भी इसमें आ जाता है। इससे समाज को सुख मिले या ऐसे कह लो कि 'जन' और 'जनता' सुख पाये। इन गुणों से जीव पशुत्व को त्याग मानवतावादी बनता है। यह बहुत कीमती है। परन्तु इन्हीं को या कुछ और शुभ कर्मों को परम प्रयोजन समझ लेना अधूरी प्राप्ति है। क्योंकि इसी में रह जाने से दूसरा पक्ष अधूरा रह जाता है—वह है दैविक और आध्यात्मिक जीवन। इस दूसरे जीवन का ज्ञान मुझे गुरू की शरण में आकर मिला। मैं धर्म को खोज में यहाँ आया था। यहाँ आकर मैं समझा कि धर्म तो इन्सानी कमाल है और यहाँ वह भी पूर्ण रूप में है। यहाँ बताते हैं कि वह धर्म पर्याप्त नहीं जिसकी नींव अहंकार पर है—

जब लगु मेरी मेरी करे॥ तब लगु काजु एक नहीं सरै॥

जब मेरी मेरी मिट जाइ। तब प्रभु काजु सवारहि आइ॥ (भैः कबीर जी)

हंस–जरा ठहरना। धर्म का अर्थ है धारण करना। धर्म का अर्थ है जाति या स्वभाव आदि। जैसे आँख का धर्म है देखना, अग्नि का धर्म है दाह। कर्म कांड का विधि पूर्वक अनुष्ठान करना धर्म है। धर्म है वर्णाश्रम अनुसार योग्य काम करने, जैसे ब्राह्मण का धर्म है पढ़ना, पढ़ाना आदि। शूद्र का धर्म है सेवा। धर्म, सदाचार, इखलाक, सत्य कर्म आदि का नाम है। धर्म पद का अर्थ कर्त्तव्य भी है। धर्म उन कर्मों के धारण करने को भी कहते हैं जिनसे कल्याण प्राप्त हो। धर्म का अर्थ मति, मजहब, दीन भी है। आपका धर्म पद से क्या प्रयोजन है।

सेनापति–मेरा मतलब है, नेकी, पुण्य, शुभ कर्म। हंस जी! एक दिन कीर्तन में एक पद सुना–जनम-मरन दुहहु महि नाही जन पर उपकारी आए। जीअदान दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।।

मैंने सोचा यह 'जीवदान' क्या है? मैं तो धर्म-दान लेने आया था। यहाँ महिमा 'जीवदान' की है। फिर मैंने खोज की तो पता चला कि गुरू नानक के घर में धर्म से आगे जीवदान या इखलाक से आगे रूहानी तालीम एक और कमाल है। तालीम ही नहीं बल्कि उच्च जीवन की देन है। इस रूहानी जीवन की देन का नाम 'जीवदान' है। फिर मैंने आसा की वार का एक पद सुना–'जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार' कि सतिगुरू ऐसा है जो मनुष्य से देवता बना देता है। तब मैं समझा कि मनुष्य के लिए पशुत्व से निकलकर मनुष्य बनना पर्याप्त नहीं, जिसे मैं धर्म समझता था। बल्कि मनुष्य से उन्नति करते हुए देवता बनना है। गुरू जी का परम प्रयोजन यही है कि मनुष्य देवता बन जाए। इसीलिए वे 'जीवदान' देते हैं।

हंस–देवता तो सिद्ध पुरुष से नीचे होते हैं।

सेनापति–यहाँ देवता का अर्थ पुराणों या जैन आदि मतों से नहीं है। यहाँ तात्पर्य दिव्य स्वरूप, परमगति को प्राप्त आत्मा से है।

हंस–हम देवता को शुद्ध आत्मा से नीचे मानते हैं। खैर! मैं आपका आशय समझ गया हूँ। पर मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि जब आपने बुरे कर्मों का त्याग कर दिया और शुभ कर्म धारण कर लिए तो मनुष्य जीवन पवित्र हो गया, पाप अवगुण आदि दूर हो गये। जीवात्मा में जो अवर्ण धँस गया था निकल गया। जीवन निर्मल हो गया। ज्ञान स्वरूप तो वह था ही। तो फिर शेष क्या रह गया? क्या आपका मतलब विचार या स्व से जुड़ना है।

सेनापति–इससे भी कुछ अधिक।

हंस–वह क्या? ज्ञान या योग।

सेनापति–अष्टांग योग के एक तो 'करने दिखाने वाले लोग मिलते हैं', दूसरे इसके साथ इसके लेखक 'स्व में टिकाव हो जाना या कैवल्य प्राप्ति बताते हैं।

यह 'कैवल्य' एक तरह से। कर्म और उसके फल से जीव को स्वतन्त्र (मुक्त) कराना है। क्लेष से कर्म निवृत हो जाते हैं। अवर्ण की मैल दूर हो जाती है, फिर प्रकृति पुरुष से अलग हो जाती है, बस कैवल्य हो गया। पुरुष अपने आप में अव्यवस्थित है। यदि सांख्य की तरफ आओ तो तीन तरह के दुखों की निवृत्ति कैवल्य है। साधन इसका विवेक है। पुरुष का खुद को प्रकृति से अलग समझना कैवल्य हो गया। जैन मत का सार यह है कि जब आत्मा और पुद्‌गल (प्रकृति) में सम्बन्ध टूट जाता है तो आत्मा स्व में आ जाती है। कैवल्य होकर फिर मुक्त हो गया। अब यदि हम सोचें कि यह जो 'स्व' है, चाहे वह कुछ भी है, उसे आत्मा कहें, रूह कहें, जीव कहें, पुरुष कहें या कुछ और, वह स्व समाधि से या सांख्य (विचार) से या ज्ञान से, कर्म से, साधन, व्रत आदि से, अति संयम से, बांधने वालों से स्वतन्त्र (मुक्त) हो गया। वह प्रकृति या माया या पुद्‌गल या किसी अन्य अवर्ण, उपाधि में बँधा था और अब मुक्त हो गया है। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता था कि वह बँधा हुआ था। वह बँधने की अवस्था से पहले भी छुटा हुआ था। क्योंकि जिसे हम बँधा हुआ कहते हैं, और किसी कारण से उसे बँधा हुआ बताते हैं। यह बताने में यह सम्भावना है कि वह कभी स्वतन्त्र था, फिर बँध गया और अब कहते हैं किसी कारण से मुक्त हो गया।

वह जो पहले स्वतन्त्र था और बाद में बँध गया, वह किसी कर्म के कारण बँधा है? कर्म शरीर के बिना सम्भव नहीं। वह जब शरीर रूप में आया तो कर्म के कारण बँधा हुआ नहीं था। फिर कोई और कारण है जिससे स्वतन्त्र (जीव) को बाँध लिया। बँधने पर वह कर्म जाल में आ गया, पर बँधने से पहले किसी और कारण से वह बँधा, उस कारण को हम कुछ भी कह सकते हैं, पर वह कारण ऐसा था जो शरीर से स्वतन्त्र 'स्व' को अर्थात 'जीव' को बांध सकता था। यह ठीक है न?

हंस–वह तो ऐसे ही था जैसे सुरमादानी को सुरमा काला कर देता है।

सेनापति–आप फिर एक मत का दृष्टांत देते हैं। मैं समूचा ले रहा हूँ। वह कारण कुछ भी रहा हो कैसा भी रहा हो उसे बांधा।

हंस–ठीक है, समूची बात ही करो।

सेनापति–आओ, अब और विचार करें। एक जीव है जो समाधि में या सांख्य (विचार) से ज्ञान से या संयम व्रत से या अन्य कठिन साधनों से 'कैवल्य' हो जाता है। अब वह उस स्थिति में पहुंच गया हे, जिससे वह कभी सनातन रूप में रहता था। अर्थात् प्रकृति या माया या पुद्‌गल के चक्र में आने से पहले वह जिस स्थिति में था। अब पुनः साधनों द्वारा बँधन रहित होकर वह उस स्थिति में पहुंच गया है अर्थात्–

स्वतन्त्र — बंधन — स्वतन्त्र

अब जो 'मुक्त' या 'कैवल्य' हो गया है अपने बंधनों से स्वतन्त्र रूप में पहुंचा है।

हंस–ठीक है।

सेनापति–अब ज़रा ध्यान एकाग्र करके सोचो कि जीव उस अवस्था में है जिसमें वह कभी बिना कर्म किये बंधन या फांस में फँसा था, चाहे वे बंधन अज्ञान मात्र थे, या वास्तव में थे, कोई भी कारण हो सकता है जिसका हमें ज्ञान नहीं या जिसका नाम जो जी में आये रख लो, नाम से हमें मतलब नहीं, जिसने पता नहीं क्यों जीव को बांधा। अब जीव फिर स्वतन्त्र है, पर उसी तरह, वही कारण उसे फिर बांध सकते हैं, जिन कारणों से वह पहले बँधा था।

हंस–(घबरा कर) है तो ठीक है, पर जीव का इससे बांधने वाली वस्तु का कुछ नाम रखो। फिर परम्परा से उसका नाम है। न उसका आदि है न अन्त।

सेनापति–यदि ऐसा है तो जिस वस्तु का आदि नहीं उसका अन्त नहीं हो सकता। यदि यह दशा परंपरा से है तो भविष्य में भी रहेगी, कैवल्य दशा आई कैसे फिर यदि कभी बुझते हैं, कभी छूटते हैं, यह भी परंपरा से है। इसी में हमारा दुख है, अर्थात् हम बंधन और मुक्ति के जाल में सदा भटकते रहे हैं और भटकेंगे। कैवल्य से मिला क्या? बस कुँए के बर्तन की तरह नीचे गये तो खाली, ऊपर आये तो भरे हुए।

हंस (घबरा कर)–नहीं कैवल्य तो मुक्ति है, फिर बँधन नहीं।

सेनापति–तब जीवात्मा अपने वास्तविक रूप में स्वतन्त्र शुद्ध चेतना के रूप में नहीं थी। क्योंकि उस दशा में वह केवल बंधन में डालने वाले कारणों से स्वतन्त्र हो जाने से–कैसे प्राप्त हो सकता है अर्थात् उसकी अपनी असली और स्वाभाविक दशा नहीं थी। उसका नाम कैवल्य या स्वरूप में स्थित कैसे हो सकता है।

चन्द्रमा की चांदनी है, पर ग्रहण उसे अँधियारा कर देता है, ग्रहण दूर होने पर वह पहले के समान चमकने लगता है। यदि चन्द्रमा की चाँदनी न होती तो ग्रहण दूर होने पर उसकी चाँदनी कैसे हो सकती थी।

हंस–ठीक है। पर यदि ऐसा कहें कि जीव कभी जीव था ही नहीं। एक सच्चिदानन्द ही परिपूर्ण है। उसके भ्रम के कारण ही जीवन बन्धन और मुक्ति का विचार पाया है। जब यह कट गया तब जो कैवल्य रह गया वह जीवात्मा नहीं आत्मा है।

सेनापति–फिर भी वही बात है। उसमें कभी यह भ्रम, जिसे आप सच्चिदानन्द कहते हैं, नहीं था, कभी आया और फिर दूर हो गया। इससे यही परिणाम निकलता है कि कभी फिर पड़ जाने की सम्भावना है, फिर पड़ सकता है, जैसा कि पहले

उसमें पड़ गया था। चन्द्रमा तो सदा चन्द्रमा है, ग्रहण ने न तो उसे बांधा न मुक्त किया, पर ग्रहण या बादलों के आने से जिस तरह का अँधेरा आये, वह चाहे किसी तरह का है आच्छादित करता है। बादल या ग्रहण हट जाने का अर्थ यह नहीं कि बादल या ग्रहण दोबारा नहीं आयेंगे।

नाम निर्वाण रखो, कैवल्य, मोक्ष या मुक्ति रखो, कुछ भी रखो। कारण का नाम अविद्या, भ्रम या माया रखो, प्रधान का मेल या पुद्गल रखा, पुद्गल का इस प्रकार का प्रकाश रखो जैसे सुरमेदानी में पड़ा सुरमा सूरमेदानी को काला कर देता है। बात तो फिर वही रही, जो दृष्टांत में कही है।

हंस–है तो ठीक, पर मुझे तुम्हारा आशय स्पष्ट नहीं हुआ। मैं कहता हूँ जो साधन से कैवल्य हो गया, वह फिर क्यों फँसे? जब स्त्री के गुप्त प्यार का पति को पता लग जाए तो वह फिर उसके प्यार में नहीं फंसता।

सेनापति–मेरे कहने का तात्पर्य है कि यदि वह बन्धन से मुक्त हुआ है तो सम्भावना है कि पहले मुक्त था और बन्धन में आया है, जैसे पहले मुक्त था और बन्धन में आ गया था, इसी तरह जो अवस्था उसने साधन करके अब प्राप्त की है, फिर पहले की तरह बंधन में पड़ सकती है। उसके पल्ले क्या पड़ा? यदि बंधन में पड़ना और मुक्त होना सदा से है, इसका आदि कभी नहीं हुआ तब इसका अन्त भी नहीं है। स्पष्ट है कि आप खुद स्वीकार कर रहे हैं कि कैवल्य सदा स्वतन्त्र नहीं यदि ऐसा कहें कि जीव को समझ नहीं थी, इसलिए वह फंस गया, अब समझ आयी है, अनुभवी हो गया है, अब मुक्त हो कर नहीं फंसेगा। इसका मतलब आपने जीव को आदि में अज्ञानी मान लिया, ऐसा मानकर उसके स्वरूप का ज्ञान वान, स्वतन्त्र, आत्म, ब्रह्म चेतन, होना खंडित हो गया। क्योंकि ज्ञान ने या साधना ने सदैव चेतनता वाले जीव के वे बंधन काटने हैं, वह अन्धकार दूर करना है, जिसने उसे आच्छादित किया हुआ है। जो आदि में अज्ञानी है उसका आधार अज्ञान है, फिर बताओ अज्ञान का आधार कैसे बदलेगा? अज्ञान तो उसका स्वभाव या सहज गुण हो जायेगा।

हंस–है तो ठीक, फिर क्या है?

सेनापति–मैं क्या बताऊं? मेरी विद्या या मेरे विचार के जो आधार हैं, यहीं आकर हिल जाते हैं। जैसे कि आज मैंने तेरे हिलायें हैं, वैसे ही भाई नन्द लाल जी ने मेरे हिलाये थे। तब मुझे समझ आई कि जितने उपदेश हैं सभी निंदा के योग्य नहीं हैं, पर यह सभी या तो इखलाकी पाठ है या दर्शन विद्या से सम्बन्धित हैं। ये सारा दार्शनिक ज्ञान या उनको वर्णन करने के ढंग हमारे मन के, बुद्धि के, स्वभाव के यत्न हैं। वास्तविकता को खोजने, समझने और समझाने के। ऐसे ही 'यथार्थ' की प्राप्ति नहीं हो रही अर्थात् जिस तरह जहां देश काल दशा से परे या अन्य किसी तरह की स्थितियां हैं, वहां हम वैसे ही उसे प्राप्त नहीं हुए, या

ऐसा समझ लो कि हम उसमें जो कभी भी क्लेश, कर्म, अज्ञान या भ्रम में नहीं आया, प्राप्त नहीं हुए। उस टिकाने में प्राप्त हुई सम्भावना हो सकती हैं कि हम फिर उस बन्धन में न फंसे। उससे पहले जो साधन या विचार हैं वे हमारे कर्म जाल से छुटकारे का ज्ञान या साधन हैं। जो हमें अकेले, स्वतन्त्र या कैवल्य अर्थात् हमारी पहली स्थिति में ले जाते हैं। पर वहां फिर फंसने की संभावना बनी रहती है। यह एक ऐसा ठिकाना है जिसे मार्ग के मध्य का ठिकाना कहना चाहिए। अर्थात् इन्सानी कमाल के अंत और कहानी कमाल के मध्य। हां इन्सानी कमाल की चोटी पर और दैविक रुहानी-जीवन के आदि में, मध्य भाग के बिन्दु पर।

हंस—मैं कहता हूं यही रुहानी जीवन है।

सेनापति—मैं यह नहीं कहता। यह तो स्पष्ट है कि यह जीव की वह स्थिति है जिसे उपाधि रहित अवस्था कहा जा सकता है, या बन्धन से स्वतन्त्र अवस्था या कुछ ऐसा ही और नाम दिया जा सकता है। जिन कारणों ने उसे मलिन या दुखी या अज्ञानी बनाया या बंधनों में डाला था, उनका दूर हो जाना है। हाँ, स्थूल सूक्ष्म विकारों का दूर हो जाना है और उस अवस्था पर पहुंचना है जिससे वह पहले विकार ग्रस्त हुआ था। जबकि अब स्वतन्त्र है, पर पहले की तरह फिर फंस सकता है। यह मैं अपनी तरफ से नहीं कह रहा, यह तो मतों, सिद्धान्तों से ही निष्कर्ष निकलता है। अब इस बात की आवश्यकता है कि यह जीव किसी ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां पहुंच कर वह फिर बन्धनों में न फंसे।

हंस—क्या आप सभी शास्त्रों, दर्शनों, मतों आदि की निंदा करते हैं।

सेनापति—कभी नहीं। गुरू घर के मत में निंदा है ही नहीं। संसार के सभी महान लोग हमारे सज्जन हैं, सारे संसार के धार्मिक ग्रंथ उनके दर्शन हमारी अपनी सम्पत्ति है। सभी अपने-अपने दृष्टिकोण से समस्या का समाधान ढूंढ़ते हैं। मेरा मतलब है कि जो कुछ हमने अभी विचार किया है, वह निंदा नहीं। उसका नाम कै 'कर्मजाल से' स्वतन्त्र होने का दर्शन।

हंस—ठीक है, फिर शेष आवश्यकता क्या रह गयी।

सेनापति—आवश्यकता यह है कि जिसकी अपूर्णता ने भीखा जैसे कवि और शास्त्र ज्ञाता को एक साल तक दर-दर भटकाया। जिसने दिल के अन्दर की रिक्तता को काफी भटकने के बाद भरा, जिसके कारण आप तलाश में हैं। सज्जन! कोई अपूर्णता, कोई रिक्तता, कोई आकांक्षा है जो सच्ची आत्माओं की तलाश में, विद्या की तलाश में तप-हठ के अन्त में भी आकर घेर लेती है। जिनके अन्दर लोगों में गुणज्ञ, विद्वान होने की ख्याति का घमण्ड ही पर्याप्त नहीं है, जो अपने कल्याण के निमित्त खोज में लगे हैं, हाँ सज्जन! वे अपनी तलाश के अन्त में हृदय में एक रिक्तता अनुभव करते हैं, उनमें लोक लाज नहीं कि अन्दर की इस पोल को छुपा

लें। वह स्व के प्रति सच्चे हैं। वे अपने हृदय में झांक कर देखते हैं कि विद्वान हो कर दर्शन विद्या प्राप्त करके, मन का ज्ञान पाकर, सभी कुछ का मनन किया है, पर अन्दर फिर भी अशान्त है, रिक्तता है, कोई कमी है।

हंस–ठीक कहा है। पठन-पाठन, उग्रतप संयम-साधन, व्रत धारण का फल यह तो जरूर हुआ कि मुझे भी अन्तर में रिक्तता दीखती है। जब तक मुझमें 'मन का मान' रहा तब तक पूज्य होने का नशा और लोगों से सम्मान पाने का स्वाद भी रहा। स्वाद में रहते हुए मन की यह रिक्तता नजर नहीं आयी, परन्तु जब उग्र तप की तीव्र ललकार ने यह भाव भी तोड़ दिया तो मन की यह रिक्तता मुझे द्वार-द्वार झटका रही हैं। इस कलगी वाली मूर्ति को देखकर कुछ शान्ति मिलती है, पर पता नहीं चल रहा क्या करूं?

सेनापति–कृपा है, हमारा अन्तर रिक्त हुआ। सोना, चांदी, स्त्री छोड़ना कठिन नहीं, अन्तर से मान का टूटना बहुत कठिन है। गुण और ज्ञान के मान को तोड़ना अति कठिन है। वास्तव में यह मान, यह अभिमान, झूठ की दीवार दीखती है। इसके अज्ञात नशे में बड़े-बड़े विद्वान और गुणी अपनी उमर बिता देते हैं। (मान मुनी मुनिवर गले मानु सभ कउ खाए–सलोक कबीर) 'मैं कुछ हूं' का भाव टूटते ही, रिक्तता दिखायी देती है, मेरी यह रिक्तता गुरू घर में आकर ही दूर हुई।

हंस (लम्बा सांस लेकर) ठीक है। आश्चर्य है, आप निंदा किसी की नहीं करते फिर भी किसी और तरफ ही ले जाते हो।

सेनापति–हमारे सतिगुरू ने कहा–

छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस
गुरु गुरु एको वेस अनेक॥१॥

अर्थात् छः शास्त्र अलग-अलग मतों की रचना है, अलग-अलग उनके उपदेश हैं, प्रत्येक का अपना-अपना दृष्टिकोण है, पर इनका गुरू, महागुरू और है, उसका मिलाप कुछ और वस्तु है। पर यह अनेकता उस एक के वेश हैं, इस गुरू के अनन्त से मिलो। दृष्टान्त रूपी ऋतु, महीने, दिन, तिथियाँ देखकर इनके गुरू सूर्य की तरफ देखो। यदि आप उष्णता, प्रकाश, बल चाहते हो तो अनेक वेशों में से वेशों के गुरू को खोजो–परमात्मा की तरफ आओ। मैं आपके उस 'करते कीरति घर' की तरफ ले जा रहा हूं–

बाबा जै घर करते कीरति होइ..
सो घरु राखु वड़ाई तोइ.. (आसा मः १)

सभी शास्त्रों, दर्शनों की सूक्ष्मताएं ऋतु, मास में ही है, जैसे उनका गिनना, ज्ञान प्राप्त करना, इस धरती पर घटित हुई घटनाओं का ज्ञान हो। सूरज की अपनी जाति से हमारा सीधा सम्बन्ध नहीं हो जायेगा जब उससे सम्बन्ध हो जाये तभी

प्रकाश, उष्णता, बल आदि शक्तियां प्राप्त होती हैं। तिथि, पत्रिका आदि तो पढ़ लीं अब धूप में आकर भी बैठ जाओ। इस धरती पर रहते हुए सूर्य से सम्बन्ध स्थापित करना क्या है? धूप के साथ मिलन। वैसे ही अनन्त के साथ मिलन उसके साथ प्रेम में है। अब बाबा जी! उसके साथ सचमुच हृदय में प्रतीत होने वाली लौ लगाओ–जो कभी कर्मजाल में नहीं फंसा है। जिसे 'विशेष पुरुष' कहते हैं, जिसे पारब्रह्म या पूर्ण ब्रह्म भी कहते हैं जिसे बाबा नानक ने 'बेअंत' कहा है, 'सच्च' कहा है और 'वाहिगुरू' कह कर सराहना की है। उस एक से ही लिव लगाओ।

हंस–जिसको अपने 'एक' कहा है, ऐसे ईश्वर-ब्रह्म या रब को मैंने नहीं माना, पर मैं यह मानता रहा हूं कि मुक्त आत्मा हो गये जीव निरोल चेतन रूप होते हैं, वे अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य और अनन्त सुख वाले होते हैं। जबकि वे अचाह और बेपरवाह है, पर उनकी मूर्तियां बनती हैं और वे पूजी जाती हैं। इन देवताओं की आराधना भी होती है। जो प्रार्थना सुनते हैं और फल देते हैं, पर वे जीवों में से ही श्रेष्ठ हुए हैं। सांख्य भी इस प्रकार के ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारते हैं। मुझे यह समझाओ कि आप एक परमात्मा मानते हैं, वह जगत की रचना करता है तो इच्छावान हुआ। इच्छावान निर्विकार निर्व्रत, कैसे हुआ?

सेनापति–जब आप परम पुरुष को इच्छावान कहते हैं तो उस पर अपनी इच्छा आरोपित करते हैं। वह वास्तव में देश काल से परे है, वह हमारी समझ का, जगत के पदार्थों की तरह दृश्यमान बनने से परे हैं। उसको जो बेअंत है, मनुष्य की बुद्धि जो सीमित है, कैसे वर्णन कर सकती है। जिसे दृश्यमान पदार्थों की तरह देख नहीं सकते, फिर उसके कर्मों, विचारों, इच्छाओं का वर्णन हम कैसे कर सकते हैं। सोचो, यह कैसे सम्भव है कि वह खुद तो देश-काल में पड़े हो और उसके कर्म विचार हमारे जैसे देश-काल वाले हों यह तो आप समझ सकते हैं कि जो चेतन है वह जड़ पदार्थों की तरह अचल पड़ा रहने वाला पत्थर तुल्य नहीं हो सकता। चेतना प्रकाश स्वरूप है, उसमें कोई खेल जरूर है जिसे हम अपनी भाषा में 'करना और विचार' कह सकते हैं, पर वह करना और विचार अदेश, अकाल और उसी की तरह सत्य स्वरूप वाले हैं। गुरू नानक देव जी ने कहा है–'सबे तेरे करणे सरब बीचार' और इस भूल में से भी गुरू नानक जी ने तथ्य निकाला कि जब परम-पुरुष हमारे ख्याल या कथन का विषय नहीं तो उसके करना और विचार आदि, जिनको उनहोंने 'हुकुम' कहा है, वह हमारी समझ का विचार कैसे हो सकता है, और उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है। 'हुकुमी होवनि आकार हुकुम न कहिआ जाई' उनका कथन है। उस सर्व चेतना रूप, सर्वज्ञ, देश काल से परे के स्वरूप और उसके अपने अदेश अकाल मण्डल के करना, विचार अर्थात् हुक्म को अपनी देश काल से बंधी करना और विचार की तुलना देकर उसमें वह कुछ आरोपित न करे, जो वहां है नहीं। वह

शुद्ध चेतन है और वह चेतना किसी हदबंदी में नहीं, उस अनन्त को भी कोई हद बंदी नहीं दी जा सकती, न अपने देशकाल से सीमित विकृति उस पर आरोपित कर सकते हैं।

हंस (एक लम्बा सांस लेकर)–प्रिय सेनापति कितनी बड़ी भूल में उमर बीत गयी। हाँ, अब याद आ रहा है कि सांख्य ने भी प्रकृति से कैवल्य हुए ईश्वर को माना है और कहा है कि वह सर्वत्र और सर्वशक्तिमान है। हां वही, जो पहले सर्ग में कारण लीन था, बाद के सर्ग में सर्वज्ञ[1] ओर सर्वशक्तिमान, आदि पुरुष हो जाता है। वाह वाह। अब तो मुझे ऐसा लगा रहा है कि हम अनेक निर्उपाधि आत्माएँ मानते हैं और उन्हें अनन्त ज्ञान वाला स्वीकारते हैं, तब उन्हें अनेक क्यों मानते हैं। अनेकता तो किसी अन्तर के कारण होती है। यदि हम उन्हें एक समान अनन्त ज्ञान वाला मानते हैं और लक्षणों में कोई अन्तर नहीं मानते तो अनेकता कैसी। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख वाले लक्षण अनेकता को नहीं बल्कि एकता को सूचित करते हैं। मैंने पढ़ सुनकर ध्यान ऊंचा करके यह नहीं देखा कि अनेकता तो एकता की ओर जा रही है। अब बताओ आप मुझे किधर लेकर जा रहे हैं।

सेनापति–परम पुरुष की शरण (प्रानी परम पुरख पग लागो।।) (पा॰ १०) जीव को ईश्वर की तरफ, पुरुष विशेष की तरफ, आपके जीवन तत्व को ब्रह्म तत्व की तरफ 'तंते कउ परम तंत' की तरफ। हम यदि सचमुच मोक्ष चाहते हैं तो परम पुरुष की शरण में जाएं जहां फिर प्रकृति या पुद्गल या माया या अज्ञान किसी का अधिकार नहीं चलता।

'छुटहो काल फास ते तब ही गहो शरण जगतागर।' (रामकली पा॰ १०)

हंस–आप तो ऐसे कह रहे है जैसे कि बेअन्त कोई देशकाल वाला पुरुष है और हमने या आपने उसकी तरफ देशकाल में घिरे हुए की तरफ दौड़ना है। पर देशकाल वाला अनन्त नहीं हो सकता और न अनादि हो सकता है।

सेनापति–ठीक है, पर हंस जी चिंतन करते समय हमें बाल की खाल भी नहीं उतारनी चाहिए। कुछ अन्य ढंग से सोचना चाहिए। हर विचार का एक नाम रख देना और कहना ज्ञान प्राप्त हो गया है, इसे ही पर्याप्त समझ लेना उचित नहीं। आसमान में चमक देखी तो उसका नाम रख दिया बिजली। जब बच्चे ने पूछा–बापू यह क्या है? तो उत्तर दिया–बिजली। इतना कहने से बापू ज्ञानवान हो गये और गुरू जी और बच्चा शिष्य (सिख) हो गया जिसे ज्ञान की प्राप्ति भी हो गयी। हमारा तुम्हारा ज्ञान ऐसा ही है।

हंस–बिजली कहने से बिजली का कारण पता नहीं चला, केवल उसके रूप का ज्ञान हुआ। उसके गुण और स्वभाव के बारे में कुछ नहीं जाना, न प्रकाश मिला और न शक्ति और न ही पता चला कि वह क्या है। न वह हमें प्राप्त हुई और न हम उसको।

सेनापति–ठीक है। इसी तरह हमें मालूम चला कि हम देश–काल के कैदी हैं। फिर हमने देश–काल से परे किसी चैतन्य अस्तित्व को नाम दिया–ब्रह्म, आत्मा पुरुष, रूह, ईश्वर या अनन्त ज्ञान वाला सिद्ध आदि पुरुष, या कुछ और नाम रख दिया और बस। यदि गर्मी की आवश्यकता है तो बन्द कमरे की ठंड से बाहर निकल धूप में बैठना होगा तभी सूर्य मिलेगा यदि अन्दर बैठे हुए सूर्य के लक्षणों पर विवाद करते रहें, बात की खाल निकालते रहे तो ठंड में ही ठिठुरते रहेंगे।

वह जो परम पुरुष है, अपनी कुदरत में वास करता है। वह अनन्त सुन्दर है, कुदरत में व्याप्त होने के कारण उसकी अनन्त सुन्दरता कुदरत में झलकती है, जैसे सूर्य अति प्रकाश स्वरूप होने के कारण करोड़ कोस से अपना प्रकाश और गर्मी दे रहा है। इसलिए हे प्रिय! कादर और कुदरत से रूठ कर उदास बैठे रहने से, तप हठ से मरने से कुदरत में वास करती सुन्दरता को देखो। सिर्फ देखो ही नहीं बल्कि कुदरत में बसी सुन्दरता के रस को भोगो, इस रस के साथ जिओ, स्व से जुड़कर निर्मलता में आओ, जिससे देशकाल से परे उस 'अनादि अनन्त रस रूप' को देख सकें, हमारा चित्त विस्माद में आकर उसका 'नानक का पातुसाहु दिसै जहारा'- प्रत्यक्ष रस वाला स्वाद और ज्ञान प्राप्त करें। जिससे हम निरन्तर उसी के साथ रह सकें। जैसा कि सतिगुर का कथन है–

सपनै ऊभी भई गहिउ की न अंचला॥
सुंदर पुरुख बिराजित पेखि मनु बंचला॥
खोजउ ताके चरण कहहु कत पाइऐ॥
हरिहां सोई जतंनु बताइ सखी प्रिउ पाईऐ॥१३॥ (फुनहे म: ५)

यह जो कायनात दिखायी देती है, जिसमें आप विचारमान हैं, सोचो आप इसका कोई हिस्सा है या नहीं? आप इसमें वास करते हैं कि नहीं? इस तरह सोचो कि वह अनन्त देशकाल से परे व्यापक भी है या नहीं? क्या वह इसमें वास करता है? यह दृश्य–अदृश्य प्रकृति उससे भिन्न है या उसी का रूप है? हाँ, गुरू नानक जी कहते हैं कि वह जो अनन्त है–

कुदरत वसिआ अनंत है :–
कुदरति करिकै वसिआ सोइ। (वा० श्री म: १)
इहु जगु सचे की है कोठड़ी सचे का विचि वास॥
(वार आसा म: १)

और कहते हैं कि मेरा उसका सम्बन्ध है–

बलिहारी कुदरत वसिआ तेरा अंतु न जाई लखिआ॥ (वार आसा म: १)

अर्थात् वह अनन्त है, उसका अन्त कोई नहीं जान सकता। वह प्रकृति में बस रहा है। उससे सम्बन्ध है–उस पर बलिहारी होने से। बलिहारी होना उससे हमारा सम्बन्ध पैदा करता है। देशकाल से परे बस रहे और प्रकृति में बस रहे अनन्त के

साथ। हमने और तुमने केवल शिक्षितों ने ही नहीं बल्कि बैल के पीछे चल रहे गंवार किसान ने भी उस परमात्मा को प्राप्त कर, इन्सानी काम करते हुए, इन्सानी रंगों में रहते हुए, रसों में और परमात्मा में वास करना है तो शास्त्रों के ज्ञाता मनोवैज्ञानिक ने भी इसी रंग में स्व को रंग कर लीना है। मेरा कहने का भाव है कि–

१. हमारे शुभ व्यवहार, पाप रहित व्यवहार, स्थूल सूक्ष्म विकारावस्था पर विजय पाना शुभ कर्म है और यह इन्सानी कमाल है।

२. हमारा अनन्त से लगे रहना अर्थात् वाहिगुरू से लगातार सम्बन्ध बनाये रखना–आत्म जीवन है।

हंस–ठीक है।

सेनापति–इस लगातार लगन से आप सदा उसकी शरण में रहेंगे और फिर कभी भी कर्मजाल में नहीं आओगे। उससे लगे रहकर हमें कभी किसी वस्तु की कमी अनुभव नहीं होगी। अब आपकी लिव उससे टूटी हुई है। उससे लिव लगाकर उसी से जुड़ जाओ। उससे लिव का टूट जाना, उन सुखों में रहित हो जाना है, जो उसके साथ लगे रहने से मिलते हैं अर्थात् 'सदा सुख की प्राप्ति।' हां, कर्मजाल, मायाजाल, या प्रकृति जाल से ऊपर अनन्त सुखों में सदा का वास। हमारा मन केवल विचार से देशकाल से परे नहीं जा सकता क्योंकि हमारा विचार देशकाल की सीमा में है। हमारा अन्तर सोच विचार और ख्यालों को ही न कुरेदे–पर उनसे ऊपर होकर, सचमुच में ऊपर उठकर अनन्त से जुड़ जाये और फिर जुड़ा रहे। ख्याल अनन्त में समा जाये, उसके लगाव में लगकर रसलीन हो जाये। रस, अनुभव में आने वाला रस हो।

हंस–जरा विस्तार से स्पष्ट करो।

सेनापति–दात तो सतिगुरू के हाथ में है, उनकी कृपा से जब तुम्हारा मन परमात्मा से लगेगा तब ऐसा लगेगा कि आप अन्दर से सभी कुछ जानते हैं–जैसे कि आप नज़र रखते हैं, नज़र से देखते हैं, पर नज़र को आप नहीं देख सकते। नज़र हमारे सामने कभी दिखने वाली वस्तु के रूप में नहीं आती पर हम जानते हैं कि हम नज़र वाले हैं। यह ज्ञान 'ज्ञान' है। समझते हो न?

हंस–यह ठीक है। अब जरा सारी बात को फिर से दोहराओ।

सेनापति–हां, मैं सारी बात दुहराता हूं–

१. हमें जब पता लग गया कि हममें बुद्धि है, हम पशु नहीं हैं और हमें अपने धर्म का (कर्तव्यों का) ज्ञान हो गया। हम उस पर चलने लगे और शुभ कर्म करने वाले बन गये।

२. जब हमें मालूम चला कि हमारा स्व जो हमारे अन्दर है, दृश्यमान नहीं बल्कि इससे शक्ल में अलग है तो हम विचारवान हो गये।

३. जब हमें मालूम चला कि हमारा शरीर (देशकाल निमित्त वस्तु आदि से) बंधा हुआ है और फिर कीर्तन से या कुदरत में से। अकथनीय सुन्दरता आई है और जब उसकी झलक देखी तो हम पलक झपकने मात्र समय के लिए रसलीन हो गये। तब समझ में आया कि मन, बुद्धि से आगे भी कुछ और है। यह तो अनुभव की बात है कि कभी किसी कमाल के रसदायक कीर्तन से या अति सुन्दर की झलक के साथ लीनता का क्षण आता है। तब मानो मन और बुद्धि लीन हो जाते हैं।

हंस–है...लीन! यह सुन्दरता क्या?

सेनापति–चित्रकार होकर पूछते हो कि सुन्दरता क्या। यही सुन्दरता जो हमें मोह लेती है, यही स्वतन्त्र करने वाली भी थी।

हंस–कैसे?

सेनापति–जब कोई अत्यंत सुन्दर वस्तु नज़र में आती है तो उसका पहला प्रभाव लीनता ही होता है। उस क्षण मानो मन बुद्धि स्तब्ध रह जाते हैं। मेरा तात्पर्य है कि क्षण-क्षण जानना, सोचना, अनुभव करना, तीनों काम नहीं होते। वास्तव में यह वह क्षण होता है जब हम स्व को पहचानते हैं। अनन्त से स्पर्श होता है। यह क्षण बहुत छोटा होता है। हम होश में आ जाते हैं। मन, बुद्धि सावधान हो जाते हैं और पहली आवाज़ निकलती है–कैसा आश्चर्य, कैसा स्वाद था! वाह! वाह!

इस क्षण को विस्माद कहते हैं। यह क्षण स्व को उठाकर अनन्त में डुबकी लगवाकर लाता है।

हंस–पर सुन्दरता को देखकर जीव उस पर झपटता है और उसी में फँसकर गलता रहता है।

सेनापति–जब सुन्दरता की अचानक झलक पड़ती है तो तृष्णाएँ स्तब्ध रह जाती हैं और स्व विस्माद के धक्के से अनन्त में आ जाता है, पर जब होश में आता है तो उस वस्तु को, जिससे सुन्दरता प्रकाश में आयी है, उसे प्राप्त करने और भोगने की कोशिश करता है, तब वह तृष्णा में पड़ जाता है, उस समय वह बंधा हुआ होता है। सुन्दरता से लीनता की उमंग लेकर हमें ऊंचा होना है। उसकी प्राप्ति, उस पर अधिकार अर्थात् तृष्णाओं में नहीं पड़ना है।

हंस–फिर यह तो अचानक घटित होने वाली घटना हमारे अधिकार से बाहर हुई। तप, हठ तो हमारे वश में है। फिर विस्माद को वश में कैसे करें।

सेनापति–इस अचानक घटित झलक से हम समझ गये कि हम जो खुद को देशकाल में दृश्यमान होते हुए उससे एकाकार समझ रहे हैं, उचित नहीं है और अदेश अकाल अवस्था हमारे अनुभव में आ गयी है। अब उसकी प्राप्ति के लिए मार्ग है, उस अनन्त से विश्वास, उसकी प्रशंसा के भाव को हृदय में धारण करना, कीर्तन करना उसके स्मरण में मन लगाना, ऐसे लिव लग जाती है, यह लिव हमें अनन्त में ले जाती है।

हंस–पर प्रवृत्ति में बैठे हुए, सुख-दुख आवश्यकताएँ तृष्णा को वेग देगी, फिर मुक्ति कैसे? अंत त्याग मार्ग पर ही चलना पड़ेगा।

सेनापति–मनुष्य का स्वभाव ग्रहण का है, त्याग उसके स्वभाव के विरुद्ध है। स्वभाव के विरुद्ध कठोर प्रयत्न शरीर और मन को कई बार रोगी बना देते हैं। इसलिए सतिगुरू ऐसा मार्ग बताते हैं जिससे शरीर और मन स्वस्थ, निरोग रहें और स्वभाव में भी परिवर्तन आ जाये। वह मार्ग है लिव का। (परमात्मा में लीनता।) फिर आपका आशय है कि लिव वाले महापुरुष समाज में रहें जिससे साथ-साथ जगत उद्धार भी हो। उसका तरीका है कि स्वभाव और रुचियों को 'मारना नहीं' पर ऊद्धर्वगामी करना। आप कहते हैं–'पंजे बधे महाबली करि सचा ढोआ' महाबलियों को कत्ल नहीं करो, उनको बांध दो, अर्थात् सीमा में ले जाओ और उन्हें एक उपहार बना लो। भाव ऊद्धर्वगामी कर लो। उदाहरण के लिए मोह को लें इसे हम अपने स्वार्थ के लिए धारण करते हैं–उसके लिए योग्य-अयोग्य सभी काम करते हैं, पर यदि हमारा मोह परम-पुरुष से हो तो वह हमें ऊंचा करेगा। नाशवान पदार्थों और नाशवान सम्बन्धियों के मोह से ऊपर ले जायेगा। प्रिय और पदार्थ जब नष्ट होते हैं तो दुख होता है, वह अविनाशी है–'ना उह मरै न होवै सोगु (आ: म: १)। परम पुरुष से प्यार करते हुए तथा इस संसार में रहते हुए हम तृष्णा रहित मोह को समझ जायेंगे। जब परम-पुरुष के मोह में रहते हुए आप जीवों को सुख देंगे तब वह मोह कैसे कहलायेगा तब बिना खुद को कष्ट दिये यह त्याग होगा, प्रेम होगा।

इसी तरह पदार्थों का लोभ मत करो–उद्यम करो, कमा कर खाओ और लोभ धारण करो परम-पुरुष की प्राप्ति का, लोभ धारण करो सुखों और गुणों का, पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, उन्हें छोड़ना पड़ता है, पर शुभ गुण स्व के साथ जाते हैं, सुखी करते हैं और सुख देते हैं।

इस तरह विद्या ग्रहण करो, उत्तम ग्रंथ पढ़ो, खुद को सुन्दर कामों में लगाओ और बहते हुए पानी, चहचहाते पक्षियों, खिले हुए फूलों, चमकते तारों से प्रशंसा का रंग लो और परम-पुरुष से प्रेम करो। इस तरह काम स्वतः वश में हो जाता है। उसकी सारी शक्ति उच्च ख्यालों में व्यय होती है और यह महाबली वश में होकर चलता है और विचारों को उच्च मंडलों में उड़ने देता है।

क्रोध करो पापों से। निम्न रुचियों पर अधिकार पाने के लिए उन पर क्रोध करो और कहो कि मैं उत्तम आत्म वस्तु बनकर ऊंचा उठूँ। नीची रुचि में जाना मेरा धर्म नहीं। ऐसा अहंकार करो कि मेरा स्नेह परम-पुरुष से है और कभी नीच कर्म करने के लिए खुद को नीचा नहीं कर सकता। इस तरह अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों पर, जो इन्सान पर अधिकार रखती हैं, उन पर इन्सान

का अधिकार हो जायेगा। इस तरह खुद को कष्ट दिये बिना, मनुष्य विकारों का स्वामी हो जायेगा और वे दास हो जायेंगी। ऐसे व्यक्ति पांचों विकारों को ऊर्द्धवगामी बना लेगा। गुरबाणी में इस तरह से कहा है–

आए प्रभ पहि अंचरि लागि॥
करहु तपावस प्रभ सरबागि॥७॥
प्रभ हसि बोले कीए निआंए॥
सगल दूत मेरी सेवा लाए॥
तूं ठाकुरु इह ग्रिहु सभु तेरा।
कहु नानक गुरि कीआ निबेरा॥ (प्रभाती, महला ५ असः १)

आप भाव समझते ही हैं कि हमने अरदास की है कि हे प्रभु यह पंच दूत बड़ा दु:ख देता है। प्रभु ने इन दूतों को मेरी सेवा में लगा दिया है और फैसला यह दिया है कि तू इस शरीर का मालिक है, ये सभी दास हैं इसी शब्द में बताया है कि गुरू जी ने हम इनसे कैसे बचाया। उत्तर दिया है–

'हम गुरि राखि लीए लिव लाए।'

परम–पुरुष में हमारी लिव लगाकर सतिगुरू ने हमें बचा लिया। लिव किस में लगवाई?

एक हमारा अंतरजामी॥
धर ऐका मैं टिक एकसु की सिरि साहा वड पुरखु सुआमी॥

इस एक में कैसे लिव लगाई।

अम्रित नामि मनु रहिआ अघाइ॥

परम–पुरुष के नाम अमृत में मन की तृप्ति होने से।

हंस (लम्बा सांस लेकर)–बहुत उत्तम है। मन शोक तथा उदासी में भी नहीं रहा, बीच में भी रहा और पार भी हो गया। (सिर हिलाकर) पर गृहस्थ में कठिनता जरूर है।

सेनापति–है, पर हंस जी। जिन बांहों ने अखाड़े में दूसरी बांहों को रोका नहीं, वे पहलवान नहीं हुई। जिसने गृहस्थ की कठिनाइओं को सहा, उनका मुकाबला किया, प्रयत्न किये उसमें आत्म बल बढ़ता है। अकेले बनों में जाकर बैठे रहने से व्यक्ति ढीला हो जाता है। गृहस्थ में रहते हुए प्रयत्न करने से बल मिलता है।

हंस–यह तो हुआ विचार, अब साधन पक्ष की बात करो। मूल साधन क्या है।

सेनापति–आदि गुरू ने कहा है–

गुरां इक देहि बुझाई॥
सभना जीआं का इक दाता सो मैं विसरि न जाई॥

अर्थात् एक दाता है जो सभी जीवों का पालन करता है, मैं उसे न भूलूँ। हे गुरू जी! यह बात मेरी बुद्धि में बैठा दो।

दसवें पातशाह का कथन है–

बिन हरि नाम न बाचन पैहै॥

पुनः–

संग्रहि करहु सदा सिमरन कउ।

परम पुरुष का स्मरण करना, उनकी प्रशंसा करना, उसका कीर्तन सुनना और करना। इस तरह लगातार करने से परम-पुरुष की याद मन में उत्पन्न हो जाती है। फिर उससे दूरी नहीं रहती। वह हर समय हृदय में बना रहता है। वह जीव को ऊपर उठाता है, श्रेष्ठ बनाता है। जीव परम पुरुष के आश्रय वाला विश्वास वाला बन जाता है।

आदेसु तिसै आदेसु॥ आदि अनील अनादि अनाहति जुग-जुग एको वेसु।

इस भाव का स्वाद उसके मन में उत्पन्न होता है।

इस प्रकार हर समय एक प्रकार का अकथनीय रौ (गति) अदृश्य में से हमारे अन्दर आती है और हमारी तरफ से हर समय एक डोर या तार-सी अदृश्य से लगी रहती है। ऐसा लगता है कि कोई रसपूर्ण और बलपूर्ण ताकत हममें आ रही है, जो हमें स्वतन्त्र, बलवान और रस में रखती है। यह दशा उदासी नहीं, दिलगीरी नहीं या वैराग्य मात्र नहीं।

हंस–हैं! वैराग्य मात्र नहीं होती।

सेनापति–नहीं। मेरे अनुसार वैराग्य भी किसी रोग की दवा है, जिस प्रकार शंखिया ताप को तोड़ देता है, पर वह खुद अमृत नहीं। उसी तरह वैराग्य आदि भी दवा हैं जो कर्मों की कालिमा को दूर करते हैं। पर लिव अमृत है, अरोग्यता हे, रूहानी जीवन है।

हंस–क्या इस दशा में फिर से ग्रहण की दशा नहीं आ सकती? आप जानते हैं कि ग्रहण पतनशील होता है?

सेनापति–ठीक है। यह अवस्था ग्रहण की है, पर ग्रहण माया, अनात्म, प्रकृति या पुद्‌गल का नहीं। जो पुरुष आठों पहर इस प्रयत्न में रहता है कि मेरा लगाव प्रभु से रहे, उसके अन्दर कोई दुश्यमान 'पकड़' पकड़ नहीं सकती। यह लगन उसे दृश्यमान से ऊँचा रखती है और दृष्टा में जोड़कर रखती है। हमारा हृदय जो अनन्त की तरफ हर क्षण लगाव रखता है ऊँचा होता है। उससे ग्रहण त्याग दोनों नीचे होते हैं। यदि वह कभी भूल करता है, गिरता है तो उसके अन्तर को ऐसी पीड़ा होती है जो पुनः लिव में आये बिना हटती नहीं। इस तरह साधन करता-करता वह दिनोदिन कम गिरता है और उसके अन्दर भविष्य में न गिरने का भाव बढ़ता जाता है।

इस लौं की दात जब मिल जाती है तब क्या स्थिति होती है–

कहिबो कउ सोभा नहीं देखा ही परवानु॥

और–

जिसु रसु आइआ सोई जानै। पेखि पेखि मन महि हैराने॥

इसका जो फल है वह अनन्त की प्राप्ति है–

कहै नानकु गुरपरसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ॥

(राम : अनंद २९)

हंस ने सोचकर कहा–मैंने जो इतने जोर लगाये वे पूरे नहीं हुए। स्व को अलग करता हूं पर होता नहीं। संकल्प द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म होकर भी बंधन नहीं टूटता। अब आपके कहने से लग रहा है कि यदि 'आदि अनील अनन्त' का आश्रय हो और अन्तर का ध्यान उससे लिव धारण करें तो जीव सर्वअनात्म से स्वतः ऊँचा रहेगा। बात दिल को लग रही है। तभी आप जैसे विद्वान पुरुष इस राज-द्वार की शरण में हैं।

सेनापति–बर्तन लेने से पहले ठोक कर देखते हैं, फिर यह परमार्थ का शौक तो सिर-धड़ की बाजी है। यदि यहाँ से कुछ मिलता नहीं, तो इतने लोग यहाँ शरण क्यों लेते?

हंस–आपके मन की अब क्या दशा है?

सेनापति–मैं अभी कच्चा हूं, भूलता हूं, गिरता हूं, पर वैसे लगातार स्मरण में रहता हूं, सावधान रहता हूं, अन्तर को वाहिगुरू की तरफ लगाकर रखता हूं। एक बल, ताकत और प्यार की रौ प्रतीत होती है स्व ऊँचा और प्रसन्न रहता है। एक 'है' का भाव बना रहता है। काम-काज में व्यस्त रहने के बाद जब खाली होता हूं तब यह रौ तेजी से चल पड़ती है बुरे कर्मो से दूर रखती है और शुभ कर्मों की ओर ले जाती है। बुराई उत्पन्न हो तो अन्तर की लिव टूट जाती है, उससे रसहीनता उत्पन्न होती है–इसलिए रौ बुराई को उत्पन्न नहीं होने देती।

हंस–हमारे मार्गों से यह प्राप्ति सुगम है। रज गुण यहाँ प्रधान है, पर जो प्राप्ति आप बताते हैं और जो उदाहरण मैंने यहाँ देखे हैं वे सत्गुण सुख वाले हैं।

सेनापति–नहीं, यहाँ सत्गुण प्रधान है। हमें केवल सत्गुण की समझ नहीं। हमने नाम सुने हैं उनका हमें अनुभव नहीं। आप या अन्य शास्त्रज्ञाता तीनों गुणों को कैसे समझते हो। जैसे मैं समझता हूं आपको बताता हूं। रजोगुण के समय मन काम-काजों में, उद्यम में लगता है, परन्तु सतोगुण के समय मन सुख और आनन्द में जाता है। रहस्य यह है कि जब वाहिगुरू से लिव लगी होती है, चेतना के 'पैर' रजोगुण की अटारी पर रहते हैं और वास सतोगुण में होता है और उड़ान तुरीया में बजती है। सतोगुण के रंगों की तरंग बदलती हुई कभी तीखी और कभी मन्द होती रहती है। पर रजोगुण के ऊपर से पैर नहीं उखड़ते। हम जो भूल करते हैं और संसार

में लोग आम करते हैं वह यह है कि हम रजोगुण को विकारी भाव के रूप में लेते हैं, और उसे बुरा कहकर जिस टिकाव की तरफ हम जाते हैं वह तमोगुण के दारिद्रय और आलस्य में हमें ले जाता है और हम उस तमोगुण दारिद्रय को ही सतोगुण समझने लगते हैं। जिसे हम एकाग्रता या टिकाव समझते हैं, वह वास्तव में सतोगुणी प्रभाव नहीं है, हमारा रुख 'अनन्त चेतन' की तरफ नहीं होता, वह तो रजो से भी नीचे तमों में ले जाता है। सतोगुण के लक्षण हैं– हल्कापन, स्वच्छता, निर्मलता, ऊँचापन और रस स्वाद। रजो से मेरा भाव उत्साहवृत्ति से है। गृहस्थ में कठिन काम युद्ध है, जो देश की रक्षा के लिए सतिगुरू द्वारा किया जा रहा है। सतिगुरू जी उस काम को उमंग तथा उत्साह से निभा रहे हैं। यह काम भी रूहानी जीवन की हिलोरों में ही सम्पन्न होता है। यह थोड़े तमोगुणी नहीं, इनके पैर रजोगुण पर टिके हैं, इनका शरीर सतोगुण में खड़ा है, क्योंकि ये नामी लोग हैं। वीरता का मूल है उत्साह, उत्साह तमोगुणी नहीं है, वह रजोगुणी हैं जो सतोगुण का स्पर्श करता है। यह नामी (परमात्मा का नाम-स्मरण करने वाले) लोग हैं। वे तमोगुण के आलस्य और दरिद्रता में नहीं जाते। वे रजो से ऊपर उठकर सतो में जाते हैं और सांई के साथ जुड़कर तुरोयावस्था को प्राप्त करते हैं। यह स्व को वारते हैं और जगत से लगाव नहीं रखते इसलिए 'वीतराग' हुए।

हंस–ठीक है। अब मैंने समझ लिया है, पर मेरी लिव कैसे लगे? मैं समझ गया कि गाय है–उसके चार पैर हैं, पूँछ है, पश्चिम से आयी है काली या धौली है, पर इतने से उसका दूध गले से नीचे नहीं उतर गया। अब दूध भी पिलाओ।

सेनापति–ठीक कहा है। साधु लोगों का मन तो २४ घण्टे संसार के ख्यालों में बसता है, हर पल आम बातें ही सोचते हैं, पंच विकारों के भाव मन में उमड़ते हैं, इसलिए मन तो रहा विकारग्रस्त, माया के जाल में फँसा हुआ, और विचार रहे मैले। कथा करते समय विवाद करते समय या जिज्ञासुओं से बातें करते समय, कैवल्य, मोक्ष, ज्ञान, ब्रह्म, समाधि की बातें करते हैं, पर उसका कोई लाभ नहीं। अनन्त विचार जो मन में उभर रहे हैं उनमें यदि किसी क्षण ज्ञान का विचार उभरा तो वह आंधी के समान आता है और निकल जाता है। यह मन की लिवहीन अवस्था है, इस मन पर तृष्णा का राज है, यह मन की निम्न और दयनीय अवस्था है। सतगुरू जी बताते हैं कि यह निम्न हो जाना है।[१]

यदि मन में विचार ब्रह्माकार है, तो वह सफल ज्ञानी है। यदि अन्तर का अनन्त से निरन्तर लगाव है तो उसे योगी कह सकते हैं। यदि लगातार लिव के लिए प्रयत्नशील है तो वह जीवन में आ रहा है, उसे जीवदान मिला है, वहाँ लिव लग रही है। जहाँ लिव है वहाँ शक्ति है, सुख है, रस है, वहाँ पापों से मुक्ति है। लिव वाला परम पद पाता है–

१. साची लिवै बिनु देह निमाणी।। (अनंद)

कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव
लागी तिनी बिचे माइआ पाइआ।

मन सभी कुछ समझता है, पर आठों पहर सांसारिक विचारों-भावों में रहता है। उसका ज्ञान, ध्यान, भिन्नता, पुरुष, पुरुष विशेय जीवन-ब्रह्म, आत्मा, शून्य या सच, जो कुछ भी कहें वह केवल नाम है। उसने ये नाम अदृश्य, अनजाने अनसमझे और जो मिला नहीं है उसके रखे हैं। वह शेष संसार की तरह माया में है अनात्म परायण है। ठीक है कि नहीं? पर जिस दिल की लगन सांई की तरफ है उसमें प्यार हिलोरे लेता है, वह अन्य विचारों को उत्पन्न होने से रोकता है और अन्तर का रुख सांई की तरफ रखता है। अब आत्म मंडल की तरफ जा रहा है, वह रुहानी जीवन की तरफ कदम रख रहा है, जबकि यह संसार में बैठा है।

हंस–स्पष्ट हो गया। मैं समझ गया। सारी आयु बीत गयी–सदाचार, पवित्रता, व्रत, तप हठ करते, ज्ञान-ध्यान भी समझा, पर रस नहीं मिला। स्व से ऊपर न उठ सका, ऊंचा उठने का प्रयत्न नहीं किया। व्रत, नियम, संयम सीखे पर हर क्षण मन सांसारिक विचारों में भी घूमता रहा। हर क्षण का भाव-विचार जो हर क्षण की भूल है, अन्दर से नहीं निकाली और उसे एक बिन्दु की ओर हर क्षण को एक रुख देकर सदा की लिव में नहीं लगाया। 'सो' और 'सो मैं विसरि न जाई' यह बात कभी मन में नहीं आई। क्योंकि परम आत्मा का ख्याल ही छोड़ दिया। अब दिखायी दे रहा है कि परम-आत्मा से लिव लगाने से जीव आत्मा सुखी हो जाती है और परमात्मा की कृपा में आती है। अब मेरी भी लिव लगवा दो।

सेनापति–मैंने सतिगुरू के आगे विनय करने का साहस किया है, पर लिव के मालिक तेरे आचरण से संतुष्ट नहीं–कह देते हैं–'न भाई! वह क्षमाहीन है। अब बताओ मैं क्या करूं? तुम अपने जीवन में टटोलो, शायद कोई कर्म ऐसा किया हो?

हंस (ठंडा सांस लेकर)–याद नहीं आता।

सेनापति–अब मैं चलता हूँ। समय बहुत हो गया है। फिर कल मिलेंगे और इकट्ठे हजूरी में चलेंगे।

: ५ :

संध्या का समय है। आज गुरू के बाग दरबार लगा हुआ है। बड़े-बड़े विद्वान बैठे हैं। संगत सज रही है।

सतिगुरू आये और सिंहासन पर बिराज गये। सभी ने माथा टेका। संगत, सिखों, प्रेमियों को दर्शन दिये।

इतने में संन्यासियों के दल के प्रतिनिधि ने उठकर अदब सहित विनय की–

आपने संन्यास के स्थान रजोगुण और मथयिक बातें सिखा दी हैं। हे अवतार शिरोमणि जी! जगत का कल्याण कैसे होगा।

सतिगुरू भाई! हमने सुरति (सुधि) का संन्यास सिखाया है–

रे मन ऐसो कर सन्यासा॥
बन से सदन समै कर समझहु मन ही माहि उदासा॥
जत की जटा जोग को मजन नेम के नखन बढाउ॥
गयान गुरू आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाउ॥
अलप अहार सुलप सी निंद्रा दया छिमा तन प्रीति॥
सील संतोख सदा निरबाहिबो ह्वैबो त्रिगुण अतीत।
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सिउं लिआवै,
तबही आतम तत को दरसै परम पुरुख कहि पावै।

(रामकली पातशाही १०)

साधु–सुरति का संन्यास, मेरी समझ में नहीं आता।

सतिगुरू–क्योंकि आपने संन्यास को फकीरी (फकीरी से तात्पर्य उत्चावस्था है, भीख मांगना नहीं) समझ है। संन्यास फकीरी नहीं, वाहिगुरू के प्रेम में बसना फकीरी है। मन का संसार के प्रति लगाव से छूटने का नाम संन्यास है। संसार को छोड़ देना संन्यास नहीं। अब सोचो जो लगातार इलाही लगन में रहते हैं उनका अन्तर विकारों की पकड़ से स्वत: ही निकल जाता है, वे पक्षी की तरह मुक्त आसमान में उड़ाने भरते हैं, फिर वे संन्यासी हुए कि नहीं।

साधु–सच कहा है, पर सांई की तरफ आन्तरिक लगन इनमें हो नहीं सकती।

सतिगुरू–हो नहीं सकती? यह हो रहा है, अब देख लो, आगे जमाना देखेगा। मेरे संन्यासी तन, मन, धन सभी कुर्बान कर देंगे, पर किसी अर्थ? प्रजा और धर्म के लिए। ये सभी नाम जपते हैं। नाम स्मरण से परम-पुरुष की तरफ मन लगता है–यह लगन ही लिव बन जाती है। लिव वाले माया में रहते हुए भी कमल की तरह निर्लिप्त होते हैं। इनके अन्दर माया का मोह नहीं है–जबकि वे माया में दिखायी दे रहे हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये माया का त्याग कर देंगे–इनका हृदय इससे कांपेगा नहीं। जो विकारों की पकड़ में हैं वे परमात्मा के प्रेम से रहित हैं। प्रेमहीन मेरे नहीं हैं और न मैं उनका हूं।

साधु–आप वैसे ही त्याग करवा दें जिससे हमें भ्रम न हो। सभी साधु सम्प्रदाय खुश रहें कि आपने संन्यास की मर्यादा को तोड़ा नहीं।

सतिगुरू–भाई संत! माया निर्वाह है। संन्यासी होकर भी आपका निर्वाह माया से ही होता है। हमारे सिखों का गृहस्थ जीवन में रहते हुए निर्वाह माया ही करती है। त्यागियों में अब आलस्य आ गया है, सिखों में उद्यम है। आलस्य

तमोगुणी है, उद्यम उत्साही में होता है। नाम स्मरण उद्यम से होता है। इस तरह नाम स्मरण करने वाला और उद्यमी रजो से ऊपर उठकर सतो में जाता है। उद्यमी पुरुष यदि नाम जपे, स्मरण करे, सावधान रहे, लिव में जी उठे, उसका मन सतोगुण में जाता है। उसका अहंकार दूर होता है। उसकी उड़ान तुरीय में जाती है। उसका प्रभु से मिलन होता है–

उदमु करेंदिआ जीउ तू कमावदिआ सुख भुँचु।
धिआइदिआ तू प्रभू मिलु नानक उतरी चिंत॥ (गुजरी वार म: ५)

वह गृहस्थी दीखता है, पर उसके अन्दर संन्यास होता है।

एह माइआ जितु हरि विसरै मौहु उपजै भाउ दूजा लाइआ।
कहै नानकु गुरू परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइया पाइआ॥२९॥
(अनंद)

हमारे सिख प्रभु की याद में वास करते हैं, हरि को विस्मृत नहीं करते, इसलिए वे माया के अधीन नहीं हैं। सतिगुरू ने माया का स्वरूप भूल बताया है। जो परमात्मा की याद में रहता है, वह भूल में नहीं हैं, जो भूल में नहीं है वह माया में नहीं हैं। हमने अपने गृहस्थियों को गृहस्थ के सभी काम करते हुए–खेती, शाही, सिपाही, राजगी, मजदूरी, हर स्थिति में लिवधारी बनाया है। सांई से मन की लगन और लिव सच्चा संन्यास है। सिखी है तो ज्ञान है–

जिनि अंतरि हरि हरि प्रीत है
ते जन सुघड़ सिआणे राम राजे॥

इसी प्रकार की वार्तालाप हो रही थी कि सेनापति आ गये और माथा टेक कर बैठ गये। सेनापति जी कुछ कहना चाहते थे कि सतिगुरू जी बोले–भई सज्जन क्षमाहीन है, पक्की बात समझ।

सेनापति–सत्य कहते हैं।

गुरू जी–कहो तो सच को दिखा दें। लो देखो।

फिर दया सिंह की तरफ देखकर बोले–दया सिंह, घोड़े पर बैठ जा। पालकी साथ ले लो, पहले ऊपर फिर दाई तरफ जाना, वहाँ बड़ी चट्टानों के पीछे एक गुफा-सी है, वहां एक तपी है उसे यहां ले आओ। वह निर्बल है, पालकी में बैठ कर उसे बड़े ध्यान से लाना।

आदेश होते ही भाई जी चले गये। संगत देख रही थी कि अब सतिगुरू क्या कौतुक करते हैं। आपने सेनापति से कहा–अपने मित्र को लाओ। यह सुनते ही संगत के पीछे दरवाजे की ओट में खड़े हंस जी को सेनापति ले आये। हंस ने नमस्कार की और बैठ गया। कुछ समय वार्तालाप होती रही तभी दया सिंह जी

आ गये। एक अति निर्बल व्यक्ति पालकी में आया। उसकी आँखें धस गयी थीं, गालों में गड्डे पड़ गये थे—शरीर निर्बल था।

सतिगुरू ने सिंहासन से उतर कर पालकी में से उसे उठा लिया और गोद में लेकर सिंहासन पर बैठ गये। अजेय शूरवीर सतिगुरू की आंखों में आंसू आ गये। उस हड्डियों के पिंजर को प्यार करते हुए बोले—तू पापी नहीं। तेरे पाप मैंने क्षमा कर दिये। तू पुण्यात्मा है, तू पापी नहीं। तूने कुदरत के हुकुम को माना है, कुदरत और कादर ने पाप नहीं लगाया था। अब सावधान हो जाओ। सतिगुरू उस पर कृपा की वर्षा कर रहे थे। संन्यासी, योगी, गृहस्थी, उदासी, हठी, तपी, प्रत्येक मत के पंडित, गुणी, ज्ञानवान और सिख संगत देख रही थी कि सतिगुरू किस मुर्दा से प्राणी को इतना प्यार कर रहे हैं।

सतिगुरू जी ने संकेत किया! दूध आया। उस निर्बल प्राणी को सतिगुरू जी दूध देने लगे। अपने हाथ से एक-एक चमचा उसे पिला रहे थे, सान्तवना दे रहे थे और प्यार कर रहे थे। रंग बदल रहा है, उस शव-से चेहरे पर, होठों पर मुस्कराहट उभरी। पता नहीं कितने समय बाद उन होठों पर मुसकान आयी है।

वाह 'मिरतक कउ जीवालनहार।। भूखे कउ देवत आधार' सतिगुरू तुम धन्य हो। नीचों का तू संगी-साथी है, दुखियों का तू मित्र है, पापियों का बेली है, निर्बलों की शक्ति है, तुझ में कृपा प्रेम ने कमाल पाया है, तुझ में सच्चे धर्म ने रंग दिखाया है, तुझ में रबी (परमात्मा सम्बन्धित) गुण प्रकट हुए हैं।

जब उस व्यक्ति को सच्चे सतिगुरू का प्यार मिला, तो उसका मन उमंग से भर गया। सच्ची खुशी आ गयी, बल मिला, वह उठकर बैठ गया और चरण पकड़ लिए—हे जीना, हे अरहंत, हे बुद्ध, हे विष्णु, तू मेरा पारब्रह्म है। तू साक्षात् ब्रह्म है, पर मैं पापी हूं, मुझे मत छुओ। आपने क्षमा किया, मुझे क्षमा मिली, पर मैं पापी हूँ, पाप की मैल मेरी रग-रग में मेरी आत्मा में समायी है।...हे दीन बंधु तू भगवान है। क्या मुझे क्षमा मिल गयी।'

सतिगुरू ने कहा—हे वत्स! तुम्हें क्षमा मिली। तुम पापी नहीं हो, तुम पापी नहीं हो।

इस प्रकार सच्चा प्यार देखकर सतिगुरू उसे पूर्ण चेतना में ले आये। अब वह खुद धीरे-धीरे चल कर नीचे उतरा। उसने साष्टांग प्रणाम किया और एक स्त्रोत का उच्चारण किया।

सतिगुरू ने कहा—तुम संतिसंग के बैकुण्ड में हो। उठो, सभी नामी लोगों को अपनी व्यथा सुना दो।

तपी (मन्द आवाज में बोला)—मैं सूरत शहर का वासी हूं। मेरी मां और पड़ौसिन दोनों सखियां थी। उन्होंने प्रण किया कि यदि घर पर पुत्र हो तो उनके मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये जायें, यदि लड़का-लड़की जन्म लें तो दोनों का

विवाह किया जाए। मां के घर मैंने जन्म लिया और सखी के घर एक कन्या ने जन्म लिया। हम इकट्ठे खेलते हुए बड़े हुए। माताएं मिलतीं तो हमारा मिलन भी होता। बचपन से ही हमारा एक-दूसरे से प्यार हो गया। अभी हम दस-बारह साल के ही थे कि हमारी शहर कुछ साधु आये। मर्दों-स्त्रियों के लिए अलग-अलग मकानों में कथा होती थी। हम भी सुनने के लिए जाते थे। कथा का मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैंने प्रण किया कि मैं दुख रूपी संसार में नहीं रहूंगा और साधु हो जाऊंगा उस कन्या पर भी ऐसा ही प्रभाव पड़ा। उसने भी स्त्रियों के समागम में ऐसी ही प्रतिज्ञा की। चार महीने बाद ही हम साधु टोली के साथ चल पड़े। स्त्रियों के साथ वह कन्या और पुरुषों के साथ मैं। हमें पता लगा कि अब हम आपस में कभी नहीं मिलेंगे—यह हमारी प्रतिज्ञा का नियम है। हम एक पहाड़ पर पहुंचे। पुरुष साधुओं के मठ में मैं ओर स्त्रियों के मठ में उस कन्या को प्रवेश मिला। मुझसे कई व्रत धारण करवाये गये। फिर विद्या प्रारम्भ हुई, उग्र तप के ये संयम धारण किया, अनेक कष्ट सहन किये। यह उपदेश रोज मिलता था कि पाप कर्म नहीं करना, आत्मा की मैल ऐसे ही निकलेगी और वह स्वच्छ होगी। व्रत, उपवास और तप करते हुए मैं बीस साल का हो गया।

पर कुछ समय से अब मैं कुछ और ही हो गया था। देखना, सुनना, खाना, सूंघना आदि भाव तो मुझ में पहले थे, पर अब एक और रस, एक और अच्छा प्रकट हो गयी थी। मेरे शिक्षक ने मुझे बताया कि यह काम है, यह शत्रु है, इसे मारना परम-धर्म है। जो साधन उन्होंने बताये मैंने किये। चन्द्रायण व्रत कई बार किये। कई दिन सिर्फ एक तोला बादाम रोगन लेकर मैं जीता रहा।

इस सारे संयम में मुझे वह कन्या, मेरी बाल सखि नहीं भूली। कभी-कभी उसकी याद आ जाती थी। जब मैंने यह बात साधुओं को बतायी तो उन्होंने मुझसे और कठिन तपस्या करवाई और व्रत रखवाये। एक बार मैं जंगल में फल पत्ते इकट्ठे करने के लिए गया। संयोग से वह कन्या भी उसी वन में कुछ लेने के लिए आयी हुई थी। अचानक हम आमने-सामने आ गये। आमने-सामने क्या हुए मानो बिजली गिरी। दोनों एक-दूसरे को देखते रह गये, दोनों तरफ से आकर्षण बढ़ा, हम एक-दूसरे से बातें करने लग पड़े और अपने सुख-दुख, दर्द-पीड़ा कहते सुनते रहे। हमें बातें करते हुए कितना समय बीत गया, हमें ध्यान ही नहीं रहा। हमें बातें करते हुए मठ की एक साध्वी ने देख लिया था। वह हमें होश में लेकर आयी। हमें पता नहीं वह कब से देख रही थी। उसकी आँखें रक्तिम थी, उसका क्रोध दरिया के किनारे तोड़ रहा था, उसकी डांट बिजली की कड़क के समान थी। उसने कहा तुम पापी हो। मैंने चरण पकड़ कर कहा—मुझे पाप की कोई खबर नहीं। हम बाल सखा हैं, इकट्ठा खेलते थे, वर्षों बाद मिले हैं, विवश थे, परस्पर बातचीत की है और हमें कुछ पता नहीं। उस भिक्षुणी ने कहा—तुम घोर पापी हो। पाप कर्म करके शिक्षिका से झगड़ते हो।

हम अपने मठ गये। उस लड़की के साथ क्या हुआ—मुझे पता नहीं, पर जो मेरे साथ हुई आपको क्या बताऊँ। बड़े क़ठिन तप करवाये गये। सभी साधुओं की सेवा, चन्द्रायण व्रत, कई रातों का जागरण, तथा कई अन्य काम लिये गये। पर फिर भी मेरा नाम पापी ही पड़ गया। हमारे मठ के एक बड़े साधु थे उनका नाम था हंस जो पहले कवि और चित्रकार भी रह चुके थे, पर फिर साधु बनकर उग्र तप करके कठ के शिरोमणि बन गये थे। उनसे मैंने कहा कोई उपाय बताओ जिससे मैं पापी न रहूँ। जिससे आप सभी मुझे कहो कि मैं अब पापी नहीं रहा। वे जानते थे कि मैंने पाप कर्म नहीं किया। वास्तव में मैं इतना ही पापी था कि एक कन्या जिसे मैं बचपन से जानता था या जिसे साथिन समझ कर प्यार करता था, काफी समय बाद देखकर प्यार के भाव में बह गया और कुछ समय उससे बातें करता रहा था। केवल बातें की थीं और कोई भूल मुझसे नहीं हुई थी। हंस ने कहा—मैं जानता हूँ कि तुमने कोई पाप नहीं किया, तुमने परिचित होने के कारण केवल बातें की हैं, पर स्त्री से रुचि के साथ बातें करने से निर्मलता नहीं रहती। इस तरह तेरा व्रत भंग हो गया है। मैंने कहा—यह पाप किस तरह मिट सकता है? तो कहने लगे या तो आँखों को मिटा दे या बारह बरस घोर तप कर और व्रत धारण कर। मैं सोच में पड़ गया। पहले तो जोश में मैं आँखें फोड़ने के लिए तैयार हो गया, पर हृदय नहीं माना। तब मैं बारह वर्ष की तपस्या की आज्ञा लेकर वहाँ से चुपचाप चला आया। मैं अपने मत के बड़े-बड़े ठिकानों पर गया, बड़े-बड़े तपीश्वरों से मिला, सभी ने कहा तुम पवित्र नहीं हो। तुमने प्रण भंग किया है, तुमने स्त्री से प्रेम-भव में वार्तालाप किया है। मैं भटकता रहा, अपने तप के खोज जाने पर रोता रहा। वनों, पहाड़ों में भटकता यहाँ आया। छः महीने से गुफा में पड़ा हूँ। पहले मैंने संकल्प किया कि वृक्ष पर चढ़ कर छलांग लगा दूँ और देह का अन्त कर दूँ, क्योंकि मेरे मत के एक साधु ने बताया था कि बारह वर्ष तपस्या कर लेने के उपरान्त ऐसा करना कल्याणकारी होता है। मैंने घर छोड़ने से आज तक के समय को गिना तो बारह वर्ष से ऊपर हो गया था। वृक्ष पर चढ़ने की शक्ति नहीं रही थी। पर सच यह है कि इतना निर्बल और दुखी होकर भी मरने को मन नहीं कर रहा था। वास्तव में मैं यहाँ गुरू जी का नाम यश सुन कर आया था। पर लज्जावश उपस्थित नहीं हो सका। आज पता नहीं मुझ पर कृपा कैसे हुई? मुझे बुलाकर आपका हुकुम हो गया कि मैं पापी नहीं हूँ। आज मैं खुश हूँ। पर अभी अंग कांप रहे हैं।

सतिगुरू बोले—यह है हंस की रची हुई प्रत्यक्ष मूर्ति। कागजों, कपड़ों पर सूर्य की निर्मल मूर्ति बनाता है, पर सांई के रचे तख्तों (दिलों) पर 'पापी' मूर्ति की रचना करता है! सेनापति। देखो क्या इस मूर्ति की रचना क्षमा से हुई है? कीड़े-मकोड़ों की दया पर पली है, इन्सान ने इसे किस अवस्था में पहुँचा दिया

है, तु खुद देख लो। सेनापति! यह भी समझ लो कि आदि आचार्यों के मन्तव्य इस सीमा तक कभी नहीं जाते जहाँ तक उनके अनुयायी उसे खींच कर ले जाते हैं और सुख देने के स्थान दुख देते हैं।

यह सुनते ही हंस काँप गया—हैं! मेरे उपदेश ने इतना कष्ट दिया। हृदय द्रवित हुआ वह उठ कर तपी के पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा—मुझे अब समझ आया कि मैं क्षमाहीन हूँ। पापी तुम नहीं, मैं हूँ। तुम मुझे क्षमा कर दो, गुरू जी से क्षमा दिलवा दो। मैं खुद इस कच्ची दीवार को धो-धो कर थक गया हूँ।

उस निर्बल ने हैरान होकर हंस की तरफ देखा—पहले तो कांप उठा, पर फिर साहिब जी की तरफ देखकर, साहस करके बोला—वे बैठे हैं शिरोमणि जी, शरणपाल जी, बख्शिंद जी! इन्सानी दिलों के महरम जी!

दरबार में यह अचरज भरा दृश्य था। सेनापति, नन्द लाल तथा अन्य कवि और पण्डित आश्चर्य चकित थे।

सतिगुरू—भाई खालसा जी सुनो, सच्चे (स्वच्छ) रहो, पर केवल स्वच्छता के प्रयत्न हमें वहमों में ले जाते हैं। केवल स्वच्छता या फोकी स्वच्छता जीवन का प्रयोजन नहीं है। सतिगुरू ने संकेत किया तो रागियों ने यह शब्द गया—

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे॥
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे॥१॥
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मैं कीए करम अनेका॥
हारि परिउ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका॥रहाउ॥
मोन भइओ कर पाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही॥
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही॥२॥
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए॥
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए॥३॥
कनिक कामनी हैबर गैवर बहु विधि दान दातारा॥
अंनि बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीअै हरि दुआरा॥४॥
पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता॥
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीअै इह जुगता॥५॥
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ॥
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ॥६॥
राज लीला राजन की रचना करिआ हुकुम अफारा॥
सेज सोहनी चंदन चोआ नरक घोर को दुआरा॥७॥
हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा॥
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना॥८॥

तेरो सेवकु इह रंगि माता॥
भइओ क्रिपाल दीन दुख भंजनु हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता॥
रहाउ दूजा॥१॥३॥ (सोरठि म: ५)

फिर सतिगुरू ने कहा–जिनका मन लिव में जीता है उनके अन्दर परमात्मा की रौ आती है, वह रौ ही सच्ची पवित्रता है शेष पवित्रताएँ ख्याल मात्र है। हमने पाप नहीं करने, लोगों का भला करना है, पवित्र रहना है, पर कल्याण स्मरण में है"।

भाई हंस! जब ये बच्चे थे–बारह वर्ष के भी नहीं थे–इन्हें क्या पता था कि इनके अन्दर से एक और शक्ति ने उत्पन्न होना है। जिसने हमें कुछ और ही बना देना है। उस ताकत के पैदा होने से पहले यह बच्चा था–क्या वह व्रत धारण कर सकता था? जिस आन्तरिक शक्ति का उसे ज्ञान नहीं था, उस सम्बन्ध में व्रत और प्रण क्या? इससे पहले दोनों के माता-पिता प्रण कर चुके थे कि ये स्त्री-मर्द बनेंगे, विवाहित जीवन जियेंगे। यदि आपका व्रत कुछ मूल्य रखता है तो सोचो कि आपने उनके माता-पिता का व्रत भंग नहीं करवाया और बच्चों के व्रत को मर्द-व्रत समझा जब ये मर्द नहीं थे आपने इनके व्रत को मर्द-व्रत समझा। फिर केवल बातें करने के अपराध में ऐसी सजा दी कि वे मर मिटे। वाह पुण्य और वाह धर्म! वाह व्रत और वाह संयम! आदि आचार्यों को आपने समझा नहीं।

खालसा जी! गुरू का हुकुम है–

दूखु न देई किसै जीअ पतिसिउ धरि जावओ॥

पर साथ ही हुकुम है–

सरब धरम महि स्रेसट धरमु॥
हरि को नामु जपि निरमल करम॥

हां जी–

जपि जन सदा सदा दिनु रैणी॥
सभ ते ऊच निरमल इह करणी॥

काम करो, श्रम करो, कर्तव्य का पालन करो, पर उठते-बैठते, काम करते, हँसते खेलते अन्तर का सम्बन्ध अनन्त से रखो और उसकी प्रशंसा में झूमो–

नानक सतिगुरू भेटिऐ पूरी होवै जुगति॥
हसंदिआ खेलंदिया पैनंदिआ खावंदिआ विचै होवै मुकति॥

गुरू जी ने हंस की तरफ देखते हुए कहा–

पूरे गुर का सुनि उपदेसु॥

परब्रह्म निकट करि पेखु॥
सासि सासि सिमरहु गोबिंद॥
मन अंतर की उतरै चिंद॥

हंस चरणों पर गिर पड़ा–हे दाता! यह तपस्वी पापी नहीं, पापी मैं हूं। मुझे आज समझ आयी है कि मैंने ऐसे कई दिल पुण्य और नेकी के भ्रम में मुरझाये हैं। पर मैं दुखी-दीन शरण आया हूँ–शरण दो।

सतिगुरू ने तपस्वी को दो सिंहों के सुपर्द किया और कहा–इसकी सेवा करो। फिर हंस को आज्ञा दी कि उस कन्या को ढूँढ कर लाये। जिस निरापराध को केवल अपने बाल सखा से बात करने के कारण कष्टों में डाला गया।

: ६ :

कुछ समय बीत गया था। एक दिन गुरू जी का दीवान लगा हुआ था। हंस अपने साथ एक कुशकाय युवती को साथ लेकर आया। युवती नेत्रहीन थी जब उसे मठ में बताया गया कि मोह में आकर पुरुष से बात करना पाप है। तो धर्म की प्यासी ने अपने अपराध की निवृत्ति के लिए खुद को नेत्रहीन कर लिया। सतिगुरू ने युवती का स्वागत किया और कहा–

अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि॥
अंधे सेई नानका जि खसमहु घुथे जाहि॥ (राम: वार म॰ ३)

शूरवीर दाता ने उसके सिर पर प्यार का हाथ फेरा, अपना आदर्श समझाया, भ्रम दूर किये उसके रोम-रोम से नाम की ध्वनि निकली। वह सच्चे वाहिगुरू की लगन में लग गयी। उसे सच्ची पवित्रता दी और कहा–

हर समय उच्चावस्था में रहो, स्मरण करो, किसी को दुख न दो, बुरा मत करो, और सुरति परमात्मा में रखो।

हाँ, आज तप और हठ में मर मिटी नयनों से हीन युवती पर दाता ने कृपा की, उसके हृदय में नाम की रौ जाग्रत हुई, उसका मन प्रसन्न हो गया।

आज हंस पर भी कृपा हो गयी। हंस से हंस राज और फिर हंसराज सिंह बन गया। युवती को अमृत-पान कराया। शरण बेटा तो पहले ही शरण सिंह बन चुका था। वह अरोग्य और नाम का रसिया बन गया था। उसे बुलाया और कहा–यदि व्रत पालन करना है तो सच्चा धर्म और सच्चा प्यार यही है कि माता-पिता के प्रण की पालना करो, और मर्दों के सुखों को पूरा करो। सच्चा प्यार यही है कि कुरूप हो गयी, नयनहीन, पिंजर बन रही दीन के रक्षक और सुखदायी बनो। जगत से निर्भय हो जाओ। विपत्ति काल के मित्र बनकर दिखाओ, इसकी बाँह पकड़ कर रब के रास्ते पर चलो। क्षमा स्वरूप सतिगुरू की आज्ञा से उस दीन नेत्रहीन युवती के साथ सरन सिंह का विवाह सम्पन्न हुआ। वह दीन जिसे कोई

स्वीकारने को तैयार नहीं था एक प्यार वाला आश्रय मिल गया। दोनों वाहिगुरू के प्रेमी और सतिगुरू के प्यारे हो गये। सतिगुरू ने दोनों को गृहस्थ जीवन निर्वाह का मार्ग दान किया।

वाह! बख्शिंद महरम! हे इन्सान के हृदय की बात को समझने वाले मरहम! जगत की भूलें तुमने ही क्षमा की, तुमने ही स्त्री-पुरुष को पवित्र रखा। गृहस्थ में से विष को तुमने ही निकाला। गृहस्थ को तुमने ही प्यार किया और गृहस्थ में रहते हुए परमात्मा से मेल करवाया। धार्मिक और रूहानी व्यक्तियों को पैदा किया। धार्मिक, उत्साही, वीर, महाबली, खुले दिल वाले, प्रसन्न चेहरे वाले, जिनका दिल परमात्मा से जुड़ा हुआ है, रसिक और बैरागी, पूर्ण मर्द, सच्चे मर्द, सच्चे मर्दों को रचकर दिखाया, तुमने ऐसे लोगों के पंथ की स्थापना की, तुम धन्य हो। हाँ, त्यागियों, अवधूतों, संन्यासियों, तपस्वियों, व्रतधारियों को समझ तुमने ही दी। तुमने ही जीवित रहने के साधन दिये और मर रहे लोगों को साधना द्वारा जीवनदान दिया।

सूचना—अब बिलासपुर नरेश ने फिर मित्रता कर ली और उसका एक वकील 'परमा' गुरू जी के दरबार में आकर रहने लगा तथा उसने आयोजन किया कि सभी राजाओं का गुरू जी के साथ मेल हो जाये। इस राजनैतिक समाचार तथा आध्यातमिक प्रसार अनुकम्पा को आगमी प्रसंग में केवल बानगी मात्र दिया गया है।

❑ ❑

५७ पद्मा

: १ :

चंबा के राजभवन में एक राज कन्या अपने चौबारे में बैठी दहलीजों की ओर देख रही है। इसके वस्त्र रेशमी तथा जरी युक्त हैं। हाथ में एक पुस्तक है, जिसे उसने बीच में उंगली रखकर आधा बन्द कर रखा है। उसका चेहरा सुडौल, रंग गोरा, कान्ति प्रभावशाली है, कद लम्बा, शरीर पतला और शारीरिक रचना फुर्तीली तथा कोमल है। दहलीजों की ओर देखती हुई बहुत चिन्तित जान पड़ती है। इतने में अचानक आहट हुई। इसका भी रंग बदला! एक क्षण के बाद दुलारी के पिता श्री महाराज दहलीज में से आते दिखाई दिए। उठकर दुलारी ने सत्कार किया, महाराज ने उसे गले में लगाकर प्यार दिया।

राजदुलारी–पिताजी! आज तो पहला पहर भी बीत चुका है। आपने तो बहुत ही देर लगा दी। कुशल तो हैं न? मैं तो बहुत चिन्तित थी।

राजा–बिटिया! क्या बताऊँ और किसे दोष दूँ? हमारे ये पहाड़ी राजा तो कुछ समझते ही नहीं।

राजदुलारी–क्यों पिताजी! क्या गुरू जी के साथ फिर कोई झगड़ा किया है?

राजा–न इधर होते हैं, न उधर। न लड़ते हैं और न ही मेल मिलाप करते हैं। तुम्हें पता है कि भीम चंद के मरणोपरान्त अजमेर चंद गद्दी पर बैठा था, उसने झगड़ा किया था, पर अब उसने सुलह कर ली है।

राजदुलारी–अच्छा हुआ, नित्य प्रति का रार मिटा।

राजा–पर मुझे पता है कि यह सुलह नहीं कपट है, बिटिया! कपट छुपा नहीं रह सकता। पदमावती नाम था पदमावती किन्तु लाड से पिता उसे कभी पदमंती तथा कभी पदमा करके सम्बोधित करते थे।

पदमावती–क्या कपट किया है?

राजा–अजमेर चंद ने सुलह कर ली है। उन्हें धर्म का अगुआ तथा राजा मान लिया है और कहा है कि आप आनन्दपुर में राज्य कीजिए। हम आपको स्वतन्त्र शासक मानते हैं और राजाओं को प्राथानुसार आपके पास अपना प्रतिनिधि भेजते हैं, ताकि राज्यों के हमारे तथा आपके मामले उस दूत द्वारा ठीक रहें, सुलह सफाई

से उनका समाधान होता रहे और किसी तीसरे व्यक्ति को हमारे तथा आपके बीच किसी गलतफहमी या उलटी टेढ़ी बात चलाने का अवसर ही न मिले।

पदमावती–दूत किसे बनाकर भेजा है?

राजा–उसी 'परमा' शैतान को।

पदमावती–कौन सा 'परमा' पिताजी?

राजा–बिटिया! वही शैतान जो यहाँ पर भी रह चुका है, जिसे सारे पंमा कहा करते थे।

पदमावती–अच्छा, मैं समझ गई, वही लगाने-बुझाने वाला शैतान ही है।

किसी अच्छे व्यक्ति को भेजना चाहिए था, तब ही सच्ची सुलह हो जाती और वह स्थिर रहती।

राजा–यदि सुलह करने का इरादा होता, तो ही किसी अच्छे व्यक्ति को भेजता न। उसके मन में तो कपट था।

पदमावती–कपट को तो बुरा ही फल लगेगा।

राजा–लगने लगा है।

पदमावती–कैसे, पिताजी कैसे?

राजा–परमा ने गुरू जी के साथ मेल मुलाकात रखकर वहाँ पर ऐसा जासूसी का जाल बिछा रखा है कि गुरू जी ने घुड़साल में से दो प्राजी घोड़े चोरी करवाकर अजेमर चंद के पास भिजवा दिए हैं। एक बार खज़ाने की भी चोरी करवाई है।

पदमावती–(नाक चढ़ाकर) क्या ये राजा के लक्षण हैं? दुनियाँ गर्क क्यों न हो? परन्तु राजे भी क्या करें। मंत्रियों ने ही राज्य डुबोये हैं। जैसे मंत्री, वैसे ही राजा के कार्य। लड़ना, मरना, मारना, राजनीति, ये तो राजाओं के कार्य, पर चोरी कैसे शोभा देती है?

राजा–मुझे तो सुनकर पसीना आ गया कि अजमेर चंद कुल का नाम डुबोने लगा है और राजपूत जाति को कलंकित करने लगा है।

पदमावती–इसमें कोई संदेह नहीं है पर पिताजी! मैंने सुना है कि गुरू जी राज ऋषि हैं, बल्कि कई ब्राह्मण तो कहते हैं कि कलियुग में एक अवतार दस स्वरूपों में आएगा, वह ये ही हैं। अवतार तो अंतर्यामी होता है। आप परमा के चक्कर में कैसे फंस गए?

राजा–शुभ धर्म का तो कोई पता नहीं, पर पिछले युद्धों तथा गुरू जी के सामान्य व्यवहार से मैं यह अवश्य ही समझता हूँ कि वे किसी चक्कर में फंसने वाले नहीं हैं। आप तो अत्यंत विशाल हृदय वाले हैं। यदि आपको कोई ठगने लगे

तो आपको फल का पता चल जाता है और फिर ठगे भी जाते हैं। ठगने वाला तो यह समझता है कि उसने उन्हें ठग लिया है, पर आप ठगे जाने पर भी सब कुछ समझते हुए भी भोले-भाले बने रहते हैं और इस प्रकार क्षमाशीलता की प्रतिमूर्ति हैं।

पदमावती–इस प्रकार राज प्रबंध तो नहीं निभता।

राजा–किन्तु बिटिया, भला आप राजा तो नहीं हैं न, आप तो धर्म के अगुला हैं। एक करोड़ से अधिक लोग आपको अवतार मानते हैं। आप में अवतार राजा, योद्धा, नीतिवेत्ता आदि के सभी गुण हैं।

पदमा–आज तो आप उनकी प्रशंसा कर रहे हैं?

राजा–बिटिया! लड़ाई दूसरी बात है, पर सच तो सच ही है न। मैं उनके द्वारा जंग करने की बात को अच्छा नहीं समझता। इसलिए नहीं कि उनका आदर्श दोषपूर्ण है, बल्कि इसलिए कि उनका तथा हमारा सामर्थ्य लड़ने का नहीं है।

पदमा–लक्ष्य कैसे ठीक है?

राजा–बिटिया! उनका आदर्श है कि देश में से अत्याचार दूर हो।

पदमा–उन्हें इससे क्या?

राजा–बादशाह धर्म में दखल दे रहे हैं। लोगों को बलपूर्वक अपने (दीन) मजहब में ले जा रहे हैं। गुरू जी के पिता श्री गुरू जी ने बादशाह को पत्र लिखकर फिर स्वयं मिलकर समझाया था कि तुम धर्म के मामलों में जबर्दस्ती मत करो। इस पर उसने गुरू जी को कत्ल करवा दिया। अब गुरू गोबिन्द सिंह जी का यह यत्न है कि हम सारे राजा तथा हमारी प्रजा मिलकर बादशाह को मना लें अथवा उसके राज्य का अन्त कर दें।

पदमा–(चकित होकर)–यह तो बहुत उत्तम विचार है। ऐसे महापुरुष के साथ तो शत्रुता नहीं करनी चाहिए।

राजा–ठीक है, पर मेरा विचार वैर वाला नहीं है। मेरा विचार केवल यह है कि हम दुर्बल हो चुके हैं, न ही हमारी भुजाओं में बल है और न ही हमारे मनों में स्वयं को न्यौछावर करने का साहस ही है। लगता है कि हम अपने राज्यों को खो बैठेंगे और हमारा कुछ भी नहीं बनेगा और गुरू जी को अपने धर्म धुरंधर होने का ख्याल है अथवा गर्व है, मैं इसके बारे में कुछ भी नहीं कर सकता। सुना है कि आप कहते हैं कि 'मैं चिड़ियों से बाज तुड़वाऊंगा।'

पदमा–फिर यदि हमारे राजा गुरू जी के साथ वैर करना छोड़ दें और सहायता भी न करें, वे जो अच्छा समझें करते चले जाएं। ये ऐसा क्यों करते हैं कि भलाई सोचने वाले मस्तिष्क के मार्ग में धुआँ फैलाते हैं?

राजा—यही तो लड़ने-झगड़ने की बात है, ऊपर से वास्तव में उन्हें (शाहंशाह की ओर से) कुप्रेरणा अथवा बढ़ावा मिलता है। बादशाह चाहता है कि बाँस आपस में ही रगड़ खाएं, पर हमारे राजा भाई इस बात को समझते ही नहीं। व्यर्थ ही आप दिन-दिन गुरू जी के साथ छेड़-छाड़ करके लड़ते हैं और फिर मुँह की ही खाकर लौटते हैं। गुरू जी के धर्म के जोश तथा प्यार वाले योद्धा पैदा किए हैं, जो सिर हथेली पर रखकर लड़ते हैं, उनसे टक्कर लेना कोई खेल नहीं है। मैं तो अपनी आँखों से देख चुका हूं।

पदमा—फिर प्यारे पिताजी! आप जब यह समझ गए हैं कि गुरू जी का उद्देश्य परोपकारी है, तो आप तो उनसे अब मत लड़ना।

राजा—पहले मुझे सन्देह था कि गुरू जी अपना राज्य कायम करेंगे, पर अब मुझे विश्वास हो गया है कि उन्हें ऐसी कोई तृष्णा नहीं है। मैं कहूंगा कि ये धर्म के उत्साह में हैं और बताते हैं कि, "मैं परमेश्वर की ओर से आया हूं और मुझे सृष्टि का उद्धार करना है।" अत: मैंने वैर का त्याग कर दिया है।

पदमा—फिर क्या आप लड़ाई करेंगे अथवा नहीं?

राजा—मैं तो लड़ाई नहीं करूँगा, पर यदि भाईचारे ने अथवा बादशाह ने गला दबाया तो मूर्तिवत चला जाया करूँगा।

पदमा—यह भी क्यों पिताजी! यदि पता चल गया कि जाना धर्म नहीं तो फिर क्यों?

राजा—ठीक है बेटा! मेरी पंडिता पुत्री! ठीक है, पर राजनीति कई बातों में बांधकर डाल देती है। मैं पूरा यत्न करूँगा कि मेरी तलवार गुरू जी के विरुद्ध न चमके।

पदमा—सच्च! अब तो फिर आपने बताया है कि अजमेर चंद ने भी सुलह कर ली है।

राजा—सुलह तो मैंने बताया है न कि केवल दिखावा है और अब तो एक अन्य बड़ा दिखावा हो रहा है कि किसी तरह सभी राजे तथा गुरू जी इकट्ठे हो जायें और सबके साथ सुलह का दिखाया पूरा हो जाए। इस बात के लिए राजा लोग गुरू जी के पास जाने के लिए तैयार नहीं हैं, और गुरू जी किसी राज गृह में किसी प्रयोजन से चलकर आने को तैयार नहीं। अतः परमा यत्न कर रहा है, कर क्या रहा है कर लिया है कि गुरू जी खालसर आयेंगे, इधर से सभी राजे तीर्थाटन के बहाने वहाँ जायेंगे और स्वाभाविक ही इकट्ठा हो जाएगा और परस्पर मिलाप का अवसर बन जाएगा।

पदमा—(चकित होकर)—क्या गुरू जी तीर्थ पर आयेंगे? सुना है कि वे तीर्थों की खाली यात्रा मात्र को मुक्ति दात्री नहीं मानते?

राजा—परमा जो वहाँ हैं; उसने मना लिया है, तुम्हें पता है कि खालसर में पत्थर पानी पर तैरते हैं। यह बताकर परमा ने सिखों में उसे देखने की उत्सुकता पैदा कर ली है। गुरू जी को राजाओं को उपदेश तथा यात्रियों को सत्यमार्ग पर चलने का सुअवसर बताकर प्रेरित किया है।

पदमा—क्या गुरू जी परमा के मनोरथ को नहीं समझते होंगे?

राजा—मैं क्या कर सकता हूं, पर जो कुछ मैंने देखा तथा सुना है गुरू जी अवश्य ही समझते होंगे। बल्कि मुझे तो किसी ने बताया है कि उनके तबेले घुड़साल के सरदार ने परमा की चाल का पता बता दिया है और वह वाक्य जो उसने कहा है अब सिखों की जिह्वा पर है

"जो करेगा, सो भरेगा। गुरू जी का क्या हरेगा।
सेवक से कारज सरेगा। दुश्मन दोषी मरेगा।"

और गुरू जी का उत्तर भी सुना है:—

घड़े दी (घड़ी की, आवसरानुसार) सेवा का। जो होवेगी सो जर (सहनकर)। रखेगा गुरू अपना घर।

पदमा—इससे लगता है कि वे पूरी तैयारी करके आयेंगे।

राजा—ठीक है बिटिया! तुमने ठीक समझा है। वे आयेंगे, पर इस तरह तैयार होकर आयें कि किसी जाल में, धोखे में आकर चोट नहीं खायेंगे। मिलेंगे तो प्यार से मिलेंगे, आत्मदान प्रदान करेंगे, राजनीतिक शिक्षा भी देंगे।

पदमा—फिर पिताजी! आप उन्हें और नहीं तो, भले और परोपकारी तो अवश्य ही मानते हैं न।

राजा—सत्य तो यही है।

पदमा—क्या सभी राजे खालसर आयेंगे?

राजा—सभी।

पदमा—क्या आप भी चलेंगे?

राजा—अवश्य।

पदमा—क्या मुझे भी साथ ले चलेंगे?

राजा—तेरी माता तथा तुझे दोनों को ले चलूंगा। पर तू बहुत विद्वान है। उधर गुरू जी भी महान पंडित सुने जाते हैं। कहीं सिख धर्म न धारण कर आना।

पदमा–मैं अब तक पढ़ सुनकर अज्ञ हूँ, मुझे पता नहीं कि 'सत्य' क्या है। मैं नास्तिक नहीं हूँ, पर मैं जानती भी नहीं। जिस बूढ़े विद्वान ने मुझे पढ़ाया है, वह कहा करता था कि सब वाक्य रचना ही है। जो कुछ भी कहीं अच्छा भाता है, वह खोज करने पर उच्च 'वाक्य रचना' की प्रबलता निकलती है, यथार्थ में कोई प्रबलता दिखाई नहीं पड़ती। अतः उसने यह शिक्षा दे रखी है। मैं कहीं फंस न जाऊँ, इसकी कोई आशा नहीं, पर कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता। अभी मुझे स्वयं खोज करनी है। अतः मेरे मन में यह तीव्र लालसा है कि दर्शन करूँ, क्योंकि बातें आश्चर्यजनक सुनी जाती हैं। मुसलमान पीर, हिंदू पंडित तथा आचार्य, कवि तथा शायर, सभी उनके पीछे भँवरे बन रहे हैं और उनका यह उमाह (उमंग) मुझे अधिक हैरान करता है कि संस्कृत तथा फारसी, अरबी पुस्तकों की टीकाएँ की जा रही हैं, पंडितों, कवियों तथा जालिमों की सभा लगती है। वे धर्म धुरंधर के साथ-साथ विद्या धुरंधर भी हैं। इस धर्म तथा विद्या के साथ फिर मुगल साम्राज्य की समाप्ति का स्वप्न देख रहे हैं और हैं फकीर-दैवी वृत्ति, साधारण निर्वाह। वह मस्तिष्क कैसा होगा जिसमें इस प्रबल राज्य को पराजित करने का विचार निवास करता है। विचार ही नहीं जिससे ठकठक हो रही है और आपने आज बताया है कि उनमें तृष्णा नहीं, परोपकार का आदर्श है। पर हाँ, आप सोच लीजिए यदि मेरे जाने में कुछ डर हो, तो मैं नहीं जाती।

राजा–नहीं डर काहे का, वे तो धर्म धुरंधर हैं। उन्होंने इतने जंग लड़े हैं पर कभी भी उन्होंने धर्म तथा धर्म जन्य नीति को अपने हाथ से नहीं जाने दिया। मैं तो केवल उनके प्रयोजन की सिद्धि होते नहीं देखता अतः मैं परे रहता हूँ। बिटिया! तेरी माता कहां है?

पदमा–पिता जी! आज उन्हें फिर से सिर दर्द हो गया है और वैद्य जी ने क़ै करवाकर तथा कोई औषधि पिलाकर सुला दिया है।

राजा–अच्छा बिटिया! भोजन लाया जाये, तुम भी भूखी बैठी हो।

यह कहकर राजा जी अपने स्नान वाले कमरे में चले गये और पदमा जी रसोईयों को भोजन के लिए कहने चली गईं।

: २ :

अमृत वेला, पूर्ण शान्ति, अडोल स्थिरता, चन्द्रमा का मन्द प्रकाश है। पदमा के द्वार पर धीरे-धीरे तीन बार खटखट हुई, पदमा उठी, द्वार खोला, सनिक्को भीतर आई।

सनिक्को–(धीरे से) जय हो श्री राज राजेश्वरी की! समय हो गया है।

पदमा–क्या समय है?

सनिक्को–तीसरा पहर हुए देर हो गई है।

पदमा–सब सामान ठीक है न?

सनिक्को–जी हां।

पदमा–सनिक्को! क्या वे कदाचित यहां नहीं आ सकते? मेरा मन कुछ डर सा रहा है। देखो न। बाहर मंद प्रकाश के नीचे पौधों की परछाइयां, लगता है, मानो भय से मूर्ति बन खड़ी हो गई है।

सनिक्को–कोई डर नहीं, अपने ही मन का भय है, और क्या है?

पदमा–मन का भ्रम तो फिर भी है कि न जाने कहीं बात खुल न जाये और मेरी आबरू (लाज).........।

सनिक्को–स्वामिनी जी बुरा नहीं मानना, मेरे विचारानुसार अधिक पढ़ने से भय तथा भ्रम बढ़ जाते हैं।

पदमा–(मुसकराकर) है तो कुछ ठीक, कहा जाता है कि फ़ौजों में पंडितों के खेमे औरतों के डेरों के पास लगते हैं।

सनिक्को–खैर, पर इतनी बात तो अवश्य ही है कि पढ़कर 'उछलने कूदने वाला साहस' तथा उद्यम शिथिल पड़ जाते हैं।

पदमा–(सोचकर) यों नहीं, विचार शक्ति बढ़ जाती है, और वह शक्ति प्रत्येक बात के हानि लाभ का विचार करने लगती है। इस प्रकार हानि लाभ का अनुमान लगाने तथा परिणाम निकालने में विलंब होता है और कई बार तो परिणाम निकालना ही कठिन हो जाता है। लोगों का विचार है कि पढ़े लिखे लोग शिथिल हो जाते हैं।

सनिक्को–मैंने भी तो यही कहा है कि छलांगें लगाने का साहस कम हो जाता है।

पदमा–पर इसका अर्थ यह है कि भीतर सोच का मण्डल बढ़ जाता है, दुर्बलता नहीं बढ़ती।

सनिक्को–केवल विचार शक्ति ही तो नहीं बढ़ती, उसी तरह जैसे-जेसे तुम लम्बे हुए, वैसे-वैसे तुम्हारी परछाई भी लम्बी होती गई। इसी तरह जैसे-जैसे विचार शक्ति बढ़ती है, वैसे ही उनके साथ-साथ 'संदेह का अंश' भी बढ़ता चला जाता है। विचार शक्ति में दुर्बलता नहीं, पर 'संदेह की परछाई' में तो दुर्बलता का निवास है न?

पदमा–(घूरकर देखती हुई) सनिक्को! मैंने सुना है कि तू अपढ़ है, पर तेरी बातें तो अपढ़ता वाली नहीं हैं।........हां परन्तु एक बात को ध्यान में रखना यदि

मन में संशय उत्पन्न हो तो बुद्धि उस पर विवेचन करके निश्चय में स्थिर होना चाहिये, समझी!

सनिक्को–ठीक कहा है आपने! हां मैंने संस्कृत, ब्रज, फ़ारसी आदि तो पढ़ी नहीं अतः समयानुसार तो अपढ़ ही हुई न। (खिड़की में से बाहर देखकर)– राजदुलारी जी! फ़िर समय तो भागा चला जा रहा है, यदि संकल्प है तो चलिये, अन्यथा फिर समय नहीं रहेगा।

पदमा–तो चल ही पड़ें?

सनिक्को–यह तो आपकी इच्छा है, मेरी प्रेरणा नहीं, मैं इच्छा पूरी करने में सेविका हूं।

पदमा–एक ओर रुचि तीव्र है, दूसरी ओर उधेड़बुन है। क्या तेरे को इस बात का संशय नहीं कि कहीं बात निकल न जाये?

सनिक्को–नहीं।

पदमा–क्यों?

सनिक्को–मेरा नेकी पर विश्वास है, हम भले कार्य के लिये जा रहे हैं, परमेश्वर हमारा रक्षक है। तुम्हारे भीतर संशय ही हिचक उत्पन्न कर रहा है।

पदमा–हिचक नहीं, मैं तो सोच रही हूँ कि यदि बात निकल भी जाये तो कोई ऐसी बात सूझ जाये कि उससे रहस्य बना रहे और महाराज नाराज न हों। राजाओं का गुस्सा बहुत ही बुरा होता है।

सनिक्को–पर क्या सच कहने में कोई आपत्ति है? साफ कह दें कि अमुक स्थान पर गए थे, यदि कोई संदेह है तो आप पता करवा लें और मैंने तो आपसे कहा ही था पहले बताकर आज्ञा ले लीजिए।

पदमा–पहले कहने से न हो जाने का भय है। बाद में कहने तथा सच कहने में क्रोध का भय है, और नहीं तो यह रोष तो ही होगा ही कि राजाओं के शत्रुओं के पास गई थी।

सनिक्को–फिर संकल्प त्याग दीजिए। किन्तु, सत्य ही, अब तो वैर ही नहीं रहा।

पदमा (चौंककर)–सनिक्को! तुझे सारी बातों का पता चल जाता है। वैर भावना ऊपर से तो नहीं रही और मुझे तो रात को ही पता चला है कि पिता जी के मन में भी वैर कम हो गया है, पर–

'पास ने शाहां बस। जे बसें तां सुस।'

(चांद की ओर देखकर)–तेरी क्या राय तथा विचार है?

सनिक्को–मैं निर्भय हूं, जिस सच्चे शाहनशाह के प्यार में जाना है, वही रक्षक है, मैं उसी की टेक में निःसंशय तथा निर्भय हूं, पर वैसे मैं तुम्हें प्रेरणा नहीं करती कि चलो। यदि चलो तो मैं हाज़िर हूँ।

पदमा–काश! ऐसा मेरा भी साहस होता।

सनिक्को–इसमें मेरी कौन-सी बढ़ाई है? पानी में छड़ी मारनी बंद कर दो तो पानी टिक गया और चमक उठा। क्या कई दरारें पड़ जाती हैं, जिन्हें दर्जी आकर जोड़ते हैं, गांठ लगाते हैं?

पदमा–अच्छा चलूं? फिर चल ही दूँ। जो होगा देखा जायेगा। एक ओर उत्सुकता नहीं रुकती दूसरी ओर भय पीछा नहीं छोड़ता। क्या करूँ? चलूँ, चल ही दूँ।

सनिक्को–प्यारी दुलारी! डोलने वाली किश्ती में न बैठ, यदि किश्ती किनारे से ही डोलने लगी तो वह भँवरों के घेरे में फसकर क्या करेगी? घर से तो स्थिर मन से चलो। यदि अपने मन पर भरोसा नहीं तो किसी मन के स्वामी की आश्रय ले लीजिये।

पदमा (देखकर, बनावटी मुस्कराहट से)–अच्छा सनिक्को। यदि होगा तो कभी मिल ही जायेगा। ले री सखी! तू आगे-आगे मैं तेरे पीछे-पीछे।

दोनों चल दी।

: ३ :

एक खुला कक्ष है, जिसमें मोमबत्ती जल रही है। उसका प्रकाश धुंधला सा है। खिड़कियों में से चांद का प्रकाश भीतर आ रहा है। एक सज्जन बैठे हैं। उनका मुख मण्डल टिकाव, स्थिरता तथा तेज की आभा वाला है। माथा चौड़ा तथा खिला हुआ है। वे इस समय तानपूरा लेकर कुछ गायन कर रहे हैं। पदमा तथा सनिक्को भीतर चली गईं। द्वार पर, जो भारवाहक था, एक बूढ़ा बैठा था, उसने सनिक्को को पहचानकर कोई रोक-टोक नहीं की। भीतर थोड़ी दूरी पर दो तीन और व्यक्ति बैठे थे। ये दोनों भी एक कोने में छिपकर बैठ गईं। इस समय कुछ गायन किया जा रहा था जिसका भाव कुछ इस प्रकार है:–

अब मैं पिया में रही समाए,
मुझ में पिया का निवास,
पिया में मैं हूं, मुझ में पिया,
खिली प्रेम सुवास
चंदन लपट पिया में सुभिति

मलिया गिरी का स्वास।
कमल खिले सब पथ मेरे में झूमें भंवरे दास।
ये जो चन्द्र सूर्य औ तारे पिया से पायें प्रकाश।
पिया मेरे में सागर लहरें, दामिनी दमक उल्लास।
गगन चंद्र से ले मछली तक सबका प्रियतम बीच निवास।
खंड मंडल प्रियतम में तैरें मध्य पाताल, आकाश।
फिर प्रियतम सब ही में बसता, अन्दर बाहर निवास।
हर हर के बीच प्रियतम डेरा, हर हर में प्रिय वास।
वन उपवन उद्यान खिले हैं हरे भरे सउल्लास।
बीच प्रियतम सुन्दर लगते, धरती और आकाश।
ज्यों बादल वायुमंडल तैरें, पवन सुगंधि निवास।
ज्यों हृदय मेरे में लहरे, पिया-प्रेम की आस।
माथे पर उल्लास बसे आ, नयनहिं प्रेम-प्रकाश।
गालों पर ज्यों तेज उत्साह का, होंठों पर ज्यों हास।
मोती में ज्यों 'आब' बसे हैं, हीरे पानी वास।
बीच अग्नि ज्यों प्रकाश बस रहा बिजली में चपलास।
त्यों सब प्रियतम प्रियतम बसता, दिखता निकट अति पास।
स्वयं पिया मैं उसमें देखूं उसे उसका प्रकाश।
प्रति प्रत्यक्ष में पिया ही दमके कादर कुदरत वास।
सागर बूंद बुदबुदें भीतर, पिया की झलक प्रकाश।
पिया 'बिन्दु' पिया 'घेरा' मेरा घेरे को घेरास।
छुप जाना, छुप जाहर हो, ढंग पिया का खास।
हर रंग में हर स्थान में खिलना, 'पृथक' के बीच विकास।
विकसित अन्दर बाहर प्रियतम, उद्यान खिला ज्यों आस।
'अन्दर' 'बाहर' रम रहा मेरे हिय औ नयन निवास।
नयन रहे रंग इस दर्शन हृदय रहा उल्लास।
कभी न ओझल हो यह दर्शन, रात दिन यह अरदास। (प्रार्थना)

(कलानिध छन्द)

चपलता
यह वही विभूति है जो प्रियतम जी वाली वार्ता में चनाब के जंगलों में 'राजा जी के सिपाही' के नाम से विचरती थी। आजकल पर्वत में शोभा बढ़ा रही थी।

शान्त समय, स्थिरता तथा एकान्त, अद्‌भुत रंग, मधुर प्यारा कंठ तथा प्रेम भरा भाव, राजदुलारी को अद्‌भुत भाव में लीन कर गया। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर सनिक्को ने हिलाया और कान में कहा:—

अब समय है, फिर घर को भी लौटना है, आप इस समय तुम्हारे लिए अवकाश में हैं।

पदमा—(चौंककर) आह सनिक्को! किस स्वाद से अलग किया है।

सनिक्को—(उदास होकर) मेरे से भूल हुई, पर क्या करूँ? तुम्हें ही जल्दी थी।

पदमा—(आँखों पर उंगली रखकर) अच्छा वाह, वाह, यह क्या था? अच्छा (जंभाई लेकर) हां कहां?

सनिक्को—आओ अब समय है।

पदमा—(सचेत होकर) अच्छा कहकर पीछे चल पड़ी और आगे बढ़कर उस विभूति के आगे सिर झुकाकर बैठ गई) आपका यश सुनकर आई हूं।

विभूति—यश परमेश्वर जी का, जिन्होंने शोभा बढ़ाई है।

पदमा—(लज्जित होकर) आपकी बड़ाई है जिसे प्राप्त कर ही आप नम्र हैं।

विभूति—सब प्रभु की आज्ञा है, काठ की पुतली क्या है खेल खिलाने वाला ही जानता है।

पदमा—(हकलाकर) चित्त नहीं टिकता।

पदमा—टिकने वाली वस्तु नहीं है।

पदमा—सुख कैसे मिले?

विभूति—टिकाव से।

पदमा—टिकता (लज्जित होकर) आपने कहा है कि नहीं है।

विभूति—हां ठीक है।

पदमा—फिर टिकता कैसे है?

विभूति—जैसे चाँद तथा सूरज।

पदमा—(सिर झुकाकर तथा और झिझकते हुये) क्षमा करना, मैं समझी नहीं।

विभूति—वास्तव में टिकते तो पत्थर हैं, मन पत्थर तो नहीं।

पदमा–(काफी समय सोच में पड़कर) फिर चाँद तथा सूरज तो चलते ही रहते हैं।

विभूति–इन्हें किसी नियम में चलाया गया है, उसी में टिके हुए चल रहे हैं।

पदमा–मन को कौन-से नियम में चलाया गया था?

विभूति–जिस प्रकार के नियम में चाँद-सूरज को चलाया गया था।

पदमा–कृपया यह भी बताइये, मेरा विचार काम नहीं कर रहा?

विभूति–किसी केन्द्र के इर्द-गिर्द सूरज और किसी केन्द्र के साथ चक्कर लगाने के लिए चाँद को बांधा गया है। उसी केन्द्र के इर्द-गिर्द नियम में बंधे टिकाव में चल रहे हैं, केन्द्रहीन होकर नहीं भटकते।

पदमा–मेरा केन्द्र कोई नहीं।

विभूति–जिस प्रकृति ने ब्रह्मांड में प्रत्येक खंड को केन्द्र में बांधकर सूत्र स्थापित किया है, ऐसा कभी नहीं हो सकता कि वह जागृत मन के लिए प्राणवान खंड के लिए केन्द्र स्थापित न करे?

पदमा–तो मैं, कैसे, कभी, किस तरह भूल गई हूं, मुझे केन्द्र का पता नहीं।

विभूति–खोज नहीं की क्या?

पदमा–पिता जी की कृपा द्वारा विद्या प्राप्त की है, संस्कृत, प्राकृत, ब्रज तथा कुछ फारसी पढ़ी है, बुद्धि चमकी है, पर सुख नहीं।

विभूति–क्या विद्या के प्रकाश ने अपना स्व का केन्द्र नहीं दिखाया?

पदमा–नहीं?

विभूति–तो विद्या ने ऐसी दशा कर रखी है कि जिस पुस्तक का आज अध्ययन किया उसके विचार अपने विचार बन गये। वही मन में घूम रहे और जब पढ़ी तो मन उसके विचारों के रंग में आ गया। इस प्रकार रंग पलटते रहे, प्रत्येक पुस्तक का कुछ न कुछ प्रभाव रह गया, कुछ कट गया, कुछ दूसरों के प्रभाव से तीसरा रंग रूप धारण कर गया।

पदमा–कुछ होता तो इसी प्रकार रहा है, किन्तु पूर्ण रूप में नहीं, क्योंकि कभी किसी पुस्तक की भूलें तथा त्रुटियाँ भी भासती रहीं हैं।

विभूति–पर अपने भीतर कोई ऐसा भी बिंदु नहीं मिला, जिस पर खड़े होकर सभी के विचारों के विस्तार को ऐसे देखा जा सकता, जैसे मीनार पर खड़े होकर मैदान की वस्तुओं को देखा जाता है।

भै विचि सूरजु भै विचि चंदु।। कोह करोड़ी चलत न अन्तु।।

[वार आसा म: १]

पदमा–नहीं, जो-जो प्रकाश मिल गया, उसी के साथ अन्य विचारों का मैदान तथा बुद्धि की चौड़ाई दिखाई देती गई।

विभूति–अंत किसी सिद्धान्त पर पहुँचे अथवा नहीं।

पदमा–विशेष किसी सिद्धान्त पर नहीं। हाँ एक वृद्ध विद्वान से यह सुना था कि सब कुछ 'वाक्य रचना' ही है, वास्तविक कुछ नहीं।

विभूति–अतः रहस्य खुल गया, पता चल गया कि सब भानमती का तमाशा है, मदारी का खेल है, फिर क्यों अभी खोज तथा तलाश जारी है?

पदमा–यह बात ठीक थी अथवा गलत, किन्तु चुटकीली होने के कारण स्मरण रह गई। तलाश अभी इस कारण है कि मैं सुखी नहीं, भीतर से खाली हूं, एक आकांक्षा है, अभिलाषा है, अपूर्णता है, भूख है, काहे की? किसकी क्यों? इसका मुझे पता नहीं।

विभूति–तो यह 'अपूर्णता' तथा 'अभिलाषा' ही रहस्य है। यह बताती है कि सब 'वाक्य रचना' तथा नेस्ती नहीं, कुछ है। वह 'है' कहीं पर है, पर 'है' 'पूर्णता' है, जिसके अभाव के कारण अंदर 'अपूर्णता' है। फिर विचार कर लो कि अपूर्णता में निराशा तथा समाप्ति नहीं है, 'अभिलाषा' है, चाहे वह अभिलाषा न जाने किसकी है। ऐसा जानकर कि 'वाक्य रचना' है और कुछ नहीं, फिर भी भीतर आकांक्षा है। आकांक्षा पता देती है, किसी 'आशा' का 'नेस्ती' पता देती है किसी 'है' का यह 'है' केन्द्र है। जिसके इर्द-गिर्द मन घूमने के लिए तथा उसके आकर्षण में घूमने के लिए प्रकृति की ओर से छोड़ा गया था कि मन दृष्टिमान कार्य करता हुआ दृष्टमान में ही कहीं खो न जाये, दृष्टा के साथ जुड़ा हुआ अपने ठिकाने पर ही रहे।

पदमा–आपके वाक्य मन को प्रभावित करते हैं, परन्तु अभी तो मेरे लिए एक पहेली ही है।

विभूति–पहेली खुल जायेगी। पहले हम नियम निश्चित कर लें कि ठीक है।

पदमा–ठीक है, पर यह नियम उस समय सिद्ध होगा जिस समय केन्द्र मिलेगा और उसके इर्द-गिर्द मन घूमेगा और उस आकर्षण में आकर सुख प्रतीत होगा। तब तक यह भी, क्षमा करना, (मुस्कराकर) संभवतः 'वाक्य रचना' मात्र ही हो।

है=सत्य।

विभूति–कहने सुनने तक तो 'वाक्य रचना' ही है, पर 'वाक्य रचना' एक पहरावा है, जो विचार को पहनाया जाता है तथा विचार भाव है, जो किसी बिंदू से किसी केन्द्र से किसी 'मध्य बिंदु' के भीतर से ही उत्पन्न होते हैं। जिस बिंदु से ये भाव उत्पन होते हैं। वही वास्तविक केन्द्र है, माना वह केन्द्र एक छोटा-सा मण्डल है, जिसका एक अन्य केन्द्र है, वह केन्द्र 'वाक्य रचना' नहीं, वास्तविकता है...।

पदमा–भाव जिससे उत्पन्न होते है, वहाँ तक तो मैं समझ गई कि वह मन अथवा हृदय है। हृदय भी केन्द्र नहीं, उसका केन्द्र अन्य है, इसका मुझे पता नहीं चला।

विभूति–(मानो अपनी पहली बात ही कहते जा रहे हों)–'वाक्य रचना' भी 'नेस्ती' नहीं। यह भीतर भावनाओं का ब्राह्म (प्रकट) पहरावा है। जिसमें से भाव उत्पन्न होते हैं, वह स्वयं कोई उड़नशील 'नेस्ती' नहीं।

पदमा–प्राप्त कैसे हो?

विभूति–(अपनी बात में ही चले जा रहे हैं)–यह भाव उत्पत्ति चंचल है इसी भाव उत्पत्ति का टिकाव उसकी प्रतीत का कारण है।

पदमा–टिके किस तरह?

विभूति–किसी केन्द्र के साथ जुड़कर।

पदमा–केन्द्र तो टिकाव के बिना मिलेगा नहीं टिकाव की प्राप्ति केन्द्र के बिना होगी नहीं। अतः प्राप्ति झगड़े में पड़ गई।

विभूति–'बिखरा हुआ' दृष्टमान में है दृष्टमान में कोई केन्द्र बांधे, जिस तरह माप के समय किसी एक बिंदु को लेकर गज उस पर रखा जाता है। अनेक बिंदुओं पर उछलना विचलता है, किसी एक पर रुकना पहला टिकाव है। इस बिंदु से फिर अंतस में पहुंचना और टिकना, अंतस का टिकाव है। यह टिकाव टिकते-टिकते 'केन्द्र के केन्द्र' का टिकाव बन जाता है।

पदमा–समझ गई, पर पहेली तो अभी भी बनी ही रही, अनुभव में आये तब ही पहेली कहीं खुले।

विभूति–विद्या, 'सूझ' प्रदान करती है, प्राप्ति तो 'करने से' होती है।

पदमा–फिर किसी रास्ते पर चलाईए।

विभूति–समर्थ प्रभु सिर पर हाथ रखेगा, फिर सुमार्ग पर चलायेगा।

सनिक्को–धन्य दाता, धन्य दाता, चलो दीदी जी।

पदमा–(चौंककर) दिन चढ़ गया है क्या?

सनिक्को–नहीं आपका कार्य सिद्ध हो गया है।

पदमा–ठहर जाओ, स्वाद आ रहा है, कुछ ले लेने दो।

सनिक्को–मिल गया हे, अब चलो।

पदमा–मुझे पता नहीं चला।

सनिक्को–बस, अब इससे अधिक और कुछ नहीं। समय हो गया है और बहुत ठीक हो गया है, चलो। सनिक्को की बात पदमा की समझ में नही आ रही। आया हुआ आनन्द बीच में ही टूट गया है, मन और कुछ लेने को लपकता है, पर सनिक्को बांह पकड़कर कहती है–

"चलो जी"

पदमा–अच्छा, कंजूस सखी!

नमस्कार करके सखी के पीछे चल दी।

: ४ :

दोनों वहाँ से निकलकर घर पहुंचीं। रास्ते में बातचीत होती रही। सनिक्को ने राजकुमारी को वह बात समझा दी जो उसने नहीं समझी थी। राजकुमारी सोचती है कि तैयार भोजन तो मिला नहीं, पर स्वाद आ गया है, वह स्वाद जो अन्य किसी भी ढंग से आज तक नहीं आया था। भ्रम से भी पक्का भ्रम होता है कि केवल 'वाक्य रचना' ही नहीं, पीठ पीछे कुछ है और यह हमारी मन की तरंग के हिलोर वाला खेल उसको प्रतीत नहीं होने देता।

चाहे अब मन की तरंग टिकती नहीं और न ही प्रतीत के स्वाद में निश्चय ही बंधता है, पर वहाँ आए स्वाद की याद अपने में बांध लेती है। कई बार सनिक्को के साथ बातें होती हैं, उनसे भी स्वाद आ जाता है। चाहे सनिक्को पढ़ी लिखी नहीं, पर वह किसी सुख में है और ऐसे लगता है कि उसका मन लाभ वाले रुख में बसता है।

दिन बीतते गये, अतः रवालसर जाने का दिन आ गया। राजा, रानी, राजदुलारी, सनिक्को तथा दूसरे जरूरी अहलकार सभी घोड़ों पालकियों पर सवार होकर चल दिये और वहाँ पहुँच गये। दूसरे राजा वहाँ पहले ही पहुंच गये थे। सतगुरू जी का डेरा भी लगा हुआ था। राजे एक बार सतगुरू जी के दर्शन कर भी आये थे। सभी रानियाँ भी माथा टेक आईं थीं। चंबे वाले देर से पहुंचे, अतः वे पहली मुलाकात में शमिल नहीं हो सके। पदमा की विद्या तथा गुणों की धाक सभी पहाड़ी रानियों में थी। सभी इस प्रतीक्षा में थीं कि कब आती है। पर अब जब सुना कि पदमा आई है तो सभी इससे मिलने के लिए आईं। इसने सबको आदर सहित बैठाया और बातचीत इस प्रकार छिड़ीः–

पदमा–सुनाईये बाईसधार के शत्रु के साथ सुलह सफाई हो गई?

रानी-गुलेर–यों न क़हिये दुलारी जी। वे तो प्यार का अवतार हैं, देखने सुनने का फ़रक है।

रानी-डढवाल–सभी राजाओं की बुद्धि भ्रष्ट हो रही थी, जिन्होंने इस सुन्दर मूर्ति, जिसके चरण चूमने चाहिए थे, से टक्कर ले रखी थी।

रानी-श्रीनगर–ध्यान से बात कर, पति के घर नहीं रहना, यदि उसे पता चल गया कि कहीं घर से ही न निकाल दी जाओ।

रानी-डढवाल–किसी की क्या मजाल है। पति को जूते की नोक से बाँधकर रखा हुआ है।

रानी-किंउथल–राम, राम! तेरा पतिव्रत धर्म यही है क्या?

रानी-डढवाल–देख लिया री तुम्हारा पतिव्रत धर्म, सौ जादू और लाख टोने। पति को बस में करने के जादू प्रतिदिन खोजना क्या यही पतिव्रत धर्म है और क्या यह स्वामी रहित स्वामी स्त्री व्रत धर्म लिये बैठे हैं?

रानी-नूरपुर–सच्च कहा है, बहुत सेवा की, मन मारकर न्योछावर हुई, दिन-रात एक किया, अंत निगोड़ा चंवे की एक भाटिन पर मुग्ध हो गया। अब वह रानी है और मैं दासी। ज्वर की मारी घर पर ही रह गई, अन्यथा मुझे यहाँ कौन लाने वाला था। इन मर्दों का कोई भरोसा!

रानी-जुब्बल–है तो सच, पर हमें क्या? करेगा सो भरेगा, हम अपना काम करें। हमारा पतिव्रत धर्म तो सीता की भाँति निभेगा। राम की राम जाने, आग में झौंके अथवा वन को भेजे।

पदमा–(मुस्कराकर अपने आप में)–अच्छे पढ़े लिखे हो।

रानी-नाहन–बहन! जैसा अवसर बना वैसा कर लिया। न तो सदैव परछाई ही टिकती है और न ही सूरज की टुकड़ी सदैव शिखर पर स्थित रहती है। सब कुछ ढलने वाला है। क्रोध क्यों और दोष किसे। अपना ही निबाहना।

रानी-डढवाल–मैं तुम्हारे सारे ज्ञान जानती हूँ। ऊपर से चुपड़ी बातें और भीतर से मूकता का छल। जिस पर पड़ गई सौतन और सौतनों की चड़ गई गुड्डी वे तो सभी ब्रह्मज्ञानी बन गई और जिनकी अपनी गुड्डी चढ़ रही है, वे बन बैठीं पतिव्रता। यही है न कि कुछ और! (सभी हँसने लगीं)।

रानी-कहलूर–खरी-खरी कर रही हो, डरती नहीं। राजा के कानों तक ये बातें पहुंचने से तेरी चढ़ी गुड्डी कहीं कट न जाये।

रानी-डढवाल—कट जाये तो कट जाये, मुझे कोई परवाह नहीं। भोगना तो कर्मों का फल ही है। जब तक भाग्य साथ देगा, पति अथवा राजा को जूते की नोक पर रखूंगी। जब कर्म ही विफल हो जायेंगे तब न तो कुछ रूप कर सकेगा, न बुद्धि, अनुनय विनय तथा ज्ञान ध्यान।

रानी-सुकेत—बहन! कर्म की गति से डरना चाहिए, न जाने क्या हो? सीता भी न बची, राधा इतने अच्छे कर्मों वाली सूखकर कांटा हो गई, दूसरों की तो बात ही क्या है?

रानी-डढवाल—फिर तेरी क्या राय है? पहले-से ही डर-डरकर मरते रहें जब कर्म की गुड्डी चढ़ी हो तो भय से मरे और जब गुड्डी कट जाये तब दुखों से जलें, कोई भी घड़ी सुख से सांस लेने की न आये।

रानी-सुकेत—नहीं, मैं तो ऐसा नहीं कहती। मैंने तो कहा है कि कर्म का भी काहे का घमंड? कर्म कोई निश्चित थोड़ा ही है।

रानी-डढवाल—जब तक चले, तब तक सही। चारों ओर दुख दिखाई देता है। यदि शास्त्रज्ञों से पूछें तो जगत को सारे दुख रूप ही बताते हैं। इस सर्वथा दुख रूप में जो घड़ी सुख की मिल गई वही सही, उसे क्यों नष्ट करें?

रानी-कहलूर—बात करते समय दीवार से भी डरना चाहिये, कहीं कोई दीवार की ओट में होकर सुन न रहा हो, और तू तो किसी से नहीं डरती, कितने ही तो सुन रहे हैं। यदि ये बातें राजाओं के कानों तक पहुँच गईं तो ऐसा न हो कि कहीं खालसर में ही डेरा लग जाये।

रानी-डढवाल—मेरा डेरा अथवा मेरे पति का?

सभी—राम! राम!

रानी-श्रीनगर—तेरी कैंची-सी जीभ जले, पति को?

रानी-डढवाल—देख लिया री पति, इतना डुबोने लायक। चार नीचे और पाँच ऊपर दे मारी; नाक में नथुनी डाली और कहा, नाचिये जी महाराज! (चारों ओर देखकर)—सखी री! नाक भौहें न चढ़ाओ और होंट भी काटो। खरी-खरी सुन लो। भीतर से सभी मुझसे कहीं बढ़कर हो, ऊपर से भले ही मेमनी बनी रहो। मैं खरी बात कहती हूँ और पति के मुँह पर भी कहूँगी। मुझे तो जब वह कहता है कि मेरा प्यार वैसा है जैसा राम जी का सीता के साथ था, तो मैं चुप नहीं बैठी रहती और सच्ची बात मुँह पर कह देती हूं—देख लिया जी आपका प्यार, मुझ से पहले चार विवाह कर चुके हो, चारों राजों की पुत्रियाँ, एक से बढ़कर एक सुन्दर, गुणवान, मैं तो उनमें से किसी के पैरों के तलबे जैसी भी नहीं। वे सभी तुमने पटक दीं और मुझ से तुम्हारी कब तक निभेगी। तुम मर्दों को किसी

के साथ प्यार नहीं केवल नवीनता के साथ मोह है। जिस प्रकार बालक उसी प्रकार मर्द। नित्य नये खिलौने से प्यार, पुराने तोड़ डाले, नये और लें लिए।

रानी-श्रीनगर–फिर क्या वे क्रोध नहीं करते?

रानी-डढवाल–करते हैं तो करे मैं तो सिर हथेली पर रखे हूँ। मैंने अपनी आँखों से चार चितायें जलती हुई देखी हैं। अब समझती हूँ कि पाँचवी चिता मेरे लिये सजाई जा रही है, पर जब उसमें पड़ूँगी, तब ही तो जलूंगी। मैं कहती हूं मैं पहले से ही क्यों घुल-घुलकर मरूँ? जब तक सुख है तब तक ही सही। यही बात मैं पति के मुँह पर कहती हूँ, कर्मों की प्रधानता है, तुम्हारी मुहब्बत एक परछाई है।

रानी-सुकेत–तू धन्य है हमारे तो भय के कारण प्राण शुष्क हुए रहते हैं।

रानी-मंडी–देखना कहीं इसकी नकल न कर बैठना। यदि कुबड़े को लात मारने से उसकी पीठ का टेढ़ापन सीधा हो गया हो वह लात किसी सीधी पीठ वाले को मारी जाये तो उस पर उल्टा असर पड़ेगा। बहनों अपनी-अपनी जगह समझकर चलना, कभी भी इस मुँहफट के पीछे न लगना।

रानी–सुन लो कथा पंडित की। खूब डरा करो, कुढ़ा करो, मिन्नतें किया करो। यह है सत्य धर्म, यह है पतिव्रत धर्म, ऊपर से शान्त और भीतर से अलाव की आग की भाँति, ठीक है न?

रानी-कुल्लू–रानी डढवाल! मैं सच्ची बात कहूं, मेरे गले न पड़ जाना। तू कहती तो खरी-खरी है, पर वे कहने योग्य नहीं हैं। वास्तव में बात यह है कि जहाँ सौत हो, वहाँ तो कुढ़ना या तेरी तरह प्राण हथेली पर तथा जीभ माथे पर रखकर रहना। दु:ख जो है वह तो सौत का है। इन ब्राह्मणों को कुछ दिया दिलाया जाये, ताकि ये वेद वाक्य लिख दें कि पनुर्विवाह पाप है; फिर पतियों से भी बन आए और हमारे भीतर की कुढ़न अथवा अपमान के भाव न उठें।

रानी-डढवाल–कही तो बात सच्ची है, तेरा कहा सिर माथे पर, परन्तु करके देख ले, यदि वश चलता हो तो। बहनों! हम से तो गरीब अच्छे। चार आने लाकर रात को पति-पत्नी प्यार से मिलकर तो खाते हैं। न सही संसार के सुख; आपस में प्यार तथा भरोसे का सुख सभी सुखों का शिरोमणि है। मैं पति को अपनी आज्ञानुसार चलाती हूं, मैं सुखी हूं, डरती नहीं, मुँह पर कह देती हूं, जो कुछ मैंने तुम लोगों के सामने कहा है पर मैं फिर दुहाई देकर कहती हूं कि यदि मैं एक मजदूर की पत्नी होती, एक समय खाने को मिलता दूसरे वक्त न मिलता। आप पानी भरती, आप आटा पीसती, आप भोजन पकाती, थके हुए पति के आगे रखती, वह भोजन करता और ताजे पानी के घूँट पीकर मेरी ओर प्यार से देखता तो मैं जी-जी उठती। वह सच्चे प्यार की चितवन, वह भी तेरी स्नेह भरी दृष्टि,

जगत उस पर न्योछावर कर दूँ, उस एक दृष्टि पर से पूरी न्योछावर हो जाऊँ, मेरा दिल, मेरे स्वामी का दिल, एक इन्नाहट में झरनाये, फिर दुख क्या और भूख काहे की? गरीबी क्या तथा विदेश क्या? वास्तव में बात है कि अमीरी मन के सुख की शत्रु है। अधिक विवाह तो अमीरी ही करवाती है और अधिक विवाह प्यार में विघ्नकारी होते हैं।

पदमा–मेरी बुजुर्गों एवं सत्यकार करने योग्य अग्रेजों तुम तो अपनी ही बातों में ही लग गई हो और मैंने और बातें करनी थीं, कहो तो शुरू करूँ?

रानी-डढवाल–हाँ री हां पंडिता, बातें करनी हैं। तूने अभी विवाह जो नहीं करवाया, न किसी से संबंध बना न पता चला। सुख से बस रही है, एक अकेली! न लालच किया और न झंझट गले पड़े। तुझे और-और बातें अच्छी क्यों न लगें?

पदमा की माँ–रानी-डढवाल! बेटियों से भी मज़ाक, आपस में तो चलो हुआ ही।

रानी-डढवाल–ओह! रानी-चंबा! मुझसे तो भूल हो गई कि पदमा बेटी है। क्षमा करना, क्रोधित नहीं होना, पर मुझे इस बेटी से भी ईर्ष्या है जिसने पोथियों के साथ विवाह किया है और सुख की नींद सोती है। तेरे जैसी माँ मिल गई है और यह मौज मारती है तेरे सिर पर। क्षमा करना मैं मुंह फट जो ठहरी।

पदमा–तुम सभी बुजुर्ग़ मेरी माताएँ हो। मुझे यह बताइये कि तुमने गुरू को कैसा पाया है?

रानी-डढवाल–सबसे पहले मैं बताऊँगी, ले सुनः–

मोहिनी मूरत, सुन्दर सूरत, साक्षात आप, आकाश में कोई नहीं, धरती पर अन्य कोई नहीं, ब्रह्मलोक, शिवलोक रिक्त तथा स्वर्ग खाली, जो है सो यही हैं। यदि वहाँ स्वर्ग में कोई था तो वह नीचे उतर आया है और वे घर अब खाली पड़े हैं। बस यह तो है सच्च और शेष ही बातें। अब सुन ले इन सभी पतिव्रताओं से।

रानी-चंबा–रानी-डढवाल! मैंने जो कहा था, कि बेटियों से मज़ाक अच्छे नहीं।

रानी-डढवाल–(चुटकी बजाकर) जुलाहे का मजाक माँ-बहिन के साथ।

पदमा–मैं आपकी बच्ची हूं, आप सब ही मुझ से प्यार करती हो। हाँ जी, गुरू जी को कैसा पाया?

रानी-डढवाल–बताओ री, मूक मुख वालिओ। किन्तु सच्च-सच्च कहना।

रानी-श्रीनगर–मेरी समझ में तो यह आया है कि प्रत्येक युग का अपना-अपना अवतार होता है। हमारे युग के अवतार ये हैं।

रानी-नाहन—मेरा भी यही विचार है कि आप विष्णु जी सौलह कला संपूर्ण अवतार हैं।

रानी-मंडी—मेरी तथा मेरे पति की आँखों में तो ध्यान बस गया है। यहाँ से होकर हम उन्हें अपने नगर ले चलेंगे और दास बनकर सेवा करेंगे। बस मेरे से और क्या पूछती हो। मेरे तो ध्यान आधार हो गये हैं। क्या बताऊँ? (यह कहकर नयन भर आये)।

रानी-डढवाल—वाह, वाह! वाह, वाह!

रानी-सुकेत—मैं तो घर से यह धारण करके गई थी कि यदि अवतार हैं तो मुझे राम रूप होकर दिखाई दें। अतः जब मैं गई तो मुझे साँवली सूरत, मोहिनी मूरत, धनुषधारी मृग पर तीर चलाते हुए दिखाई दिये। मैं तो उन्हें राम रूप समझती हूं।

रानी-नुरपुर—मेरे नगर ही हों ठंडी छाया, वट वृक्ष के नीचे बिछाऊं पलंग, सतगुरू जी के आगे लाकर रखूँ सफेद चावल और भैंस का दूध, और इन पहाड़ी राजाओं को अथवा सिखों द्वारा सुन्दर सतगुरू जी का एक बाल भी बांका न होने दूं। हाँ बिजली गिरे इन पर कि ये 'ईश्वरीय ज्योति' के साथ टक्कर लेते, लड़ते तथा दूसरों को लड़ाते हैं। बिटिया! मेरी आँखों को तो हंस अवतार दिखाई देते हैं।

रानी-डढवाल—कितने प्यारे लगे हैं?

रानी-नूरपुर—जैसे सुदामा जी को कृष्ण, विभीषण को राम, ध्रुव को विष्णु।

रानी-डढवाल—फिर मत जाओ, तुम्हारा नाश हो। पतियों को दो चार लगाकर उन्हें शरण में क्यों नहीं लाकर पटकतीं और अमृत छककर चरण कमलों में गर्क क्यों नहीं हो जातीं।

रानी-नूरपुर—तेरे जैसी भोज सुपत्नियाँ हम नहीं हैं।

पदमा—हाँ भुट्टना जी!

रानी-भुट्टना—मैं तो जंगली स्त्री हूं, मुझे क्या पता? बस इतना पता है कि जब दर्शन किये मेरे रोम जिह्वा की भाँति हो गए और यों सुनाई देने लगा कि 'वाहिगुरू-वाहिगुरू' कर रहे हैं। फिर मैं तो इसी में ही रह गई, मुझे और कुछ भी ज्ञान नहीं।

रानी-किंडथल—विष्णु रूप, शंख, चक्र, गदा, पद्म।

रानी-डढवाल—विष्णु के दस अवतार। तुझे कौन से दिखाई दिये, कृष्ण रूप?

रानी-किंडथल–साक्षात चतुर्भुज रूप अवतारी मनुष्य रूप नहीं।

रानी-हंडूर–मुझे तो उस समय यह दिखाई दिया कि वे अभी-अभी कालिया नाग को नथ कर आये हैं, और अपने तेज प्रताप में दरबार लगाकर बैठे हैं और सभी राजे शरण में आ गए हैं।

रानी-गुलेर–दर्शन करके मन में आया कि सभी शृंगार उतार दूं, कपड़े जला डालूं और अंगों पर भभूत रमा लूं, गेरुये वस्त्र पहन लूं, जटायें छोड़ दूं, तानपूरा ले लूं और द्वार-द्वार पर घूमकर उच्च स्वर में बोलूं:–

"आप आये जग तारन कारन क्यों सुतैं संसार।
नयन के द्वार सूर्य खड़ा है मिलिए नयन उघाड़॥"

रानी-डढवाल–फिर मूर्ख! प्रतिज्ञा काहे की? लगा छलांग, हम भी तेरे चरणों की धूलि माथे पर लगाकर चलें। पीपा की एक सौ रानियों में से एक सीता का उद्धार हुआ, हमारे बाईसधार में से रानी-गुलेर का उद्धार हुआ। तरजा ऐ सखी शुभ वासना में 'नहि बिलंब धर्म' होना चाहिए।

रानी-गुलेर–(ठंडी सांस भरकर)–पति की आज्ञा?

रानी-डढवाल–मरने दे।

रानी-चंबा–तेरी जीभ भेड़ की बढ़ गई ऊन की भाँति कैंची मांगती है। मन बड़ा हुआ अच्छा नहीं होता, बढ़ जाने वाली जीभ भी अच्छी नहीं। वह कथा नहीं सुनी क्या?

रानी-श्रीनगर–हाट वाली।

रानी-डढवाल–सुना दे ताकि मेरे दुष्ट मन पर भी कोई असर पड़े। यह तो कहता है कि जब तक पंतग चढ़ी हुई है। डोर लम्बी छोड़ दे, उड़ ऊपर के घट में। सुना न फिर कथा।

रानी-चंबा–एक राजा ने अपनी परमेश्वर भक्त पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह कर लिया और नई पत्नी के घर रहने लगा। बारह वर्षों तक पहली पत्नी के महलों में गया ही नहीं। एक दिन नई पत्नी ने कहा महाराज! आप एक रात मेरी सौत के घर चले जाओ, बारह वर्षों से उससे नहीं मिले, अंत उसका दिल भी तो मेरे जैसा ही है न। राजा माना नहीं, पर उसके अधिक बल देने पर उसने बात मान ली और चला गया। जब भोजन करके रात को पुरानी रानी के पास, जोकि परमेश्वर की भक्त थी, बैठा, तब वह पंखा करने लगी। तब राजा

ने पूछा कि तेरी सौत ने आज तेरे पास क्यों भेजा है? रानी कहने लगी, उसकी कृपा है।

राजा ने कहा–तूने बारह वर्ष कैसे व्यतीत किये?

रानी ने उत्तर दिया–परमेश्वर के स्मरण में।

राजा–और मुझे कभी नहीं याद किया। कभी कोई सेवा करने का ख्याल भी न आया?

रानी–महाराज! आपकी याद क्या कहूं (आँखों में आँसू भर आये)।

राजा–मेरी सेवा।

रानी–जी मुझसे और तो कुछ नहीं बन पाया पर दोनों समय दासी का रूप धारण करके सौत के घर जाया करती थी और नौकरों को इनाम देकर तथा उन्हें प्रसन्न करके उनके द्वारा आपका भोजन वाला झूठा थाल मंगवाकर मैं उसे प्रेम सहित मांज देती थी। इससे अधिक मैं और किस तरह सेवा करती? यह सुनकर राजा का मन भर आया और उसके शुभ गुणों को जानकर कहने लगा, "क्या तू अपनी सौत से भी कभी मिली?"

रानी–जी कई बार मिल चुकी हूं और यह प्रार्थना की है कि मुझे एक बार राजा जी से मिला दे।

राजा–क्यों?

रानी–मैंने आपसे क्षमा माँगनी थी। यह कहना था कि 'पातशाह! और आपने जो दूसरा विवाह किया है, मुझ में क्या कोई अवगुण था, पर मुझे उस अवगुण का पता नहीं। अतः मुझे उस अवगुण के लिए क्षमा कर दीजिए, ताकि मैं हल्के मन से इस संसार को छोडूं। बस, इसी क्षमा के लिए प्रयत्नशील रही।

राजा–(और नरम होकर पूछने लगा)–क्या सौत ने कृपा करके मुझे तेरे पास भेजा है।

रानी–जी हाँ।

राजा–तेरे से कोई सेवा नहीं ली, कोई घूस नहीं मांगी?

रानी–सेवा! मुझ नकारी से उसने क्या सेवा लेनी थी?

राजा–क्या तूने आज तक उसे कोई स्थान, मकान, अथवा माल पदार्थ नहीं दिया?

रानी–इन बेकार बातों का क्या विचार करना हुआ। मुझ गरीब का क्या सामर्थ्य?

राजा–नहीं, मुझे ठीक बताओ।

रानी–यदि कोई बड़ी बात हो, तो बताऊं, तुच्छ बात का क्या बताना?

राजा–तुच्छ बात भी बता दे, मेरी प्रसन्नता तथा आज्ञा यही है।

रानी–वह जो नौलखा हार मुझे मायके से दहेज में मिला था, सौत ने वह मांगा था और कहा था कि यदि वह हार उसे दूं तो वह एक रात आपको मेरे घर भेज देगी। अत: महाराज उसने कृपा की है। अब आप मुझे मेरा अवगुण बता दो और मुझे क्षमा कर दो।

यह सुनकर राजा क्रोध से लाल-पीला हो गया और कहने लगा, "अच्छा उसने हमारा मूल्य नौ लाख रखा है? नौ लाख? हम सुसरे केवल नौ लाख के हैं?" बस इसी गुस्से में कि मैंने उस पर अपना आपा तथा अपना राज्य न्यौछावर कर दिया, उसके बदले उसने मेरा मूल्य नौ लाख ही रखा है, वह नई रानी से उपराम हो गया और वह 'बढ़े मन वाली' रानी हमेशा के लिए परित्यक्ता हो गए। अब वह परित्यक्ता रानी नौलखा हार को खूंटी पर लटकता देखकर सारी उमर ठंडी सांस भरती रही।

अत: रानी डढवाल! मन के बढ़ने से डरना चाहिए। फकीर लोग ईश्वरीय खुशी के समय मन को बढ़ने से रोकते हैं, दुनियादार जगत की खुशी के समय सुखी को सहन करते हैं। तू नाचती टापती है। देखना कहीं कपास वाली हंसी न हंसता। ऐसा न हो कि कपास की भाँति छटकी-फटकी जाए।

रानी–डढवाल–वाह पण्डिता जी की माता! कही तो कलेजा को सहम के मारे बर्फ की भाँति जमा देने वाली बात, पर ज्वालामुखी की लपटों को कौन बुझाये। ये तो न जाने यदि पति ने धमका भी दिया और दुख की बर्फ लहरा कर गिर भी गई तो भी लपटें निकलती ही रहेंगी। भगवान् मेरे ऊँचे बोल को नीचा न करे, वह स्वयं जो ऊँचा है, ऊँचा रखने में तो उसकी बड़ाई है। है न? (ताली बजाकर हंस पड़ी), पर इस समय मन को कौन वश में करे?

काफी समय पश्चात चूहण नामक एक फकीर ने यह कथा सुनकर एक छन्द की रचना की:–
'शाला हार टूटे अध विचों, तेरे थीवण लाल अजाईं।
जे जाणा हारी नूं हार हरेंदा, तां हारे हत्थ न लाईं।
इक डुहाग बिआ जग दी शुहरत मैं किसते आएल सुणाईं।
चुहड़ मन वधे दीआं मारों, मैं मुठीआं बेपरवाही।
(काश! हार टूटे मध्य में से, तेरे व्यर्थ लाल हो जायें।
यदि यह जाने हारी को हार हराये, तो हार को हाथ न लगायें।
एक और सुहाग-विहीनता दूसरी ओर जग प्रसिद्धि किसको कहें सुनायें;
चूहड़ मन बढ़ने की मार, मैं ठगी गई बिन सोचे समझे हाय।)

सनिक्को–(धीरे से)–काश! 'अब' संभालने का अंतर्मुख सुख का ढंग आ जाए, तो आपका उद्धार हो जाये।

रानी-डढवाल–(सुनकर) यह उद्धार की बात किसने कही है? (देखकर) अच्छा! न जाने यही पण्डिता की सखी तथा अंतरंग सहेली है। हो भी क्यों नहीं, क्या कहा है, अंतर्मुख होकर 'वर्तमान में सुख से जीऊँ?' अरी भोली! अंतर्मुख अगले जन्म में, यह जन्म सफल हो गया है, 'दर्शन हो गए'। बस इस जन्म के लिए यह नशा काफी है। सेवा, भक्ति, प्यार कल्गी वालों की साधना आगामी जन्म में करेंगे। इस जन्म में तो यह नशा भी नहीं उतरेगा कि मुझ जैसा कौन है जिसे साक्षात ब्रह्म के दर्शन हो गए। जिसके लिए योगी ध्यान लगाते हैं तथा तपस्वी तप साधना करते हैं, उसे अपनी आंखों से देख लिया, किसने? मुझ जैसी मुंह फट, बुद्धिहीन, गुस्ताख ने, पति की अवज्ञा करने वाली ने। हां, दर्शन कर लिया। पापियों को भी दर्शन देता है। मुझ जैसी को भी दर्शन हो गए हैं। कल से यह नशा चढ़ा कि 'मैंने दर्शन किया है', इस जन्म में तो नहीं उतरने वाला, सनिक्को! अगले जन्म, हाँ, अगले जन्म, तप करेंगे, परिश्रम करेंगे। इस जन्म में खुशियां, प्रभु ने धन दिया, धान दिया, पति दिया और मेरे वश में पति दिया, फिर अहं भरी, मानवती की गरदन (ताली बजाकर हंस पड़ी) नहीं तोड़ी। अपना दर्शन दिया है, मुझे सूक्ष्म पीसकर अपनी सूक्ष्मता नहीं दिखाई, मेरे मोटे हिरन जैसे नयन कटोरों को दर्शन–हां प्रत्यक्ष चमकते सूरज दर्शन, जाहिर प्रत्यक्ष दर्शन की देन से भर दिया है। क्यों सनिक्को। इस अनुकम्पा का आभार, क्या एक जन्म में पूरा हो सकता है? बता अंतर्मुख हो, आंखें मूंदकर क्यों बैठी है? मुंदे हुए छप्परों में से मोती मत गिरा, मैं जौहरी नहीं, मुझे मेरे कानों में सुनने योग्य अक्षरों में कह तो, क्या एक जन्म में इस अनुकंपा का आभार, एक पापी जिसका प्रत्येक रोम भी जिह्वा बन जाये और दिन रात धन्यवाद भी करता रहे, फिर भी कभी धन्यवाद पूरा हो सकता है? हो स्वयं पवित्रता की जलती हुई लपट और दर्शन दे मुझ जैसे अभिमानियों को। सनिक्को! इस अनुकंपा का आभार, इस अनुकंपा का नशा, हां री ज्ञानवान्! इस अनुकंपा का अधुमान री अधुमान, री मुझ से भूल हो गई अभिमान, री अभिमान, काफी है, बहुत है। अगले जन्म में तेरी मेरी बातें, फिर करेंगे, तेरे साथ मिलकर, अंतर्मुख 'ध्यान' तथा 'वर्तमान' को सम्भालेंगे किसी अन्य सुख में, जिससे मैं पिसकर सूक्ष्म हो गई हूंगी, अभी तो मैं अद्रवित हूं, मोटी-मोटी, फूली-फूली, स्थूल-स्थूल। मेरे लिए धन्यवाद-धन्यवाद बस है कि मुझे 'अपने दर्शन दिए हैं'।

पदमा–(बात काटकर)–क्षमा करना, आपके कटाक्ष रहस्यपूर्ण हैं।

रानी-डढवाल–मुंह फट तथा अभिमानी हूं, और जानती हूं कि जगत की मर्यादा यह नहीं, पर अपने इस अभियान पर बस नहीं चलता, ऊपर से आज और नशा चढ़ गया है। एक तो बावली थी और ऊपर से पी ली भांग।

रानी-श्रीनगर–मेरी भी सुनो। मेरी यह इच्छा हुई है और मैंने राजा से कहा है कि देश पर भार है, राज्य में उपद्रव हो रहा है। आप 'धरा का भार हरने के लिए आये' प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। तुम अब सुलह करने के लिए आये हो, केवल सुलह ही न करो, बल्कि शरण में पड़कर सिखों तथा राजपूतों का एक भारी दल इकट्ठा करके भारत का भार हर दो। अतः बहनो! मुझे तो 'धरा का भार हरने' वाले दिखाई देते हैं।

रानी-बिलासपुर–मुझे कुछ नहीं दिखाई दिया। एक प्रकाश था और प्रकाश के बीच एक और प्रकाश था और प्रकाश के फूल प्रकाशमान घोर आकाश में से गिर रहे थे और कोई कह रहा था, खाकी जामा (देह) पर नहीं भूलना। मेरे विचारनुसार साक्षात गुरू है और गुरूओं के गुरू हैं, शब्द दाता हैं। मैंने पहले मंत्र ले रखा है, 'अयं आत्मा ब्रह्म' और प्रतिदिन इसका जाप करती हूं। पर गुरू जी के हजूर जाते ही भूल गया है और जीभ पर चढ़ गया 'वाहिगुरू'। इससे मैंने समझा कि युग युगांतरों का गुरू, गुरूओं का गुरू यही है।

रानी-डढवाल–सभी झिलमिल, झिलमिल, जो हमारी राय, वही ठीक।

पदमा–माताओ और अग्रजो आप सबके आगे एक विनय है, यह कि क्या आप ने कोई परीक्षा भी की है?

सभी–नहीं जी।

रानी-डढवाल–सुन री पढ़ी लिखी, सीधी स्पष्ट बात। परवाने दो प्रकार के होते हैं। परवाने समझती है न, पतंगे। एक तो दीप शिखा को देखते ही शिखा के गले मिलकर उसी में समा जाते हैं। दूसरे, पास जाकर परखते हैं कि वही है कि कोई और वे परख करते-करते अपने पंखों को जलवाकर बीच में गिर पड़ते हैं। बाद में पास पहुँचने योग्य भी नहीं होते और परीक्षा हो जाने के कारण लालसा और बढ़ जाती है। अतः बढ़ती हुई लालसा में से कैसे मिलें, तड़पते हैं। कभी देखा तूने कि नहीं कि दीपक के नीचे गिरे हुए जले पंखों वाले पतंगे, तड़पते तथा लालसा भरे शिखा से दूर ही दूर सिसकते हुए पड़े रहते हैं।

पदमा–और कोई ऐसे नहीं होते जो परख करते हैं और परख कर परख करते ही शिखा में प्रवेश कर जाते हैं?

रानी-डढवाल–हां री बिटिया, हां सच्च, ऐसे भी होते हैं। बिटिया तू तो कुछ समझदार लगती है। ले अब परख, पर फिर कुछ हमें भी बतायेगी कि वहां पर ही रह जायेगी। पर हमने परीक्षा के बारे में सुनकर क्या लेना? हमें तो नशा चढ़ गया है। 'खुशियां नित्त नवीआं मेरे सतिगुरू दे दरबार' सिख गाते हुए सुने जाते थे, अतः ले ली खुशियां। साक्षात है साक्षात।

पदमा–मेरी प्रार्थना यह है कि यदि मेरी परख भी आपके विचारों के साथ मिल जाये, तो मैं पिता जी से प्रार्थना करूंगी और आप भी अपने-अपने स्वामियों पर जोर डालें कि ये युद्ध बंद हों और सारे मिलकर तुर्क साम्राज्य के विरुद्ध एक भारी शक्ति बन जायें।

रानी–डढवाल–कहें क्या? ये पहाड़ी मर्द क्षण में तोला, क्षण में माशा, तवे पर पड़े छींटे की भांति, पल भर के लिए सूंसूं की आवाज़, तवा फिर गरम का गरम। कल से सारे लट्टू हो गये हैं, मेरे पति तो अमृत छककर 'तैयार बर तैयार' बनने के लिये तैयार हैं, पर कल क्या होगा? कौन जानता है? बिटिया। तेरी बात तो शुभ है और हो भी जाएगी, पर जब तुर्कों ने भभक मारी, दिल्ली से गुप्त इशारा आया, तो सभी ने मेंढकों की पंचसेरी बन जाना है। मेंढकों की तरह फुदक-फुदक भागना है तो सब झंझट नौरंग के संकेतों का है, जो आपस में लड़वाकर मरवा रहा है, वैसे प्रयत्न कीजिए।

पदमा–फिर जो भगवान करे, पर एक बार शुभ यत्न हो जाना चाहिये।

रानी–डढवाल–संभलकर परीक्षा करना। जो परख में पूरा उतरता है, उसको कुछ अर्पित करना पड़ता है, जो, 'स्वत्व' से कम नहीं होता। सुना है बिटिया! परीक्षा लेना, तो मानो अपने आपको होम करना होता है।

सभी–अवश्य हो जाए।

बहुत-सी बातें करके रानियां विदा होकर अपने-अपने डेरों पर चली गईं।

: ५ :

पदमा अपने खेमे में बैठी है कि राजा जी आ जाते हैं।

पदमा–आज हमने सभी रानियों से गुरू जी के दर्शनों के समाचार सुने हैं। सभी उन्हें अवतार मानती हैं।

राजा–कल हुई राजाओं की मुलाकात का भी यह असर है सभी वहाँ गए थे, सभी अफसोस करते हैं कि इनके साथ लड़ाई क्यों की। इनकी वृत्ति तो अथाह तथा पूर्ण त्याग वाली है और केवल सृष्टि का भार हलका करने की चाह रखते हैं। भूमि हो कि धन धान्य उन्हें किसी की भूख नहीं।

पदमा–फिर पिता जी! ऐसे वीतराग महापुरुष के साथ युद्ध बंद होना चाहिए।

राजा–इस समय तो युद्ध बन्द करने को ही नहीं पर कई तो सिख बनने के लिए भी तैयार हैं। सतगुरू जी के दर्शन तथा वचनों ने ऐसा मोहित कर दिया है।

पदमा–फिर कौन सी कमी है?

राजा–परमा, कुछ नहीं करने देता। वह चाहता है कि ऊपर-ऊपर से सुलह

हो जाये और वह बीच में चौधरी बना रहे। राजाओं को इतना मेल मिलाप न हो कि उसकी जरूरत ही न रहे।

पदमा—फिर राजा स्वयं समझ लें, एक नौकर के वश में न पड़ें।

राजा—वह बड़ा नटखट है, सांप है जिसका काम है टेढ़ा होना, फिसलना और गुपचुप डंक मारना।

पदमा—पर जब मालिक सचेत रहे तो फिर?

राजा—ठीक है बिटिया। अब आशा तो है कि शान्ति बनी रहेगी, पर।

पदमा—'पर' कहकर चुप हो गए हो प्यारे पिता जी!

राजा—कहीं कोई सुन न रहा हो।

पदमा—(उठकर तम्बू के बाहर चली गई, कोई भी पास नहीं था, सनिक्को थी, मगर वह दूर खड़ी थी और दूसरी दासियां उससे भी परे थीं, अतः वापस लौट आई)—पिता जी! आसपास कोई नहीं।

राजा—(धीरे से)—हम राजे तो शतरंज के मोहरे हैं। जिस समय ऊपर से कान खींचे गये, हम इशारे की चाल चलने लगते हैं। कौन राज्य भाग्य को हाथ से जाने दे और बाल बच्चों को कोल्हू में पिलवाया जाये, अतः मेरा विचार है कि राजे अमृत न छकें, सिख न बनें, क्योंकि सिख बनने के बाद जब दिल्ली से इशारा हुआ और हमने नहीं माना तो हमारे राज्य गए और यदि मान लिया तो भाग्य गया। गुरू जी से विमुख होने वाले को नरक में भी कोई स्थान नहीं मिलेगा। बिटिया! मैं इन चिन्ताओं से घिर रहा हूँ। शेष, गुरू जी ही महापुरुष हैं, राजाओं तथा रानियों सब पर उनका प्रभाव पड़ा है। एक परमा अभी तक अजमेर चन्द को बहका रहा है।

पदमा—पिता जी! आपका यों सोचना ठीक है। यदि वे ईश्वर की ओर से आये हैं, जैसा कि लोग कहते हैं अथवा वीतराग परोपकारी हैं, जैसा कि आप कहते हैं तो क्या उनके साथ लगकर शहीद होना वीरता का कार्य नहीं?

राजा—है तो सही। शताब्दियों से गरदनें तुड़वाकर दिल हार गए हैं, साहस नहीं बंधता, और हमारी असफलता ही दिखाई पड़ती है, इसी से चिन्तित हूं।

पदमा—क्या आप गुरू जी से भेंट कर आए हैं?

राजा—हां, बहुत ही अच्छे हैं।

पदमा—क्या मैं जाकर देखूं। यदि चमत्कारी हों? और यदि चमत्कार कोई वस्तु है तो सम्भवतः उनका चमत्कार रक्षा करे और सफलता मिल जाये।

राजा–तुम बिटिया। जाओ मिलो। तुम्हारा मिलना सत्संग है, राजसी मामले और बातें हैं।

पदमा–मैं पहले पत्र भेजना चाहती हूँ।

राजा–कोई आपत्ति नहीं, भेजो।

यह कहकर राजा जी अपने तम्बू की ओर चले गए और सनिक्को आ गई।

पदमा–सनिक्को जी! मैंने आज्ञा ले ली है।

सनिक्को–अब मुझे सनिक्को कहकर न बुलाया कीजिए।

पदमा–जो कहो वही बुलाऊं, पर क्यों?

सनिक्को–मैं अमृत छककर मान कौर बन गई हूं।

पदमा–पगली, अकेले अकेले।

सनिक्को–तुम लोग पढ़े लिखे हो, तुमने सौ नाप तोल करने हैं और मैं हूँ सीधी-सादी, मुझे सच जच गया है। मैं तो चंबे में ही भाई शाम सिंह जी, उस सदैव खिले, सदैव आनन्द दाता जी की संगति से प्रतीतिवान हो गई थी।

पदमा–वे भले पुरुष, जिनके तूने मुझे अमृत वेला में दर्शन करवाये थे?

सनिक्को–हां वही दाता लोग।

पदमा–उनके वाक्यों का प्रभाव तथा उस समय के शान्त रस का प्रभाव मुझे अभी तक भूला नहीं।

सनिक्को–और मुझे विश्वास है कि आपका उद्धार अवश्य ही होगा, क्योंकि–

'प्रभ जी बसहि साध की रसना'। (सुखमनी)

हुकम है, और साधु की जीभ ने उस समय कहा था,

'समर्थ सिर पर हाथ रखेगा', यह वाक्य पूरा होगा। जी! वे बहुत ही ऊँचे गुरू जी के लाड़ले बच्चे हैं।

पदमा–(मुस्कराकर)–अच्छा, सनिक्को।

मानकौर–फिर सनिक्को? मुझे इस नाम से क्षमा कीजिए।

पदमा–भूल गई, मान कौर जी! अब बताओ श्री गुरू जी के दर्शन करने के लिए कब चलें?

'प्रियतम जी' में जो 'राजा जी के सिपाही' के नाम से आये हैं।

मान- कौर–जब कहो; अभी चलो।

पदमा–मेरा विचार पहले पत्र भेजने का है।

मानकौर–आज्ञा लेनी है कि खाली समय के बारे में पूछना है?

पदमा–नहीं (झिझककर)–कुछ परीक्षा लेनी है।

मान कौर–हे उर-प्रिया। परीक्षा वे लें कि दें? इसीलिए तो मैंने कहा था कि तेरे शिक्षित टेढ़े मस्तक ने अभी कई बल पेच खाने हैं। अच्छा, वहां कौन सी कमी है।

पदमा–यह ले पत्र, इसका उत्तर ला दे।

मान–क्या मैं इसे पड़ सकती हूँ?

पदमा–पढ़ ले।

मान–ऊँचे .स्वर से पत्र पढ़कर–

सारा? पौना? दूजा गाउणा?
नर नारी थे दोनों भउणा? **(फिरना)**
कुछ खाधा कुछ लैके सउणा? **(सोना)**
उत्तर दिओ गुरू जी कउणा?

खूब प्रश्न किए हैं।

यह कहकर पत्र अतलस की थैली में डालकर दासी के हाथ में दे दिया और कहा कि जाकर गुरू जी से इसका उत्तर लेकर आओ।

दासी 'सत्य वचन' कहकर चली गई और थोड़ी देर के बाद उत्तर लेकर आ गई, जो मान कौर ने खोला और पढ़कर सुनाया–

जाणो सारा देव देह, पौणा मानस देह।
दुविधा दूजी गवन कर, नर नारी हुए खेह।
उभै लोक भउंदा फिरे, कुछ खाधा खरच जि माल,
प्रलै भई सउणा हुआ; उत्तर तुमराबाल"।

समझी?

पदमा–हाँ।

भान–मुझे भी समझाओ।

पदमा–मैंने पूछा था कि संपूर्ण कौन है और पौना तीन-चौथाई कौन है, और दूसरा चल देना क्या है? नर तथा नारी के दो घर कौन से हैं? कुछ खाकर कुछ साथ लेकर वे सो गये, बताइये यह क्या है? आपने उत्तर दिया है कि 'देव तन' तो सम्पूर्ण है, और मनुष्य का तन पौना है। अब विचार यह है कि संपूर्ण भटकता

नहीं और पौना भटकता है। इसलिए कि पौना दुविधा में चला जाता है अत: दूसरा कौन हुआ? दूसरा दुविधा है, जिसमें गमन करके नर तथा नारी भस्म हो जाते हैं। इस लोक में कुछ माल खाकर तथा खर्च करके, दुविधा के कारण प्रत्येक व्यक्ति इहलोक तथा परलोक में भटकता फिरता है। इनका सोना प्रलय में हो सकता है, अन्यथा भटकन ही भटकन है।

मान–कोई अन्य गहरा विचार?

पदमा–(गहरी सोच में उतर गई और थोड़ी देर के बाद बोली, हां, एक अन्य विचार भी स्फुटित होता है और गुरू जी के उत्तर का भाव यह भी लगता है:–

"देह में जो देव रूप है वह संपूर्ण है और देह में जो मानस (मन अथवा लिंग शरीर) है वह पौना है, क्योंकि वह देवसत्ता पर निर्भर करता है। दूसरा पौना जो है वह दुविधा में पड़कर नर-नारी का रूप धारण करता है, ये दोनों रूप, नर तथा नारी अंत भस्म हो जाते हैं और जो मन है वह दोनों लोकों में भटकता फिरता है और संचित माल को, अर्थात् किए हुए कर्मों के फल को खाता खरचता है (भटकता ही रहता है, जब) प्रलय हुई संचित कर्मों को लेकर सो जाता है"।

मान–क्या तसल्ली हो गई है?

पदमा–उत्तर तो ठीक है, पर बीच में जो उलझन थी, मैंने सोचा था कि अपने आप सुलझा देंगे उन्होंने प्रश्न का पूरा उत्तर दिया है।

मान–फिर?

पदमा–एक अन्य पत्र भेजूंगी।

मान–भेजो।

कलम दवात लेकर लिख दिया–

नक्शे खिच्चण हारिआ (खींचने वाले) केहा (कैसा) नक्शा वाहिआ (खींचा) ई?

पुठीआँ (उल्टी) सिधीआँ मारके रंग डोल्ह (बखेरकर) विखाइआ ई, भर कागत चीच गलोलियां (गोल घेरे) थहु (पता) किते न लाइआ ई। इस विंग तड़िंगे (टेढ़े-मेढ़े) नक्शे विच किउं सानूं (हमें) पाइआ ई?

दासी लेकर चली गई और उत्तर ले आई जिसे पदमा ने ऊंची आवाज़ से पढ़ा–

नक्शे खिचणहार ने (परमात्मा ने) केहा (कैसा) नक्शा वाहिआ (खींचा) है। हम बिंदी (बिंदू) घुंडी (गोल) लीक (लकीर-रेखा) विच रंग अपना लाइआ

(लगाया) है। इस चील उत्कट गलोचा। (गोल घेरा) प्रेम दा इस नक्शे वाहिआ (खेंचा) है। रख कुंजी ओहले (ओझल) एसदे (इसके) विच हैरत (आश्चर्य में) पाइआ (डाला) है।

मान कौर–अब बताओ?

पदमा–उत्तर पूरा है।

मान–अब क्या इच्छा है?

पदमा– **दिल मेरे कुछ हुंदा (होता) सखीए,**
कलवल कलवल उठन
गगन दमामे अंदर वाले, लहर उठो कुछ सुट्टण।
की आखां (क्या कहूं) की कहां की नाहीं,
घुन वांगूं (ध्वनि की भांति) मैं कंबां (कांपू)।

किरना (किरनों की) वाँग (भान्ति) लहिर होई, (धुई) बिन अंगों (बिना अग्नि) पई लुट्ठन (जलने की आभास)।

मान–फिर?

पदमा–फिर वही बुद्धि तथा विद्या एक बार पहले दूर से दिखा दे, और अगर नेत्रों को तसल्ली हुई तो सामने जाऊंगी।

मान–अच्छी बात। कल उस 'नूर के बुक्के' (ज्योति पुंज) को मालवीय पर्वत पर शिकार को जाना है। पिता जी से पूछ लीजिए। यदि आज्ञा मिल जाये तो वहाँ वृक्षों की आड़ में चल बैठेंगे और तुझे दिखा देंगे। मुझे वृक्षों के एक सुन्दर झुंड का पता है, जहाँ से हम देखेंगे, पर हमें कोई नहीं देख पायेगा।

पदमा–जीती रहे सखी!

: ६ :

शिकार के लिए चढ़े तो पर्वत पर अगले दिन गुरू जी पर्वत पर गये किन्तु आज शिकार होने लगा मनुष्यों का। आप वृक्षों के एक सुन्दर झुंड के पास पहुंचे जहाँ बहुत अद्भुत दृश्य था और बैठने के लिए भी सुन्दर स्थान था। वहाँ जाकर उस दृश्य को ध्यान से देखने लगे, जो देखने वाले के नयनों पर से न्यौछावर होने की काफी लम्बे समय से प्रतीक्षा में था। ठीक इस स्थान के पास जो झुंड था, उसमें मान कौर तथा पदमा छिपकर बैठ गई।

मान–देख लिया है?

पदमा–(आँखें अडोल गड़ी हैं) हूं।

मान–क्यों?

पदमा–(नयन अचल तथा मूक हैं)।

मान–बोलिये तो सही।

पदमा–(मूक)

मान–क्यों?

पदमा–(मूक)

मान–(झंझोड़कर) बोलिये न?

पदमा–जीभ मेरे साथ नहीं आई, घर पर ही रह गई थी।

मान–फिर बोलीं कैसे?

पदमा–अभी आई थी, लौटकर जा रही है।

मान–(ठहरकर) अब तो बताओ?

पदमा–नयनों को जी नहीं, जीभ को नयन नहीं।

मान–माना?

पदमा–हाय! डर लगता है। (मान की भुजा को दबाते हुये)

मान–क्यों?

पदमा–पता नहीं।

मान–मैं अब कुछ भी नहीं बोलूंगी (काफी समय मूक रहकर) देखती हो, वह कौन आ रहा है?

पदमा–कोई गन्धर्व जैसा है।

मान–हम तनिक आगे हो जायें और सुनें। नयनों ने शरबत पी लिया है, परन्तु कान प्यासे हैं।

दोनों तनिक आगे हो गईं और कान लगा दिये।

गन्धव–(चरणों पर झुककर) हे त्राणकर्ता! मेरा उद्धार करो।

सतगुरू जी–तू।

कौन है?

गन्धर्व– **मैं रेवा का नंदन प्यारो!**
जग 'रेवाल' नाम मुझ डारा

(गुः प्र सूरज)

सतगुरू जी–अपनी व्यवस्था सुनाओ।

रेवाल–मेरी माता ने मुझे तप करने को कहा था। तप मैंने राज्य प्राप्ति की लालसा से किया। अतः मैं राजा बन गया। यहाँ पर मैंने राज्य किया। मंडी नामक

नगर बसाया था, पर फिर यक्ष नामक एक जाति ने युद्ध कर मुझे हरा दिया और मेरा राज्य भाग्य छीन लिया। मैंने फिर इस स्थान पर तप किया। यहाँ पर 'रवालसर नामक' तीर्थ बना, जल में पत्थर तैर रहे हैं परन्तु मैं भवसागर से न तर सका।

सतगुरू जी—पहला तप तो तूने मन के सुख के लिए नहीं किया, राज्य प्राप्ति की लालसा से किया, जो समय पाकर छिन गया। दूसरा तप किया, मन के सुख के लिए नहीं किया, मन में शत्रुओं से वैरभाव रहा और ध्यान ऋद्धियों सिद्धियों में रहा। आयु बढ़ाने तथा प्राणायाम करके नाटक चेटक तथा दूसरे कामों में लगा रहा। त्राण कैसे हो? यदि हृदय में आत्म सुख की लालसा उठती, अंतरात्मा में परमेश्वर जी के साथ उच्च मिलाप के सुख की लगन लगती, तब कल्याण होता परमपद, अभयपद प्राप्त होता। अब आयु बढ़ा भी लो तो क्या? कलेजे में तो टीस उठती है दु:ख की और वैर की और प्राप्ति हुई है नाटक चेटक की।

रेवाल—सत्य, आपने सत्य कहा है मेरे भीतर यही मैल है पर मैं इसे निकाल नहीं सका। आपका यश सुनता और आराधना करता रहा हूं, मेरा उद्धार कीजिए।

इस समय एकान्त था, बिल्कुल निर्जन स्थान था और टिकाव था। सुन्दर सतगुरू जी के ईश्वरीय कंठ में से उठा नाद, ध्वनि ले ली इसने मारू राग की। वैराग्य का एक आश्चर्यजनक समय छा गया और यह शब्द उच्चारण किया गया।

जिसु ग्रिहि बहुत तिसै ग्रिहि चिंता॥
जिसु ग्रिहि थोरी सु फिरै भ्रमंता॥
दुहू बिवसथा ते जो मुकता
सोई सुहेला भालीऐ॥१॥
ग्रिह राज महि नरकु उदास करोधा॥
बहु बिधि बेद पाठ सभि सोधा॥
देही महि जो रहै अलिपता
तिसु जन की पूरन घालिऐ॥२॥
जागत सूता भरमि विगूता॥
बिनु गुर मुकति न होइऐ मीता।
साध संगि तुटहि हउ बंधन
एको एकु निहालीऐ॥३॥
करम करै त बंधा नह करै त निंदा॥
मोह मगन मनु विआपिआ चिंदा॥

गुरप्रसादि सुखु दुख सम जाणै
घटि घटि रामु हिआलीऐ॥४॥
संसारै महि सहसा विआपै॥
अकथ कथा अगोचर नही जापै॥
जिसहि बुझाए सोई बूझे
ओहु बालक वागी पालीऐ॥५॥
छोडि बहै तउ छूटै नाही॥
जउ सिंचै तउ भउ मन माही॥
इसही महि जिसकी पति राखै
तिसु साधू चउरु ढालीऐ॥६॥
जो सूरा तिसही होइ मरणा।
जो भागै तिसु जोनी फिरणा॥
जो बरताए सोई भल मानै
बुझि हुकमै दुरमति जालीऐ॥७॥
जितु जितु लावहि तितु तितु लगना॥
करि करि वेखै आपणे जचना॥
नानक के पूरन सुखदाते
तू देहि त नाम समालीऐ॥८॥

[मारू महला ५ अंजुलीआं]

इस शब्द से संसार की गृहस्थ, संन्यास, उदास, घर, कर्म, अकर्म, दोनों सीमाओं के चित्र मिट गये। एक प्रभु आज्ञा पर अडोल टिकने का वातावरण बन गया।

सतिगुरू जी—रेवाल! राज्य होने में घमण्ड आ जाता है, घरों में गृहस्थ के अहंकार के कारण अपने लिये नरक तैयार कर लिया जाता है। उदासी बनकर वैरागी होकर तेरी तरह, क्रोध बढ़ जाता है। जो साधू की संगति करता है, गुरुमुख बनता, नाम का जाप करता है और प्रभु-आज्ञा पर दृढ़ रहता है। जो व्यक्ति प्रभु की अनुकंपा की आकांक्षा रखता है, उसकी शरण लेता है, (जो किछु करै सोई सुख मनु) उसकी दुर्मति जल जाती है, उसका लालन-पालन बालक की भांति किया जाता है। उसका रक्षक कोई अन्य हो जाता है और उसे कल्याण प्राप्त होता है।

इस समय रेवाल मग्न हो रहा था, एकाएक सतिगुरू जी के चरणों पर झुक गया। आपने पीठ पर थपकी दी और कहा, "निहाल! सिद्ध जी निहाल।" ऐसा

कहते ही उसका ध्यान मोह, माया, क्रोध, उदासी में से निकल शुद्ध मण्डलों में आरूढ़ हो गया, स्व अरोग होकर दिखाई देने लगा, शीतलता छा गई और वह बोला–

'धन्य तू! धन्य तू! हे दाता धन्य! आह आज एक नई बात भीतर में प्रतीत हो रही है, वह शीतलता सी क्या है? यह शीतलता तो कई जन्मों के तप में नहीं देखी थी। आयु बढ़ा ली, पर शीतलता-सी प्रतित का आस्वादन नहीं किया, सिद्धियां प्राप्त कीं, पर इस जैसी शीतलता का लाभ नहीं किया।

"तू धन्य! तू धन्य।"

सतगुरू–उदय सिंह, दया सिंह, आलम सिंह, मुहकम सिंह, साहिब सिंह, पांच ही हो अथवा कोई और भी है।

उदय सिंह–पांचों ही महाराज!

सतगुरू–किसी दूसरे का भुलावा पड़ता है। शिखर पर आते समय हमने मना किया था कि और कोई भी साथ न चले। कोई आया तो नहीं?

उदय सिंह–सच्चे पातशाह! सब को नीचे ही वापिस भेज दिया था, घोड़े भी भेज दिये थे, आप के साथ पैदल हम ही आये हैं। यदि आज्ञा हो तो देखें कहीं कोई छिपकर न आया हो, किसी राजा का कोई छल न हो।

सतगुरू जी–नहीं सुगंधि मित्र की है। दया सिंह जी 'आनन्द साहिब जी का पाठ कीजिये।'

दया सिंह जी ने मधुर ध्वनि से पाठ किया।

पदमा–(धीरे से) मान जी! सतिगुरू जी सच्चे पातशाह हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। सभी राजे आगे-पीछे परास्त हुये से फिरते हैं और आपका लोहा मानते हैं। सतगुरू जी विद्वान हैं। मेरे पत्रों के उत्तर सिद्ध करते हैं कि सतगुरू जी में ईश्वरीय तेज है जिसे फारसी भाषा में 'इलाही जलवा' कहते हैं। मेरे पिता सहित दर्शन करने वाले सभी यह मानते हैं कि सतगुरू जी "मुक्तिदाता" हैं। इस रेवाल सिद्ध का कल्याण होते हमने स्वयं आंखों से देखा है। आप अन्तर्यामी हैं। देखो हमारी उपस्थिति को, चाहे हम कितने भी छिपे हैं, जान गये हैं और यह भी पहचान गये हैं कि हम मित्र हैं।

मान–क्या अभी तसल्ली की आवश्यकता है?

पदमा–आवश्यकता तो और नहीं। यह कंपन जैसी क्या है? पर (होंट काटकर) पर हाँ...कल चरण-स्पर्श करेंगे।

मान–सत्य वचन, कौन-सी जल्दी है। जब तक मन न माने तब तक विश्वास हो भी जाये तो ईमान में शामिल नहीं। फिर हम चलें?

पदमा–नहीं, तनिक और, हाँ पहले 'अवर्णनीय' जी चले जायें।

उधर सतगुरू जी चल दिये, इधर से बाद में ये दोनों धीरे-धीरे चल पड़ीं और अपने डेरे पर पहुंच गईं।

: ७ :

परमा अपने तंबू में पड़ा है, नौकर-चाकर काम में लगे हुये हैं और इनका मनोराज अपने आप साथ चल रहा है। जिस ऐश्वर्य पर पहुंचने की चिंता में था, वह पास-पास है और ये खुशी सहित अपने आपसे कह रहा है:–

अरे मां के परमा तथा लोगों के परमानन्द! अब तो शिखर पर आ गया। बाईस धारा के राजे समझते हैं कि तू अकल का कोट तथा महान् राजनीतिज्ञ है। सुलह करवा दी, शान्ति हो गई और फिर किसी भी राजा को स्वयं चलकर आनन्दपुर नहीं जाना पड़ा। यह हमारी बुद्धिमत्ता गुरू के घर में वह क़माल है कि जो कुछ मैं चाहूँ, वही कुछ हो। लड़ें सिख, मरें सिख, सेवा करे सिख, खज़ाने भरे सिख और निर्वाह चले हमारा। जो कहें वही गुरू करें, जिस रास्ते पर चलायें, उसी रास्ते पर गुरू चलें। इन बड़े लोगों का क्या है? तनिक प्रशंसा कर दी, जिस बात का शौक हुआ, उसमें कोई सहायता कर दी, फिर ले लो काम। सिखों में श्रद्धा तथा प्रेम, हम में चतुराई, सबसे आगे मुखिया, पर मन! होश कर खुश न हो। अकल से निर्मित कोट सदैव अकल तथा नीति की नींव पर टिकते हैं। सावधानता, चौकसाई। हाँ खबरदार! असावधानी नहीं। ऐ परमा! इस समय गुरू के घर में तू चौधरी, राजघराणों में तू चौधरी, पर यदि कहीं राजाओं तथा गुरू के बीच सुलह भीतरीय भाव से हो गई फिर तुझे कोई नहीं पूछेगा। 'समधी-समधी' मिले। विचौले रह गये 'खड़े कि खड़े' वाली बात हो जायेगी। इतनी सुलह हो गई है कि कई राजा तो श्रद्धा भरपूर हो गये हैं, कई रानियों में श्रद्धा भर गई है, यह अच्छी बात नहीं। अभी स्थिति सम्भाल लो। बाद में तेरी पेश नहीं जायेगी।

पर हां, पहाड़ियों को बहकाने में कौन-सी देर लगती है। यदि मैं चाहूं तो इन्हें आज ही यहाँ पर लड़वा दूं, पर यदि लड़वा दूं तो गुरू अबोध बालक नहीं, मेले पर आया है पर साथ सारे योद्धा आये हैं। पता किसी को भी नहीं लगा, पर गोला बारूद भी साथ काफी आया है। यदि लड़ाई छिड़ गई तो गुरू ऊपर से गोत मारेगा, चोट नहीं खायेगा। समय तो अच्छा था, कि यहाँ पर ही काम पूरा कर देते। पर हैं! सोच, एक तो गुरू पूरी तरह तैयार हैं और दूसरा यदि गुरू न रहे तो तेरी चौधराई कैसे रहेगी? यदि गुरू हुआ तो राजे तेरे को मध्यस्थ बनाते रहेंगे, अतः गुरू जी को जीवित रहने दे, वे रहें तो किन्तु रहे, दूरी पर रहें ऊपर से मिले रहें और भीतर से अलग-अलग। बस अब इस बात का ध्यान रख कि सुलह की गाँठ जो तूने डाली है, वह ढीली-ढीली रहे, पक्की न होने पाये, न जाने ज़रूरत के समय तू ही इसे खोल न सके।

हाँ, परमानन्द! हाँ सच्च, इस समय तेरा ऐश्वर्य शिखर पर है। व्यर्थ सपने। पदमा यहाँ आई हुई है। पंडिता है। ...खट, खट, खट, खट। (कान लगाकर, मन में) यह क्या है? (उच्च स्वर में) कौन है?

जीतू–मैं हूं जीतू जी! घर से आया हूं।

परमा–क्यों, सुख है न?

जीतू–पत्रिका लाया हूँ। यह लीजिये।

परमे ने पत्र लेकर पढ़ा। एक रंग हरा एक पीला, फिर सफेद धवल हो गया चेहरे का। क्या हुआ है? श्री परमानन्द जी महाराज को क्या हुआ है? आँखें भर आईं। हिचकी आने लगी लगा ऐ जगत के युक्तिसम्पन्न और जोड़-तोड़ करने वाले। क्या आ बीती। आह इन्सान का दिल, जहाँ बुद्धि ने चूहों के बिलों जैसे पेचदार पोल भर दिये हैं, वहाँ पर भी चोट लगती है। परमा जी का इकलौता बेटा बीमार पड़ा है बिलासपुर में। चिकित्सा हो रही है, पर बचने की कोई आशा नहीं। हाय! आँखों का तारा, तृषित की सन्तान, एक ही इकलौता। परमा के लिये धरती आकाश काले पड़ गये, जगत शून्य हो गया। चक्र पर चक्र आ रहे हैं, निराशा कलेजा तोड़ रही है, शरीर में बल नहीं रहा, आँखों में प्रकाश नहीं रहा। काफी समय इस तरह रहकर फिर परमा जी होश में आये और कहने लगे:–

परमा–अरे जीतू! बेटे का क्या हाल है?

जीतू–महाराज! क्या कहते हो, गुजर गया होगा। बड़ा लाचार था।

परमा–(तगड़ा होकर)–चिकित्सा?

जीतू–हे महाराज! दवादारू की तेरे घर में क्या परवाह है? सैंकड़े वैद्य, हज़ार हकीम।

परमा–जाओ। (अपने आप से) हे मन, अब क्या आशा है? एक भगवंत की। भगवंत ने बीमार किया है, उसी की ओर से आशा बंधती है। भगवंत के साथ कोई चारा नहीं? कोई पूजा, जप, जापन, हवन, मिन्नत, प्रार्थना? मैं मिन्नत करूँ? हाय, किस मुंह से? सुनेगा? नहीं, भगवंत कहेगा अब अपनी जरूरत के लिये आया है, स्वार्थी? प्रार्थना करूं? कैसे? कौन-सा मुंह लेकर? पाप तथा पापों की गाँठ के साथ। अपने पाप लज्जित करते हैं।

लोग कहते हैं कि गुरू करामाती हैं। कई बातें देखी भी हैं। चलो गुरू से कहते हैं कोई चमत्कार दिखायेगा। पर गुरू मनुष्य है, करामात असंभव है। मूर्खों का मनोरंजन है। (सोचकर) नहीं रे, योग दर्शन विभूतिपाद में तो बुद्धिगोचर करके बताया है, जहाँ एकाग्रचित् अपना ध्यान जोड़े, वहाँ ही सिद्धि है। गुरू योगी तो है, तीसरे पहर उठ जाता है, और रहता ही है, अलिप्त योगी है?...है तो

योगी। चलो चलकर प्रार्थना करें। तेरे से प्यार भी है। पर क्या तेरी त्रुटियों को नहीं जानता। नहीं जानता तो मारकर पछाड़ देता। नहीं जानता होगा। नीतिज्ञ जानते हुये भी जताते नहीं और ये सिख फकीर तो देखकर भी अनदेखा करते हैं, ठगे जाते हैं, पर उसका आभास नहीं होने देते। ओह! निराशा! कोई दशा हो, तेरे पास कोई उपाय तथा पुत्र को बचाने की दवाई नहीं, डूबते को तिनके का सहारा। यही एक आशा है। अतः चलकर देख ले, न जाने तेरा कोई दाव लग जाये।

इस प्रकार की सोचें सोचता, टेढ़े मन को ठीक रास्ते पर लाता हुआ गुरू जी के पास प्रसाद लेकर पहुंचा। वहाँ पर कीर्तन करने वाले इस शब्द का गायन कर रहे थेः-

बहु परपंच करि पर धनु लिआवै॥
सुत दारा पहि आनि लुटावै॥१॥
मन मेरे भूले कपटु न कीजै॥
अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै॥१॥ रहाउ॥
छिनु-छिनु तनु छीजै जरा जनावै॥
तब तेरी ओक कोई पानीओ न पावै॥२॥
कहतु कबीरु कोई नहीं तेरा॥२॥
हिरदे रामु की न जपहि सवेरा॥३॥५॥

[सोरठ कबीर]

समाप्ति होने पर सतगुरू जी ने आदर सहित कहा, आओ परमानन्द जी! आज तुम्हारा रंग पीला हो रहा है? जगत को स्थिर जानकर जो किले बनाये थे, क्या उनमें से कोई ईंट निकल गई है?

परमा-जी निकलने लगी है, कृपा कीजिये, जिससे न निकलने पाये।

गुरू जी-कर्म की गति को कैसे टाला जा सकता है? (मुसकरा दिये)।

परमा-आप ही कर्मगति के फल के प्रदाता हैं, आकाशों पर हैं, आप ही यहाँ पर हैं? (सतगुरू जी के आँखें मूंद ली)।

उधर संगत में धीरे-धीरे बातें छिड़ गईं।

उदय सिंह-आज यह बिल्ली बड़ी डर-डरकर नमाज़ पढ़ती हुई आई है।

ध्यान सिंह-कोई चोट लगी होगी। कलेजे में चुभी होगी। पुराने पापी कभी यों ही पसीजते हैं?

दया सिंह-लगा है कोई बाण, देखो न आँसू रुकते नहीं, होंट फड़क रहे हैं।

दौलत सिंह–पीरों के साथ मुकाबला करता था, अन्तर्यामी के साथ छल करता था, अब पड़ गई न।

महिताब सिंह– **'मन मेरे भूले कपटु न कीजै॥**
अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै॥'

सतगुरू जी–(नयन खोलकर और परमा की ओर देखकर) परमानन्द!
"दुक्रित सुक्रित थारौ करमु री॥"

परमा–सच्च है, पातशाह! पर कर दो न उल्टी-सीधी, दो दान घर के कुत्ते को।

सतगुरू–परमा! क्या चाहता है नश्वर वस्तुएं, माँग परमेश्वर का नाम ताकि जीवित रहे।

परमा–पातशाह! वह भी दे दो, यदि आपको अच्छा लगे, वह भी दे दो, जो मैं मूर्ख मांग रहा हूँ। (सभा में से किसी ने धीरे से कहा) दो-दो और चुपड़ी, कपटी!

गुरू जी–तेरे धर्म में लिखा है, अत: प्राणों के बदले प्राण।

परमा–पर तेरे घर में अनुकंपा है, बक्सीस है, कर छूट, अजीत सिंह के सिर के सदके, भिखारी को भिक्षा दे जुझार सिंह के सिर सदके।

एक सिख (उठकर)–पातशाह! यदि गुरू को किसी सिर की आवश्यकता है तो दास हाज़िर है।

गुरू जी–(उठकर गले से लगाकर)–प्यारे! धन्य सिखी (शिष्यत्व)! निहाल! खालसा जी! परमा का पुत्र अंतिम स्वासों पर है; यह उसके लिये प्राण माँग रहा है और प्राणों के बदले प्राण होते हैं।

सिख–फिर यदि आपकी खुशी है तो प्राण हाज़िर हैं, चाहे किसी के लिये लगा लीजिये।

गुरू जी–तुम्हें परमानन्द का पता है?

सिख–सब पता है पातशाह! पर हम तो आपकी आज्ञा पर न्यौछावर होने के लिए तैयार हैं। हमें आपके मनोभावों से क्या और किसी के कर्मों से क्या वास्ता?

यह दशा देखकर परमे के पावों के नीचे से मिट्टी निकल गई, कि हैं! सारे सिख मुझे जानते हैं, समझते हैं और फिर मेरे लिए प्राण देने के लिये तैयार हैं। (लज्जा के कारण उसे पसीना आ गया)। हाय मुझ पर! (गुरू जी की ओर करबद्ध होकर) पातशाह! करो कृपा।

एक सिख–परमा! भीतर से पाप निकाल दे! गुरू नानक का द्वार बख्सीस दानशीलता वाला है, पर सरल व्यक्तियों के लिये सरल बन जा, भोले! बिल में तो सीधा हुए बिना साँप भी नहीं घुस सकता, जो वैसे बल के बिना एक कदम भी नहीं रेंग सकता।

परमा–(परमा को मन में लगा कि उसके भीतर कपट है, कपट करने के बाद फिर अनुकंपा की मांग कर रहा है, अनुकंपा तो वही माँग सकता है जो नम्र होकर शरण में रहता है। हाय ममता! जिसने मुझ शतरंजी के बल निकाल दिये हैं, निहाल होकर गुरू जी के चरण पकड़ लिये)–हे पातशाह! सच्चे पातशाह! बच्चे के प्राण बचा लीजिये।

सतगुरू–तेरे घर में जीवित रहकर पुत्र तो तेरी ही बुद्धि तथा विद्या को ग्रहण करेगा। उसे बेदाग़ जाने दे।

परमा–पातशाह! मैंने त्याग दिया और सब कुछ त्याग दिया। जब तक जीवित रहूंगा, माला फेरूंगा, बस मन के फेर के बिना मैंने सभी हेरा-फेरी का त्याग किया। मेरे किये हुए कर्मों के लिये क्षमा करो, आप अन्तर्यामी हैं, मेरे पुत्र के प्राण बचा लीजिये।

सतगुरू–जरूरत पड़ने पर सुधि इच्छा की तीव्रता का ताव पाकर सीधी होती है, सच्च को देखती है, बहुत अधिक भक्ति करती है, बाद में फिर टेढ़ी हो जाती है।

परमा–सच्च है दानशील प्रभु, मुझ पर दया कीजिये, मैं बदल गया हूँ।

सतगुरू–जियेगा पर साधु संगत की कृपा से, साधु संगत से विमुख होते ही चला जायेगा।

परमा–सत्य वचन, पातशाह! आपके घर का दास होगा।

सतगुरू–तू भी सरल जीवन व्यतीत करेगा?

परमा–पातशाह, बहुत ठीक। आज मेरी आँखों के आगे से जगत प्यार का परदा हट गया है। वैराग्य है और असारता दिखाई दे रही है। अब जीऊँगा तो आपको भीतर भीतर बसाऊँगा और स्मरण करूंगा, मेरे किये अवगुणों के लिये क्षमा कीजिये।

सतगुरू–जा परमा, घर पर किसी को भेज दे ताकि गुरू नानक के द्वार पर प्रसाद भेंट करके अरदास प्रार्थना कर 'धन्य गुरू नानक' की ध्वनि बालक के कानों में डाले, अब जा।

परमा सिर झुकाकर चला गया।

जमना सिंह–(सतगुरू जी की ओर देखकर)–पातशाह! यह ज़हरीला नाग है।

सतगुरू–'नरायण दंत माने डाइण।'

जमना सिंह–क्या जी यह अब सीधा रहेगा, गुरू घर की बहुत बुराई करता है।

सतगुरू–जो जिस का जी चाहे करे, गुरू नानक के घर में तो दानशीलता है। जो करेगा सो भरेगा, इस समय यह स्पष्ट है। दुनियादारों को भय ही सीधा करता है। अतः जो भय के नीचे सदा के लिए सीधा हो गया, उसका उद्धार हो गया, अन्यथा टेढ़े ने तो भार पड़ने से टूटना ही है।

इस समय संगत ने बड़े प्रेम सहित गायन किया।

'जो सरणि आवै तिसु कंठि लावै
इहु बिरदु सुआमी संदा॥

(बिहागड़ अंः ५)

: ८ :

पदमा को मालवीय पर्वत पर सतगुरू जी ने दर्शन कर आई को आज दूसरी रात है। वह जो कुछ देख कर सुन आई थी, वह उसके भीतर समा गया। विशुद्ध बुद्धि के गोरखधंधे तथा उलझने (दाव पेच) एक-एक करके खुलते और ढीले होते गये हैं, सरलता तथा सच्च भीतर समाते गये हैं। मानो एक अलग सी बात भीतर में धंसती चली गई है। मन में बेचैनी तथा खेंच बावला किये जा रही है। पढ़े हुए शास्त्र तथा दर्शन जो भीतर कोलाहल मचा रहे थे, अब मन्द पड़ते जा रहे हैं। चिंताएं घेरती हैं पर कोई ऐसा झटका लगता है कि सभी चिंतायें बह जाती हैं। पहली रात तो कुछ विचारों में, कुछ झटकों में, कुछ नींद में व्यतीत हो चुकी थी पर कोई अकथनीय बात भीतर में समाकर इतनी गहरी चली गई कि आज सोने भी नहीं देती और मन के साथ मन बातें कर रहा है।

पदमा–(अपने आप में) प्रिय! तेरे साथ क्या घटित हुआ? सो जा, अब तो रात भी व्यतीत हो गई। तेरे विचारानुसार "सब वाक्य रचना' ही थी, धर्म, दर्शन काव्य विद्या, विज्ञान, नीति, रिश्ते नाते प्रेम सब केवल 'वाक्य रचना' ही। छिलका ही छिलका। प्याज़। हाय मन! तुझे क्या हो गया? प्रेम के उल्टे सीधे खेल, कोई वस्तु अवश्य ही है। यह अवश्य ही 'वाक्य रचना' नहीं और न ही केवल यह शरीर मात्र ही है। यह शारीरिक पदार्थों की वस्तु नहीं, यह तो कोई अगम्य का खेल है। जब तक यह भीतर नहीं था तब तक तो 'वाक्य रचना' ही 'वाक्य रचना' थी। पर है क्या? यह वही केन्द्र है, यही 'है' है, जो सभा में उस खिले चमन के दाता ने कही थी। यही 'है' केन्द्र के इर्द-गिर्द घूमने का गृहपथ

वह आकाशी रास्ता जिस पर गृह अपने केन्द्र के इर्द-गिर्द घूमते हैं। भाव अपने बिन्दु के आकर्षण मण्डल पर है।

जो मुझसे छूट गया था, पर हाय! न जाने मन में डूबने जैसा अनुभव क्यों है? सिर को कुछ हो रहा है; मैं गई मेरे स्वामी! (फिर बेसुधी की सी दशा से उठकर) वाह, वाह! यह तो कोई पीड़ा है। कलेजे में नश्तर की चुभन सी है, टीस उठती है, कसक पड़ती है, पर है मीठी पीड़ा और अत्यंत मीठी, हाय! मेरी समझ में नहीं आता कि क्या है? मैंने सावधान रहकर दर्शन किये, सावधान रहकर बचन सुने, पर रेवाल जी के सुधार का कैसा दृश्य था, कैसा आश्चर्यजनक चमत्कार था। हैं। मेरे कानों में शब्द हो रहा है, 'छोड़ि बहै तउ घूटै नाहीं। कैसी गूंज है। वाह, वाह! स्वाद आ गया, रानियों द्वारा किये गये दर्शन का प्रयोग मैंने सावधान होकर सुना समझा तथा समझकर सुना। गुस्ताख तथा चंचल पर खरी खरी कहने वाली रानी उढवाल की चंचल पर सिदक भरी बातचीत को तोल तोलकर सुना, रानी गुलेर की बातें भी तोलीं, पर फिर भी न जाने मुझे क्या हो गया। मैंने परीक्षा लेनी थी, अब कौन कुछ करेगा। मैं समझती थी कि चतुर पुरुष सफल हैं, कि वे सुंदर 'वाक्य रचना' कर सकते हैं। सफल कवि हैं कि वे सुन्दर 'वाक्य रचना' गूँथ सकते हैं। संगीतज्ञ कामयाब है कि वे 'वाक्य रचनाओं' का बहुत ही खूबी से गायन कर सकते हैं। चित्रकार कामयाब है कि 'वाक्य रचना को रेखाओं द्वारा बनाये चित्र में रंगों तथा स्याही से अथवा विशुद्ध उभार संभार देकर टीका कर सकते हैं। (मूर्तिकार) सफल हैं कि वह स्तर हथौड़ी से 'वाक्य रचना' को पत्थर पर खोल सकते हैं। पर मुझे पता नहीं था कि शरीर के भीतर मेरे अंतर में इससे अलग कोई बिन्दु है, जो वास्तविक है, वाक्य रचना से ऊँचा है, और कोई ठिकाना है, जिसे अभी किसी ने नहीं देखा था, और जो मेरे हाथ में भी नहीं आता था, छिपा हुआ अछूत पड़ा था। हाय! यह कोई ऊँची बात है, यह कोई असूल का बिन्दु है। इसका निर्माण शरीर जैसे पदार्थ से नहीं हुआ, यह उस सामग्री से भी बना नहीं लगता, जिससे हमारे विचार तथा स्वप्न दर्शन बनते हैं, यह किसी अन्य प्रकाश की रेखा है, जो शरीर के देश की नहीं, यह कोई उड़ने वाला पक्षी, कोई परदेसी व्यक्ति है, जो यहाँ रैन बसेरा करता है। हाय! यह क्या है? हाय! पीड़ा उठती है, मैं गई, लोगो! मैं गई। (बेसुध सी हो गई, फिर होश में आकर)–शीतलता मिल गई, पर बल कहाँ गया। कैसी मधुर निर्बलता मिल गई, पर बल कहाँ गया? कैसी मधुर निर्बलता भगवान! वह बल जल जाये जो इस पीड़ा पर परदा डाले हुये है–जल जाये बुद्धि जो इस मर्मज्ञ का आंखों को चुंधियाने वाला प्रकाश है।.....आह! वाह, वाह! प्रभु! हे प्रभु! आज कैसी 'वाक्य रचना' से आहत हुई हूँ! अब तो बिना तेरे अपने ख्यालों की उधेड़बुन के अपने आप भीतर से आगम-वाक्य सोता मारने की भाँति फूटकर निकल रहे हैं। हैं! हाय प्रभु! मुझे बता और मेरी रक्षा कर। (उठकर चल दी और फिर अंधेरे में घूमकर आ गई)। आग लगे इस राज्य तथा अमीरी को। पैरों को चलने का पता नहीं, मन में साहस नहीं, नयनों को रास्ते का ज्ञान नहीं रहा, अच्छा!

(कलेजा मुट्ठी में लेकर) पर क्या हो रहा है। सिर को कौन हिला रहा है। आह! शीतलता प्राप्त हुई है, स्वाद आ गया। (शिथिल होकर लेट गई) वाह, वाह, वाह जी! (सिर हिलाकर) हाय!

(इतने में मान कौर आ गई)

मान–(पढ़ती चली आ रही है)

'प्रभु कै सिमरनि गरभि न बसै॥

प्रभु (खाँस कर) कै सिमरनि दूखु, जम नसै॥

राज दुलारी जी! जग रही हो क्या?

पदमा–मान जी! जागृत हूं।

मान–क्या मैं आ जाऊँ?

पदमा–पूछने की आवश्यकता नहीं।

मान–(अन्दर आ गई) अभी चार बजे हैं, तुम उठ गई हो।

पदमा–सोया ही कौन है?

मान–सारी रात?

पदमा–एक पल भी नहीं।

मान–कुशल तो है। (शरीर को छूकर)–शरीर तो ठीक है।

पदमा–तनिक चमड़ी के भीतर हाथ डालकर देख न।

मान–(हंसकर)–अच्छा! वहाँ तो बाबा तू स्वयं पहुँच या तेरी प्रतिछाया।

पदमा–मुझे अपनी दुर्बलता को स्वीकार करने से लज्जा आती है। पर तू बता कि मुझे क्या हो गया है?

मान–तेरी मूर्च्छा खुली है, जागृति जाई है, स्व तुम्हारा महकता है।

पदमा–पीड़ा हो रही है।

मान–टूटी हड्डी जुड़ते समय पीड़ा देती है। कली खिलते समय चटकती है। चेतन जड़ से पीड़ा से ही अलग होता है।

पदमा–हाय मैं क्या करूँ?

मान–उठ न, मेरे साथ चल, दीवान (धर्म सभा) के दर्शन कर।

पदमा–डर लगता है।

मान–फिर मत चल, सवेरे घर चले चलेंगे।

पदमा–मैंने कहा, क्या मालवीय पर्वत पर ले चलेगी?

मान–पर्वतों वाला दस कदम पर है, अब चढ़ने उतरने की क्या ज़रूरत है।

पदमा–भय लगता है।

मान–फिर पीछा छोड़।

पदमा–छोड़ने के लिये रात बीत गई, छूटता नहीं, ज्यों ज्यों छोड़ने का यत्न करती हूँ, त्यों-त्यों और पकड़ता है। न तो छोड़ा जाता है और न ही रखा जाता है।·····दर्द है।

मान–फिर चलो वैद्य के पास, दर्द की दवाई लें।

पदमा–इस समय जाने से, पिता जी न जाने क्या समझेंगे।

मान–वे स्वयं स्नान कर चुके हैं और जा रहे हैं।

पदमा–क्या माता जी साथ जा रही हैं?

मान–नहीं, वे सिर की पीड़ा में पड़ी हुई हैं। उढ़वाल रानी की असम्मानपूर्ण बातों को सुन-सुनकर तो परसों से ही सर दर्द लिये हुए हैं, पर रात तो बहुत तंग रही हैं।

पदमा–फिर आज्ञा ले आओ।

मान–आज्ञा तो मिल····मिल चुकी है, परन्तु फिर भी डर लगता है?

यह कहकर मान जी 'प्रभु कै सिमरनि कालु पर हरै" का पाठ करती हुई चली गई और राजा जी से जा आज्ञा माँगी। आप पहले ही दीवान के लिए जा रहे थे, कहने लगे:–

मान जी! बिटिया खुले द्वार से सत्संग में जाये, पर बिटिया तुम उसके साथ जाना, वह अनजान है। दो दासियों को साथ ले जाना। शामियाने तक वे भी साथ जायें और वहाँ पर ही ठहरें। लौटते समय वे साथ आयें, मेले का मौका है, और भीड़ है।

मान कौर–सत्य वचन जी!

: ९ :

एक भारी शामियाना है, जिसके नीचे एक सिंहासन बिछा है। इसके ऊपर भी कल्गीधर जी विराजमान हैं। दायीं ओर एक अन्य तख्त बिछा है, जिस पर बैठ रागी सिंह कीर्तन कर रहे हैं। इसके इर्द-गिर्द एक चबूतरा है, जिसके ऊपर संगत (लोगों की सभा) एकत्रित है कीर्तन वालों के सामने बाईस धारा के राजे

बैठे हैं। कल्ग़ीधर के पीछे प्राण न्योछावर करने वाले बहादुर शोभित हो रहे हैं। इनके तथा कीर्तन करने वालों के बीच महिलायें बैठी हैं। हाँ, शताब्दियों की दासियां सतिगुरू जी के दरबार में ईश्वरीय अनुकंपा की साझीदार हो रही हैं। कीर्तन का रंग ऐसा है कि मानो सभी मूर्ति हो सुन रहे हैं। कोई शोर नहीं, आवाज़ नहीं, राग की ईश्वरी आवाज़ शान्त वातावरण उत्पन्न कर रही है। इसी रंग में दिन चढ़ आया, सूरज ने किरणें बिखेरी, कीर्तन करने वालों ने 'आसा की वार' नामक वाणी का सम्पूर्ण पाठ किया, प्रसाद बटा। दूला सिंह नामक फरूखाबाद का एक लुहार सिंह आया, तीन सौ तीर, दो कमान, दो बाकी-बच्चे (एक शस्त्र), दो तमंचे, दो दोनाली बंदूकें भेंट कीं जो कि उसने स्वयं बनाई थीं। सतगुरू जी सारा सामान देखकर प्रसन्न हुये, आपने एक बंदूक उठाई और वहीं पर उसे भरा। राजे चकित हो रहे थे कि यहाँ बन्दूक क्यों भरी है। इतने में गुरू जी कहने लगेः–

'निशाना लगाना है, खालसा जी! कुछ व्यक्ति आगे पीछे खड़े हो जाओ। देखें कि दोनों गोलियाँ कितने शरीरों में से होकर पार होती हैं।"

इस समय प्रसन्नता तथा चाव की सीमा न रही। चालीस-पच्चास सिख एक दूसरे के पीछे पंक्ति बाँधकर खड़े हो गये।

सतगुरू जी–थोड़े-थोड़े अन्तर पर हो जाओ।

सभी थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खड़े हो गये। कड़क के बन्दूक चली, पर गोलियाँ आकाश की ओर चली गईं, किसी भी सिख को नहीं लगीं। राजे हैरान हो रहे थे कि गुरू जी क्या करते हैं और इस बात के कारण भी हैरान थे कि सिख कितने प्यार के पुतले हैं। किस चिराग के पतंगे हैं कि प्रसन्नता से मौत का शरबत हंस-हंसकर पीते हैं। पर आज और अधिक चकित हुये कि सतगुरू केवल प्यार की परीक्षा लेने वाले हैं, अकारण प्राण नहीं लेते।

अब सभी राजे एक-एक करके आये, भेंटें आगे रखीं, माथा टेका और विदा हो गये। मंडी वाले राजे ने विनती की कि आप वापिस लौटते समय मेरे महल में अवश्य चरण डालना। सतगुरू जी ने उसे स्वीकार किया। इसके बाद कई अन्य सज्जन आये और विदा हुए। जब सतिगुरू जी फारिग हुये, तब मान कौर जी आईं और कहने लगीः–

"पातशाह! कई जन्मों से बिछुड़े आपके द्वार पर आये हैं।"

यह कहकर पदमा को, जिसके नयनों की कालिमा ऊपर को उठकर खो चुकी थी, चरणों पर झुका दिया ठीक उसी तरह जैसे कोई माँ अपने बच्चे को माथा टिकाती है। "पातशाह! यह है एक मुग्ध विद्वान संसार से अनजान है या तो विद्या की ज्ञाता है या आज आकर इन चरणों की ज्ञाता हुई है।"

सतगुरू–परिचित हूँ, जानता हूँ, अपरिचित नहीं है,

अपनी है (नई आई कमान उठाकर तथा कंधे पर तनिक सी ठोकर मारकर) उठो बिटिया! पर पदमा पड़ी है। मानो चरणों पर पड़ी शरण समा गई है और अब नहीं बिछुड़ेगी।

तीन बार सतगुरू जी ने ठोकर मारी, पर पदमा पड़ी है।

सतगुरू–बिटिया निहाल। उठ तेरा कल्याण। उठ एकाग्र हो बिटिया।

पर वहाँ पर तो मानो होश है ही नहीं। मान कौर को उठाकर बड़े प्यार सहित गोद में ले लिया, प्यार किया और कहा–पदमा प्रिये! दर्शन कर। (नयन खुले, पदमा ने, सूरज को देखा। देखते ही नयन मुंद गये और फिर चरणों पर गिर पड़ी) पदमा प्रिये! उठ और अपने आपको समर्पित कर। अपना स्वत्व प्राप्त कर ले प्यारी उठ। (फिर पदमा उठी। दर्शन किये परन्तु किये नहीं जाते)।

अब सतगुरू जी ने एक कृपा दृष्टि डाली और तीर की नोक उसके सिर पर रखी। पदमा सो गई। आधे घण्टे के बाद सुध आई। शीतलता छा गई। हल्की हो गई मानो, मानो शरीर तो रहा ही नहीं। यदि है भी तो शरीर का तोल नहीं रहा। भीतर सौंदर्य की एक प्रकार की वर्षा हो रही है। रोम-रोम में फव्वारे छूट रहे हैं, रस भरपूर है। परन्तु शीतलता है, शान्ति है। आसपास तथा सामने शरद चाँदनी की भाँति शीतल सुख प्रसारित है। पदमा अब रसरूप स्वयं है, नीचे, ऊपर चारों ओर, भीतर बाहर शान्ति वाला तथा शीतल रस है, कोमल सुहाव है, मधुर ओस सी भीगा सुहाव है। कल्ग़ीधर जी पूर्ण रूप से मग्न नयन बन्द किये हुये विराजमान हो रहे हैं। न जाने आप किस देश में विचर रहे हैं। जिस देश में हैं वहाँ की जलवायु यहां आकर बस गयी है। काफी समय इस तरह का सर्ग रहने के बाद आपके नयन कटोरे खुले, खुलते ही अगम्य शरबत की मुसलाधार वर्षा हुई, दोनों जीव मदमस्त हुये।

आप कहने लगे–"पदमा! सब 'वाक्य रचना' है अथवा कोई चाँद है और वाक्य रचना उसकी चांदनी है?

पदमा–(धीरे से) "सब तू है"।

फिर आप बोले–"तू अपनी समस्ता पदमा का केन्द्र है, सारा इसी का है, केन्द्र से नहीं हटता।

पदमा–सब तू ही है। तू ही। (कहती-कहती के नयन मुँद गये, दो मोती ढुलके और फिर नयन डुबडुबाये, फिर खुले, कह रही थी)

तू ही। तू ही। तू ही।

(और उसके कान सुन रहे थे कि समस्त वन तृण में से आवाज़ आ रही थी–)

तू ही! तू ही! तू ही!

(और इस ध्वनि में सतगुरू जी के नयन मुंद गये और मधुर गुँजार हो रही थी)।

तू ही! तू ही! तू ही!

मान खो गई और देख सुन रही थी, समस्त अंदर बाहर गुंजार है:

तू ही! तू ही! तू ही!

ब्रह्मांड को जीभ लग गई है और गुंजार रही है।

तू ही! तू ही! तू ही!

(आवाज़ अगम्य की हो रही है–)

'असति एक दिगरि कुई॥ एक तुई एक तुई॥'

'असति एक दिगरि कुई॥ एक तुई एक तुई॥'

(नाद हो रहा है, ध्वनि उठ रही है, हाँ ध्वनि-नाद-गुण आनंद उठ रही हैं:–

तू ही! तू ही! तू ही!

सूर्य मस्त हो गया सुनकर:

तू ही! तू ही! तू ही!

(जब तू ही! तू ही! की गूंज में से नयन खुले तो दोपहर हो चुकी थी; अब भी आभास प्रतीत हो रही थी कि फुहार पड़ रही है)।

तू ही! तू ही! तू ही!

सतगुरू–पदमा! पदमा! पदमा बोले "मैं" मैं को पंख लग गये वासना के। पदमा उड़ी और मैं मैं, करती खो गई, परन्तु अपनी मैं, का पहचान भूल गई।

कोई चमत्कार हो जाये, तृष्णा के पंख टूट जायें, फिर 'मैं' मैं में टिके, मैं, 'मैं' में समा जाये फिर लौ का तार बंधे, मैं को जकड़ लिया जाये, मैं को बाँधकर ले जाये अति-भीतरी मैं को 'मैं' के केन्द्र से जोड़ दे फिर चिल्लाए 'मैं' और कहे: तू ही! तू ही! तू ही! और देखे तू ही! तू ही! और सुने तू ही! तू ही! तू ही!

और संगीत–थर्राट–नाद ध्वनि कान में पड़े–

'असति एक दिगरि कुई। एक तुई एक तुई॥'

मूकता

पदमा–(चौंककर) हे अकथ महाराज कृपा करें! कृपा करें! कृपालु लाल! कृपा करें। दयाल लाल।

मान कौर–मैं आ गई।

सतगुरू–बिटिया जी! क्या है?

पदमा–मेरा दुष्ट सहस भरा स्वभाव।

हे दाता! राजाओं का युद्ध दोबारा आपके साथ न हो, मुझे कोई इस 'तू ही' से न हटाये। दीजिये करुणा दान (रोने लगी)।

सतगुरू जी–दुलारी जी! तेरे नयन उस दिन को नहीं देखेंगे।

पदमा–शुक्र! शुक्र! शुक्र! 'तू ही' लगी रहे, मैं समाई रहूँ इसमें।

मान कौर (धीरे से)–दयाशील जी; मेरी पदमा के दिन थोड़े हैं, अथवा राजद्रोह दूर अथवा समाप्त है?

सतगुरू–(मुस्कराकर कान में)–मान कौर बिटिया! पदमा के तिल कम हैं।

मान कौर–मेरी पदमा! बह रही है निर्मल गंगा, भर ले अँजलियाँ तृप्त हो-होकर (अब बेबस होकर चरणों से लिपट गई, रोम-रोम मैं तू ही! तू ही! तू ही। गूँज रहा था, सतगुरू जी ने अपने पावन कर-कमलों से थपकी दी)।

सतगुरू जी–निहाल पुत्री! नाम का निवास पुत्री! कल्याण पुत्री।

मान कौर–पातशाह!

प्रभ जनम मरन निवारि॥
हार परिओ दुआरि॥

सतगुरू–'गुरमुखि आवै जाई निसंगु।

मानकौर–पातशाह! यह बिटिया संसार के दुखों को देखने की शक्ति नहीं रखती।

सतगुरू–अब कोई दुख नहीं देखेगी। फिर आयेगी, तो नाम में पिरोई हुई होकर आयेगी, नाम वाले को कोई दूरी नहीं होती, यदि हो तो इलाज है। मान कौर! शेर (शक्ति सम्पन्न), 'गुरमुखि आवै जाइ निसंगु', गुरुमुख बनें, गुरमुख बने रहें, गुरमुख होकर आयें, गुरमुख होकर जायें।

मान कौर–धन्य दाता।

पदमा–तू ही! तू ही! तू ही।
तू ही! तू ही! तू ही।

❑ ❑

५८ हरि गोपाल बिशम्बर दास

बाईस सौ पच्चास वर्षों से अधिक समय व्यतीत हुआ है कि सिकन्दर यूनानी ने भारत पर आक्रमण किया था। इस पांच पानी (पंजाब) की धरती के बहादुर राजा पुरू ने ऐसा मुकाबला किया और वीरता दिखाई कि सिकन्दर वाह वाह कर उठा। जब राजा रणभूमि में अकेला रहा गया, पुत्रों सहित सारी सेना तहस-नहस हो गई, तो वह हाथी पर से उतरकर घोड़े पर सवार होने लगा तो सिकन्दर आप स्वयं आ पहुंचा ओर कहने लगा–'पुरू! बता सिकन्दर तेरे साथ कैसा व्यवहार करें?' तो उस समय शूरवीर ने पूरे साहस के साथ कहा, 'वही जो कि एक सम्राट को दूसरे सम्राट से अधिकार है।'

सिकन्दर ने प्रसन्न होकर उसे गले से लगा लिया और उसका मित्र बन गया। उसका राज्य उसे लौटा दिया और कुछ अन्य इलाका भी उसके साथ दे दिया। फिर सिकन्दर सतलुज के किनारे तक बढ़ा, पर उसकी सेनायें पंजाबियों की वीरता के सामने ठहर न सकीं और उन्होंने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। तब सिकन्दर पीछे हटा और कुछ समय के पश्चात नदी के मार्ग द्वारा दक्षिण में समुद्र की ओर चल दिया। जब मुलतान पहुंचा तो इस स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। यह 'मलोई' नामक एक पंजाबी वीर जाति की राजधानी थी। लगता है कि इन ही के नाम पर राजधानी का नाम मुलतान पड़ा। इन लोगों का कोई राजा नहीं हुआ करता था, पंचायत का ही राज्य हुआ करता था। सिकन्दर के साथ इन्होंने भी ऐसी वीरता से युद्ध किया कि उसको इनकी वीरता का लोहा मानना पड़ा। इस युद्ध में सिकन्दर स्वयं घायल हो गया था। परन्तु वे कम तथा ये अधिक, अन्ततोगत्वा बेचारे पराजय को सिर पर आई देखने लगे। तब मलोइयों के एक भाग ने सन्धि कर लेना स्वीकार कर लिया, पर जो बहुत शूरवीर तथा राष्ट्रीय थे वे राजधानी को छोड़कर दक्षिण की ओर चले गये और मध्य भारत में जा बसे। लगता है कि उस इलाके का नाम इनके नाम से ही मालवा पड़ गया। इसकी राजधानी एक प्रसिद्ध नगर उज्जैन बनी। यह नगर तो भारत की भी राजधानी बन गया था, जब राजा विक्रमादित्य राज्य करता था, और भारत के शत्रु

यह प्रसंग पौष मास शुक्लपक्ष सप्तमी सं० गु० ना० शा० ४६७ बुधवार को ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित हुआ था।

विक्रम संवत् इनका ही चलाया हुआ है।

वंश के लोगों को पराजित किया करता था। समय व्यतीत होता गया, भारत की स्वतन्त्रता तथा ऐश्वर्य का सूर्यास्त हो गया, पर विक्रमादित्य की वह नगरी उज्जैन बसती रही और अब तक बस रही है।

इस नगर में आज हम एक पिता को देख रहे हैं। पिता एक तख्त पर घर के आँगन में बैठा है। पुत्र बाहर से आया है। पुत्र के आते ही नमस्कार किया, पर पिता ने उत्तर नहीं दिया, वह 'रहिरास' का पाठ कर रहा था। पुत्र पटरी लेकर बैठ गया, और पाठ सुनता रहा। समाप्ति के पश्चात पिता ने अरदास (प्रार्थना) की, पुत्र ने सुनी, सिर निवाया, फिर दोनों बैठ गये और वार्तालाप छिड़ा।

पिता–(बिशम्बर दास)–बेटा! क्या अब भी किसी साधु से मिलकर आये हो।

पुत्र–(हरि गोपाल)–हाँ पिता जी। परन्तु पल्ले तो कुछ पड़ता नहीं, अंत, उस वैष्णव की क्रिया मन को कुछ रुचिकार लगती है।

पिता–सरकन्डे हैं, सरकंडे, दुर्लभ ईख, मिठास नहीं, रस नहीं है।

वैष्णव की भी क्रिया मात्र ही है, जीवन अंश नहीं है। जीवन अंश वाला वही अपना गुरू का घर है, श्री गुरू नानक देव जी का घर, जिसकी गद्दी पर इस समय गुरू गोबिन्द रूप साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी विराज रहे हैं। वे हैं जीवित जागृत, जीवन के स्वामी और जीवन दाता, जिनके पास इस देन के भंडार भरे पड़े हैं। उनकी शरण में जाने से 'पदार्थ' मिलता है। दूसरी जगह से तो 'पद' पल्ले पड़ता है, पर जिसका ज्ञान पद करवाता है, वह वस्तु सत्य है, उसका अनास्तित्व नहीं, वह वस्तु असितत्व रखती है, वह है, उसे मैं कहता हूँ–पदार्थ। पद अथवा उसका अर्थ मात्र नहीं, पर जिसे वह पद ज्ञात करवाये, वह है सत्य वस्तु स्वयं। 'इस पद जो अरथाइ लेइ सो गुरू हमारा' सच्चा गुरू मेरा गुरू है, जिसके पास पद है, अर्थ है और जिसे पद तथा अर्थ जताते हैं, उस सत्य वस्तु को वह जान्नता है, उस सत्य वस्तु को वह प्राप्त है, अथवा इस प्रकार कहें कि उसे वह सत्य वस्तु प्राप्त हैं। फिर उस तक वह पहुँचा सकता है और उसका ज्ञान दे सकता है।

पुत्र! मेरी बात सुनकर घबराना नहीं, मैं कोई पण्डित नहीं। तुम विद्वानों की संगति करते हो, पद शास्त्र के पद पदार्थों को सुनते हो, तुम कहोगे नैयायिकों के पदार्थ तो १६ हैं, वैशेषिकों के सात हैं, सांख्य की इस प्रकार की गणना २५ है, पंतजलि की २६, तथा वेदांत की दो। तुम कहोगे कि मेरे पिता यह नई बात क्या कह रहे हैं। न सुनी न पड़ी। पर पुत्र! मेरा भाव कुछ और है। मुझे पता नहीं कि गुरू घर (दर्शन) में कितने पदार्थ हैं, पर मेरी दृष्टि में नाम पदार्थ है। मेरे गुरू की वाणी नाम को एक पदार्थ बताती है। यह एक पद है, इस पद में अर्थ

यह नगर अब भी क्षिपरा नदी के किनारे आबाद है।

है तथा इसमें वह है, जिसका यह ज्ञान करवाता है, और जो हमारे जानने योग्य तथा प्राप्त करने योग्य है। कैसे कहूं? वह केवल पढ़ने-पढाने की बात नहीं, यह तो कमाई (साधना) है, परिश्रम है, जीवन है, अनुकम्पा है, जीवनदान है। यह ज्ञान है, प्राप्ति है, सहज है। जो आनन्दपुर, श्रद्धावन्त का बेड़ा पार। जा, वे पद भी प्रदान करेंगे, अर्थ भी बतायेंगे, और जो पद तथा अर्थ का लक्ष्य है, वह भी देगे, और तू पदार्थ वाला भी हो जायेगा।

हरि गोपाल–पिता जी! दूर का सफर है, बहुत ही दूर है। स्वभाव सुख से रहने का है। अभी वैष्णव के साथ मन लगा हुआ है।

पिता (विशम्बर दास)–बेटा! बातचीत, हंसी मज़ाक, कान रस, मन रस, घड़ी दो घड़ी का मनोरंजन, कुछ दया, शरीर की सफाई मात्र हैं। जीवन न तो उसके पास है और न वह दे ही सकता है। तू सुनता है शास्त्रों की उक्तियाँ, जो तेरे संशय का पालन कर रही हैं। खेल मनोरंजन, विद्वता का पढ़ना रटना तो हर जगह पर मिल जाता है, पर जीवन? वह दुर्लभ है। मैं विद्या तथा सफाई का विरोधी नहीं! किन्तु पर बेटा! विद्या भी जीवनदान प्राप्त कर चुके लोगों को ही रसदायक लगती है और जिन्हें जीवनदान नहीं मिला, उन्हें 'तीक्षण बुद्धि' तथा 'दिमागी ज्ञान' मात्र की दानकर्ता है। प्राय: विद्या जैसा भी स्वभाव हो उसे ही तीक्षण कर देती है।

नामु चितवै नामो पड़ै नामि रहै लिवलाई।। नाम पदारथु पाईअै चिंता गई बिलाइ।।

पदार्थ=पद+अर्थ। पद–शब्द, अक्षर, दरजा, पदवी। अर्थ=मायने, आशय, उद्देश्य, कारण लाभ, वस्तु, इन्द्रिय ज्ञान, द्वारा जानी जाने वाली वस्तुएं, धन दौलत विशम्बर का 'पदार्थ' से तात्पर है 'पद' उसके अर्थ। उसके विचार का विषय जिसको वे ज्ञात करवायें, वह वस्तु स्वयं भी। उस वस्तु को वह सत्य वस्तु भी कह रहा है। तात्पर्य है 'नाम', उसका अर्थ, अर्थ से भावना, उसकी प्राप्ति का यत्न (अर्थात् जप, स्मरण, लौ) और वह आप जिसकी प्राप्ति करनी है, अर्थात् नामी। नामी का ज्ञान प्राप्ति के अंर्तभूत है।

पदार्थ का अर्थ मूल्य शक्ति वाली वस्तु (धन, दौलत) भी है और पदार्थ का भाव अस्तित्व भी है। विशम्बर जब नाम को पदार्थ कह रहा है तो वह सभी भावों को एक स्थान पर इकट्ठा कर रहा है और उसका तात्पर्य है कि नाम को केवल शब्द मात्र ही न समझ लिया जाये।

श्री गुरू ग्रंथ साहिब में नाम से कई बार चार पदार्थों की प्राप्ति भी बताई है; वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बताये हैं। यथा–'धरम अरथ अरु काम मोख मुकति पदारथ नाथ।। सगल मनोरथ पूरिआ नानक लिखिआ माथ।। (रामकली म: ५)।

शास्त्रों में पदार्थ का अर्थ है, विचार का विषय, जिसका किसी दर्शन में प्रतिपादन हो, और यह माना जाता हो कि इसके ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है।

नामु पदारथु मनि वसिआ नानक सहजि समाइ।। (सिरी रा म: ३, ४-१९-५२)

नामु पदारथु तउ निधि सिधि।। (आसा: म: ५, ४-१४-६५)

पुत्र–मेरे हृदय में कोई अतृप्ति है, जो तृप्त नहीं होती। अतः हर नये आने वाले साधु के पीछे भाग खड़ा होता हूँ। हाँ इतना अवश्य हो गया है कि साधुओं द्वारा उच्चारित शास्त्रों के पदों पदार्थों को समझ लेता हूँ और दिमागी स्वाद कई बार आ जाता है।

पिता–बेटा! कोई स्वाद शरीर के, कोई मन के, कोई बुद्धि के। स्व रस तथा राम रस भिन्न रस है। ""(ठंडी सांस भरकर)। देर काहे की बेटा! दुनियां के 'धन पदार्थ' को किसी क्षण जाना और चले जाना है। फिर जीवन तो नित्य नहीं है, क्षण-क्षण करके काल (की ओर) जा रहा है। जीव प्रतिक्षण भूल में हैं। क्षण-क्षण करके आयु बीत रही है।

मौत के क्षण को अनजाने ही इन जीवन के क्षणों में आ जाना है और जीव को भाग्यहीन ही ले चलना है। अतः कोई यत्न खोज जिससे प्रत्येक क्षण संभलकर व्यतीत होने लगे तो इन संभाले हुए क्षणों के बीच ही किसी समय वह क्षण आ जायेगा, जिसने कि काल की फाँसी को काट देना है। क्षण काल का छोटा-सा भाग है, परन्तु क्षण की संभाल करने से त्रिकाल की संभाल हो सकती है। प्रत्येक क्षण जब 'नाम' से पिरोया जाता है, तो वह निरंतर हो जाता है, रस आना शुरू हो जाता है। तब नाम बन जाता है 'नाम पदार्थ'।

पुत्र–कैसे समझूं? कैसे करूँ? किसी ढंग से इसे मेरे अन्तर में डालिए।

पिता–बेटा! कितना ही समझ लो, मैदान में उतरे तथा गतका पकड़े बिना तलवारधारी तो नहीं बन सकते। कर्म के मैदान में उतर, चला जा आनन्दपुर ढंग से सीख ले।

पुत्र–अच्छा पिता जी! आपकी आज्ञा तथा भीतर में भूख, मेरे जाने की तैयारी शुरू कर दो।

पिता–बेटा? धर्मस्थान (गुरुद्वारे) में कुछ साधु तथा गृहस्थी इकट्ठे हो रहे हैं। दक्षिण से भी कई आये हैं। बढ़िया साथ है। सभी गुरू जी के द्वार पर जा रहे हैं। साथ तू भी मिल जा। साथ ही हो यात्रा का खतरा भी कम हो जाता है।

राम रसु पीआरे।। जिह रस बिसरि गए रस अउर।। (गउड़ी कबीर जी)
छिन महि राउ रंक कउ करई राउ रंक करि डारे।। (बिहा: म: ५)
छिन छिन करि गइओ कालु।। (जैजैवंती म: ९)
लेखै कतहि न छुटीऐ। खिन खिन भूलनहार।। (गउड़ी वा: आ: म: ५)
छिनु छिनु अउध बिहात है।। (तिल: म: ९)
नाम, पदारथु जिन नर नही पाइआ से भागहीण मुए मरि जावै।। (गू: म: ४, ४-६)
खिन खिन नाम समालीऐ। (सिरी रा: म: ३)
एक चित जिहि इक छिन धिआइओ। काल फास के बीच न आइओ।। (दशम गुरू जी)

यों कई बार बातें होने के बाद हरि गोपाल गुरू साहिब के दर्शन करने के लिए आनन्दपुर जाने को तैयार हो गया और एक दिन चल ही पड़ा। पिता ने अपनी ओर से एक सौ रुपया भेंट के लिए दिया और उसने भी भेंट करने के लिए काफी धन साथ ले लिया।

श्री गुरू गोबिंद सिंह जी घोड़े पर सवार वनों में से शिकार खेलने के बाद आ रहे हैं। आनंदपुर में आये, अपने दरबार के बाहर घोड़े पर से उतरे। सिख समूह दर्शन के लिए खड़ा है। वन के बहुत से पक्षी तथा जंतु भी शिकार करके साथ लाये हैं। आपका शरीर जलाल तथा तेज वाला है। नयनों में से प्रताप बरसता है। दर्शन करने वाले दक्षिण से आये लोग, गृहस्थी तथा साधु भी सारे खड़े हैं। हरि गोपाल भी खड़ा है। वह मन में सोचता आया था कि गुरू जी कोई कंदरा में बैठी तप के कारण सूखकर कंकाल समान हो गई तपो मूर्ति की भांति दीखेंगे, शान्ति मूकता तथा अचल सी दशा होगी, नेत्र बन्द होंगे और पास बैठकर लम्बी साँस लेने से भी उसकी समाधि नहीं खुलेगी; पर यहाँ उसने देखा हिलोर, तेज तथा जलाल वाला, पर इसे कौन समझ सकता था। हरि गोपाल डोल गया।

जात बाणीआ गुर जब देखे।
कलप्यो रिदे क्रिया अवरेखे।।
इह कैसो गुर? जिन हित आए।
कोस हज़ार हुं मग उलघाए।।
क्रिया जिनहूं की महा कुढ़ाली।
हिंसा करत दइ आ उर खाली।। (सू॰: प्र:)

उधर सतगुरू जी की कृपा दृष्टि सारी संगत पर फिरती हुई हरि गोपाल पर आकर टिकी। चेहरे पर भीतरी संशय की लहरों के निशान घूम रहे थे। गुरू जी देखकर मुसकराये और कहने लगे: सौगंध नहीं खानी चाहिए, न सच्च की, न झूठ की। गुरू को साक्षी बनाकर भी सौगंध न खाओ।

पापी चोर एक पाप करता है, दूसरे के धन को चुराता है, निदर्यता से लोगों को पीटता है, गुरू की झूठी सौगंध खाकर यदि आपने पापी स्वभाव के कारण पक्षी बन गया और राजा जिसके पास सौगंध खाई थी, अपने कर्मों के कारण बाज बन गया और उसने पक्षी को मार डाला, अतः कर्म गति का फल भुगता इसमें गुरू का क्या? कर्मों के चक्कर मारते तथा पीड़ित करते हैं। यदि पाप न

क्रिया को देखकर सोचने लगा, भावना बदल गई, वे कैसे गुरू हैं? दया का त्याग क्यों किया है?

सपथ ना कर गुर साच पर झूठा टिकै न पाइ।
साचा जोनी परभुगै कूरे कैसा थाइ।। (सौ साखी)

किये, झुठी सौगंध न खाई तो फल भुगतने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यह कहकर गुरू जी भीतर चले गये और एक सुन्दर स्थान पर जाकर बैठ गये। सिख समुदाय भी बैठ गया। आज शिकार में आपको बहुत सफर करना पड़ा था। भोजन का समय भी निकट आ गया था।

अतः वहां पर ही भोजन मंगवा लिया। जब थाल आगे रखा गया, तो हरि गोपाल फिर घबराया और सोचने लगा कि न जाने इस थाल में से प्रसाद के रूप में मुझे कुछ दे न दें। ऐसा हो, कि मुझे इसमें से भोजन न मिले। गुरू जी रसोइये की ओर देखकर कहने लगेः भाई! वह जो उज्जैनी सिख है, इसे रसोई में भोजन दिया जाये, जिस ओर बड़ा भोजन का स्थान है और जहां पर मांस नहीं पकता। इस तरह मन की बात को जान लेने वाले बात को देखकर हरि गोपाल की भीतर की लहर-गति कुछ रुक सी गई, विचार करने लगा कि चाहे गुरू जी की क्रिया वैष्णवी नहीं, पर आप अंतर्यामी हैं। हा‥‥, महापुरुष तो हैं, मेरी बुद्धि इन्हें समझ तथा परख नहीं सकी। तात्पर्य यह कि सारे सिख भोजन के लिए उठे। यह भी गया और जाकर भोजन किया। रात हुई, दूसरे सभी लोग सो गये, पर हरि गोपाल फिर संशय की नदी में बह रहा है।

कभी तो इसकी गुरू के अंतर्यामी होने पर श्रद्धा बंधती है, कभी तर्क होता है कि मेरे पिता ने इस गुरू में क्या देखा था, उसने किस प्रकार का गुरू खोजा। कहता था 'जीवनदान दाता है'। आप जीवन देते हैं अथवा जीवों का जीवन लेते हैं। साधू के लिए उचित है कि वह जीव मात्र को न दुखाये, दया भावना रखे, जैसे जैनी रखते हैं, कीड़ों का भी पालन करते हैं। साधू को चाहिए उदास तथा वैराग्य के प्रति मूर्ति! हे मन। चल घर को लौट चलूं, रुपये भेंट करूं अथवा नहीं? अपनी ओर से पाँच सौ रुपये भेंट करने का संकल्प था, दूं अथवा न दूं? हाँ मैं देता, गुरू धारण करता, परन्तु क्रिया पसंद नहीं आई। इस तरह दुचिताई में रात बीत गई। हरि गोपाल प्रातः उठा, स्नान किया और चलने की बात सोचने लगा। फिर मन बदल गया। मन मन से कहता है, कल तूने अंतर्यामी होने की बात भी देखी थी, न जाने कुछ हो ही। चल, कुछ दिन और रह, दर्शन कर, वचन सुन, यदि उतावलेपन के कारण लौट गया तो पिता जी लज्जित करेंगे।

: ३ :

सभी अवसर, समय ही है, काल की गति है, जो चल रहा है और चलता दिखाई नहीं देता और जिसकी गति में ही संसार चल रहा है। पर समयों में अंतर भी है। सूरज चढ़ने पर वृत्ति विचलित होती है, दोपहर को गर्मी होती है, संध्या को मन एकाग्र होता है, रात को ठंड होती है। इसी तरह पिछली रात भी शीतल होती है, मानों अमृत वर्षा होती है, मनुष्य सो रहे हैं, पक्षी आराम कर रहे हैं,

प्रकृति टिकाव में है, गर्मी का स्थान शीतलता लेती है। यदि इस समय कोई मन को मन से जोड़े तो समय 'अमृत वेला' बन जाता है। मनुष्य भोजन करके रात को सो जाता है। भोजन पचकर तथा उसके सूक्ष्म रस बनकर पिछली रात तक सारे शरीर में घूम जाते हैं। शरीर उस समय स्वाभाविक ही अपने पूरे बल में होता है। रात को नींद कर लेने के कारण शरीर की थकान दूर हो गई होती है। मन जो दिन में आवश्यकताओं, आशाओं, तृष्णाओं के रसों की खीचतान के कारण सोचें सोचता तथा शरीर को मेहनत में लगाये रखता है, रात को नीद की गोद में सोकर कुछ टिकाव की ओर रुख कर जाता है। चाहे सोते हुये भी स्वप्न देखता है, और चाहे नींद को तमोगुणी वस्तु माना गया है, पर फिर भी पूरी नींद के पश्चात मन का कोई झुकाव भीतर की ओर होता है। ये तीनों सामान अभ्यास में सहज ही सहायक होते हैं। यदि कोई इस समय जगे और भीतर को नाम में लगाये तो मन नाम-स्मरण में लग जाता है।

अत: यह समय अमृत पीने का है। हां, इस समय कीर्तन की मधुर ध्वनि कान में पड़ जाये तो चित्त और अधिक सुखी होता है और नाम में और गहरी लगन लग जाती है। इसीलिए गुरू बाबा ने आसा की वार नामक वाणी अमृत वेला में गायन की जाने का रिवाज चलाया। इसीलिये सतगुरू जी ने कहा था, 'अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु'।

अमृत वेला है। शान्ति है, टिकाव है, सुहावनापन है। गुरू साहब के दरबार में आसा की वार का कीर्तन हो रहा है, आ गये साहब जी और अपने सिंहासन पर जाकर विराज गये। कीर्तन हो रहा है, मानो रस रंग भरे स्वरों के संयोग से बनी एकस्वरता की बर्फ रूई के गालों की भाँति और धीरे-धीरे पड़ रही है। सारी सभा रस में टिक रही है। रागी सिंह (कीर्तन करने वाले) आसा की वार तथा छक्के गाते हुए अब एक शब्द के रंग में आ गये। उसे कीर्तन में प्रकाश देने के लिए आलाप की ओर झुक गये और छेड़ दिया मीठा-मीठा भैरवी राग का आलाप-एकाग्रता का रस बांधने में आलाप का प्रभाव बहुत बढ़िया पड़ता है। कुछ समय आलाप का रंग बांधकर अब कीर्तनकर्ता तार में बंध गये। भैरवी राग को बंधे तार में गायन करने लगे। टिकाऊ वाली लय में झूम पैदा हो गई। कुछ समय पश्चात् कंठ खुल गये, गुरुवाणी राग में आ गई। कीर्तन हो गया, एक गुरू द्वारा उच्चारित शब्द का, जिस शब्द का भाव यह था कि नाम के प्रभाव का वर्णन करता हुआ नाम में पिरो लेता है, रसिक के मन को और नाम को मूर्तिमान कर देता है, दिल की आँखों के सन्मुख कीर्तन करने वालों ने रहाउ की पंक्ति पहले छेड़ी।

'जपि मन सतिनामु सदा सतिनाम॥'

यह पहली पंक्ति बैठती हुई लय तथा ठहराव वाले उच्चारण द्वारा कुछ ऐसे प्रस्तुत हुई कि मानो सत्यनाम एक रसमय रंग बनकर थरथरा उठा एवं अद्भुत

आकर्षण बन सामने आया। शब्द का राग था तो धनासिरी-राग पर प्रातःकाल होने के कारण रागी सिंहों ने भैरवी राग की ईश्वर से राग तथा जगत से वैराग्य काली थर्राट से भरी मोतियों की झाल वाले भैरव राग में इसका गायन किया।

'हलति पलति मुख ऊजल होई है।
नित धिआइअै हरि पुरख निरंजना।'

इस पंक्ति के साथ रस बांधकर रागी सिंह फिर वाद्ययंत्रों के आलाप में मग्न हो गये। पीछे-पीछे सभी उपस्थित जन भी अपने ध्यान को नाम रस में मग्न कर बैठे। अब फिर (मानो) कोयल कुहक उठी।

इछा पूरक सरब सुखदाता, हरि जाकै वसि है कामधेना॥
सो अैसा हरि धिआईअै, मेरे जीअड़े ता सरब सुख पावहि मेरे मना॥

इस पँक्तियों के उच्चारण से वाहिगुरू का अस्तित्व मानो प्रत्यक्ष दिखाकर फिर आये-**"जपि मन सतिनाम सदा सतिनामु"** रहाउ वाली पंक्ति के गायन पर। फिर अब आलाप में डुबकी लगा रागी सिंह शब्द की नयी पंक्ति लेकर आये हैं:-

'जह हरि सिमरनु भइआ तह उपाधि गतु कीनी
बडभागी हरि जपना'॥

फिर गायन किया:-

'जन नानक कउ गुरि इह मति दीनी
जपि हरि भवजलु तरना॥३॥६॥१२॥'

इस शब्द के कीर्तन ने ऐसा रंग बांधा कि हरि गोपाल एक बार तो झूम उठा। उसे पता न रहा कि वह कहां है। सारे शरीर में से शीतलता-सी गुज़र गई और स्वाद-स्वाद आ गया। झूमना तो कीर्तन के पश्चात् कुछ कम हो गया, पर कुछ हलकापन तथा स्वाद जारी रहा। आसा की वार के कीर्तन की समाप्ति हुई, श्रद्धालु पेश हुये, अपने-अपने मनोरथ बताकर तथा आशीर्वाद, अनुकंपा लेकर सुखी हुये। हरि गोपाल की प्रार्थना करने की जब बारी आई तो सतगुरू जी ने कहा, 'सिंहो! स्वाद सारे मन के हैं कि किसी अन्य के?' तब एक सिख बोला: स्वाद, पातशाह! जिह्वा के'! दूसरे ने कहा, 'स्वाद कर्म के'। किसी अन्य ने कहा, 'स्वाद जीव के'। किसी ने कहा 'स्वाद स्वभाव के अनुसार'। किसी ने कहा, 'स्वाद देह का धर्म है'। तब सतगुरू जी ने हरि गोपाल की ओर देखा। अब हरि गोपाल स्वाद में मगन था। वह समझ चुका था कि वह स्वाद ले रहा था, पर यह स्वाद जिह्वा का स्वाद नहीं था, क्योंकि उसने कुछ खाया नहीं था। यह स्वाद कर्म का भी नहीं था, क्योंकि वह मूक, अचल, अक्रिय हुआ बैठा था। यह स्वाद स्वभाव का भी नहीं था क्योंकि जो कुछ वहाँ पर घटित हुआ था, उसका स्वभाव वैसा नहीं था। देह की पांच इन्द्रियां हैं। पांचों द्वारा मन रस लेता है, पर उसकी

सभी इंद्रियां अचल-सी हो रही हैं और मन उन्हें बाह्य विषयों की ओर नहीं भेजता रहा, बल्कि कर्ण-इंद्रिय द्वारा प्राप्त प्रभाव को लेकर मन स्वयं अनंत से जुड़ता रहा है, अतः यह देह का रस भी नहीं। यदि कानों का रस कहा जाये और यों देह का रस मान लिया जाये, पर उसने पहले भी कई बार राग सुना है, नृत्य भी देखा है, वह तो बाहर के रसों की ओर ले जाता है तथा अन्य प्रकार के रस पैदा करता है। यह कीर्तन आया तो अवश्य कान के रास्ते है, पर इसका प्रभाव अंतर्मुख होने का पड़ा है। अंर्तमुख होने का अर्थ है बाह्य जगत से मन के रुख का पलटना और भीतर होकर भोगों के रस से परे होना, अतः यह मन का रस भी न हुआ। यह तो मन को मन में डुबाने का रस है। यदि कहा जाये कि जीव रस है। तो जीव की शुद्ध अवस्था का, उसे अभी ज्ञान ही नहीं, चाहे इस स्वाद का झुकाव उसी ओर है। पर उसे स्वाद तो आया है, क्योंकि उसका मन अब डोलने से रुक गया और अज्ञात के विश्वास (श्रद्धा) में चला गया है तब कीर्तन ने उसके भीतर स्वाद बांध दिया है, जिसका कारण शारीरिक नहीं, यह रस तो कोई अन्य वस्तु है और इस रस का कारण निष्ठा है। इस प्रकार विचार करके वह कहने लगा, "सतगुरू जी! यह सिदक (निष्ठा) का रस है।"

तिस ते गुरि सुनि, कहिं तिस बेरा।
'पिता बिश्म्भर दास जु तेरा।
सुन सिक्खा! सिख सिदकी सोइ।
कहु तिस संग मिलानि जबि होइ।

दोहरा–सी गुरू हुकम जु भाव का दयो सु तेरे पास।
तिस को लीनो हम अबै करहु न कैसे आस॥२७॥ [सु० प्र०]

तब हरि गोपाल ने कहा, "पातशाह! मैं इसका अर्थ समझ नहीं पाया।" मैं भी आपका सिक्ख हूँ, कृपया मुझे भी समझा दीजिये। अब आप मुस्कारये और कहने लगे–भाई तू तो वैष्णव का सेवक है; हमारी सिक्खी तूने कब प्राप्त की थी? तुझे तो क्रियावान (कर्मकांड) की ज़रूरत है। तू उसी का उपदेश धारण कर। हमारे यहां तो जीवन का खेल है, हम तो जीवन प्रदान करते हैं, निष्प्राण खेलों में हमें रुचि नहीं। हमने तुझे तो सन्देश दिया है, वह अपने पिता को पहुंचा देना, वह स्वयं इसका अर्थ अपने आप समझ लेगा। हरि गोपाल के मन पर से आज सवेर के सत्संग सरोवर के स्नान ने मैल उतार दिया था, शब्द का असर पड़ा था, मन स्वाद तथा सिदक में था।

अब सतगुरू जी के वाक्यों ने काफी प्रभावशाली चुभन मारी। वह चरणों पर गिर पड़ा और बिलखते स्वर में कहने लगा; पातशाह! रख लीजिये, मुझ मूर्ख को अपने चरणों में रख लीजिये, मैं कल आपकी महिमा को समझ नहीं सका

था, अब मैं दास हूँ, मुझे भुले हुये की रक्षा कर लीजिये। अब सतगुरू ने पीठ पर थपकी दी और वाक्य कहा:–

'उठा! भाई क्षमा किया।'

: ४ :

सतगुरू जी के द्वार पर कई प्रकार के जिज्ञासु आया करते थे। एक तो वे होते थे, जो केवल दर्शन करके निहाल होकर नाम रंग में रंगे जाते थे। दूसरे वे जो प्रवचन तथा उपदेश सुन प्रतीति लाभ कर नाम में लग जाते थे। तीसरे वे थे जो प्रश्नोत्तर करके; सन्तुष्ट हो निष्ठा धारण कर नाम रत हो जाते थे। चौथे वे थे जो कई बार संशय में भटक–भटककर फिर अनुभव की ठोकर खाकर, माया की सूक्षम निंद्रा में जगकर अंतर्मुख रस में प्रवृत्त होते थे। प्राय: उपरोक्त अंतर भीतरी मन तथा बुद्धि की दशाओं में अंतर होने के कारण ही होते हैं। इसके साथ–साथ प्राप्त की हुई विद्या तथा संगति भी मन में अपने प्रभाव डालती हैं और इस प्रकार के अंतर पैदा होते हैं। हां, कुछ इस जन्म के और कुछ पिछले जन्म के संस्कारों का खेल भी है। विद्या, संगति, करनी तथा कथनी में नये संस्कार पैदा होते हैं। लगता है कि हरि गोपाल कुछ इस प्रकार के मन वाला था, जो संशय के कारण बहुत मलिन हो चुका था, ठोकर खाकर ठिकाने पर आने वाली बुद्धि रखता था।

गुरू जी से 'क्षमा किया' का वाक्य सुनकर हरि गोपाल महीना भर और आनन्दपुर टिका रहा। प्रतिदिन कीर्तन सुनता रहा, गुरू के सिक्खों से मिलता, प्रश्नोत्तर करता और निसंशय होता रहा। परन्तु उसके भीतर की माया की प्रीत तथा वैष्णव की संगति का प्रभाव तथा अपनी मति का बाह्य वेग बार–बार उसे चक्कर में डाल देता था, जिसमें से वह बड़ी कठिनाई से निकलता था। अंत, उसे घर जाने का विचार आया और एक सुहावने क्षण सतगुरू जी से अच्छी भावना से विदा हुआ। विदा होने से पूर्व जो पांच सौ रुपया अपनी ओर से गुरू जी के लिए लाया था और पिता जी की ओर से जो धन लाया था, वह सारा धन गुरू जी को भेंट कर दिया। गुरू जी ने प्रसन्न होकर, प्रसाद दिया और एक कड़ा दिया और कहा कि यह हमारी निशानी है, इसका सत्कार करना और जो काम तुम करोगे, इसका सत्कार करने से पूरा होगा। भावना का वचन जो तुम्हें दिया है वह अपने पिता को दे देना। इस क्षण सिक्खी भावना में शीश निवा कर (प्रणाम कर) हरि गोपाल विदा हुआ।

: ५ :

ज्यों ही हरि गोपाल आनन्दपुर से विदा हुआ तो मन में सत्संग के प्रभाव में रंगे हुए अहं ने सिर को विचलित किया। संशय की छड़ी लेकर इस अहं ने मन को फटकारना शुरू किया। मनोवाद (मन का विवाद) शुरू हो गया–हैं। मैंने क्या

किया? इतनी बड़ी रकम (धन) भेंट की और मिला क्या यह लोहे का एक कड़ा? इस कड़े से क्या बन पायेगा। यह कैसे मनोकामना पूरी करेगा? फिर क्या प्रसाद। यह क्या हुआ, हमारे घर में हलवा तो पिता बनवाया ही करते हैं। तीसरी बात क्या ली? निष्ठा का वचन। शिकार खेलने वाले गुरू के साथ कच्चा सौदा किया, ऐसा गुरू जिसका राजसी ठाठ है। गुरू तो चाहिये था बिल्कुल मूक, शून्य मंडल में शून्य! हैं! हैं, मैं क्या सोच रहा हूँ। गुरू तो पिता के गुरू हैं। गुरू अंतर्यामी हैं, मैंने स्वयं परीक्षा की है, गुरू में तेज है, सतोगुणी प्रभाव भी है। मैंने देखा है, सत्संग है, कीर्तन है गुरू के घर में। कीर्तन में स्वाद है, योगी, यती, तपी आकर इस गुरू के आगे झुकते हैं; फकीर तथा पीर सजिदा (प्रणाम) करते हैं, मैंने ठीक गुरू खोज लिया है। ठीक है। हैं...पर देखो जी, कड़ा क्या हुआ? सिदक का वचन क्या हुआ? मैं तो रह रहा हूँ, संशय से अभी पार नहीं हुआ। दर्शन तो हुए नहीं, ज्योति नहीं देखी, कौतुक नहीं देखे, कोई शून्यता भी नहीं घटित हुई। यों ही धन खो आया हूँ। वाह वाह मन की मूर्खता, उज्जैनी का वैष्णव ठीक था। पहुंचने पर खूब आवभगत करता था। शाकाहारी था, खर्च कुछ भी नहीं था, रास लीला, नृत्यरंग देखते थे। पर मेरे मन को वहां भी तसल्ली नहीं मिली थी। अत: क्या बना मैं!...हाय, पांच सौ रुपये ही भेंट न किये जाते, धन तो ठोस वस्तु था, व्यापार द्वारा बढ़ता है, भाई के वचन कहां रखूंगा? इससे क्या बढ़ोतरी होगी? इस तरह की उधेड़बुन में हरि गोपाल चमकौर पहुंचा। यहां एक निष्ठावान सिख रहता था; जिसका नाम ध्यान सिंह माजरोआ था। वह इसे मिला। वह हरि गोपाल को गुरू का सिख समझकर अपने घर ले गया, सेवा की और भोजन कराया। जब दोनों सत्संग के बारे में वार्तालाप करने लगे तो बातों-बातों में हरि गोपाल ने अपने मन को नंगा कर दिया। उसकी भरोसेहीन बात को सुनकर ध्यान सिंह ने समझाया कि भाई! तू पूरे गुरू से मिला है, वह 'गुरू ज्योति' स्वयं हैं। जो वचनबद्धता हुई है वह अमूल्य देन है, इससे तुम्हारा प्रेम बढ़ेगा और प्रभु तक पहुँचेगा। कड़ा सतगुरू जी की देन है और गुरू जी के वचनों के कारण शक्ति भरपूर है। तुम्हें सिदक (निष्ठा) में रहना चाहिय। पर बनिये के मन में धन का प्यार उछाल मार रहा था, वह धन का वियोग कसकें मार रहा था। उस पर कोई असर न पड़ा। तब ध्यान सिंह ने जाकर अपनी पत्नी से सलाह की कि तीनों लोक के स्वामी का वचन इस मूर्ख को पांच सौ रुपये में महंगा लग रहा है। वचन तो अमूल्य था। यह बणिक स्वभाव वाला व्यक्ति अमूल्य देन को रुपयों से तौल रहा है। अमूल्य वस्तु का क्या मूल्य? गुरू बाबा का कथन है, "अमुलु करमु अमुल फुरमाणु"। यह मूर्ख, अमूल्य फुरमाणु (आज्ञा) का मूल्य

गुरू जी बखशश दीआं कड़ा अते बचन माइ दा। (सौ साखी)

पुन 'गुरू ने और तो कुछ नहीं दिया, एकमात्र सिख धर्म को निभाने का वचन दिया है'। (तवारीख खालसा)

पांच छः सौ रुपये भी नहीं लगा रहा, यदि तू कुछ सहायता करे तो यह गुरू का 'अमुल फुरमाण'—जिसे राजाओं के धन से भी नहीं खरीदा जा सकता, जो प्राण देकर भी फिर मिले तो कृपा द्वारा ही मिले—इसके द्वारा लगाये गये मूल्य से आज खरीद लें"। इस निष्ठा से विचलित तो ठिकाना नहीं, पर हम इसके धन की हानि पर बैठने के मानसिक शोक को दूर कर दें। फिर सतगुरू शाहंशाह है, उसके घर में दौलत क्या वस्तु है और पांच सौ क्या हैं? वह तो स्वयं धन का स्वामी है, यह मूर्ख उसे पांच सौ लेने वाला समझ रहा है। हम यह बात भी क्यों सहन करें कि हमारे सतगुरू जी के बारे में कोई यह कहे कि मैं उन्हें पांच सौ रुपये दे आया है और खो आया हूँ। वह गुरू दाता है, यह बनिया देने वाला कौन है?

बाणी में श्रद्धा रखने वाली नाम रसिका तथा गुरू जी के चरणों पर से न्यौछावर होने वाली महिला के नेत्र भर आये, कहने लगी, स्वामी जी! यदि सर्वस्व मांगें, तो भी दे दो, पर गुरू का वचन, सच्चे पातशाह का 'अमूल, फुरमाणु' इसके पास न रहने दीजिये; इस वणिक वृत्ति वालों का 'पदार्थ वियोग' दूर कर दीजिये। यह लीजिये मेरे आभूषण, इन्हें गिरवी रखकर पांच, छः सौ, जितने भी मांगे, दे दीजिये। पति देव! गेहूँ के दाने एक रुपये में एक मन मिल जाते हैं, यह है इनका साधारण मूल्य। यदि किसी प्रेमी ने एक मन गेहूँ के दाने साफ किये और प्रत्येक दाना उठाते समय 'धन्य गुरू नानक' कहा, तो भी बनिया तो एक मन गेहूँ का मूल्य एक रुपया ही माँगेगा! पर गुरू अंगद साहब इस एक मन गेहूँ को एक रुपये में कभी भी नहीं खरीदेंगे, वे इसका मूल्य अनुकंपा निर्धारित करेंगे, अनुकंपा जो हीरे, जवाहरात से भी महंगी अमूल्य वस्तु है। हाँ पति देव! राजा के घर में सेवा का मूल्य वेतन, इनाम, जागीर होता है। ये तीनों मूल्य पदार्थक हैं, पर गुरू नानक के द्वार पर गुरू अंगद देव जी की सेवा का मूल्य है, गुरू अंगद जी का गुरू नानक ही बन जाना। पारस की सेवा करके पारस बन जाना, यह है दृष्टि वालों का मूल्य। यह बनिया क्या जाने 'अमूल फुरमाण' के अर्थ। रुपये इसके हाथ में दीजिये और अमूल्य 'रतन' ले लीजिये। यदि अमूल्य रतन मूर्ख अथवा बालक के पास होगा तो वह इसे खो देगा।

इस तरह की बातचीत के बाद ध्यान सिंह ने अगले दिन आभूषण गिरवी रखकर तथा और प्रयत्न करके छः सौ रुपये इकट्ठे कर लिये और हरि गोपाल से कहा:—

सिख सिख का सत बणज सिख सिख का भाउ।
दगा सिख मम ना करै पानी अंन भुगाउ।
जे प्रतीत गुर वाक पर तां तूं घर ले जाइ।
जे भूखा तूं दाम का तां ले घर अपने पाइ।' [सौ साखी]

अर्थात्–यदि तुझे गुरू के वचनों पर भरोसा है तो यह एक अमूल्य वस्तु है, इसे संभालकर ले जा। यह कहकर ध्यान सिंह उससे धोखे से वस्तु नहीं लेना चाहता था। पर यदि भरोसा नहीं और धन ही प्यारा है, तो धन ले जा। यह सुनकर हरि गोपाल कहने लगा:–

हम प्रतीत है दाम की जो हमको दे देइ।
'वचन' दीआ, तूं दाम देई, साढ़ें पंज दिवेइ।

यह सुनकर ध्यान सिंह उठा और छ: सौ रुपया लाकर उसके आगे रख दिया। पांच रुपये और रखे। और कहा कि तू बनिया है, ब्याज सहित तेरा पैसा तुझे मिल गया। तू पचास कम क्यों लेता है?

बनिया धन लेकर खिल गया। उसने समझा कि ध्यान सिंह मूर्ख है। जो वस्तु मेरे लिए किसी भी मूल्य की नहीं थी, उसे इसने इतना अधिक धन देकर खरीद लिया है। पर अपनी बणिक वृति को नहीं समझ रहा जो कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य रुपयों में ही आंकती है और सच्चे मूल्य को नहीं पहचानती और अमूल्य, बहुमूल्य को नहीं समझती। कहाँ वे सालसराय कि जिसने गुरू नानक देव जी के लाल (मानिक रत्न) को देखकर उसका मूल्य न आंका, बल्कि एक सौ रुपया शीश निवाते हुए करके भेंट करके मरदाना से कहा, यह इसके दर्शन की भेंट है, हम इसका मूल्यांकन नहीं कर सकते। हां, आज दूसरा जौहरी आया है– ध्यान सिंह। गुरू नानक के रत्न का मूल्य लगता हुआ देखकर जिसे पीड़ा हुई है और जिसने मूल्यांकन करने वाले से उस द्वारा निर्धारित मूल्य की राशि देकर रत्न खरीद लिया है। हां देखिए, अमूल्य आज मूल्य पर से बिक गया है, पर बेचने वाले ने अपनी ओर से उसे बेच दिया है, खरीदने वाले ने रत्न खरीदा नहीं, उसका क्या सामर्थ्य कि रत्न को खरीदे उसने तो रत्न प्राप्ति के दर्शन भेंट के रूप में मूल्य दिया है। वह सतगुरू जी के 'अमुल फुरमाणु' को प्राप्त करके, जिसकी प्राप्ति अमूल्य कृपा द्वारा ही होती है, स्वयं रत्न, ज्वाहर बन गया है। हां इसे ज्ञान था 'मति विचि रतन जवाहर मणिक' का।

: ६ :

यो बणिक वृत्ति वाला हरि गोपाल बेसिदकी के हाथों बिक गया। पर अपनी ओर से प्रसन्न होकर अपने देश को चल दिया। रास्ते में एक बड़ा नगर आया, लगता है कि यह दिल्ली नगर था, जहाँ उन दिनों सोने तथा जवाहरात का काफी व्यापार हुआ करता था। हरि गोपाल यहाँ कुछ दिन ठहरा। उसने उन छ: सौ रुपयों तथा धन जो उसके पास था उससे उसने रत्न खरीद लिये और आगे चल दिया। उज्जैन दिल्ली से लगभग चार सौ मील की दूर पर है। अत: उसे सफर

सौ॰ साखी।

स: प्र॰।

में कई दिन लग गये। जब उज्जैन दो-अढ़ाई सौ मील दूर रह गया, तो एक नगर आया, जिसका नाम पाली था। यहाँ उसने खरीदे हुये रत्न बेच दिये। तीन हज़ार का लाभ हुआ या बचत हुई। अब अपने हिसाब से बहुत लाभदायक काम करके बनिया घर को चल दिया। लिखा है कि वह गुरू का जो प्रसाद लेकर चला था, उसे जब उसने एक दिन खोलकर देखा तो वह उसे 'माँस' आभासित हुआ। जिसके कारण गुरू जी के प्रति उसकी उदासीनता और बढ़ गई। शनैः शनैः वह घर पहुँच गया, परिवार से मिला। सबके मन में प्रसन्नता थी कि वह सतगुरू जी के दर्शन करके तथा दीक्षित होकर लौटा है, घर में अब सत्संग का आनन्द बढ़ेगा। हरि गोपाल भी बहुत प्रसन्न था, पर उसे चाव था धन के लाभ का और परिवार ने समझा कि उसे सच्चे धन की प्राप्ति का चाव है:

विश्वम्बर दास निष्ठावान सिख था। वह नाम में लगा हुआ आत्म सुख का ज्ञाता था। उसका हाथ स्वाभाविक ही दान की ओर जाता था। वह स्वाभाविक ही लोगों की पीड़ा दूर करने में लगा रहता था। उसे नाम के सुख का पता था, अतः पुत्र की प्रसन्नता को देख देखकर वह बहुत प्रसन्न होता था, पर साथ ही पुत्र के प्रभाव को साफ न देखकर कुछ चिन्ता में पड़ जाता था। पुत्र उतावला था कि पिता उसकी कमाई की बात पूछे और सुने, पिता उतावला था सतगुरू जी का संदेश तथा समाचार सुनने और देन प्राप्त करने के लिए। पिता ने सतगुरू जी की कुशलता पूछी। पुत्र ने बताई, पर उसके बोल कुछ ढीले से थे। फिर पिता ने प्रसाद के बारे में पूछा, तो तनिक नाक भौं सिकोड़ते हुये पुख ने प्रसाद लाकर ले दिया। जब खोला तो वह स्वच्छ ताजा (हलवा) प्रसाद था जिसमें न तो बू थी और न ही फफूँदी थी। पिता ने प्रसाद बाँटा। प्रसाद ज्यों का त्यों बिना खराब हुये शुद्ध सिद्ध हुआ। अब पहली चुमन हुई, फिर से मन में निष्ठा की ओर जाने की। 'हैं', मैंने तो उसे मांस देखा था। भला वह मेरे मन का भुलावा ही सही, पर यह इतने समय तक खराब क्यों न हुआ? करामात, हाँ उस गुरू में कुछ करामात है। फिर उसकी वृत्ति संशय की ओर गई। 'पर चलो हमें क्या लेना है? धन वापस मिल गया, उसे बढ़ा लिया, यात्रा सफल हुई, बनिया पुत्र हूँ, यदि गिर पड़ा तो मानो कुछ देखकर ही गिरा।' इस प्रकार की उधेड़बुन में था कि पिता ने और समाचार पूछे। जब यह बात पूछी कि उस पर गुरू जी की अनुकम्पा हुई अथवा नहीं, तो हरि गोपाल को सारी बात बतानी पड़ी। धीरे-धीरे सिदक, (निष्ठा-अनिष्ठा) बेसिदकी, चित्त बिचलित होना, चित के टिकने डोलने के सारे समाचार पिता ने सुने। चलते समय पुत्र का सिदक निष्ठा धारण करके चलने की बात को सुनकर प्रसन्न हुआ, पर जब उसने अपनी बुद्धिमता की बात सुनाई कि उसने चमकौर पहुँचकर अपनी की हुई मूर्खता का पता लगा लिया और गुरू के 'वचन' को जिसका न कोई रूप था न रंग, न मूल्य न

गुर प्रताप सूरज।

कुछ अन्य महत्व, एक मूर्ख के पास बेच दिया और अपने पाँच सौ तथा पिता का एक सौ भी लौटा लिया और पाँच रुपये ब्याज के भी ले लिये, तो विश्वम्भर ने ठण्डी साँस भरते हुए निःश्वास पूछकर कहा, 'बेटा! तुझे सत्य का व्यापार करने के लिए भेजा था और तू कांच खरीद लाया है। तूने अपने आँखों से चमत्कार भी देखा, फिर भी तेरा हृदय विचलित हो गया। हाय:'"

"कबीर साचा सतिगुरू किआ करै जउ सिखा महि चूक॥
अंधे एक न लागई जिउ बाँस बजाई ऐ फूक॥"
फिर माँ ने दुख से निःश्वास भरा।
'सुन कुकरअ तिह मात दुखारी'।
'सुत क्यों' भा गुर बद बिवहारी।
क्यों न प्रतीत भई उर तेरे।
पूरन पुरदव पिता तुव हेरे।'

माता-पिता की फटकार सुनकर हरि गोपाल को कुछ नाराज़गी-सी हुई। कहने लगा, 'मैं क्या करता, मुझे उनकी बाह्य क्रिया अच्छी न लगी। मेरा भरोसा डोल गया, गुरू क्या और माँस क्या, अतः मैंने स्यानपन किया। दिया हुआ धन लौटा लिया और तुम यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि मैंने धन से रत्नों का व्यापार किया और तीन हज़ार रुपये कमाकर लाया हूँ। यह लो थैलियाँ इनसे तो हज़ार काम पूरे होंगे, वचन से क्या बनना था, यह सुनकर पिता ने कहा–

"हे सुत क्रूरो धन है नाश।
कहां दरब को उर हंकार।
जिसको बिनसति लगे न बार।
साचा सतिगुर पूरन मेरा।
तैं दुरास धरि उर नहिं हेरा।
बुधि उतावली है बहु तेरी।
मत विंदा कर सी प्रभु केरी।" [सू: प्र:]

इस तरह की बातें कहकर बहुत समझाया, पर धन की प्राप्ति तथा बुद्धि की अकड़ के कारण उसने कुछ भी न माना, बल्कि ऐसी बात बनी कि ज्यों-ज्यों वह व्यापार करता, त्यों-त्यों उसके धन में वृद्धि होती। थोड़े ही समय में वह तीन हज़ार की राशि दस हज़ार बन गई। अब इस सफलता के कारण वह और अधिक अकड़ने लगा, परन्तु सफलता का कुछ समय व्यतीत होने के बाद उसे घाटा होने लगा। धीरे-धीरे पैर पीछे को पड़ने लगा, यहाँ तक सारा धन घाटे में बह गया। वही बुद्धि जो कमाई करके लाभ प्राप्त करती थी और जो यह सोचती थी कि सारा उसका ही प्रताप है, अब देखती है कि वह बुद्धि है, वही वह आय है और अब तो उसकी प्रत्येक सोच तथा योजना उल्टी पड़ती है और हानि ही हानि हो रही है।

जब दरिद्रता ने मूल से ही आ पकड़ा तो एक दिन हरि गोपाल अपने पिता से कहने लगा—पिताजी! अब आप ही कोई सहायता कीजिए, मेरी तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई है। लाभ के लिये जो भी काम करता हूँ, वह उल्टा ही पड़ता है। मेरे पैर प्रतिदिन पीछे हट रहे हैं और अब तो मानो गड्ढे में जा गिरा हूँ, कोई उपाय बताइये जिससे रोजी-रोटी चले। पत्नी है, बच्चे हैं, उनका लालन-पालन कैसे करूँ?

पिता—पुत्र! तूने सतगुरू जी की ओर से क्यों उदासी धारण कर रखी है? बेटा! यदि जीव को अपनी बुद्धि संपूर्ण होती, आरपार देख सकती, इस रचना तथा प्रकृति के पीछे का इसे पूरा ज्ञान हो जाता और सभी बुद्धिमान सफल हो जाते। जीव की बुद्धि है, उसके पास विचार है, हिम्मत है मेहनत है, सब कुछ है, पर कोई वस्तु ईश्वरीय भी है इसे सबमें। वह ईश्वरीय अंश इन्सान की हिम्मत तथा बुद्धि में आकर मिल जाती है, तब कहीं जाकर इसे सफलता प्राप्त होती है। यदि वह न आये तो सफलता नहीं मिलती, अथवा सफलतायें आ-आकर अन्त में असफलतायें बन जाती हैं। मनमति का त्याग कर गुरू मति को धारण कर। गुरू पूरा शूरवीर है, उससे प्राप्त 'गुरू मति' प्रकाश है, उस प्रकाश में जीव की बुद्धि भी उज्जवल हो जाती है।

पुत्र—मैं क्या करूं? मैं तो निष्ठा धारण कर चुका था, पर वह राजसी ठाठ बाठ देखकर शिकार तथा सेनायें तथा युद्ध देखकर मेरा विश्वास डोल गया। अब मैं क्या करूं?

पिता—पुत्र! तुझे करनी रहित साधुओं तथा वैष्णव संत की संगति ने भी कोई सहारा न दिया, बल्कि तेरी बुद्धि में कुमति छा गई जिसके कारण तू संशय तथा उल्टे सीधे तर्क करने लगा। पुत्र! यदि तू वैष्णव क्रिया को ही ठीक समझता है तो सोच कि विष्णु के उपासकों को ही वैष्णव कहना चाहिये। विष्णु जी को शंख, चक्र, पद्म के धारण करने वाले बताते हैं। चक्र तथा गदा दोनों मारने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले शस्त्र नहीं हैं तो और क्या हैं? यदि वे मारते नहीं, तो वे इन्हें धारण क्यों करते हैं? विष्णु जी के राक्षसों के साथ अनेक युद्ध हुए बताये जाते हैं। उस साधु ने जो तुझे अहिंसा की बात बताई थी, तो उसने तुझे साथ-साथ विष्णु जी की राजसी गद्दी, ऐश्वर्य, भगवान होने की बात, शत्रुओं के विनाश की शक्ति, राक्षसों दैत्यों का संहार करने के समाचार क्यों नहीं बताए। गज की रक्षा के लिए जब 'ग्राह' को विष्णु जी ने सुदर्शन चक्र से मारा तो वह तुझे हिंसा क्यों न लगी? यदि तूने देखा है कि गुरू जी अत्याचारियों के हाथों साधुओं, संतों प्रजा, दीनों की रक्षा कर रहे हैं और अपराधियों को दंड दे रहे हैं, तब ये संतों तथा प्रजा की रक्षा के यत्न तुझे हिंसा क्यों दिखाई दिये। फिर देख! रामचन्द्र जी को विष्णु का अवतार माना जाता है। उसके द्वारा शिकार खेलना, राक्षसों का वध करना, युद्ध करने, रावण वध तथा अन्य राजसी काम तुझे हिंसा के कार्य क्यों ने दिखाई दिये?

रामचन्द्र जी का, जो वैष्णवों के पूज्य हैं, शिकार करना तुझे हिंसा क्यों न लगा? यदि वैष्णव साधु यह सिखलाता है कि जो कोई फल, फूल, कंदमूल, तथा दाल रोटी ही खाये तो उसे अवतार मानना, तब बता कि हिरन को मारकर मांस खा लेने वाले रामचन्द्र जी को तू कैसे अवतार मानेगा और कैसे उसकी पूजा करेगा फिर श्री कृष्ण जी को भी विष्णु अवतार माना जाता है। यदि आप अर्जुन को गीता का उपदेश न देते, तो महाभारत का भयंकर युद्ध न होता। यदि आप उस युद्ध में अर्जुन के रथवान बनकर युद्ध विद्या की प्रवीणता का प्रयोग न करते, तो पांडव कभी भी विजयी न होते। फिर तू स्वयं देख ले कि द्वारिका जाकर आपने अपना राज्य स्थापित किया। बता! राज्य युद्ध मचाये बिना तथा मरे मारे बिना कायम रह सकता है। क्या श्री कृष्ण जी द्वारा काली को मारना हिंसा नहीं और सकारण सतगुरू जी द्वारा अत्याचारियों का वध करना हिंसा है। कंस का वध अहिंसा है और अत्याचारी तुर्कों से जनता की रक्षा करना

श्री रामचन्द्र जी द्वारा शिकार करने के प्रमाण--
शुद्ध बाणहताँस्त्र मेघ्यान कृष्ण मृगान दश।।
राशि कृताजशुपभागानन्यान कांश्चन कांश्चन।।२४।।
उस समय बाण से मारे हुए दस पवित्र काले मृग भली भांति सुखाये हुए आग में पकाये हुए लक्ष्मण जी ने तैयार कर रखे थे तथा और अनेक वस्तुयें तैयार कर ली थीं।
अग्रं प्रदाय मृतेभ्य: सीताथ वखणिनी।
तयोरूपाद दद्धात्रोर्मधु मांस च तद्मृशम।।३६।।
सुन्दर महारानी जानकी जी ने पहले पित्रों के लिए बलि देकर फिर दोनों भाइयों (श्री रामचंद्र तथा लक्ष्मण) को वह मधु तथा मांस दिया।
तयोस्तुष्टि मर्थोत्माध्य बौरयो: कतशौचयो:।
विधिवउणानकी पश्चाच्चकेसा प्राणाधारणम्।।३७।।
जब वे दोनों भाई 'महावीर' भोजन करके कुल्ला आदि करके पवित्र हुए बाद में जानकी जी ने आप भी थोड़ा-सा भोजन किया।
शिष्ट मांस विकृष्टं यच्छोषणायावक लिप्तम्।
तदामवचनात्सीता काकेम्य: पर्यरक्षत।।३८।।
शेष जो बचा हुआ मांस था उसे सुखाने के लिए रख दिया तथा राम जी के कहने पर जानकी जी कौवों से उसकी रक्षा करने लगीं।
ऐणेयं मांस माहृत्य शालां यक्ष्यामहेवयम्।
कर्तव्यं बास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीवि मि:।।२२।।
राज चन्दर जी एक चित होकर सेवा करने में मन लगाकर लक्ष्मण प्रति बोले, हे सुमित्र! हम हिरन का मांस लाकर शालाधिष्ठात्री देवात की पूजा करेंगे।।२३।।
मृग हत्वानय थिप्रलक्षमणेह शुभेक्षण।
कर्तव्य: शास्त्र द्रष्टोहि विधिधमेअनुसार।।२३।।
क्योंकि जो लोग लम्बे समय तक जीवित रहना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि किसी गृह की पूजा बिना उसमें ने रहें। हे प्रिय दर्शन! अब तू शीघ्रता से हिरन मारकर यहां ला।।२३।।
[बाल्मीकि रामायण अयुध्या अध्याय।।५६।।]

अहिंसा नहीं? जाकर अपने वैष्णव संत जी से पूछ। वह शिशुपाल को मारने वाली बात को कैसे अहिंसा सिद्ध करता है। वैष्णव ने तेरे कानों में अहिंसा तो भर दी, पर क्या अहिंसा की लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई भी बताई! मांस खाने तथा न खाने के झगड़े खड़े करके परमार्थ से पहले ही बहस तथा वाद-विवाद में डाल दिया। अब तू ही मुझे बता कि वैष्णवों के पूज्य अवतार रजोगुणी युद्ध मचाने वाले हैं अथवा नहीं? यदि अब सूरमा तथा पूरे अवतार गुरू ने, जो गुरू ज्योति स्वयं अवतार हैं, कर्त्ता हैं, गुरू अवतार होने के कारण अवतार शिरोमणि हैं।

जगत को अपरिचित तथा निर्दय राजाओं के राज्य में पीड़ित देखकर शूरवीरता उत्पन्न होती है और दबी हुई प्रज़ा को ऊपर उठा रहे हैं तथा पाप वाले राज्य का नाश करना आपने सिखलाया है, तो आपने उपकार ही किया है, अपकार नहीं किया। क्या तू अथवा तेरा मित्र, तुम दोनों औरंगजेब द्वारा किये जा रहे अत्याचार को दूर कर सकते हो? जिस वृति को तू देववृत्ति समझता है, वह कायर वृति है। कायर वृति प्राण निकले जैसी दशा है। मानो शारीरिक बल, मानसिक बल जब हार जाये तो समझदार लोग कमजोरी को छिपाने के लिये उसे दया, क्षमा दोष भुलाना, नम्रता, सहनशीलता आदि नाम रख लेते हैं। तुझे वहां पर अच्छी तरह देखना चाहिये था कि क्या गुरू जी को अपने लिए राज्य का लोभ है? क्या वे दूसरे का अधिकार छीन रहे हैं? वे तो धर्म युद्ध कर रहे हैं, जिससे गऊ, गरीब, ब्राह्मण, साधु, संत, प्रजा आदि पर जो-जो अत्याचार हो रहा है, उसे दूर किया जाये। पहले सतगुरू जी प्यार, उपदेश, शान्ति द्वारा तथा अत्याचार को सहन करके; अपने प्राण न्योछावर करके अत्याचारी को रोकते रहे, पर वह नहीं माना और न ही जनता में साहस भर सका, अब उसी गद्दी पर विराजमान गुरू जी ने उसी निर्बल हो चुकी जनता में शस्त्र का बल भर दिया है, ताकि वह अपने धर्म, लज्जा, अपने प्राणों तथा माल धन की रक्षा कर सके। इसके साथ वह गुरू गुरू है धर्म का दाता, निरंजन की ज्योति, कवि तथा योद्धा। कोमल भी है और बलवान भी। उसके कार्यों पर तुझे संशय क्यों हुआ। गुरू की वाणी का पाठ कर। आदि सतगुरू जी ने मांस के झगड़े में पड़ने वाले मनुष्य को मूर्ख कहा है।

तू क्यों मूर्ख बना? आदि सतगुरू जी ने कहा है कि जिस वस्तु के खाने से मन में विकार तथा शरीर में पीड़ा उत्पन्न हो, उस वस्तु को न खाइये। समर्थ गुरू की सुमति कभी भी विचलित नहीं हुई, यदि वह अपने मौज में शिकार खेल रहे हैं तो खेलते रहें। तू यदि मच्छर के मरने पर दुखी होता है, तो मत मार। यदि आधे गांव को खा चुके आदमखोर शेर का शिकार होता देखकर तुझे हिंसा लगती है, तो तू शेर का शिकार मत कर, और यदि तुझे आधे गांव के अनाथों तथा विध्वाओं के विलाप अच्छे लगते हैं, तो उन्हें सुन, पर ज्योतिर्मय सौंदर्य के लिए तर्क करने वाला तू कौन है, सौंदर्य जो हिंसक शेर को मार कर आधे गांव

की रक्षा कर लेता है और फिर जिस के हाथों मरने से सदगति भी होगी, तू उसके हाथों की बरकत को कमजोर हाथों की भांति क्यों देखना चाहता है। तू गुरू वाणी का पाठ कर देख, तीसरे सतगुरू कहते हैः–

सिम्रित्र सासत्र पुंन पाप बीचारदे
ततै सार न जाणी॥ [आनन्द; राम: म: ३]

शास्त्रों के ये लेख जो बिना पूर्वापर मेल के कच्चे गुरू सिखलाते हैं, ये पुण्य पाप के विचार के भ्रम में डाल देते हैं, पर वे तत्त्व का ज्ञान नहीं करवाते। तू भी झगड़े में पड़कर तत्त्व से वंचित हो गया है।

"बेद की पुत्री सिम्रित भाई।
साकल जेवरी लै है आई।"

ये विचार बेड़ियां हैं तथा जंजीर बनकर सामने आते हैं, जिनसे बंधकर बुद्धि मध्यम बलहीन तथा शोकाकुल हो जाती है। गुरू जी के सिद्धान्त को समझ और प्रफुल्लता विकास का मार्ग भी समझ ले। पाप तथा पुण्य का विचार इस मार्ग में भी होता है पर वह विचार आत्मोन्नति में सहायक होता है, वह बेड़ी बनकर बंधन में नहीं डालता। आत्म हिलोर, भीतरी विकास, प्रभु प्रेम का उत्साह, भीतर तथा बाहर की निर्मलता, इस मार्ग के पक्षी की उड़ान हैं।

तू आत्मिक संसार के शाहंशाह से मिलकर खाली क्यों लौटा? इसलिये न कि तेरी बुद्धि बणिक वृत्ति में बंध रही थी। एक बणिक वृत्ति तो व्यापार की होती है और दूसरी पाप, पुण्य, अहिंसा, हिंसा जैसी बातों की बाल की खाल उतारने वाली बणिक वृत्ति होती है, जिसने रेंगना तो देख लिया है, पर चलना नहीं देखा। यदि कभी चलना देख भी लिया, तो उड़ना नहीं देखा। चींटी उस उन्मुक्ता को कैसे समझ सकती है जिसे आकाश में उड़ाने भरने वाले पक्षी जानते हैं। वे तो धरती की गर्द, धूल को ही जानती है, पक्षी नीले आकाश की निर्मलता में गमन करते हैं। यदि तू आदि गुरू की वाणी का पाठ करे, वाणी का विचार करे और दशम गुरू जी की अकाली वाणी का भी पाठ करे तो तुझे भी निर्मल नीले अंबर में उड़ रहे नीलकंठ का पता चले।

पुत्र–कुछ इस प्रकार की बातें आनन्दपुर में हुई तो थीं, पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया था। आपके आज के बचन तो सोचे हुये को जगाने वाले हैं, पर पिता जी। फिर शक्तिशाली लोगों के काम क्यों बुरे हुए, उनकी भी यही ऊँची गति नहीं है क्या?

पिता–साधारण शक्ति सम्पन्न लोग अंधकार में हैं, वे तृष्णा से भरे हुए हैं, वे निजी सुख की खातिर दूसरे का बुरा करते हैं। बेटा! वे अहं में हैं और उनके सारे काम अहं में ही होते हैं। तू देख ले औरंगजेब ने अपने पिता को कारावास में डालकर और भाई को धोखा देकर सहायक बनाकर मारा। दूसरे भाईयों को कत्ल

लोग प्राय: नीलकंठ को ही गरूड़ कहते हैं, यहां अभिप्रेत है गरूड़।

किया। कई प्रकार के कपट किये और कई संत फ़कीर मार दिये। जनता दुखी है, संत दुखी हैं, धर्म में धक्का चल रहा है। तू इस तरह की वृत्ति को निष्काम, निर्वेर, स्वच्छ हृदय वाली वृत्ति के तुल्य मानता है वह वृत्ति जो अपने आत्मिक सुखों में से उठकर दीनों की रक्षा के वास्ते दुखों की नदी में आकर खड़ी हुई है। जिस वृत्ति में गुरू जी काम कर रहे हैं, उसका निर्माण त्याग की नींव पर हुआ है। वह साहसी वृत्ति, जिसका नाम आपने 'चढ़ती कला' रखा है। बेटा! यह मत समझना कि अहंकारियों तथा पाप से प्यार करने वालों के अहंकार का नाम 'चढ़ती कला' है। महापुरुष तृष्णा मुक्त होकर जिस उमंग वाली वृत्ति में जो नेकी के लिए काम करते हैं, उसका ही नाम 'चढ़ती कला' है। अमृत वेला में न उठने वाले, वाणी का पाठ तथा उसका विचार न करने वाले, पांच विकारों में पड़े हुए, मन में रोग द्वेष तथा ईर्ष्या रखने वाले, नाम, दान, स्नान में सुस्त, अहंकार के बस पड़े हुए लोग यदि अपनी अकड़ का नाम चढ़ती कला रख लें तो यह वैसी ही भूल में हैं, जैसा कि बल विहीन अपनी दुर्बलता को सहनशीलता कहने में करते हैं।

पुत्र–पिता जी! अब सतगुरू जी से मुझे क्षमा करवा दीजिये। अब समझ आ रही है और मन अपनी भूल को देख रहा है।

पिता–शुक्र है, तेरे जैसे मूर्खों को दुख ही दवाई बनकर लगता है।.....यह भी दाता की अनुकंपा है। जिन्हें प्यार, उपदेश, तथा समझाने बुझाने से समझ न आये, उनकी मायावी नींद खोलने के लिए वाहिगुरू उन्हें दुखों का झटका देते हैं। शुक्र है कि तुझे दाता ने संभाला है। तू यह समझ कि यह अनुकंपा हुई है, यह मत समझ कि गुरू क्रुध हो गये हैं और दंड दे रहे हैं। नहीं, जिस तरह पशु को गड्ढे में गिरने से रोकने के लिए उसका ग्वाला उसके मुंह पर लाठी से मारता है जो पशु के भले के लिए ही है, वैसे ही दाता जी अपनों को दुख का डंडा दिखाकर गड्ढे में गिरकर मर जाने से बचा लेते हैं। तेरा दुख देखकर मुझे दुख नहीं हुआ, मैं तो इसे सतगुरू जी का प्यार समझकर भय और शुक्र में हूं।

पुत्र–फिर आप क्षमा कीजिए और क्षमा करवा दीजिये, अब मेरी नींद खुल गई है।

: ७ :

सभि कुटंब इकठो हुई गयो।
गुर दरशन हित चलिबो कियो।
क्रम क्रम पंथ उलंघनि को करि।
आए ध्यान सिंह माजरीए घर।। [सू: प्र:]

बिशम्बर दास परिवार को साथ लेकर चमकौर पहुंच गया और ध्यान सिंह के घर पहुंचकर अपने दुख का वृतान्त सुनाया। कहा कि मेरा पुत्र भूल कर बैठा

है, तू मेरा गुरू भाई है, अब तू ही बता मैं क्या करूं? पुत्र को समझाया है, अब इसकी मति उज्जवल हो आई है, इसे साथ लेकर आया हूँ, तुम्हारे शरण में हूँ, हमारा उद्धार अब तुम्हारे हाथों में है। मुझ पर उपकार करो, जैसे सदैव गुरू के सिख करते चले आये हैं। ऐसा ढंग बता जिससे सतगुरू जी प्रसन्न हो जाये और मेरे इस बेटे को नाम का रंग चढ़ जाये।

ध्यान सिंह ने कहा: भ्राता जी! मैं हर तरह हाज़िर हूं! चलो सतगुरू जी के द्वार पर मैं भी साथ चलता हूँ। उनका स्वभाव क्षमा करने वाला है, वे पिता हैं, स्नेह स्वरूप हैं, क्षमा कर देंगे और नाम का रंग भी लगा देंगे।

तात्पर्य यह कि सारे आनन्दपुर आ पहुंचे। पहले डेरा किया, फिर गुरू जी के चरणों पर जाकर माथा झुकाया। सतगुरू जी देखकर मुसकराये और कृपा दृष्टि डाली। कुशलता पूछी बताई। इस तरह तीन दिन बिना किसी बात को छेड़े दर्शन करते रहे और लंगर से भोजन करते रहे। अब हरि गोपाल की मति और अधिक उज्जवल हो गई।

एक दिन सतगुरू जी को तनिक खाली विशम्बर दास पुत्र सहित गुरू जी के सामने हाथ बांधकर खड़ा हो गया और प्रार्थना करने लगा:–

हम मूरख खोटे मन कामी।
क्रितघण किरपण लूण हरामी॥
नाम गुलाम न करहि गुलामी।
तऊ क्रिपाल आप हहु स्वामी॥
बिरद गरीब निवाज तुमारा।
नाम पतित पावन सुख सारा॥
अधम उधारनि सदा सुभाऊ।
पिखउ दास को दोश न काऊ॥
ब्रिछ डाल सूधा अब करीअहि।
मो पर करुना द्रिशटि निहरीअहि। [सू: प्र:]

सुनकर सतगुरू जी हंसे और कहने लगे, विशम्बर दास! तेरा हमारा पुरातन स्नेह है, तू उदास न हो। तेरे पितामह का नाम नानू था, वह श्री गुरू नानक देव जी का सिख था। जब सतगुरू जी उसके घर में ठहरे थे, उस समय सतगुरू जी ने वरदान दिया था, कि दसवें शरीर में फिर भेंट होगी, अत: तेरा मेल तब से बना था। जो इच्छा है, पूछो।

विशम्बर यह वाक्य सुनकर चरणों पर झुक गया और कहने लगा, 'हे गरीब निवाज! मुझ पर जो आपकी अनुकंपा हुई है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। वाणी तथा नाम का दान ऐसे दान हैं कि क्या कहूं, क्या तुलना करूं? पुत्र अन्य संगति में बैठने लग गया था, तो मैंने इसे आपकी शरण में भेजा था। यह शाखा

है तो मुझ वृक्ष की ही, पर शाखा उल्टी ओर निकल गई है, इसे सीधा कर दीजिये हम कलियुग के जीव भूल करते हैं। यह भटकता संभलता-संभलता, भटकता आप से प्रसन्नता पूर्वक विदा हुआ था। रास्ते में यह फिर भटक गया। ध्यान सिंह जी जो मुझ पर उपकार करने वाले हैं, इनके घर में एक रात ठहरा, इन्होंने काफी प्रयत्न किया कि किसी तरह इसकी निष्ठा स्थिर हो जाये, किन्तु स्वभाविक बहाव मुक्ति के कारण वे संभल न सका।

फिर उस गुरू के प्यारे ने गुरू के वचन का अपमान न सहन करते हुए मेरे इस लोभी पुत्र को धन देकर आपका वचन इससे ले लिया। आपके वचन अमोघ बाण हैं। पुत्र ने समझा कि वचन केवल हवाई बातों का ही जोड़-तोड़ है। पर ध्यान सिंह जानता था कि यह जीवन शक्ति, यह 'अमूल्य फुरमान' है। इसे आपके उस अमूल्य वाक्य के मूल्य को समझने के फलस्वरूप धन, धाम तथा धम तीनों में अत्यंत सुख प्राप्त हुआ है। इससे मुझे प्रसन्नता है। मैं अभी इसके पास गया था और इसे कहा था कि मेरे बेटे से भूल हुई है और अब यह अपनी भूल को स्वीकार करता है, इसे सतगुरू जी द्वारा क्षमा करवा दें। यह प्यारा मेरे साथ चला आया है ताकि आपके चरणों में मेरी सिफारिश करे। मेरे पुत्र ने पहले धन के लालच में आकर व्यापार किया, धन बढ़ाया पर फिर वही धन अभिशाप दे गया। अब यह निर्धन है धर्म से। अर्थ और निष्ठा से, इस पर आपकी अनुकंपा हो जाए; यह अब अपनी भूल को स्वीकार करता है; दुख ने इसका अन्त धुल दिया है, इसमें अब श्रद्धा भी आ गई है। आप कृपा करो ताकि नाम का पौधा इसके भीतर जड़ पकड़ जाये और फले फूले।

ध्यान सिंह ने भी सिफरिश की।

सतगुरू जी ने कहा—बिशम्बर! तू श्रद्धालु है, तेरे पुत्र में निष्ठावान नहीं रहा। अच्छा, पर जैसे तूने कहा है वही होगा। कल को आना। दूसरे दिन बिशम्बर जी परिवार तथा उपकारी ध्यान सिंह सहित सतगुरू जी की सेवा में उपस्थित हुए।

सतगुरू जी ने कहा—'बिशम्बर क्या इच्छा है'?

बिशम्बर—प्रभु जी पहली विनती तो यह है कि मेरे पुत्र की भूल के कारण धन का नाश हुआ है और घर में दरिद्रता आ गई है; निर्वाह चलाना कठिन हो रहा है। आप कृपा कीजिए जिससे कुछ हाथ खुले।

सतगुरू जी—सम्पदा बढ़ेगी। जब घर लौटो तो वस्त्र आछादन करके प्रसाद तैयार करना, तीन बार आनंद वाणी का पाठ करना। पांच सिखों को भोजन करना। इस समय जो अरदास (प्रार्थना) करोगे, पूरी होगी।

कहा जाता है कि इस समय गुरू जी ने इस निष्ठावान सिख को सौ प्रकार की अरदास (प्रार्थना) करने का ढंग बताया। सतगुरू जी ने अपने प्यारे सिख बिशम्बर को न केवल धन संपत्ति ही प्रदान की, बल्कि जगत के व्यवहार में

सदैव सहायता के लिए ईश्वरीय मार्ग भी बताया। यों हर समय अरदास की जाती है, तब वाहिगुरू स्वीकार करते हैं और अनुकंपा भी हो जाती है। निष्ठा मुक्त देने वाली है। हरि गोपाल पर भी अनुकंपा हुई और हरि गोपाल के सारे परिवार पर गुरू जी की प्रसन्नता हुई और उन्हें नाम प्राप्त हो गया।

भाई ध्यान सिंह ने बिशम्बर की सहायता करते हुए अपना समाचार बताया कि वचन ले लेने के बाद उसके तथा उसकी पत्नी के हृदय रूपी नैन आप जी के प्रेम में रसमय हो गये और साथ ही उसके घर में धन की वृद्धि हुई। हल चलाते समय कुछ दबा हुआ धन प्राप्त हो गया, जिससे गिरवी रखे आभूषण छुड़वा लिए और उसका गुजारा अच्छा चलने लगा। उन्हें नाम रस की प्राप्ति हो गई है और वह हर तरह सुखी हो गया है। अब सतगुरू जी की प्रसन्नता ध्यान सिंह पर और अधिक हुई जिसने गुरू के वाक्य को 'अमुल फुरमाण' समझकर एक निष्ठाहीन व्यक्ति के पास उसे रहने देने को अपमान समझा और इतना त्याग किया कि पत्नी के आभूषण गिरवी रखकर गुरू के वाक्य को प्राप्त कर लिया और निष्ठा से गिरे हुये व्यक्ति की बणिक वृत्ति को संतुष्ट कर दिया। इस श्रद्धा, त्याग तथा प्रेम को देखकर गुरू जी उस पर बहुत संतुष्ट हुये।

हरि गोपाल पर भी नाम की अनुकंपा हुई, उसकी निष्ठा स्थिर हो गई थी, अतः समस्त परिवार 'वरदान प्राप्त' कर घर को लौटा।

कल्गीवाले के रास्ते पर नरगिस ने नैन बिछाये

सरदी दे हथों जद छहि छहि फुल्लां मुंह लुकाए,
धुंम गई गुर कलगीआं वाले अज आए, कल आए।
तद नरगस ने नैण रसीले हित अलसाए खोले,
चिरी बिछुंने, गंध सुगंधे सतिगुर राहते लाए।

[लेखक की पंजाबी कविता का लिप्यन्तरित रूप]

❑ ❑

सौ साखी में तथा गुः प्रः में सौ प्रकार की अरदास हैं, न तो सौ अरदास दी और न ही सौ अरदास कहीं लिखी है, सौ की गिनती है, सौ अवसर बताये हैं और बीच-बीच में कहीं कोई पंक्ति ऐसी भी आ जाती है, जिसमें अरदास की संक्षिप्त विषय वस्तु होती है।
इस समय अरदास तथा मर्यादा के रूप में जो वाक्य अमृतधारियों तथा सहजधारियों के लिए कहे गये, उन्हें सौ साखी के आक्षेपकों ने यहां कुछ अपनी ओर से भविष्य की बातें डालकर अथवा पहली लिखित को बिगाड़कर, इस तरह कर दिया है कि उन्हें समझने में कठिनाई होती है। इतनी बात पता चलती है कि इस समय गुरू जी की कृपा हुई है, शिक्षा के शुभ वाक्य आपने कहे हैं, अरदास करने का ढंग बताया है, निष्ठा उपदेश दिया और और मर्यादा भी बताई गई है।

५९ भाई भूप सिंह

भाई प्यारू नामक गुरू के चरणों का एक प्रेमी अपना घर-बार छोड़कर आनन्दपुर ज़ाकर रहने लगा। एक वह आप उसकी पत्नी तथा आठ दस वर्ष की एक लड़की ये तीनों गुरू जी की सेवा में रहकर जीवन सफल करने का भाव रखते थे। जब आज्ञा होती तब ही कोई सेवा करते, अपने आप कभी कोई विनती न किया करते। भाई प्यारू यह समझता था कि सतगुरू काफी व्यस्त रहते हैं, वह सेवा करता रहे पर कभी भी कोई प्रार्थना करके अपने लिये कोई बात कहकर गुरू जी का समय खर्च नहीं करवाये। उसका विचार था कि जितना समय वह किसी प्रार्थना के लिए लगायेगा, उतने समय में गुरू साहब किसी दूसरे की भलाई करेंगे। यहां तक यह विचार बना रहा कि अमृत दान प्रारम्भ हो गया, पर प्यारू जी ने अमृत प्राप्त करने के लिये भी विनती न की।

भाई प्यारू की सुपुत्री माता-पिता के साथ सेवा में हाथ बंटाया करती थी। सिखों को अमृत प्राप्त करते देखकर इसे भी बड़ा चाव हुआ कि वह भी अमृत प्राप्त करके गुरू जी की पुत्री बने। कई बार माता-पिता को भी कहा, पर वे यही शिक्षा देते कि बिटिया! गुरू की आज्ञा की प्रतीक्षा कर, सेवक स्वयं कुछ नहीं मांगा करते। लड़की इस बात को मान जाती, पर भीतर में दबी लालसा प्रति दिन बढ़ती गई। जब संगत अमृत प्राप्त करती तो यह काफी समय तक पास खड़ी होकर प्यार तथा लालसा भरी नज़रों से देखती रहती। जब सिंह गुरू जी को 'पिता गुरू जी' कहते, तब इसके कलेजे में से जोश उठता कि वह कभी गुरू जी को 'पिता गुरू जी' कह सके।

एक दिन सतगुरू सच्चे पातशाह सायंकाल को सतलुज के किनारे विराजमान थे रहिरास के पाठ की समाप्ति हो चुकी थी। सतगुरू जी ने पीछे मुड़कर देखा तो मधुर ठंडी वायु चल रही थी। छोटे-छोटे बादलों के बीच तारे निकल रहे थे। एक बड़े सारे वृक्ष की पीछे से अरदास की मीठी-मीठी आवाज़ आ रही थी। गुरू साहब ने खड़े होकर प्रार्थना सुनी। उस अरदास (प्रार्थना) को निम्नलिखित गीत हैं में अंकित किया गया है-

---

यह प्रसंग अप्रैल १९०३ से पहली बार छपा था, संभवत: उस साल के गुरुपर्व सप्तमी पर प्रकाशित हुआ था और दूसरी बार अक्तूबर १९०३ में प्रकाशित हुआ।

राग भूपाली कल्याण तार २९ धारणा-चंदन दे ओहले ओहले क्यो खड़ी।

संगीत में अपने से धुन निकालने के लिए चित्र

धा	सा	रे	गा	रे	सा	रे	सा	सा	रे	गा	रे	गा	रे	गा	रे	सा	
मैं	बेटी	कलगी	आंवाले	गुर	दी	किंवेब	नां	मैं तां	होई हा	रो रो	के	बे	हाल	अमां	नूं	कह	
		रे	सा	धा	सा	रे	गा	रे	सा	रे	गा	रे	सा	रे	गा	रे	सा
		हा	रीआं	वे	बाबल	बिनती	करां	ह	थ	जोड़	आख	वे	ना	मोड़	तैथों	ब	लि
															रे	सा	
															हा	रीआं	

कल्गी चसले गुरू दी किवें (मैं बेटी) बणां?
होई हां रो रो के बेहाल, अमां नूं कह हारीआं, नी अमां।
'घोली तैथों सद वारीआं' वे बाबल!
बिनत करां हथ जोड़, आखा वे न मोड़, जी देखो
तैथों बलिहारीआं॥१॥

अमृत ने 'दासां' तो 'पुत' बनालिए में वी बेटे ते
लोचां भाईआ भैणां वाञा, अंमि्त छक जीबीए,
गुरू जी दे फिर थीवीए ते मैनूँ,
चिंता लिआ हुण घेर; हुंदी जादी डेर,
अंमि्त किकूं पीवीए?॥२॥

कलगीआं वाला गुर बड़िओं बड़ा दाता है
मंगे मूहों सौ पावै है मुराद जेहड़ा,
गुरू त्रुठ देंवदा, न खाल जाए दर सेंवदा।
मै बाबल भाणे विखे सावधान,
मंनदा ए फुरमान आपो न करेंवदा॥३॥

केही औकड़ हुण आई बणी? हे साइआं!
नां सकीए न अरज़ गुज़ार, सेवक नहिं बोलदा।
आपे सेवक साईं रजा नू है टोलदा (खोजता है)।
साईं साडे धार मौन, कारी करे गु कौन?
सो लीती, केहड़ा दुख फोलदा।?॥४॥
हाय मैं भोली ते न्याणी बाल निमानडी!
पढ़ी न सिखी कोई है ज़ांच नाहीं गुण जाणदी।
न मैं जाच जाणां पीण खाण दी; मैं इको,
होवे गुरू किउं दिआल? सौ मैं ते
घाली ना को घाल सेवा न सिआणदी॥५॥

जानां न संगत ते सतिगुरू नूं रीझावणा सिखी,
जोड़ियां झाड़न दीन जाच, ऐसी मैं निकारीआं।
पुत्री बणां गुर पिआरी आँ।
लोचां, खंभाँ परां तो भी हीन,
मैं तां चाहां हो स्वाधीन लावां मैं उडारीआं॥६॥

कोई भागां बाला वे देहुं आवसी, हे साईं!
सकां मैं सतगुर नूँ 'पिता गुर जी' आख,
आखां मैं 'बापू मेरिआ'।
ते अग्गों पिता कहे 'पुत मेरिआ'।
किरपा करीं तू आप, हे सतिगुर!
न तकीं साडे पाप असीं तेरे तेरिआँ॥७॥

प्यारे गुर जी तेरे तेरे तेरिआं।
तेरे हां अंत्रयामी हैं, गुर जी आप दिल दी सभ जाणदा तू तां
बाली नूँ बी हैं पछाणदा।
ते मैं बहुड़ों गुरू जी आप हुणतां
ठारो मेरा ताप निमाणे तू माणदा॥८॥

गीत का भावार्थ:-

मैं बेटी कल्गीधर गुरू की कैसे बनूं?
रो रो कर बेहाल हुई हूं कह कह थकी हूँ मां को हे मां,
हे पिता! मैं तुझ पर सौ बार बलि जाऊँ हाथ जोड़ विनय करती हूँ,
कहना मेरा मत मोड़ो, मैं बलि जाऊं॥१॥

अजी देखिए, 'अमृत' ने दासों से पुत्र बन लिए,
मेरी लालसा है भाई बहिनों की भान्ति, अमृत छक जीएँ
और बेटे गुरू जी के बन के रहे, और मुझे चिन्ता ने
लिया है घेर, होती जा रही है देर,
अमृत किस विधि पीएँ॥२॥

दाता है कल्गी वाला सतगुर बड़े से बड़ा
जो भी कोई मुख से मांगता है उसकी आशा पूरी होती है
गुरू अनुकम्पा कर देते हैं, कोई भी सेवाकारी दर से खाली नहीं लौटता।
मैं है पिता, भाग्य की और सावधान हूँ,
(सेवा करने में) प्रभु आज्ञा का पालन करता है स्वत: नहीं॥३॥

हे स्वामी! कैसी कठिनाई आश्चर्यकारी अब आ बनी है?
स्वयं तो कर न सकें प्रार्थना, सेवक नहीं बोलता।
सेवक स्वामी की इच्छा को है खोजता।
अत: लिया है कर हमारे स्वामि ने धारण मौन, कार्य करेगा कौन?
कौन दु:ख की परते उघाड़े॥४॥

हाथ भोली अबोध बालिका लाचार,
न ही मैं पढ़ी हुई हूँ और न ही सीखा है कुछ ढंग मैंने,
न ही कुछ गुण की ग्राहकता हूँ।
मैं एक ही ढंग जानती हूँ खाने पीने का।
तो मुक्त पर गुरू क्यों कर दलाल हों?
मैंने कोई कठिन तपस्या तो की नहीं, सेवा को भी नहीं पहचानती।।५।।

जानती नहीं सतगुरू और संगत को रिझाना,
मैंने तो जूते साफ करने की विधि भी नहीं सीखी, ऐसी नकारी हूँ
(फिर भी) लालसा रखती हूँ, गुरू प्यारे की पुत्री होने की?
मैं तो पंखों परों से हीन हूँ, चाहती हूँ स्वतन्त्र उड़ारिया भरना।।६।।

हे स्वामी! कोई भाग्यवान दिन आयेगा,
सकूँगी मैं 'सतगुरू पिता जी' को कह
"हे मेरे प्यारे पिता जी"! और प्रति उत्तर
दे पिता श्री 'मेरी प्यारी बिटिया'।
हे सतगुरू कृपा करें आप स्वयं
न देखना हमारे पाप, हम तेरे हैं तेरे हैं।।७।।

तेरे हैं प्यारे गुरू जी! तेरे हैं तेरे हैं,
तू तो अन्तयोयी है, गुरू जी, सबक हृदय की जानने वाला
और मुझ बालिका को भी है तू पहचानता।
अब तो अनुकम्पित हो गुरू जी स्वयं
मुक्त निमानी के मान रूपी ताप को शीतल करो।।८।।

बालिका की इस तरह की लालसा भरी प्रार्थना सुनकर बच्चों से प्यार करने वाले सतगुरू जी आगे बढ़े और कहने लगे:-'हां बिटिया! अमृत छक, कुल तारक पुत्री! कल सवेरे अमृत की देन प्राप्त होगी'। कन्या उठकर चरणों से लिपट गई। अगले दिन परिवार को अमृत की देन प्राप्त हुई।

पिता का नाम भूप सिंह, उसकी पत्नी का नाम रूप कौर, तथा पुत्री का नाम तारन कौर रखा गया। तीनों का सिदक (निष्ठा) अंत तक निभा और तीनों ही आनन्दपुर निकलने वाली रात को गुरू जी के बचाव के यत्न में शहीद हो गये।

सूचना—एक बिछुड़े सिख का दिली चित्र इस प्रकार है।

❑ ❑

६० वियोग भाई प्रीतम सिंह जी

गुरू कल्गीधर दशम पातशाह जी के सदा निकट रहने वाले निष्ठा तथा प्रेम की प्रतिमूर्ति भाई (गोहर, अमृत प्राप्त करने के बाद) प्रीतम सिंह जी सतगुरू जी की आज्ञा से घोड़े खरीदने के लिये भाई सुहेल सिंह के पास सुलतान विंड गये थे। घोड़े तो आपने भेज दिये और सतगुरू जी की आशा हुई कि जब तक वापिस आने को न कहा जाये, तब तक वहीं पर ही ठहरना। इस तरह काफी समय व्यतीत हो गया, दर्शन के लिए पपीहे की भांति तड़पते, प्रीतम सिंह जी व्याकुल हो गये। प्रेम के विश्वासों में एक रात वैराग्य में आँख लग गई, तब सतगुरू जी के दर्शन हो गये फिर क्षण के बाद बूँदें पड़ने लगीं, तब नींद खुल गई, फिर और अधिक प्रेम, नम्रता, वैराग्य ने कसकर व्याकुल किया। दूसरे दिन महाराज जी का बुलावा आ गया। निम्नलिखित गीत में उनके दिल की उस रात की प्रेम मूर्ति को चित्रित करने का छोटा-सा यत्न है:-

आबीं (आना) कलगी वालिआ!
मैं निमाणी दी सार (सुध) लई, वे साईंआं।
मैं निमाणी दी सार लई।
आवीं फौजां वालिआ!
मैं निमाणी दी सार लई।
तड़फा मच्छी वांग मैं,
मेरी रोंदी दी रैण गई।
पल्लू भिजे (भीगे) रोंदिआँ,
मेरे नैणां नूं नींद नहीं।
तके (देखे) विच असमान दे,
मेरी सिकदी ए नज़र रही।
नदरीं ना दिस (दिखाई) आइओं,
ए तक तक थक गई।
अखी मिटीआं प्यारिआ।
विच अखीआँ दे नींद पई।

नींद पई सिक (चाह) न मिटी,
तेरी सूरत नज़र पई।
बाँकी सूरत मोहिणी (मोहित करने वाली),
सिर कलगी है खूब छई।
लहिरे लक (कमर में) तलवार है,
जिउं बिजली है लिशक पई।
धनुख विराजे कर (हाथ) लिखे,
नाल जपणी (माला) वी दमक रही।
शोभा तेरी वेख के,
सभ शोभा ने शोभ लई।
दरशन ऐसा देख के,
मैं निमाणी दी ताब गई।
दरशन रहिआ, तूँ रहिओं,
तेरे दरस दी मौज रही।
'मैं' न रही 'मेरा' ना रहा,
मेरी हउमैं (अहं) दी फउज (सेना) गई।
बदल (बादल) आए पल विखे,
असमानों तां बूँद पई।
बूँद पई मेरे नैण ते,
मेरी उघड़ नींद गई।
अचरज खेल रचाइआ,
अब खुली ताँ दरस नहीं।
दरशन ओहले (ओट में) हो गया,
मेरी मूलों ने पेश गई
दोश न तैनूँ सतगुरा,
मैं ही दोशण हाँ होई रही।
किरपा कर तूँ बखशिया,
मैं निकारी दी बाँहि गई।
तोल तुलाइआ मेरड़ा
मैं ताँ कसी (कम) निकल पई।

कसी निकली तोलिआं,
इह ताहीओं (जभी) ही कसर (कमी) पई
कसरां वाली मैं बुरी,
मैनूँ फेर वी बखश (क्षमा दान) लई।
बख्शी बख्शी साईआँ
तेरे दुआरे ते आण पई।
विरद (बड़ाई) संभालीं आपणा,
मैनूं आपे ही बखश लई।

सूचना—गुरू जी के ईश्वरीय दर्शन आगामी कविता में अंकित हैं—

❑ ❑

६१ दशम गुरू दर्शन

एक दिन गुरू गोबिंद सिंह साहिब
कलगीआं वाले स्वामी,
दासां दे रख्यक, सिख पालक
प्यारिआँ अंतर जामी,
सतलुज नदी किनारे बैठे,
संगत जुड़ी चुफेरे (चारों ओर),
जिउं पुंनिआ (पूर्णिमा) दा चंद प्रकाशे,
विच तारियां घेरे।
कलगी जिग्हा बिराजे मत्थे,
लक तलवार सुहावे,
मत्था तूण (तीर रखने का चोंगा) तीर दा भरिआ,
धनुख लहिर दिखलावे।
मसतक चमक अनोखी देवे,
दुहरी झलक प्रकाशे,
नाले चमक बीर रसा देंदा,
रस शाँती बी लासे।
दोवे (दोनों) इक थां कठे होए,
पावस मानो आई।
सूरज तेज दिये हैं नाले (साथ)
बरखा छहिबर लाई।
नेतर दोवें भरे खलौते,
दुहाँ (दोनों) रसां विच ऐसे,
गरमी चानण हुए मिल रहिंदे

यह प्रसंग अप्रैल १९०३ से पहले बार संभवतः उस वर्ष के गुरुपर्व सप्तमी के शुअवसर पर प्रकाशित हुआ था और दूसरी बार अक्टूबर १९०३ में प्रकाशित हुआ।
जिस आत्म रस का आनन्द भक्त लेते हैं, उसे शांतरस का जाता है।
वर्षा ऋतु।

इक सूरज विच जैसे।
कबलाँ वरगा (जैसा) सुन्दर मुखड़ा
मुसकराइ मन मोहे,
हुकम करे ते शाँती देवे,
अचरज कर कर सोहे।
बीर शाँत ते अदभुत तिंने (तीनों)
इथे (यहाँ) रले प्रकाशण,
मानो बरखा धुप चमकदी,
धनुख आकाशी लासण।
फिर मूँहों इउं वाक उचारन
मिठे प्यारे सोहणे,
मात पिता ममता दे जिकुर (जैसे)
पुन नूँ कहि मन मोहणे;
बातसल यह चौथा रस बी,
नाले आके रलिआ,
रस संगम गुर मुखड़ा बणिआ,
कवल दुपहिरी खिलिआ।
धुप, वरत्वा ते पींघ अकाशी,
पौण जफीआँ (गले मिलन) पाँदी।
चारो मानो कठे होए, उपमा कही न जांदी
बांकी देह लंमेरी डीलों,
आसन चुसत जमाए,

अनोखी तथा सुन्दर वस्तु से विस्मय का भाव पैदा होकर रसरूप हो जाये, उसे अद्‌भुत रस कहा जाता है।

वर्षा-शांत, धुप-वीर, धनुष आकाशी-अद्‌भुत, पवन-वात्सल्य।

माता-पिता तथा सन्तान का परस्पर प्रेम।

रसों का एक स्थान पर इकट्ठा होना।

इक हथ सिमरनि, दूए (दूसरे) असि लै,
सतिगुरू बेस सुहाए।
ऐसे तेजवान गुरू सुन्दर,
कलगीआं वाले प्यारे,
नित्त बिराजन मन साडे विच,
सिख जाण बलिहारे।

❑ ❑

माला।

तलवार।

६२ वार्ता भाई ज्योति सिंह जी

ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे ढाका नगर से थोड़ी दूर, आज से लगभग तीन सौ वर्ष पहले एक आश्चर्यजनक तमाशा हो रहा है। कल्गीधर श्री गुरू गोबिंद सिंह जी के चरणों का भँवरा भाई ज्योति सिंह आलती पालती मारकर बैठा अपने आनन्द में मगर सायंकाल में प्रेम भरे शब्द गायन कर रहा है। दिल प्रेम में मगन है, चित पूर्ण रूप से एकाग्र है, जीभ प्रेम रस में रांती ऐसे मन को आकर्षित करने वाले शब्द गायन कर रही है, मानो चलते हुए जल बांधने वाली बात हो रही है। किसी समय आंखों में से जल की बूँदे गिरती हैं, सारा शरीर रोमांचित हो हो जाता है और जल के तरंग मन के प्रेम की लहरों के साथ एक स्वर हो रहे हैं। इनकी मधुर ध्वनि का इतना आकर्षित प्रभाव पड़ रहा है कि एक नवाब साहब थोड़ी दूरी पर अपने जशन में मस्त चौंक उठे, शराब का प्याला हाथों से गिर पड़ा, नृत्य करने वाली वैश्या को नाचने से मना कर दिया। हां हां, ही ही के स्थान पर भूकता छा गई। संध्या के मन्द अंधेरे में मीठी धीरे-धीरे समकती पवन ने शांति से बह रही शीतल तथा सुहावनी नदी ने तथा मीठी फैल रही ठंडक ने इस शान्तमय संगीत के साथ मिलकर ऐसा आश्चर्यजनक प्रभाव डाला कि सारा जलसा धण्डा ग्राम के हिरन की भांति सुनता-सुनता सरूर में आ गया। जिस समय सिंह ने गाना बंद किया, तो नवाब साहब के मुंह से 'वाह, वाह' के शब्द निकले, चारों और देखा, फिर हुकम दिया, जाओ देखो कौन है? हुकम पाकर प्यादे पता करने के लिये गये ओर उन्होंने आकर खबर दी कि कोई काफिर है, जो गा रहा था। नवाब ने उसे उपस्थित करने का हुकम दिया।

उसी समय प्यादा सिपाहियों ने उसे जा ललकारा। सतोगुणी समुद्र में डूब रहे सिंह जी ने शांतिपूर्वक देखा और धीरे से कहने लगे, 'क्या आज्ञा है?' सिपाहियों ने कहा, 'नवाब साहब ने याद किया है'। आपने कहा, 'हम जैसे गरीबों के साथ उनका क्या काम हो सकता है?' पर उनके बहुत कहने पर उन्हें उठना ही पड़ा। जब वहां पहुंचे तो वहां शराब का दौर चलते देखकर सिंह जी ने प्रभु के चरणों में एक छोटी-सी विनती कि हे दीनबुंधु! सहायता करो, काजल की कोठरी में से निरंजन निकालकर ले चलना'। नवाब साहब ने पास बुलाकर

यह प्रसंग खालसा समाचार में ९ पौष सं गुरु नानक शाही: ४३५ (२३ दिसम्बर १९०३ ई०) के गुरुपर्व सप्तमी के सुअवसर पर प्रकाशित हुआ था।

कहा, वाह खूब! हमें बहुत आनन्द आया, आप धन्य हो, बहुत खुश किया है। कुछ और सुनाओ'। पर वह हमारी समझ में नहीं आया, कुछ फ़ारसी बोली में सुनाओ। सिंह जी ने बड़े अदब सहित उत्तर दिया, 'मैं परमेश्वर के शुक्र के गीत गाता हूँ, जो मेरी ही बोली में हैं, मैं फारसी बोली नहीं जानता, अत: मैं गा नहीं सकता। नवाब ने कहा, 'अच्छा! सुनाओ, हमें तो आवाज ही मस्त कर रही है'। सिंह जी ने कहा, 'परमेश्वर के भजन सुनने के लिये अपने आपको तैयार करो, यहां इससे गंदे सामान को परे हटाओ और अदब में आओ'। यह सुनकर नवाब को गुस्सा आ गया, उसने हुकम दिया। 'इसे डेरे पर ले चलो, मुसलमान बनाओ, फारसी पढ़ाओ, फिर यह गज़लें सुनायेगा'। हुकम मिलते ही सिंह जी को ज़बर्रस्ती डेरे पर ले जाया गया।

इसी नगर में एक कृष्ण कौर और नामक माई रहा करती थी। इसका पति पहले फौज में नौकरी किया करता था, जिसकी कुछ वर्ष पहले मृत्यु हो चुकी थी और इसने वहीं पर अपना निवास कर लिया था। गुजारे के लिए धन पदार्थ उपलब्ध था, अत: उसने, जो पहले सिख नहीं थी, अब सिख धर्म धारण कर लिया और उसका प्रचार ही देह का मुख्य लक्ष्य मान लिया। यह महिला सीमावर्ती क्षेत्र की रहने वाली थी और फारसी का उसे प्रर्याप्त ज्ञान था। इसने भाई ज्योति सिंह के पकड़े जाने का समस्त समाचार सुन लिया था। भला ऐसे धर्मात्मा सिंह के कष्ट के बारे सुनकर उससे कैसे रहा जा सकता था? पिछली रात को भेष बदलकर मर्दों वाला तथा मुसलमान दरवेशों वाला भेष बनाकर नवाब के महलों के पीछे चली गई और फारसी भाषा में प्रभु भक्ति की गजलें बड़ी मनोहर ध्वनि में गाने लगी। प्रात: जब कोयल जैसे राग की मधुर आवाज़ नवाब के कानों में पड़ी तो राग के प्रेमी नवाब ने उसे बुलावा भेजा। साई लोक (फकीर) ने बड़े प्रेम सहित मन भाते फारसी के गाने गाये। नवाब साहब ने प्रसन्न होकर कुछ धन इनाम में दिया। इस धन को फकीर ने स्वीकार न किया और कहा कि प्रभु प्रेमियों को धन की आवश्यकता नहीं होती। नवाब द्वारा दोबारा कहने पर कि कुछ तो स्वीकार कीजिये, तो साईं लोक ने कहा कि आप अगर खुश हैं तो मुझे रुपयों के स्थान पर वह आदमी इनाम में दीजिये जिसे आप गाते हुये को रात को पकड़वा लाये थे। नवाब मुसलमान फकीर की फरमाइश के लिये इन्कार न कर सका और ज्योति सिंह को उसके हवाले कर दिया। साथ यह सिफारिश की कि आप कभी-कभी आकर गज़लें सुना जाया करना। फकीर ने कहा, अल्ला वाले अपनी मौज में रहते हैं, जैसे मौला का हुकम होगा। तुम खुश रहो। कृष्ण कौर रात के तीसरे पहर से पहले की लगी हुई दिन की दोपहर से पहले अपने एक सिख भाई को कैद से छुड़वाकर अपने डेरे ले आई।

सिंह जी को ढाका के गुरुद्वारे में लाया गया। सभा में उपस्थित हुये और यहाँ से भेष बदलकर आनन्दपुर भेज दिये गये। माई तो उसी नगर में सिख समुदाय की सेवा करती रही और सिंह जी शनैः शनैः आनन्दपुर पहुंचे। उन्होंने आकर सारा समाचार सतगुरू जी को सुनाया। महाराज ने प्रसन्न होकर कहा, 'जिस बेटी ने मेरे सिख को मुक्त कराया है, वह इहलोक तथा परलोक में मुक्त हो गई'।

❑ ❑

६३ कुरूक्षेत्र यात्रा

: १ :

धन्य श्री गुरू नानक देव! बलिहारी इस नाम की, कहिये न आंखों को मूंद कर, मन को एकाग्र करके, प्यार में भरकर, हां, अत्यन्त प्यार में भरकर कहियेः–

धन्य श्री गुरू नानक देव।

'धन्य श्री गुरू नानक देव जी' कुरूक्षेत्र सूरज ग्रहण के अवसर पर गये थे, आज वही मनमौज सतगुरू जी अपने दसवें रूप में फिर कुरूक्षेत्र गये। उस समय श्री गुरू नानक देव जी ने लगे ग्रहण में किसी व्यक्ति द्वारा लाया गया हिरण का मांस चूल्हे पर चढ़ाकर अलौकिक बात करके लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था और फिर ईश्वरीय नाद की सिंगी बजाकर हजारों लोगों को मृत्यु के मंडल में से निकाल लिया था और जीवन के देश में ले आये थे। आज फिर कुरूक्षेत्र ब्रहण के मौके पर ही जा बैठी वही निरंजनी ज्योति, वह 'नूर की बुक्का' अपने दसवें रूप में अब भी जगत के उद्धार का कोई चमत्कार दिखाना है, हाँ जी जलते हुए जगत की रक्षा करना है।

नयन मूँद लीजिए, मन को एकाग्र कर लीजिये, तनिक संकल्प विकल्प के बहाव को थाम लीजिए, प्यार की कला को तनिक पलट लीजिए–हां, वह जो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पुत्री, पुत्र, पत्नी, धन पदार्थ, मान सम्मान की और प्यार की कला चला रही है–उसका रुख मोड़ लीजिये और उसका रुख अंतर्मूख कर लीजिए अपने भीतर के सारे प्यार के प्रवाह को आपे (स्वत्व) में खड़ा कर लीजिए, वह बन जायेगा प्रेम का भाव, अब कहियेः–

धन्य श्री गुरू गोबिन्द सिंह,

साहब श्री गुरू गोबिंद सिंह जी धन्य

मानवीय शरीर में भी प्रेमियों के संगी साथी, शरीर का त्याग कर देने पर भी प्रेमियों के सखा सदैव मुक्त, सदैव जीवित, सब थाईं (स्थान पर) होवे सहाय, साहब श्री गुरू गोबिंद सिंह जी?

यह प्रसंग पौस शुक्ल-पक्ष सप्तमी पर जो २५ पौस सं॰ गुरु नानक शाही ४६४ और १९८९ विक्रमी ३ जनवरी १९३३ ई॰ मंगलवार को, खालसा समाचार के मुख्य लेख के रूप में छपा तथा वैसे भी छपवाकर कई हजार प्रतियां इसकी वितरण की गईं।

अपने दसवें रूप में गुरू गोबिंद सिंह आनन्दपुर से कुछ सेना साथ लेकर चले थे। परिवार साथ नहीं आये थे।

हां जी, आप पहुंच गये हैं, कुरूक्षेत्र, कुछ सिंह भी साथ आये हैं, कुछ रास्ते में मिले हैं, कुछ यहाँ आये मिल रहे हैं। नगर में दक्षिण दिशा में डेरा लग गया। लंगर चलने लगा। प्रेमी आने लगे और भोजन करने लगे। प्रेमी आकर कीर्तन सुनते सतगुरू जी की कृपा द्वारा कृत्य-कृत्य होते और जीवनदान प्राप्त करते। इतने अधिक प्रेमी आने लगे कि दिन रात लंगर चलने लगा। गुरू जी के सुन्दर दर्शन, महान उत्तम उपदेशों, जीवनदान प्रदान करने दयालु कृपालु होने तथा अटूट लंगर चलने का यश फैलने लगा। सूरज ग्रहण के मेले पर कनफटे योगियों का एक मुखिया चंदन नाथ भी आया था, जो तीरंदाजी में कुशल था। उसके साथ योगी मदन नाथ भी आया था। यह बाल गुंदाई की गद्दी का स्वामी था, जो कि योगियों का एक प्रसिद्ध पूर्वज था। लगता है कि लंगर का यश तथा प्रेमियों का अमिट झुकाव देखकर चंदन नाथ के मन में कुछ ईर्ष्या सी आ गई और उसने सोचा कि चलो चलकर अपनी सिद्धि की शक्ति द्वारा लंगर अटूट होने के यश को भंग करें। यह बात उसने मदन नाथ से की। मदन नाथ को गुरू जी की मर्यादा तथा शक्ति का पता था। बाल गुंदाई को जो उपदेश श्री गुरू नानक देव जी ने दिया था, उसका उसे पता था और तब से ही उसमें यह उसूल घर कर गया था कि सारे कर्म धर्म जप, तप, हठ, निग्रह, प्राणायाम, ध्यान इत्यादि साधन प्रभु के 'नाम' के बिना सफल नहीं हैं, नाम का मूल्य 'एक' है तथा शेष सभी नेकियां, धर्म, कर्म, सभी साधन 'शून्य बिंदु हैं'। एक के साथ ही बिंदु सफल हैं, इनका मूल्य बनता है, शून्यता के बिन्दु एक के बिना निष्फल हैं।

सभ करम फोकट जान।
सभ धरम निहफल मान॥
बिन एक नाम अधार।
सभ करम भरम बिचार॥५॥ (अकाल उसतत्)

श्री गुजरी माता जी आदि 'रुख गुर को लखि सदन अबाद', अर्थात् बड़ी माता जी तथा परिवार 'सदनाबाद रहे, अर्थात् घर पर ही रहे, फिर लिखा है–गमने प्रभु अशवारी छड़ी'। (गु: प्र: रुत ५ अंसू ३०)

गुर प्र: सू: कुरूक्षेत्र में डेरा करने के बारे में इस प्रकार लिखा है–'दक्खणदिश तीरथ की आए' पुन: 'एक अटारी अट्टण शाहू उतरे प्रभु जाइ तिस पाहू'। पश्चम दिश तीरथ की बाही। निस महि बास करत में तांही। गुरुद्वारा दशमेश जी का शहर से दक्षिण-पश्चिमी की ओर है और कुरूक्षेत्र तालाब से पश्चिम-उत्तर का है। शहर के भीतर भी दशम गुरू जी का एक गुरुद्वारा है। (तवारीख खालसा)

अत: मदन नाथ ने विचार करके कहा मैंने तो उनके समुदाय को अपने डेरे के पास से गुजरते समय दूर से सिर झुका दिया था। हमारे पूर्वजों ने उनके आदि गुरू के आगे सिर झुकाया था। अत: मैं परीक्षा के लिए नहीं अपितु दर्शन के लिए जाऊँगा। आप तो जन्म से ही महान सिद्ध हैं, अवतार हैं, सूरमा हैं और जनता की रक्षा के लिए तन, मन, धन न्योछावर कर रहे हैं।

पर फिर भी चंदन नाथ की प्रेरणा तथा हठ के कारण मदन नाथ चल पड़ा। सारे कनपाटे योगियों का समूह जो ग्रहण पर उपस्थित था तथा उनके मिलने वाले चेले सेवक जो इस समय वहाँ आये हुए थे, साथ चल दिये और गुरू जी के डेरे सीधे लंगर स्थान पर जाकर पंक्ति बनाकर बैठ गये। गुरू के घर का आदि गुरू जी से यही दस्तूर चला आ रहा है कि यदि लंगर में किसी भी मत तथा भेष (संप्रदाय) का कोई भी व्यक्ति आकर बैठ जाये, तो उसे प्रसन्न-चित्त भोजन दिए जाए, और किसी प्रकार का कोई पक्षपात न किया जाए। गुरू जी के सेवकों ने उन सबका स्वागत किया, सत्कार किया और हाथ धुलाकर भोजन परोसा और योगी भोजन खाने लगे। कहा जाता है कि योगियों ने अपनी योग कला द्वारा भोजन समाप्त करना शुरू कर दिया। दोनों बड़े नाथों के बरतनों में जो कुछ भी डाला जाता, वे भरते ही न थे। अत: भोजन बटता रहा और योगी औषधियों के बल से अथवा सिद्धियों के बल से भोजन समाप्त करते चले गये। जब रसोइयों ने देखा कि ये लोग, जो अभी-अभी भोजन के लिए आकर बैठे हैं, भूख तथा गणना की दृष्टि से इतने शक्तिशाली हैं कि भोजन अब समाप्त हो जायेगा, तो वे चिन्ता में पड़ गये कि गुरू का लंगर तो अटूट चलता आया है पिछली दस पीढ़ियों से और अब यह क्या गड़बड़ होने लगी है। यों सोचकर वे घबड़ाये। दो चार सिंह सलाह करके गुरू साहिब के पास पहुँचे और जाकर सब समाचार सुनाया। गुरू साहब सुनकर मुसकराये और कहने लगे, भाई खालसा जी! उदास मत होवो, गुरू नानक का लंगर अटूट है। योग अभ्यास करने का सबसे अवगुण यही है कि थोड़ी-सी एकाग्रता से सिद्धि आ जाती है।

अभ्यासी फिर उस सिद्धि का पीछा छोड़कर मुक्ति के मार्ग पर नहीं चलता वह इन सिद्धियों में ही फंस जाता है। पर सिद्धि के कारण लोगों में सम्मान होने लगता है। ज्यों-ज्यों लोग सम्मान करते हैं, त्यों-त्यों योगी का अभिमान बढ़ता है। सम्मान तो लोगों की ओर से बाहर से मिलता है और सम्मान प्राप्ति से अभिमान भीतर से प्रफुल्लित होता है। अभिमान तो अहंकार का ज्येष्ठ पुत्र है। अहंकार अहं का प्रकट स्वरूप है। अहं ने हमें प्रभु से पृथक कर दिया है और माया के मोह

तवा: खा:।

योग शास्त्र में सिद्धि औषधियों द्वारा प्राप्त की जानी भी मानी गई है।

में डाल दिया है। अहं जब प्रकट होकर सामने आता है तो 'मैं' तथा 'मेरी' का रूप धारण कर लेता है। 'मैं' तो अहं बनकर भीतर खड़ा हो जाता है और प्रभु से दूरी और बढ़ जाती है और दूसरी ओर 'मेरी' को बाहर की ओर शक्ति देकर चलाती है। 'मेरी' बाहर के संसार के साथ सम्बन्ध जोड़ती तथा अधिकार जमाती है। फिर यह वांछित के साथ मोह तथा अवांछित वस्तु के साथ द्वैष बढ़ाती है।

यदि वाँछित वस्तु प्राप्त होती चली जाये तो यह लोग 'लओलई अतृप्त माया'। यदि न मिले तो क्रोध। अवांछित वस्तु यदि मिल जाये तो खीज और वांछित वस्तु दूसरों को मिल जाये तो ईर्ष्या। इस तरह कर्मजाल फैलाया जाता है। इस कर्मजाल में फंसा हुआ व्यक्ति फिर मुक्ति के मार्ग पर नहीं चल सकता। जैसे कहा जाता है कि जल में जो तैराक नदी को तैरकर पार जा रहा हो, यदि उसे तेंदुआ ग्रस ले तो फिर वह अपने मार्ग पर चलकर पार नहीं जा सकता। अत: एक तो अहं बिछोड़ने वाली बात हुई और ऊपर से सिद्धियों द्वारा मिल गया मान। दोनों से बचने के लिये श्री गुरू नानक देव जी ने अपने सिखों को सिखाया कि सत्यनाम के स्मरण में सुरति का सदैव लगा रहना ही सबसे बड़ी सिद्धि तथा चमत्कार है। यह सत्यनाम का चमत्कार कर्मजाल से मुक्ति करवाता है। अन्य करामातें को भी प्रभु के नाम रूपी मुक्ति के मार्ग पर नहीं चलने देती, अच्छा न समझो श्री गुरू अमरदास जी ने कहा है:–

'रिधि सिधि सभ मोह है नामु न वसै मनि आए'। (वार: वड: म: ३)

और फिर कहा:–**सा सिधि सा करमाति है अचिंत करे जिस दाति॥**

फिर खालसा जी, देखिये। इन सिद्धियों करामातों को प्राप्त कर जो योगी फंस जाते हैं, उन्होंने कभी भी अत्याचारियों को अत्याचार से हटाने का काम नहीं किया। किसी भी सिद्ध ने महमूद के आक्रमणों को न रोका किसी ने भी औरंगजेब को सीधा नहीं किया। करामातों के प्रेमी सैदपुर संडियाली में शासक को तसल्ली दिलाते रहे कि 'उनकी सिद्धि बाबर की तोपों का मुंह बंद कर देगी, मुगल अंधे हो जायेंगे' पर उस समय किसी की सिद्धि अथवा करामात ने कोई सहायता न की। बाबर ने सैदपुर संडिया में नरसंहार किया और सैदपुर वाले बलवान होते तो उनके बल की करामात बाबर का मुँह मोड़ देती। अत: अत्याचारियों को सीधा करने के लिए करामात तलवार है, शास्त्र है। शस्त्र सिखों के हाथ से जुल्म का अन्त करने के लिये इसी कारण दिया गया है। अंतस में दिन रात प्रभु के सच्चे नाम की करामात चलती रहे और बाहर करामात चले प्रेम की और प्रेम के घातकों तथा पूजा के शत्रुओं के साथ चले करामात बाहुबल की, जो बाहुबल शुभ आचरण तथा बुद्धिमता के कंधों पर चले और केवल अच्छे उद्देश्य के लिये ही प्रयोग में लाई जाये।

कोई मुगलु न होआ अंधा किनै न परचा लाइआ।

इतने में लंगर से और खबर आई कि सच्चे पातशाह! सारा भोजन अब समाप्त होने वाला है और फिर इतनी जल्दी दाल की देगें तथा सब्जी भाजी और आटा रोटी तैयार नहीं हो सकेगी। चाहे देगें चढ़ा दी गई हैं और आटा गूँथा जा रहा है और (लंगर वर्तांने और तैयार होने के) बीच में अन्तर आ जायेगा। यह सुनकर सतगुरू जी ने प्यारे भाई दया सिंह जी को पुकार कर कहा। 'सिंह जी! लंगर में जाकर भोजन बांटो। योगियों की जमात बैठी है। सबके आगे एक-एक (प्रशादा) रोटी अपने हाथ से रखो'। कहो, 'धन्य साबह श्री गुरू नानक देव विश्व का भरण पोषण करने वाले वृक्षों से भोजन गिराने वाले धन्य साहब श्री गुरू अंगद देव जी!' जाओ और यह कहकर अतृप्त योगियों को तृप्त करो, जिनका शरीर के अंगों की हरकतों पर अधिकार है, जिन्हें संसार की दृष्टमान वस्तुओं पर अधिकार का घमण्ड है, जिनका मानसिक शक्तियों पर अधिकार है, पर जिनका मन की बागों पर, वासनाओं पर अधिकार कम है, जिनमें तृष्णा की अतृप्ति है, 'जाओ गुरू नानक की देन से उन्हें तृप्त करो'।

गुरू साहब की आज्ञा पाकर भाई दया सिंह जी, जो हठयोग, राजयोग तथा वेदांत के भली भाँति ज्ञाता थे और नाम की विद्या में पूरे सिद्ध थे, सिर झुकाकर और गुरू जी के चरणों में माथा लगाकर और थपकी लेकर चल दिये। लंगर में जाकर रोटियां उठाईं और स्वयं बाँटने लगे। रसोइये देख रहे थे कि अभी कमी आयेगी पर भाई दया सिंह जी ने क्या देखा कि साईं विश्वम्भर है, आजीविका देने वाला है।

जिनि जीउ दीआ सु रिजकु अंबरावै।
सम घट भीतरि हाटु चलावै। (सूही रवि: जी)

आप धन्य श्री गुरू नानक देव, धन्य श्री गुरू अंगद देव उचारते भोजन बांटने लग गये। आपने जिसके आगे एक रोटी रखी, उसने बाद में और नहीं मांगी वह अशांति जो खाने वाले अपनी सिद्धियों द्वारा दिखा रहे थे, दूर हो गई। यहां तक कि चंदन नाथ की अकड़ भी दूर हो गई। जिस तरह गुरू बाबा ने नाम की कला दान करके 'शबद सांति सिधां विच' बाँटी थी, उसी तरह भाई दया सिंह ने शारीरिक भूख की तृप्ति योगियों की सार जमात में बाँट दी। इस महापुरुष के हाथों एक-एक रोटी क्या बटी, मानो भूखों की भूख दूर करने वाली तृप्ति ही बट गई।

इस कला को देखकर चंदन नाथ ने सोचा कि जिस गुरू के एक सिख में इतनी शक्ति है, न जाने वह स्वयं कितनी ऋद्धि सिद्धि का स्वामी होगा। मुझे मदन नाथ ने पहले ही कहा था कि इनसे टक्कर लेना ठीक नहीं और अब जिद को छोड़कर उठें और दर्शन करके लाभ प्राप्त करें। यह सोचकर वह मदन नाथ से कहने लगा, 'सुनाइये नाथ जी! क्या इच्छा है?'

मदन नाथ--नाथ जी! हम (बाजी) जीत न सकेंगे। हमारी शक्तियां तो सरोवरों की भांति हैं और वह है आदि स्रोत का कारक, अवतार। वह तो समुद्र को मुट्ठी में लिये बैठा है। आखिर नाथ जी! साधन करके सिद्ध बने तथा आदि स्वरूप से पाए अवतार में अन्तर तो होना ही हुआ। हमारे पूर्वज श्री बाल गुंदाई जी कितने पूर्ण नाथ हो गुजरे हैं। पार्वती ने शिव के साथ शर्त लगाकर उन्हें डुलाना चाहा फिर भी वे न डोले। तब माता जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। इतना शक्तिशाली था बाल गुंदाई। हमने अपने बुज़र्गों से सुन रखा है कि बाल गुंदाई कटेले झाड़ झंकाड़ तथा शाक खाकर निर्वाह किया करता था और जो धन पदार्थ मिलता था वह सब बाँट दिया करता था।

श्री नानक देव जी जो उसने अपने सूक्ष्म अहं की बात बताई थी और मैं किसी उदासी के कारण नहीं, बल्कि गौरव से कहता हूँ हमारे उस पूर्वज ने श्री गुरू नानक देव जी के चरण चूमे थे और अपने अनुयायिओं को आज्ञा दी थी कि वे अपने साधन तथा कर्म करते हुये प्रभु नाम की टेक रखें। साधन तो शरीर साधने के लिये किये जाने हैं सिद्धियों के लिए नहीं और नाम स्मरण कल्याण के लिए है। उन्होंने कहा था कि जो भी मेरी गद्दी पर हो, वह ऐसा ही करे। जब ऐसा करने में आलस आ जायेगा तो माया छलेगी। अत: हम तो इस घर के श्रद्धालु हैं तुम्हें परीक्षा लेने का चाव था, सो वह पूरा करके देख ली। वह जो बाद में भोजन बाँटने के लिए आया था, वह समझ की दृष्टि से ज्ञातज्ञेय है और करनी में पूरा है, पर गुरू के आगे दासों की भाँति व्यवहार करता है। सतगुरू जी के साथ ऐसे-ऐसे महापुरुष योद्धा तथा सेवक हैं, इसीलिए तो शासक के साथ टक्कर लेकर निर्भय होकर चल रहा है। उस अवतार गुरू की शक्ति तथा इन करनी के शूरवीर सिखों की समस्त शक्ति अत्याचारी शासन को समाप्त करने में लग रही है। आईये, अब सज्जनता की भावना से चलें और दर्शन करें। तुम

गुरुवाणी में ऋद्धि सिद्धि को तुच्छ पढ़कर कई लोग जो सिद्धि की राह पर नहीं चले, यह सोचते हैं कि नाम अभ्यास में कोई शक्ति नहीं होती। जब नाम सिद्ध होता है तो सतगुरू जी ने लिखा है कि, 'रिध-सिध नावैं की दासी'।। पुन: 'अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरनि निज घरि वसै निज थाइ।।' (सिरीराग वार: म: ३)

तात्पर्य यह है कि नाम सिद्ध पुरुष में स्वाभाविक ही शक्ति उत्पन्न होती है, पर वह मुक्ति मार्ग पर चलने वाला इन शक्तियों की ओर ध्यान नहीं देता, क्योंकि वह जानता है कि ये वाहिगुरू जी से मिलाप के मार्ग में बाधायें हैं, यदि नाम के प्रेमी को सिद्धि स्फुरित होती है तो वह इसे परे हटा देता है और केवल एक वाहिगुरू के प्रेम में ही लगा रहता है और उसी की आज्ञा में चलता है।

बाल गुंदाई की श्री गुरू नानक देव जी से भेंट के समाचार श्री गुरू नानक चमत्कार उत्तरार्द्ध प्रसंग ८४ में पढ़िये।

उनसे मिलकर अवश्य ही संतुष्ट होओगे कि जो कुछ श्री बाल गुंदाई जी ने देखा था वह सब कुछ सत्य था।

यों वार्तालाप करते हुए नाथ ने 'अलख' जुगाई और सारी जमात ने भोजन से हाथ हटा लिये और हाथ धोकर उठ खड़ी हुई।

: २ :

ग्रहण लगने पर लोग दान करते हैं। इसका मतलब यह होता है कि दान के बल द्वारा सूरज अथवा न्चाँद, जिसे भी ग्रहण लगा है, उसका कल्याण हो। पौराणिक लोगों का यह विचार था कि चाँद तथा सूरज को राहू केतु नामक राक्षस पकड़ लेते हैं और ग्रहण के समय सृष्टि की ओर से दान आदि कर्मों से वे निर्बल होकर उन्हें छोड़ देते हैं। इस भ्रम से छुड़ाने के लिये अनहोनीकारी सतगुरू जी ने एक अकृत्य रचा उसी तरह जैसे श्री गुरू नानक देव जी ने किसी ऐसे ही समय कुरूक्षेत्र में अनहोनी रचकर जीवों का उद्धार किया था। आज आप जी ने भी एक खेल रचाया। एक गधा मंगवाया और उस पर नया साज डालकर उसे सजाया और कुछ सोने चाँदी के गहने भी लटका दिये और आज्ञा दी कि ग्रहण में हमें इसको दान में देना है और कोई ब्राह्मण आकर दान ले ले। यह अनोखी तथा प्रचलित विश्वास के विरुद्ध तथा हंसी मज़ाक भरी बात मेले में आये सभी लोगों में फैल गई।

गधे के गले में गहने की बात सुनकर अनेक ब्राह्मणों का मन ललचाने लगा पर फिर सोचने लगते कि एक तो ग्रहण का दान और दूसरा वह भी गधा। सोच सोचकर चाह-चाह कर रह जाते। दूसरी ओर हजारों लोग उस सजे हुये गधे को देखने के लिए कि वह कैसा गधा है और यह देखने कि उसे कौन लेता है, इकट्ठा होने लगे। जगत उद्धारक के लिए यह अवसर था इकट्ठा हो रहे लोगों को सत्यनाम का उपदेश देने तथा भ्रमों में फंसे हुओं को वाहिगुरू के मार्ग पर चलाने का। इस समय सतगुरू जी ने सृष्टि के लिये, जो भ्रमों में फंसकर भटक रही थी एक अकाल पुरुष का ज्ञान प्रतिपादित किया। उसकी प्राप्ति ही को मनुष्य जन्म का प्रयोजन बताया। उसकी प्राप्ति का साधन उसकी प्रेमा-भक्ति बना प्रेमा-भक्ति की प्राप्ति उसके नाम स्मरण से सिखाई। नाम स्मरण में श्रद्धा तथा चाव उत्पादन करने का साधन गुरुवाणी का पाठ, विचार तथा कीर्तन बताया। गुरुवाणी द्वारा बताई गई आज्ञा में चलने तथा गुरुवाणी द्वारा प्रतिपादित मर्यादा को धारण करने में मन के मैल को बाधक बताया और इसे हटाने का पहला उपाय सेवा बताया। साथ यह भी सिखलाया कि परमेश्वर की बंदगी में लगकर संसार से नाता तोड़ लेना जरूरी नहीं है। ऐसा करने से बुद्धि को संकल्प विकल्प के सामने विजय प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता। मुकाबला किये बिना शक्ति प्राप्त नहीं होती।

बिना शक्ति प्राप्त किये (ध्यान) पांच महाबलियों (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार) पर नियंत्रण नहीं रख सकती। इसीलिए 'विचे ग्रिह सदा रहे उदासी जिउं कमलु रहै विचि पाणी हे', के मार्ग पर चलिये। वनों में भागकर चले जाने की दूसरी त्रुटि यह है कि जब अच्छे लोग उदासी बनकर वनों में चले जाते हैं तो पीछे भाईचारे में निकम्मे लोग रह जाते हैं, इन्हें भी त्याग ही अच्छा है, ये त्याग तो कर नहीं सकते। पर त्याग के सम्बन्ध में सोचते-सोचते शिथिल तथा बलहीन हो जाते हैं। फिर देश में अज्ञान-सा छा जाता है, आपसी सहयोग नहीं रहता, विदेशी-अत्याचारी आकर राज्य छीनकर प्रजा को दुख देते हैं, जैसा कि अरबों के आक्रमण के समय सिंध क्षेत्र के किसी राजा की बात किया करते हैं कि किले की कुंजीयां लड़ाई किये बिना आक्रमणकारी यवन को दे दीं, यह कहकर कि उसका धर्म युद्ध करना नहीं सिखलाता। इस प्रकार देश का पतन इस दशा तक पहुँच गया है, जिसके कारण घर-घर में शोर है। अतः मुक्ति मार्ग तथा श्रेय मार्ग यह है कि अनेक देवों को छोड़कर एक परमात्मा की पूजा करो, प्रेम तथा केवल प्रेम को ही उससे मिलने का साधन बनाओ तथा प्रेम प्राप्ति के लिए नाम का स्मरण करो। जीवन को पवित्र करो, आचरण को ऊँचा रखो, शिक्षा ग्रहण करो और भाईचारे में साधु जीवन वाले बनकर निवास करो और भाईयों को संवारो। जीवन को बलिदान वाला बनाओ, यह सेवा है, सेवा ही अहं को काटती है। बलिदान इस प्रकार न किया जाये कि तन को हिमालय में जाकर गलाया जाये और धन पदार्थ फैंक दिया जाए। तन के त्याग को सेवा में सफल करो। इस समय शस्त्र विद्या प्राप्त करके देश के शत्रुओं के बल को तोड़ो और इस यत्न में यदि शरीर भी न्योछावर करना पड़े, तो न्योछावर कर दीजिए। धन को भी इसी काम पर लगाईये। इसका प्रयोग लालच के लिये नहीं, बल्कि केवल अत्याचार से प्रजा की रक्षा के लिये कीजिये।

इस प्रकार के उच्च उपदेश से जिसका वर्णन करना कठिन है। उस ईश्वरीय कंठ ने उस प्रभु वाले मस्तिष्क ने हजारों जीवों का कल्याण किया, पर गधे वाला कुकृत्य अभी खड़ा ही था। किसी ने भी साहस बटोरकर आगे आकर दान न माँगा। मनी राम नामक एक ब्राह्मण ने यह सोचा कि गाय क्या और गधा क्या, धन क्या और न धन क्या, ग्रहण क्या तथा पुत्रेष्ठि यज्ञ क्या, जिस समय और जब जगत रक्षक अवतार के हाथों से जो कुछ मिले उसमें ही कल्याण है। दान भारी है अथवा हल्का, दान किस वस्तु का है और किसका नहीं, वह शास्त्र विहित है अथवा नहीं का विचार उस समय किया जाता है जिस समय दान करने वाला राजा हो अथवा साधारण गृहस्थ हो। जिसको दान देकर अपने ग्रह टालने होते हैं और अपने कर्मों के बोझ ब्राह्मण को देने हैं। जब दाता स्वयं ही स्वामी, और प्रभु के रंग में राता भक्ति का अवतार, तब दान में उसकी प्रसन्नता उसकी रुचि एवं उसका चाव (उत्साह) प्राप्त होता है।

उसकी खुशी तथा चाव में जीव का कल्याण है। इसलिए यदि मैं दान ले लूँ तो मेरा ही भला होगा। मेरे मन में गधे के गले में पड़े गहनों का लोभ नहीं, मेरे अन्दर तो दाता का प्रेम है। यदि वह अपने मनमौज में दान देता है, तो वह उसमें अपना चाव देगा और मेरा उद्धार हो जायेगा। दूसरी ओर सोच आई कि ब्राह्मण मेरा तिरस्कार करेंगे। संभाव है कि वे मुझे भाईचारे में से भी निकाल दें, पर हो जो कुछ होना है, इतना कष्ट तो सहन करना ही चाहिये। यदि मुझे श्रेय प्राप्त करने के लिए लोक लाज को तोड़ने के कारण भले ही दुख झेलना पड़े यह भी एक तप के तुल्य ही होगा। ऐसा न हो कि इस समय यह अवसर हाथ से निकल जाये। ब्राह्मण मस्तिष्क ने इस प्रकार की सभी बातों पर विचार किया और फिर हाथ जोड़कर गुरू जी के आगे आकर खड़ा हुआ:–"पातशाह! मैं हूं गधे के दान का अधिकारी इसको संकल्प करके मुझे दे दीजिए।" गुरू जी जानते थे कि दान लेने से इसे भाईचारे की ओर से कष्ट होगा। अत: आपने समझाया, पर मनी राम ने हठ करके वह दान ले ही लिया। दाता जी ने वह दान देकर उसके साथ खुशी प्रदान की, नाम का दान दिया, ताकि उसका कल्याण हो और इसके साथ एक कृपाण अपनी स्मृति के रूप में प्रदान की।

: ३ :

एक बार आंखें बंद कर लीजिए, मन के द्वार बंद कर लीजिए, स्मृति का नूर भीतर में प्रकाशित कर लीजिए, प्यार का संगीत जारी कर दीजिये, इस तरह भक्ति भाव से भरी मन की अनमना अवस्था में कहिये: धन्य गुरू गोबिंद सिह जी, इहलोक तथा परलोक के साहब, तीन लोक के स्वामी। हाँ, मन में इस भाव से भरे उत्साह के साथ नयन खोल दीजिये तो नयनों में रस रंग की झड़ी लगेगी। अब देखिए इस दृष्टमान संसार में खिल रही प्रकृति को और चारों ओर कल्गी वाले के छा रहे प्रभाव का अनुभव कीजिये और फिर कहिये साहब गुरू गोबिन्द सिंह धन्य, तू धन्य तू! हां जी–

'सो अंतरि सो बाहरि अनंत।
घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत।।'

उस भगवंत के भगवंत रूप गोबिन्द रूप, गुरू गोबिंद सिंह के प्रेम का प्रभाव छा रहा है अन्दर तथा बाहर, हां जी कहिये धन्य साहब श्री गुरू गोबिंद सिंह।

कुरूक्षेत्र में साहब जी की सभा लग रही है और उसमें खालसा, प्रेमियों का ठाट बंध रहा है। योगियों की जमात आ गई, चंद नाथ, मदन नाथ आदि अगुआओं सहित, उसी तरह जिस तरह योगी प्रत्येक सतगुरू जी से भेंट करने के लिये आते

तवारीख खालसा में एक हुकमनामा तथा कटार प्रदान करने की बावत लिखा हुआ है।
वहि प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप वरियाम इकेला।
गुरू नानक देव गोबिंद रूप।

रहे थे, आये और आदेश पाकर बैठ गये। चंदन नाथ शक्ति देख चुका था, वह शक्ति जिसे योगी मनाते हैं कि 'यदि हो तो सत्यपुरुष मानेंगे,' तथा वह शक्ति जिसके लिये मुसलमान तथा ईसाई कहते हैं कि हो तो पैगंबर माना जाता है। पर यहां सतगुरू जी के दरबार में एक अन्य शक्ति है, जिसे सत्यनाम कह कर पुकारा जाता हे, वह निशानी है सत्यपुरुष की, योगी की, अवतार की, जितनी अधिक, उतना महान। हाँ जी, अंतरात्मा में निरन्तर लौ, अखंड वृत्ति का प्रवाह प्रभु प्रेम में चलता रहे, जिसे कोई विक्षेप तोड़ न सके। यह है करमात अजमात, सम्मान बड़ाई, सिद्धि, विभूति, मुक्ति, योग प्राप्ति। इसी को 'नाम' तथा 'सत्यनाम' तथा 'लौ' कहा जाता है। इसी लौ में आत्मा का परमात्मा से मिलाप होकर वृत्ति में उस मिलाप का निरंतर लगाव यदि यह अंतरात्मा न हो तो काहे की सिद्धि और काहे की करामात, फिर तो 'लिव धुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु बरताइआ।' इस लौ टूटी-दशा में जो कुछ करना है वह तृष्णा की दशा में करना है और माया के आदेश अधीन करना है, चाहे वह करामात है, सिद्धि है, चाहे वह कुछ और है। हां, जी! योगी उस अपनी जानी पहचानी 'सिद्धि' की कला को गुरू जी में पाकर और देखकर सत्कार सहित बैठ गये। पर मान तो बड़ी दूर तक साथ रहता है। अत: अपने मान में टिककर चंदन नाथ ने प्रश्न किये सबसे पहले ब्रह्म विद्या से संबंधित। जिनके उपर में सतगुरू जी ने अपने सिद्धांत बताये कि केवल विभूति रचा कर अथवा आत्मिक शक्तियों को जगाकर—यदि तृष्णा न छूटे, लौ न लगे तो—सारा खेल माया के मंडल में ही होता है। यदि कोई इससे ऊंचा उठे मुक्ति मार्ग पर चल पड़े और कैवल्य में पहुँचे और स्वत्व अपने आप में स्थिर हो जाये तो सफलता मिल गई पर साथ ही इस बात की भी आवश्यकता रही कि यह स्वत्व परम (स्वत्व) से कैसे मिले। क्योंकि 'परम आपा' सदैव मुक्त है और जीव का आया तो योग मार्ग अनुसार प्रयत्न द्वारा बंधन में से निकलता है, अत: पता चला कि यह सदैव मुक्त नहीं, यत्नों द्वारा ही बंधन टूटते हैं और फिर कैवल्य होता है। अत: इसके सदैव मुक्त होने के लिये इसका 'परम आपा' के साथ, जो सदैव मुक्त है, मिल जाना आवश्यक है। अत: गुरू बाबा ने फरमाया है कि योगियों को चाहिए कि इस जीव तत्व को परम तत्त्व के साथ मिलायें, तो कहीं पूर्ण मुक्ति प्राप्त होगी। इस प्रकार सच्चे शाह की ओर से विद्या के जवाहरात सविस्तार दर्शाए गये। फिर शस्त्र विद्या पर विचार चले। चंदन नाथ तीरंदाज़ था, उसे शस्त्र विद्या की परीक्षा भी करनी थी। जब इस विषय पर भी विचार हो चुका तो योगी को शस्त्र परीक्षा की बात का ध्यान आया। गुरू जी के पास बहुत से कड़े धनुष पड़े थे, जिन्हें देखकर कोई भी व्यक्ति

योगी स्वत्व को 'पुरुष' तथा 'परम स्वत्व' को 'पुरुष विशेष' कहते हैं और पुरुष विशेष की विशेष भक्ति बताते हैं, जो स्वत्व का फल कैवल्य होना बताते हैं। इसीलिए गुरू जी ने आपा (स्वत्व) और परम-आपा अर्थात् जीवतत्व और परमतत्व पदों का प्रयोग कर अपने सिद्धांत की बात बताई।

यह नहीं सोच सकता था कि कभी कोई इन्सान इनसे तीर चला सकेगा। जब इन धनुषों ने योगियों की नज़र खींची तो गुरू साहिब पर प्रश्न किया गया कि 'क्या ये धनुष सजावट के लिये हैं अथवा चल भी सकते हैं?' गुरू साहिब मुसकराये और कहने लगे, 'ये सजावट के लिए नहीं हैं, ये काम में लाये जाने वाले शस्त्र हैं और इन्हें प्रयोग में लाया जाता है।' फिर इच्छा प्रकट हुई कि इन्हें चलाकर दिखाया जाये। यह सुनकर मीरी पीरी के सरदार (शिरोमणि) ने धनुष उठाया और चिल्ले पर तीर टिकाया और तानकर उसे छोड़ा। भीरू शब्द निकलता हुआ तीर उड़ चला। एक कोस की दूरी पर एक तुर्क की गढ़ी थी, उसके शिखर से पार हो गया। योगी देखकर चक़ित हो गये। चंदन नाथ को अपनी सारी विद्या भूल गई। लिखा है कि इस समय और कई राणे राजपूत भी बैठे थे। चंदन नाथ तथा राणों ने ज़ोर लगा-लगाकर तीर चलाये, पर जितनी दूरी पर सतगुरू जी के तीर गये थे, उतने किसी अन्य व्यक्ति के न पहुँच सके। इस समय सब ने आपको युगयुगान्तरों के सबसे बड़े तीरंदाज़ माना और कई लोग तीरंदाज़ी के इस कमाल की सिखलाई प्राप्त करने के लिये गुरू जी के आगे प्रसाद रखकर उनके साथ आनन्दपुर चल दिये।

मदन नाथ जी प्रत्येक पहलू के सारे क्रिया-कलाप देख रहे थे। वे गुरू जी में इतना कमाल देखकर चकित हो रहे थे। शूरवीरता के बारे में सुनकर उनका विचार था कि आत्मक सिद्धि गुरू नानक देव जी से कम होगी, पर उनकी आत्मिक सत्यता तथा वीर रस दोनों में दक्षता देखकर उससे रहा न गया। अपने वेष (पहरावे) को समस्त लज्जा का त्याग करके वह आगे बढ़ा और गुरू साहिब के चरण पकड़ लिये। गुरू जी आनन्दपूर्वक मुसकराये और कहा—नाथ जी! आप अतीत हैं, गृहस्थियों के चरण क्यों पकड़ते हैं? मदन नाथ ने अपने बुजुर्ग बाल गुंदाई की भांति ही नम्र होकर कहा: 'आप पूर्ण पुरुष हैं, गृहस्थ और संन्यास से ऊंचे हैं, धुर (आदि स्रोत) से आये हैं। आप सभी धर्मों की रक्षा करेंगें, जनता को बचायेंगे और आपका मत सभी मतों का प्रतिपालन करेगा।

गुरू जी—हमारा पहरावा तो प्रत्यक्ष योद्धाओं जैसा है। (कहकर मुसकरा दिये)।

योगी—सत्य है। पर आपका चोला (पहनना ओढ़ना) सिंह का है और आपका कर्तव्य संतों वाला है। क्या पातशाह! मैं ठीक हूँ?

गुरू जी—नाथ जी! इस समय देश में तुर्कों का बहुत ज़ोर है और वे जुल्म कर रहे हैं। आठ गुरूओं ने सालिसी, प्यार करके तथा कष्ट सहन करके सुलह की बात सिखाई। ज़ालिम अब जोरों पर है। अत: अब लगता है कि जुल्म बिना

करके अपना सिद्धांत स्पष्ट किया है। तवा: खा:

इस समय हुआ वार्तालाप बड़े कठिन टप्पों (ठेकों) में है। आसानी के लिए हमने उसका स्पष्ट भाव यहां दिया है। जैसे योगी का यह वाक्य है। 'बुरका शेर दा करनी सिद्ध की'। (सौ साखी)

बल के टूट नहीं सकता। सारे बलवान बलहीन हो रहे हैं, इस लिए यदि सिद्ध पुरुष ही शेर का जामा पहने तब ही वे जुल्म को अपने बाहुबल से तोड़ सकते हैं।

नाथ—आपने सत्य कहा है। तुर्कों के अत्याचार की कथा घर-घर में हो रही है। आपका मनोरथ शुभ है। प्रभु आपको आपके कार्य में सहायता करें और आपकी भावना प्रभु के द्वार पर स्वीकार हो। हे गुरू नानक के घर के फकीर! आपकी रहनी (आचरण) पूर्ण सिद्ध पुरुष की सी है और आपका बाहर का वेष शेर वाला है वह इसलिए है कि आपको मज़लूमों (पीड़ितों) की रक्षा करने का कार्य करना है, आप अपने इस उद्देश्य में अवश्य ही सफल होंगे। जिसके दिल में नेकी है उसके चेहरे पर सौंदर्य होता है, वैसे ही जिसकी करनी में नेकी होती है उसमें शक्ति होती है, उसका ख्याल (विचार) कमाल (सिद्धि की सफलता) तक पहुँच जाता है।

इस प्रकार वार्तालाप करके योगी भी प्रसन्न हुआ और सतगुरू जी भी उस पर रीझे। फिर योगी ने विनती की—पातशाह! कुछ योगी की सहायता की आवश्यकता है। आपका पंथ बलवान होगा, योगियों की रक्षा कीजिये, जिससे आपसे हमारी भेंट सफल हो। तात्पर्य यह था कि खालसा बलवान होकर उनकी अवश्य ही सहायता करे।

यह सुनकर सतगुरू ने कहा—नाथ जी! मेरा खालसा न्याय पर चलेगा, भले साधुओं, संतों की रक्षा करेगा, दीनों का नाथ होगा। आप चिंता न कीजिये। चाहे मेरे सिख केशधारी हैं और आपके अनुयायी केश रहित हैं, पर मेरा खालसा बलवान बनकर दोनों की रक्षा करेगा।

योगी—आपकी अनुकंपा है।

बिद्या धनु जिह होइ कमाई।
कोइ न कर सक है समताई॥३५॥

तुरक गुफतार दंड बिना वस नहीं (सौः साखी) पुनः तुरक गुफतार अधिक जगमाही, दंड बिना वस होइ सु नाही। (सूः प्रः)

कहि जोगी, चरचासुचवाह। हुइ कबूल सिद्धी पतिशाह। २. रहिणी सिद्ध नानक के फकीरा खेरज भेख काज दसतगीर। जिउं दिल नेका होइ जवाल। करणी कुदरति करे ख्यिाल॥३०॥ अर्थ—खेरज—बाह्य वेष। काज दसतगीरी—सहायता के काम के लिए। जवाल—जमाल, सौंदर्य। कुदरत—ताकत। अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ है:—जबकि आपके मन में नेकी है तो तुर्कों का पतन होगा, क्योंकि आपकी करनी प्रकृति के ख्याल के अनुसार है, अर्थात् कुदरत जुल्म का विनाश करती है।

फरका अमुंड द्वै फरकस! खालसा वली सुकसे तरकस, अर्थात् मेरा समुदाय (अमुंड—) मूंडता नहीं, केशधारी है। पर खालसा बली होकर दोनों के (फरकस—) सिरों पर रक्षक बने रहने के लिए तीर पकड़ेगा। इस वाक्य के कई दूसरे अर्थ भी निकाले जा सकते हैं, पर यही भाव सही लगता है।

त्रैते मैं रघुबर की सुनी।
दुआपर महि अरजुन की गुनी।
मोहि भइओ अबिद्रिढ़ निशचासु।
हुइ तुम हाथ तुरक गन नाश।।३६।। (सू० प्र०)

गुरू जी–तुम भले पुरुषों के भले विचार सफल हों। योगी जी! बाबा गुरू नानक देव जी की आज्ञा जो बाल गुंदाई जी को मिली थी, उसे कदाचित नहीं भुलाना।

नाथ–सत्य, सत्य, सत्य वचन जी, पातशाह! जब कभी पंजाब आओ तो बाल गुंदाई के आसन पर दर्शन देने का कष्ट करें। श्री गुरू नानक देव जी के ठहरने वाला स्थान देखिये, हमें कृत कृत्य कीजिये, हमारी फकीरी की लाज रखिये।

गुरू जी–वाहिगुरू सर्व समर्थ की आज्ञा हमारे लिये उधर जाने की नहीं है। हमारा पंथ (सिख समुदाय) पहुंचेगा तेरहवीं शताब्दी में तुर्कों के अत्याचार का नाश करेगा, खालसा सब की रक्षा करेगा। आपके संप्रदाय की भी सहायता करेगा। हम यहां से गोदावरी पहुँचकर लीला रचेंगे।

इस तरह के वार्तालाप के बाद मदन नाथ ने अपने कल्याण तथा अपनी सहायता का वरदान ले लिया और चंदन नाथ ने अपने गर्व के रोग को दूर करके स्वास्थ्य प्राप्त किया और विदाई ली।

: ४ :

इस प्रकार के अंवाचित घटनायें घटित होती रहीं। सिख समुदाय गदगद होता रहा। अनेक लोगों के संशय भ्रम आदि दूर हुये, अनेक लोगों के हृदय में सिख भावना जगी। इस समय रामदत्त नामक एक व्यक्ति सब कुछ सुनता और देखता रहा था। इसके नयन क़टोरों ने ईश्वरीय ज्योति का शर्बत-ए-दीदार (दर्शन रूपी शीतल मीठा जल) पिया और इसकी कान रूपी कटोरियों ने ईश्वरीय नाम के अमृत वाक्य रस को भर-भर पिया। इसका मन इस बात पर पूर्ण निश्चय से टिक गया कि इसका कल्याण गुरू साहिब द्वारा हो सकता है। अतः इसने न तो कोई प्रश्न किया और न ही कुछ और पूछा। सब कुछ सुनता, समझता रहा, अपने भीतर झांकता रहा और इसकी यह चाह थी कि याचना किये बिना इसका कल्याण हो।

इस रामदत्त को किंगरी वाला रामदत्त कहा जाता है। यह जाति से ब्राह्मण था और इसे जो कुछ भी स्वाभाविक रूप से मिल जाता, उसी से अपना गुज़ारा चला लेता। इस समय यह प्रेम मगन अरदास (प्रार्थना) में लीन बैठा था। सतगुरू जी ने देखा, समझे और हंसकर बोले–'ब्राह्मण! कुछ मांग ले।'

रामदत्त–पातशाह! इस समय भिखारी ब्राह्मण, अनुकंपा द्वारा मांग रहित बना बैठा है। जो कुछ भी मागूंगा वह मांगने वाले सहित ही स्थिर नहीं रहेगा। कृपा करके वह कुछ दीजिये कि पूर्ण रूप से मांगने से मुक्त हो जाऊं।

गुरू जी–फिर वही कुछ मांग ले जो तुझे मांग–मुक्त कर दे।

राम दत्त–पातशाह! मेरी बांह को थाम लीजिये। इस कीट ब्राह्मण की, इस द्वार के सदैव भिखारी की बांह थाम लीजिये।

'कर पकरो नहीं छोरहु मेरा।।' (सू॰ प्र॰)

हां पकड़िये साहिब जी, मैं भारी हूँ, इस तरह से पकड़िये कि फिर मेरा हाथ आपके कर कमलों में से न छूटे। दीना नाथ! मेरा बहाव नीचे की ओर है, मेरा बोझ मुझे रसातल की ओर खींच चला जा रहा है, आप मुझे सहारा दीजिये और मुझे मेरे अपने बोझ के कारण गिरते जा रहे को गिरने न दीजिये। मेरी बांह पकड़ लीजिये और सच्चे पातशाह! मुझे ऊपर को उठा लीजिये। 'मेरा कर पकरो हां मेरा कर पकरो।'

मौज के स्वामी रीझे, कहने लगे–'हां राम दत्त! तेरे परिवार सहित तेरी बांह हमने पकड़ ली है। तुझे परिवार सहित वहां से चलेंगे, जहां पर महान् सुख है। यह कहकर बोले 'राम दत्त! अब तुझे कभी भी मांगने की ज़रूरत नहीं होगी, यह ले कटार हमारी निशानी, यह ले घोड़ा तथा मोहरें। तेरा सदन भरपूर, मांगने का झंझट खत्म।'

आप यह कहकर उठे और राम दत्त की बांह पकड़ ली, अपनी कलाई में ले ली और ताल के किनारे-किनारे धीरे-धीरे टहलते हुये चल दिये। हां, राम दत्त के साथ आध्यात्मिक वार्तालाप करते तथा अनुकंपा की वर्षा करते जा रहे हैं। राम दत्त कृत कृत्य हो रहा है। मुंह मांगा वरदान प्राप्त करके मस्त हो रहा है। जी! मन को एकाग्र करो, नैन मूंदो, ख्याल को एकाग्र करो, देखो! यह मूर्ति ताल के किनारे-किनारे चढ़ते सूरज की टुकड़ी की भांति दमकती चली जा रही है और चांद की टुकड़ी को बांह में लिये, उस पर अनुकंपा करती, नूर बरसाती, दमकाती साथ-साथ लिये जा रही है। देखो तथा कहो–

तार कलगी वालिआ संसार ताईं तार लै।
विच इक मैंनू बी निआसरे नू तार लै।
पार कलगी वालिआ तू मैंनू कर पार लै।
उबार सुहणे दातिआ! इस कीर नूं उबार लै।

श्री गुरू कहयो सहित परवारा ।। तहां बुलाइये अहि सुख भारा।। (सू॰ प्र॰)

: ५ :

'चोजी मेरे गोविंदा चोज़ी मेरे पिआरिआ।
हरि प्रभ मेरा चोज़ी जीउ।।'

दाता जी टहल रहे हैं राम दत्त की बांह में बांह डाले हुये। एक ओर अपने वाहिगुरू के निरंतर मिलाप में रह मग्न, दूसरी ओर जिसका उद्धार किया है उसकी ओर से आ रहे प्रेम हिलोरों से तारक विरद (श्लाघा) द्वारा रस मग्न। चांद सूरज के प्रकाश से चमक रहा है, पर यहां सूरज चांद से उलट कर आ रहे प्रकाश का रस भी ले रहा है। रस मग्न ही बैठ गये हैं तीर्थ के वातावरण में। देखिये कहां तो यह रस मगनता के आत्मिक रंग लग रहे हैं और कहां घोड़ों का एक व्यापारी आ गया और उसने आगे बढ़कर कहा—हजूर जी की खिदमत मे दुआ सलाम। वाहिगुरू जी का खालसा वाहिगुरू जी की फतह। हे खुदावंद! मैं कुछ घोड़े लाया हूं। इनमें एक अनोखा नग है। सोचा था कि तीर्थ पर आये राजे राणे खरीदेंगे, पर अभी तक तो किसी ने नहीं लिया। मेहर हो जाये, आप नज़र डालें, यदि मन माने तो मेरा घर भरा जायेगा और मैं सुखी हो जाऊंगा।

यह सुनकर आपने उस रस मग्नता से नेत्र उठाकर देखा। भीतर की सभी शक्तियों पर हुक्म रखने वाले, अंतर्मुख बाहरमुख से ऊंचे और सब पर नियंत्रण रखने वाले गुरू जी कहने लगे, 'जाओ ले जाओ।' आजा पाकर व्यापारी चला गया। गुरू जी फिर अपने उसी रस में मग्न हो गये। जब घोड़े आ गये तो गुरू जी उठे, शांत सरोवर को अपने मन के भीतर किसी बिंदू पर टिकाकर बीर बांके, सूरमा उठे, अनोखे घोड़े को देखा, थपकी दी, बाग पकड़ी और कूदकर सवार हो गये, एड़ी लगाई और देखते-देखते हवा हो गये। घोड़े को कदम चाल, दुड़की, मोर चाल तथा चक्कर दिलाकर देखा, छलांगें लगवाईं, डराने वाली वस्तुओं के पास से गुज़ारा और उसे हर प्रकार से ठीक पाया। फिर उसे चलाकर वापस लौटे। इसी तरह तीन अन्य घोड़ों की परख की, उन्हें खरीदकर व्यापारी को मालामाल कर दिया।

उधर घोड़ों का व्यापार होता रहा, इधर जिस ठिकाने पर आप बैठे थे, वहाँ सभा लगी रही। खरीद से मुक्त होकर सुन्दर सुलतान, फकीरी के पातशाह तथा शान्ति रस के देवता सभा में आ विराजे। सारा दिन वहां ही टिके रहे, सारा दिन जिज्ञासुओं का उद्धार करते रहे।

वाह, वाह, एक हाथ में अर्थ और दूसरे में परमार्थ है और फिर अर्थ—परमार्थ दोनों परमार्थ होकर संपूर्ण हो रहे हैं।

संभव है कि मेले पर अपने अस्तबल के लिए घोड़े खरीदने का आपका एक प्रयोजन भी हो। तव: खा: में लिखा है कि इस समय कई घोड़े खरीद लिये गये।

: ६ :

जब अर्थ तथा परमार्थ दोनों हो गये तो साहिब जी कुरुक्षेत्र वापस चल दिये। पहले कुरुक्षेत्र आये और उस स्थान पर आकर टिके जिसे ज्योतिसर कहा जाता है। कहा जाता है कि यहां तीसरे गुरू जी भी आकर ठहरे थे। सबसे प्राचीन सिख स्थान थानेसर में सिद्धवटी है जो दक्षिण की ओर तालाब के पास है। इस स्थान पर श्री गुरू नानक देव जी के ग्रहण के अवसर पर इकट्ठे हो रहे लोगों को उपदेश दिया था। 'मासु मासु करि मूरख झगड़े' वाली वाणी इस स्थान पर उच्चारण की थी। इसी तरह तीसरे गुरू, छटे और नवें गुरू जी के गुरुद्वारे भी यहां हैं और इस यात्रा की स्मृति में दशम् गुरू जी के गुरुद्वारे भी हैं। सभी स्थानों की यात्रा करके श्री गुरू जी चार-पांच कोस उत्तर-पश्चिम की ज्योतिसर जा ठहरे थे। ज्योतिसर के बाद में यह कहा जाता है कि यहां अर्जुन को गीता का उपदेश प्राप्त हुआ था। एक दिन यहां डेरा करने के बाद आपने पहोये जा डेरा लगाया। यहां पर श्री गुरू जी के ठहरने के निशान भी हैं। जिस स्थान पर तीन गुरू साहिब ठहरे थे, सातवें, नवें तथा दसवें सतगुरू जी, सुना है कि वह स्थान ढह रहा है, पर बावड़ी आदि दूसरे खंडहरों के चिन्ह अभी मौजूद हैं। ज़रूरत है इस स्थान को संभालने की दशम गुरू जी का दूसरा गुरुद्वारा सरस्वती नदी के किनारे पर है। यहां पर पण्डे दर्शन करने के लिये आये थे। सतगुरू जी ने उन्हें उनके धर्म के प्रति सचेत-जाग्रत किया और समझाया कि केवल दान के लिये अपने आप को भिखारी बना लेना ब्राह्मण के लिये शोभा जनक नहीं। तुम नाम जपो, दान लो, केवल गुजारे के लिये पर दान का लोभ मत करो। उस में से भी दसवां भाग भले काम में लगाओ। स्वयं प्रभु का स्मरण करो और दूसरों को ऐसा करने का उपदेश दो। इस तरह उनमें धर्म को दृढ़ करवाकर सच्चे पातशाह वहां से चल दिये और फिर करह (कराह) नामक गांव जा पहुंचे। यहां सत्यनाम का उपदेश दृढ़ करवाकर आप धड़ाम से होकर सिआणें नामक गांव में आ ठहरे। लिखा है कि झंडा बाढ़ी की सन्तान यहां निवास करती थी। उन्होंने सतगुरू जी की बहुत आव भगत की। यहां गुरू जी के ठहरने के समय बहुत प्रचार हुआ, बहुत से प्रेमियों ने अमृत छका और पूर्ण सिख बने।

: ७ :

सिआणा गांव में जहां पर कि बहुत प्रचार हुआ, गुरू जी कुछ समय ठहरने के बाद आगे को चल दिये। इसके बाद आवलखेड़ी नामक एक गांव आया। यहां एक वृद्ध माई निवास करती थी जो समय से भजन कर रही थी और मन में सतगुरू जी के दर्शन की लालसा रखे हुये थी। हां, माई प्रतिदिन प्रार्थना करती थी कि उसे

अनेक निर्मले, उदासी संत तथा निहंग सिंह तथा विरक्त साधु हैं, उसमें से यदि कोई यहां पर डेरा लगाने और गुरू के स्थान को आबाद कर ले तो जीवन सफल हो जाये। गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी संभाल ले तो अपना कर्त्तव्य निभाने की शोभा पाये।

सुन्दर सुलतान गुरू जी के दर्शन प्राप्त हो। आज अंतस का आकर्षण माई को घर से खींच लाया, प्रेम प्रवेधी खड़ी हुई ग्राम की सीमा छोड़ सड़क के किनारे प्रभु का स्मरण कर रही है और सतगुरू जी की प्रतीक्षा कर रही है।

आप भी माई की भांति नयन मूंद लीजिये, रसना पर बिठा लीजिये वाहिगुरू का नाम मन में से निकाल दीजिये संकल्पनायें, वृत्ति के प्रवाह को एकत्र करके प्रेम की धारा में डाल दीजिये। इस प्रकार मन में लालसा भरकर अपने सच्चे पातशाह अपने त्राणकर्ता की प्रतीक्षा में प्रेम पूरित हो जाईये और कहिये–

'धन्य साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह।'

....

माई प्रेम में पिरोई हुई खड़ी है, मग्न है लौ में, इतने में घोड़े की टाप की आवाज़ सुनाई दी–कोई अकेला घोड़ा आ रहा है। हां आ रहा है, गई बीती को उबारने वाला दाता अकेला। प्रेमी पीछे रह गये हैं। माई के एकाग्र मन को आकर्षण हुआ, नैन खोलने लगी, पर भीतर से विवेक ने कहा, इसी स्वाद में टिकी रह, घोड़े को देखकर क्या लेगी? पर किसी अन्य भीतरी बुद्धि तथा ऊंची आवाज़ ने प्रेम मंडल में से कहा; खोल दे नयन जो रस अंतर्मुख होकर लिया है वह बाहरमुख होकर भी ले। माई के नयन खुल गये, क्या देखती है कि आ रहे हैं। मन ने नयनों को टिका दिया। टिके नयनों ने पहिचान कर ली। अब घोड़ा भी, जो पास आ गया था, खड़ा हो गया। शाबाश! बावली हो रही माई ने घोड़े की बाग पकड़ ली। सहिब रुक गये, घोड़े पर से उतरे। माई ने सिर झुकाया, चरणों को चूमा। बलाएं ली, न्योछावर हुई। धन्य आशाओं को पूरा करने वाले तेरी शोभा खड़ाई श्लाघा। दाता जी ने सिर पर हाथ रखा और कहा 'वाहिगुरू'।

माई धन्य हो गई, नाम रस रोम-रोम में समा गया। भक्तवत्सल जी बैठ गये एक वृक्ष के मुड़े हुए तने पर जो कुदरती तौर प आसन-सा बन रहा था। माई दर्शन मगन बांग को पकड़कर बैठ गई। नीला घोड़ा गुरू के सिखों की आन में बंधा प्यार मग्न खड़ा है। हाँ, कहो धन्य साहिब भक्तवत्सल सतगुरू। इस अदेशी रंग में लगभग एक पहर का समय व्यतीत हो गया। पीछे आ रहे सिंहों ने नीले घोड़े की खोज की और खोज करते-करते वहां पहुंचे जहां भक्त तथा भक्तवत्सल की मूर्ति सज रही थी। हां सारे उस मोहन मूर्ति के उस समय के दर्शन पर न्योछावर हो गये।

उधर परमात्मा के रस में मग्न, उधर भक्त को दे रहे हैं अंतर आत्मदान, दोनों ओर जुड़ रहे स्वामी ने नयन खोले। खालसा गण पहुंच गया। सतगुरू जी ने देखा, देखकर प्रसन्न हुये और प्यार से कहने लगे, हां आओ खालसा जी! आओ चलें।

तवारीख गुरू खालसा।

वृद्धा–हे कृपा करने वाले दाता जी! कृपा करो, इस रास्ते में से बिना कुछ खाये पिये न चले जाओ। कुछ खाकर, कुछ रसना से लगाकर जाओ।

दाता जी–माई तेरा जो कुछ जी करे, वही ला। पर अब तैयार न कर, जो कुछ पहले से तैयार है, वही ले आ।

माई–पातशाह तैयार तो केवल दूध है।

दाता जी–माईयां दूध देने वालियों, दूध ले आ। हां प्रेम सहित अंदर बाहर से सच्ची तथा उच्च माई तेज कदमों से घर आई। घर में दूध बहुत था, माई मटकी उठवा लाई, मीठा साथ लाई, कटोरे तथा पंखे भी लाई। गरम-गरम दूध कटोरों में डालकर ठंडा किया और कटोरा आगे किया। अपने नयन गुरू जी के चेहरे पर टिकाये। धन्य माई तू। नामदेव पत्थर की मूर्ति के आगे दूध रखकर 'पीओ जी' कहकर बड़े प्रेम सहित प्रार्थना कर रहा था, तू जीवित जागृत आप अवतार मनुष्य की शरीर धारण करके आये मनमौजी ठाकुर के आगे दूध का कटोरा रखकर कह रही है, 'पीओ जी! मेरे उद्धारकर्ता, दाता जी! पीओ!' हां, तेरे नाम स्मरण से भरे हाथों में से उठा लिया कटोरा सृष्टि के दाता ने और पी लिया, हां जितनी इच्छा थी, उतना पी लिया। तू धन्य हो गई, अपनी ओर से छोटा-सा सत्कार करके। माई! दाता को दूध का कटोरा देकर तू धन्य हो गई। माली मालिक के बाग में से एक फूल मालिक के आगे रखकर कृत कृत्य हो जाता है।

गांव में खबर हो गई कि बाहिर साहिब कल्गी वाले आ विराजे हैं। वृद्धा दूध लेकर गई है, आप खेतों में रुके खड़े हैं और दूध की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह बात सुनकर कौन था जो गांव में रुक जाता। गुरू के सिखों ने समझा कि दाता को इस समय दूध की आवश्यकता है। किसी को क्या पता था कि किस जन्म की भक्ति भाव वाले प्रेमी को दूध पिलाने की आवश्यकता है, जिसका आदर करने के लिए दाता दूध की प्रतीक्षा कर रहा है। प्रेमीजन आ पहुंचे, दूध के मटके भरकर आ गये, शक्कर आ गई, खांड तथा बूरा आ गया और पंखे झुलाये जाने लगे, दूध के कटोरों के ऊपर दूध को ठंडा करने के लिए। दाता जी देखकर हंसे, वाह वाह, सिख धन्य सिखो। एक प्रेमी दूध का कटोरा देता है, मेरा सारा खालसा दूध की नदियां बहा देता है। सदैव जीवित रहो, खालसा, सदैव दान करके जीवित रहो, सदैव नाम में जीवित रहो, स्नान में जीवित रहो। हां जी फिर हो गया संकेत प्रेम का आदर देने का खालसों ने घोड़ों से उतरकर, दूध पिया,

प्रसन्न हुये। दाता ने वरदान दिया–यह गांव दूध, घी तथा भक्ति से भरा रहे। माई तेरा कल्याण हो।

दाता जी अनुकंपा बरसाकर फिर सवार हुये, नीले घोड़े को एड़ी लगाई और आगामी लीला करने के लिये 'आनंदपुर कलौड़' होते हुये चमकौर की ओर चल दिये।

माई खड़ी है, प्रेमी खड़े हैं। इन सबके नयन जा रहे दाता जी पर गड़े हैं। आज तुम भी माई की भांति खड़े हो जाओ और सतनाम वाहिगुरू कहकर अपनी रसना को पवित्र कर लो और मन की पावनता प्राप्त कर लो उसे नाम के साथ जोड़कर अधिक समय नहीं तो एक क्षण के लिए ही सही। बाहिर के संकल्पों को बाहिर ही रोक दो। मन मे प्यारे के लिये प्यार का संकल्प भर लो, देखो नयन के सामने हैं साहिब श्री गुरू गोबिंद सिंह, करो दर्शन और कहो, मेरे गुरू, मेरे अपने गुरू।

एक क्षण के लिये ही कर लो, यह प्यार का व्यापार, सज्जन जी! न जाने यह एक क्षण ही सौभाग्यपूर्ण हो जाये–

न जाने वह एक क्षण वह क्षण बन जाये जिसके बारे में स्वयं उसी कलगी़ वाले दोनों लोकों के स्वामी का कथन है:–

एक चित जिह इक छिन धिआइओ।
काल फास के बीच न आइओ।

ठुमरी–**'कलगी वालिया जीओ। त्रुठीओ-त्रुठीओ (तुष्ट होवो) जीओ।**
जिद ग्रसी आके बिरहो (विरह) ने मेरी, इको ही ओट मैं निमाणी नूं तेरी।
वांग (भांति) मेघां दे अरशां तो त्रुठीओ (बरसना) जी।'

❑ ❑

तवा: खा: में लिखा है कि इस गांव में प्रेम भक्ति तथा दूध घी बहुत होता है।
त: ख: में लिखा है कि मुक्ति का दान केवल माई को प्राप्त हुआ। सू: प्र: में लिखा है कि सतगुरू जी ने कहा कि माई का एक पुनर्जन्म और होगा, फिर इसके यहां एक सिद्ध पुरुष का जन्म होगा जिसे 'जन्म-जाति' कहा जायेगा। तात्पर्य यह है कि वह जन्म से ही बंदगी वाला होगा और परमेश्वर का प्रेमी बनेगा, इस भाग्यशाली मां को भक्त पुत्र की मां बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा और फिर इसकी सद्गति होगी।

६४ सैदाबेग शरणागत

: १ :

गुरू साहब आवल खेड़ा से चलकर, कई स्थानों पर ठहरते जगत का उद्धार करते हुए चमकौर पहुंचे। कुछ अनुयायी आगे पहुंचकर तंबू तथा डेरे की व्यवस्था कर चुके थे, जिनमें गुरू साहब ने आकर डेरा लगा लिया। कुछ सिंह पीछे थे जो शनैः शनैः आ रहे थे। आस-पास तथा दूर निकट समाचार फैल गया कि गुरू साहिब कुरूक्षेत्र से वापिस आकर चमकौर टिक गये हैं।

अमृत वेला हो गई, सभा स्थान के बड़े शामियाने के नीचे कीर्तन शुरू हो गया। साथ के सिंह योद्धा तथा सैनिक सभा में आ उपस्थित हुये, चमकौर के प्रेमी सिंह भी आ गये और आस-पास के गांवों के सिख भी आ पहुँचे। काफी लोग इकट्ठे हो गये और रसमय कीर्तन की झड़ी लग गई। सतगुरू जी ने भी आकर दर्शन दिये और दिन चढ़े तथा ध्यान मग्न बैठे रहे। सभा की समाप्ति हो गई, प्रसाद बंट गया, आगत सिखों की प्रार्थानाएं एवं दर्शन मिलाप सम्पन्न हुए। यों रंग लगा मानो सतगुरू जी सदा से चमकौर में ही रहते थे। दूरवर्ती इलाकों के प्रेमी जो आ रहे थे, वे भी सतगुरू जी का चमकौर में विश्राम का समाचार सुनकर यहां आकर मिले। पश्चिम के इलाके के, पेशावर, जलालाबाद, काबुल, कंधार, गज़नी के प्रेमी तथा बलख बुखारा तक के प्रेमी, जो आनन्दपुर जा रहे थे, यहां पर ही आ मिले। यहां इतनी चहल पहल हो गई कि कोई पारावार न रहा। सतगुरू जी सभा में बैठे चांद की भांति प्रकाश देते और आस-पास प्रेमियों ने मानो चन्द्र-परवार डाल दिया, वचन-विलास, प्रश्न उत्तर, उपदेश, कीर्तन आदि से रौनक लग गई।

एक दिन सतगुरू जी किसी मौज में बैठे थे कि पश्चिम दिशा से आये प्रेमियों के मुखिया ने उनकी और से प्रार्थना की, "दाता गुरू जी। बड़े भाग्यों से आप श्री जी के दर्शन प्राप्त हुए हैं, प्रेमियों की प्रार्थना है कि उन्हें कुछ दान मिले।" तब सतगुरू जी ने कहा, "ठहरो। धन देंगे, मरवायेंगे।" यह वाक्य सुनकर सिख सहम गये और हक्के बक्के रह गये कि यह क्या हुआ, मांगा था वरदान और मिल गया है अभिशाप। कुछ समय तक मूकता छाई रही, दाता जी भी चुप बैठे रहे। फिर एक समझदार मुखिया सिख ने हाथ जोड़कर विनती की-पातशाह! प्रेम धारण करके आपके दर्शन करने के लिए दूर-दूर के इलाकों से उपस्थित हुये हैं, आपकी कृपा

यह प्रसंग गुरुपर्व पौष मास शुक्ल पक्ष सप्तमी (१६ जनवरी १९८०), माघ ३, सं० गुरू नानक शाही ४७१ तदानुसार वि० सं० (१९६९) दिन मंगलवार को ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित हुआ था।
सौ साखी।

से आपके सफल दर्शन प्राप्त हुए हैं, विनती है कि प्रेमियों पर अपनी प्रसन्नता रखो, जीवन की खुशी प्रदान करो और घर बार, धन्धों, काम-काज में बढ़ोतरी प्रदान करो।" यह सुनकर आप मुस्काराये और कहने लगे–

"भाई प्रेमियों! विचार करो, भला यदि खेती को प्रफुल्लित करने के लिए बादल प्रसन्नता से वर्षा बरसाये तो आगे से खेती उस पानी को स्वीकार न करे तो बादल का उपकार क्या कर सकता है? यदि मेघ स्वांतिबूंदें बरसाये और आगे से पपीहा मुंह बंद कर ले तो मेघ का हित क्या करे? भला चंदन तो सुगन्धि दे रहा हो और आगे से बांस बलशाली, समझदार बनकर कहे कि मैंने यह सुगन्धि अपने में नहीं बसने देनी, तो सोच लीजिए कि चंदन की ओर से कृपा कैसे नहीं हुई? यदि कोई व्यक्ति गंगा स्नान करने में सुस्ती करे तो गंगा जल का मैल दूर करने का गुण क्या करे? इसी तरह गुरू क्या करे यदि सिख ही इस संसार के झंझटों में फंसा रहे। गुरू तो मुक्तिदान प्रदान करता है, सब से ऊंचा दान करता है, पर धन्धों में ग्रसे सिख लेते ही नहीं। सोचिये; एक मां अपने पुत्र के लिए खांड लेकर खड़ी है, आगे से पुत्र कहता है, नहीं माँ, मैंने तो रेत ही लेनी है। यदि कोई मालिक घड़ा तथा रस्सी लेकर कुएं के किनारे पर खड़ा रहे तो क्या तुम यह कहोगे कि कुआं पानी नहीं पिला रहा और विचार कीजिए, एक बच्चे को पीड़ा हो रही है, माता-पिता उससे पूछते हैं कि बता बेटा! तेरे को कहां पीड़ा हो रही है और बालक इसका उत्तर ही न दे तो इसमें माता-पिता का क्या दोष कि वे उसकी पीड़ा को दूर नहीं कर रहे। एक और तरीके से सोचिये, रेत की दीवार खड़ी की, पर वह ढरकती जाती है, अब बताइये के इसमें दीवार बनाने वाले का दोष है अथवा रेत का। यदि घर में पानी एकत्र करना हो तो घर में मटकी की आवश्यकता होती है, यदि घड़ा ही नहीं तो पानी को कैसे एकत्रित किया जा सकता है। धन द्वारा बड़ाई तथा सुख मिल सकता है, पर यदि कोई उसे मिट्टी में दबाकर रख दे तो धन क्या सुख और क्या बड़ाई देगा? यदि कोई भट्ठी में ईंधन डालता चला जाये तो भट्ठी ठण्डी कैसे होगी? अतः हे सिखो! सुनो। यदि सिख अपने परिवारों सहित सांसारिक धन्धों में फंसे रहें तो गुरू क्या करे? यदि अपने खेत में इमारती लकड़ी पैदा नहीं की जा सकी तो बढ़ई क्या करेगा? नदी का जल कैसे पिया जाए यदि कोई अन्जली न भरे अथवा मटकी भरकर न ले आये। भला हे सिखो! यदि घर में आग नहीं होती तो भोजन कैसे पकेगा? हठ से हित करने से क्या बनेगा, यदि समय पर बुद्धि में विचार नहीं आता। बुद्धि के बिना कोरा हठ क्या कर सकता है? यदि मन ही कुंभकार का चक्कर बना रहा तो क्या बरतन बनाये जायेंगे? मुंह से तो एक दूसरे की नकल करके कहा जा सकता है, पर बात तब बनती है यदि मन में भी वैसे ही चिंतन

करें। केवल देखादेखी से क्या बनता है? अतः लो हे प्रेमियों! सोच लो, पहले तुम ने मांग मांगी और गुरू हित से देने के लिए तैयार हो गया और देने का वायदा भी कर दिया, पर मांगने वालों के कर्मों ने ही उनके मुंह पर थप्पड़ मारा और मुंह सफेद हो गये। हां, मैं उस सिख को बार-बार बलिहारी जिसे मौत याद है।

ये वचन सुनकर सिख चकित हुये और कुछ घबड़ाये भी। सोच रहे थे कि अब मुंह से कौन से वाक्य कहें कि इतने में श्री गुरू जी स्वयं बोल उठे और कहने लगे, प्रिय जनों! तुमने मांग मांगी थी और इच्छा की थी गुरू के घर से कोई बखशिस (देन) मिले। गुरू के घर में सबसे बढ़िया तथा बड़ी बखशिस है मन का टिकाव, जिसमें नाम का निवास होता है, जिसका फल मुक्ति रूप धन होता है और जिस मुक्ति के मिलने से जन्म मरण समाप्त हो जाता है। अतः हमने कह दिया था कि यही बखशिस प्रदान की। पर तुमने समझा नहीं, क्योंकि तुम्हारे मनों के रुख

यह वार्तालाप सत्गुरू जी ने किन वाक्यों में किया था? किन्तु सूरज प्रकाश के लेखक ने उसे जिस तरह लिखा है, वह यों हैं :

बरसे बादल खुशी कर जल लेई न खेत।
चात्रिक चुपका होई रहयो क्या हो बादल हेत।
चंदन पर उपकार हित बांस रहे सुचेत।
गंगा पायां दूर हित क्या न्हाई अचेत।
गुरू बिचारा क्या करे सिख फसिआ एत।
मीठा देवै बाल नूं औह मांगै रेत।
घड़ा लज हथ खसम दे का कूप न देत।
बाप माइ हित क्या करै सुत देत न भेत।
लीपन हारे दोष क्या भीत गिरदी रेत।
अटका जल तां बंधीए जा बंध निकेत।
धन वडिआई देई किस खर धूड़ी लेत।
भाड़ बिचारा सीत किउं जां झुलका देत।
फंदे अटके सिख सुण परवार समेत।
कारीगर खाती क्या करे काषट नहीं खेत।
नदी बार किउं पीवीए कुणीआ न लेत।
खाणा की कूं पक्कणा जे अंग न निकेत।
बिना समे ते बुधि नहीं किया हठ का हेत।
मन ही चक्र कुमार का घड़ भांडे देति।
मुंह का आखड़ रीस है फिर मन ही चेत।
पहिला मंगै संगती गुर देणम हेत।
करअ कड़ाका हाथ का मुंह मारै हेत।
हउं बार बार बलि हारने जिह मार मन नेत।

(गुः प्रः सूः रूत ५ अंक ३०)

अभी तक सांसारिक कार्यों की ओर अधिक हैं। हमने कहा था, "ठहरो"। यह थी पहली बखशिस। इसका तात्पर्य यह था कि तुम नाम द्वारा टिक जाओ, तुम्हारा मन टिकाव को धारण करे, एकाग्र हो। दूसरी बखशिस थी कि "धन देंगे"। अतः हमको "मुक्ति पदार्थ" धन देना था। तीसरी बखशिस कही थी कि मरवायेंगे। इसका मतलब यह था कि अहं को मारकर जन्म-मरण समाप्त कर देंगे। पर तुमने इसे बखशिस न समझा और हमारा क्रोध समझा। फिर तुमने मांग की घरों के धंधों की तथा जीवन की प्रसन्नता की। अतः तुम्हारे साधनों में अभी कुछ और परिश्रम की आवश्यकता है। अभी सभी कर्म दग्ध नहीं हुए। नाम में लगे रहो। यह गुरू नानक का घर है, यहां सदैव बखशिस मिलती है, सांसारिक पदार्थ गुरू ने प्रदान कर रखे हैं, मुक्ति पदार्थ गुरू लेकर खड़ा है। नाम में लगे रहो, नाम को कदाचित नहीं छोड़ना। दूसरे, सतगुरू जी ने तुम्हें हरि कीर्तन का उद्यम प्रदान कर रखा है, इसे कभी मत छोड़ना। निष्ठापूर्वक नाम का जाप करते रहो। सिदक (निष्ठा) उद्धार करता है, अधीर नहीं होना। थोड़ी देर है। कार्य अवश्य पूरा होगा। सावधान रहो, सचेत रहो और लगे रहो, तुम्हें पता चल जायेगा कि सबसे अमूल्य पदार्थ कल्याण है। सतगुरू जी द्वारा इस तरह प्यार तथा बखशिस पूर्ण वचनों को सुनकर सिख समूह प्रसन्न हो गया और सारे मन में अफसोस करने लगे कि उन्होंने सतगुरू जी के बखशिस वाले वाक्य को पलटकर घर के धन्धे तथा सांसारिक खुशी की मांग की और दाता सतगुरू जी हमें सदगति तथा कल्याण प्रदान कर रहे थे, जिसके रहस्य को हमने न समझा। कहा जाता है कि फकीर इंगित करता है, पर रहस्य नहीं बताता। पर धन्य यह संपूर्ण सतगुरू है कि इशारा भी करता है और रहस्य भी खोलकर रख देता है। यदि बात को उलटाओ तो क्रोधित भी नहीं होता, बल्कि प्यार करता है और सीधे मार्ग पर चलाता है।

इस प्रकार चमकौर में कई दिनों तक रौनक लगी रही। आनन्दपुर से भी कुछ प्रेमी आ गये और सिंहों की कुछ सेना भी आ गई। सत्संग लगते रहे। दोनों समय कीर्तन आनन्द उपदेश देकर जगत के उद्धार का कार्य चलता रहा।

: २ :

अब पहाड़ी राजे कुछ मन से और कुछ ऊपर-ऊपर से मेल मिलाप रखने लगे थे, भीतर में द्वेष अब भी था। जब श्री सतगुरू जी कुरूक्षेत्र जा रहे थे, तब बिलासपुर का राजा एक दाव के बारे विचार कर रहा था। वह सोच रहा था कि गुरू जी के

नाम रिदै अंम्रितु मुखि नामु। [गउ: म: १]

हरि कीरतन का आहरो हरि देहु नानक के मीत (गू: वा: म: ५)

जिनकै मनि साचा बिस्वासु।। पेखि पेखि सुआमी की शोभा आनंद सदा उलास।।

[धनासरी महला ५]

प्रभ की उसतति करहु संत मीत सावधान एकागर चीत।। [गउ: सुखमनी म: ५]

साथ केवल पचास साठ सवार हैं, अधिक से अधिक एक सौ हो जायेंगे। अत: उन्हें अचानक मरवा देने का यह बढ़िआ अवसर है। पर यह विचार सिरे नहीं चढ़ सका, क्योंकि राजधानी बिलासपुर से यह जगह काफी दूर थी। जब भी गुरू जी वापिस लौट रहे थे तो उसे सूचना मिली कि लाहौर से कुछ तुर्की सेना दिल्ली को जा रही है, जिसमें दो सरदार हैं: बड़े का नाम अलफ खां है और छोटे का नाम सैदा बेग है। इनके साथ काफी सिपाही हैं। यदि ये रास्ते में जाते हुए गुरू जी को अपने घेरे में ले लें तो गुरू जी को गिरफ्तार करके बड़ी आसानी से दिल्ली ले जाया सकता है। इससे पातशाह, जो सदैव इसी ताक में रहता है, प्रसन्न हो जायेगा। इधर हमारी रियासत में से झगड़ा दूर हो जायेगा। लोगों के लिए यह बहाना बन जायेगा कि गुरू के खालसे रास्ते में जाते-जाते तुर्कों के साथ उलझ पड़े अत: उन्होंने इन्हें अपनी लपेट में ले लिया। किसी को वास्तविक बात का पता नहीं चलेगा। हम पर तो सन्देह होगा ही नहीं। इस तरह कहलूर नरेश ने हंडूर नरेश आदि एक दो अपने जैसे विचारों वालों से भी इस बात पर गुप्त रूप से विचार किया। एक विशेष राशि इस कार्य के लिए निश्चित कर दी गई और दूत भेज दिए गए। गुरू साहिब इस समय तक चमकौर पहुँच चुके थे, पर राजाओं को भी सूचना मिल गई थी कि गुरू जी चमकौर ठहिर गये हैं। अत: यों अब तुर्क उमरावों ने थोड़े ही रास्ते का चक्कर काटकर चमकौर पहुंच जाना था। यदि माछींवाड़े के घाट से वे पार हो गए, तो चमकौर एक ही झटके के धावे में पहुँच जायेंगे। यों गुरू जी को अचेत ही पकड़ लिया जायेगा। दूसरी ओर दूत पहुंच चुके थे, उमरावों के साथ बातचीत हो गई थी, इन्हें सफर तो दिल्ली का करना ही था, थोड़े से रास्ते का ही चक्कर काटना था। अत: धन के लालच तथा हज़रत (बादशाह) की प्रसन्तता प्राप्त करने के विचारों ने दोनों को मरोड़ लिया। वे नदी पार करके चमकौर की ओर पूर्व की दिशा चल पड़े।

बड़े आदमी, अथवा राजा, अब मंत्रणा करते हैं तो वे समझते हैं कि बात पूरी तरह गुप्त रहेगी, पर बातें गुप्त बहुत ही कम ही रहती हैं। राजाओं का यह रहस्य भी किसी ने किसी तरह उड़ती हुई हवाई गर्द की भांति निकल चला और अफवाह, अनिश्चित अफवाह–के रूप में आनंदपुर पहुँच गया। आनंदपुर वाले गुरू जी के सेनापति ने विचार किया गुरू जी पूरी तरह सुरक्षित हैं, पर यदि कुछ सेना चमकौर पहुँच जाये तो कोई हर्ज नहीं। यदि अफवाह वायु का झोंका है तो वाह-वाह और यदि यह सच्ची है तो भेजी जाने वाली फौज काम आएगी। अत: उसने चार पांच सौ जवान चमकौर भेज दिये और साथ अफवाह की खबर भी भेज दी। यह कुमक (सहायता) गुरू साहिब के पास ठीक समय पर पहुँची।

हजरत के संग सदा बखेरा।। खुशी होइ सुनि कै तिस बेरा।। [गुः प्रः सूः]।
तवारीख खालसा।

क्योंकि थोड़े ही समय के पश्चात् नीचे से एक सिख आ पहुंचा और उसने आकर बताया कि 'पातशाह! तुर्कों का एक दल, मैंने गिनती तो नहीं की, मगर अनुमान है कि तीन चार हजार के लगभग होगा, इधर को आ रहा है और मुझे पता चला है कि वह आप पर अचानक आक्रमण करके आपको पराजित करने के बुरे इरादे से आ रहा है। आप बेखबर बैठे हैं। सतगुरू जी मुसकराये और कहने लगे–शाबाश सिख! तुने अच्छा किया जो समय पर आकर सूचना दे दी। तुर्क दल कितनी दूरी पर होगा? सिख ने उत्तर दिश, पातशाह वे तो समझो कि पहुँचने ही वाले हैं। मैं तो अपनी आंखों से देखकर आया हूं, वे आ रहे हैं, मैं घोड़े को सरपट दौड़ाकर पहले आ पहुंचा हूं। सतगुरू जी ने उसी समय सभा समाप्त की और अपने साथ आई पहली सेना को तैयार हो जाने का आदेश दे दिया। नई आई सेना भी तैयार हो गई। इस सेना में खबर तो थी पर इतनी जल्दी तथा पक्की बात नहीं हुई थी। पर जल्दी तैयार होने का आदेश सुनकर सारी सेना तैयार हो गई।

रणजीत नगारा बजने लगा। सिख सेना जितनी भी थी, सारी तैयार हो गई। युद्ध के लिए सेना का सब विभाजन झटपट कर लिया गया। खालसे के मनों में युद्ध की उमंग भरी रहती थी। मुकाबला होने पर चिन्ता करने की जगह मन में उल्लास भरकर मुकाबला करते और वीर रस की मानों बाढ़ सी आ जाती। अतः शत्रुदल को, चाहे वह कितना भी अधिक था, उसे मार लेने का उत्साह मन में भरकर खालसा डट गया। दल तो चाहता था कि पास जाकर आक्रमण किया जाये, पर गुरू जी चाहते थे कि पहले कोई ज्यादती वे कर लें, तब उनका मुंह तोड़ा जाये। शत्रु दल नगाड़े बजाकर नहीं आ रहा था, चुपचाप आ रहा था, पर खालसा दल एक सुन्दर मैदान में खड़ा था, पूरी तरह तैयार। अन्त में धूल दिखाई दी। रोब डालने के लिये तुर्कों ने पहले गोलियों की बौछाड़ की। आगे से खालसे ने भी जवाब में तड़ातड़ गोलियां बरसाईं। अब दोनों ओर से मारू बजने लगा। गुरू जी स्वयं ऊंची ढलान पर, युद्ध का रंग देखने तथा आवश्यकता पड़ने पर तीरों का निशाना लगाने के लिए, जा बैठे। किन्तु पहले आप केवल युद्ध होता देखने और आदेश देने में ही लगे रहे। क्षणों में ही युद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया। राजाओं से मिले संदेश के आधार पर अलफखां का जो विचार बना था, वह यह था कि गुरू जी के पास सेना नहीं है और उन्हें मार लेने में कोई कठिनाई नहीं होगी। पचास, सौ सिपाही तथा शेष संगीतज्ञों की टोली क्या मुकाबला कर सकती है, पर यहां उसे काफी शस्त्रों से लैस सेना दिखाई दी। तब उसने समझा कि यह कार्य आसान नहीं है। पर वह बहादुर तथा योद्धा था, साहस बटोरकर तीर और गोलियों की वर्षा करने लगा। इधर से भी वर्षा होने लगी। कुछ समय तक इस तरह निश्चित युद्ध होता रहा। खालसाओं में उत्साह था आक्रमण करके टूट पड़ने का, अतः पास जाकर तलवार खींचकर हाथों-हाथ युद्ध होने लगा, उनकी बंदूकें और तीर धरे के धरे ही रह गये। इस समय

सतगुरू जी एक दस्ते के साथ सरदार सैदाबेग की ओर बढ़े। इतने भारी और बढ़कर आ गये तुर्क दल पर खालसा दल का टूट पड़ना और फिर गुरूजी का भी बीच में आ जाना सैदाबेग के लिये अश अश (धन्य, धन्य) किये जाने का कारण बना। इतने में साहिब उसकी दृष्टि में, और पास आ गये। आपका दर्शन करके उसका मन आकर्षित हो गया। उसके मन में अगम्य कोई ऐसा आकर्षण हुआ कि उसका चित्त आपका दामन पकड़कर शरण लेने की इच्छा करने लगा। कुछ समय तक सोचता रहा और लड़ाई से ढीला पड़ता गया और फिर गोली चलाने अथवा तीर चलाने का आदेश देने से भी रुक गया। अंत में अपनी सेना के जवानों को आदेश दिया कि वार करना बन्द करो और मेरे पीछे चले आओ। रणभूमि के एक ओर का अर्द्धगोलाकार चक्कर देकर गुरू जी के दल में आ मिला और घोड़े पर से उतरकर गुरू जी के चरणों को हाथ लगाया और कहने लगा:–मैं आपका मुरीद शिष्य बन गया हूं, अब यदि आज्ञा हो तो आपकी ओर से शत्रुओं के साथ युद्ध करूं। सतगुरू जी मुस्कराये और कहने लगे, सैदाबेग! जैसे तुम्हारा उत्साह है, वैसे ही करो। सैदाबेग ने कहा, हमारी ओर से आप पर आक्रमण करना अन्याय तथा अत्याचार था। व्यर्थ ही हम लालच में आकर आप पर टूट पड़े। अब मैंने अपने इस पाप को आपकी सहायता करके धोना है। यों कहकर अलफ खां की सेना पर टूट पड़ा और उसकी अपनी सेना, जो उसकी बहुत कद्र करती थी, उसके द्वारा हुकम सुनते ही शत्रु दल पर टूट पड़ी। लिखा है कि इसके साथ लगभग दो सौ जवान थे, जो इसके कहने पर साथ आये थे, वे बहुत ही बलवान थे। ये बहुत ही जोश से सिखों से भी आगे बढ़कर तुर्कों के दल पर जा पड़े। इस दल द्वारा की जा रही काट बाढ़ तथा खालसे की दिलेरी, जो अब और बढ़ गई थी, अलफ खां को दोहरी मार कर गई। एक तो उसका दिल टूट गया था कि उसका साथी केवल साथ ही नहीं छोड़ गया, बल्कि शत्रु का साथ दे रहा है। दूसरा गुरू जी का दल आगे बढ़ गया है और उसका कद कम हो गया है। इसकी सेना का साहस भी साथियों के चले जाने के कारण टूट रहा था अतः उसने सुरक्षित ढंग से वार को रोकते हुए पैर पीछे हटाये, पर यह दाब अब सुखदाई नहीं हो सकता था। ज्यों-ज्यों इसका पैर पीछे पड़ता, त्यों-त्यों सैदाबेग और जोश में आता जाता था और खालसा भी टूट-टूटकर पड़ता था। अतः अलफ खां के दाव पेच तथा युद्ध कौशल धरे रह गये और उसकी सेना के जमे पैर हिल गये और उसकी सेना भाग उठी। बढ़े हुए दिल वाले दोनों दलों ने और आक्रमण कर दिया। फिर क्या था, ये उन्हें तीन चार कोस तक पीछा करके भगाते चले गये। तीस चार कोस तक इसी तरह की मार चली। गुरू जी भाग जाने वालों के पीछे आवश्यकता से अधिक जाने के लिये रोका करते थे। अतः आपकी ओर से वापस लौटने की आज्ञा पहुँच रही थी। बहलोलपुर के पास जो लगभग तीन चार कोस की दूरी पर होगा, इस तरह पीछे रहने तथा भगाने वाली लड़ाई होती चली गई, जहां

से सैदाबेग तथा खालसा जी वापस लौटे। उधर अलफ खां बड़ी मुश्किल से जान बचाकर तथा टूटी फूटी रही सेना को साथ लेकर सुख की सांस लेने लगा।

: ४ :

जहां पर गुरू जी शुरू में खड़े होकर युद्ध के आदेश दे रहे थे, वहीं पर अब खड़े थे। खालसा वापस लौटा, पर खालसा जी के आगे सैदाबेग था, पास आकर घोड़े से उतरा और गुरू साहिब के चरणों पर अपना सिर रख दिया। सतगुरू जी ने आशीर्वाद दिया और पहले की जान पहचान का परिचय करवाया। तब उसको भी पता चल गया और चरणों से लिपट गया अब सैदाबेग इतना प्रेमी बन गया कि उसने युद्ध में से बच गये अपने साथी विदा कर दिए। जो धन पदार्थ अपने पास था, उन्हें दे दिया और कहा जाओ! अब मैं तुम्हारी सरदारी नहीं कर सकता, मुझे अल्ला ने अब अन्य काम करने को दे दिया है। उसके साथी चले गये और वह गुरू जी के पास रहने लगा। भजन बंदगी करने लगा और वीर रस के करतबों में सिंहों की सहायता करने का काम उसने संभाल लिया।

यह सैदाबेग बड़े युद्ध में गुरू जी की सेनाओं की ओर से लड़ता हुआ शहीद हुआ था। बड़े युद्ध में एक सैद खान का जिक्र आता है पर वह एक अन्य शूरवीर था। सैदाबेग तथा सैद खां दो शूरवीर युद्धों में गुरू के सिख बने थे।

बची खुची तुर्क सेना पहले ही अलफ खां के साथ जा चुकी थी। सैदाबेग की बची सेना उसकी ओर से दिया गया धन लेकर विदा हो चुकी थी। सतगुरू अपने डेरे पर आये। सिखों, योद्धाओं तथा सरदारों ने अपने-अपने डेरे लगाये। सैदाबेग को भी डेरा करने के लिए एक स्थान दिया गया। रात को सब ने आराम किया। अगले दिन सवेरे सभा में श्री गुरू जी ने सैदाबेग को सिख बनाया और शस्त्र देकर योद्धाओं में पद प्रदान किया। अब वह सिंहों के साथ ही श्री गुरू जी के नेतृत्व में आनन्दपुर को चल पड़ा। आनन्दपुर पहले ही समाचार पहुँच चुके थे कि गुरू जी पर अलफ खां का आक्रमण हो गया है। अतः और सेना तैयार होकर सहायता के लिए कूच कर रही थी कि इतने में विजय की खबर पहुंच गई। आज सतगुरू जी स्वयं रणजीत नगाड़ा बजाते हुए पहुंचे। आनन्दपुर में घर-घर में खुशी हुई।

कल्गी वाले के स्वागत में

गेंदे का फूल

मोतीआ रिहा (रहा) न रही चंबेली
गए गुलाब सु सच्चे
गैंदे जी किंझ रूप दिखाए?

सरीदओं नहीं संगुच्चे (संकोच)?
गैंदे किहा: "मैं हुसन (सौंदर्य) राज ने
खेड़ा लाके धुर दा"
"स्वागत सत्गुर लई घलिया (भेजा)
खड़ रह खिड़ो उच्चे।"

बसंत से पहले बसंत

मौसम अजे (अभी) बसंत दा आइआ न,
सरहों (सरसों) तरी ए जरी खिलार दिती (दी)
जगत नाथ दे आइआं (आने पर) बहार दिसे (दिखाई दे)
बिन बसंत बसंत खिलार दिती।
आखण आवंदा मान (गौरव) निमाणिआं दा,
'असां नीविआं (निम्न) ला गुलजार दिती।
'किवें (किसी तरह) कलगीआं वाले दी नजर पै जये (जाये),
जिसने भौजलों (मृत्यु भय) दुनी (संसार) है पार कीती।

सूचना—जिस समय सतगुरू जी सूरज ग्रहण के अवसर पर कुरूक्षेत्र चले गए थे, उस समय विलासपुर में एक अनहोनी घटना घटी थी, जिसका वर्णन आगामी प्रसंग में है।

❑ ❑